राम रावण कथा

खण्ड - चार

RG books

संग्राम की ओर

सुलभ अग्निहोत्री

राम रावण कथा

खण्ड - चार

संग्राम की ओर

उपन्यास

सुलभ अग्निहोत्री

RG
books

RG
books
Published By
Redgrab Books Pvt. Ltd.
,942Mutthiganj, Prayagraj, 211003
www.redgrabbooks.com
contact@redgrabbooks.com

Copyright Text 2023 © Sulabh Agnihotri

The author asserts the moral right to be identified as the author of this work

This novel is a work of fiction. Names, characters, places, and incidents are the product of the author's imagination. Any resemblance to actual persons, living or dead, events, or locales is entirely coincidental.

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, and including photocopying, recording, or by any information storage and retrieval system, without the written permission of the Publisher, except where permitted by law.

अनुक्रमणिका

1. अयोध्या
2. मेघनाद का विवाह
3. विन्ध्याचल
4. किष्किंधा
5. अगस्त्य
6. विराध
7. शरभंग आश्रम की ओर
8. शरभंग का सम्बोधन-1
9. शरभंग का उद्धबोधन-2
10. शरभंग का उद्धबोधन-3
11. सुतीक्ष्ण
12. किष्किंधा
13. अयोध्या
14. किष्किंधा
15. अगस्त्य आश्रम में
16. पंचवटी की ओर
17. अयोध्या
18. किष्किंधा
19. लंका
20. चन्द्रनखा
21. नियति का संकेत
22. खर-दूषण वध
23. रावण को सूचना
24. चन्द्रनखा का उद्धार
25. विश्रामालय

@VipBooksNovels

26. पिता की शरण में
27. राजसभा
28. प्रस्थान का निर्णय
29. सीताहरण
30. अशोक-वाटिका में
31. किष्किंधा
32. पंचवटी से प्रस्थान
33. अयोमुखी और कबंध
34. भेंट
35. ऋष्यमूक पर
36. बालि का अंत
37. विलासी सुग्रीव
38. खोज हेतु प्रस्थान
39. स्वयंप्रभा
40. सन्देह
41. सम्पाती

1. अयोध्या

चित्रकूट से लौटकर भरत सीधे सभाभवन में आये।

सैन्य के सर्वश्रेष्ठ गजराज के मस्तक पर सुशोभित राम की पादुकायें लेकर आदर से राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित की। घुटनों पर बैठकर अपना शीश उन पादुकाओं पर रख श्रद्धा से प्रणाम किया। तत्पश्चात गुरुदेव वशिष्ठ और फिर तीनों माताओं को दण्डवत प्रणाम किया, सबका आशीष प्राप्त किया।

अमात्यगण और सभासद प्रतीक्षा कर रहे थे कि अब भरत संभवतः उस सिंहासन पर आसन ग्रहण करेंगे जो कभी दशरथ ने युवराज राम के लिये स्थापित करवाया था।

किंतु यह क्या....?

भरत ने तो एक बार पुनः पूर्ववत घुटनों पर बैठकर, पादुकाओं पर शीश रखकर उन्हें प्रणाम किया और फिर उठकर द्वार की ओर बढ़ चले। विवश सभासद जो अब तक पर्याप्त थक चुके थे और आसनों पर बैठकर विश्राम करना चाहते थे, पुनः किंकर्तव्यविमूढ़ से भरत का अनुगमन करने लगे।

बाहर आकर भरत ने माताओं से प्रासाद में चलने का निवेदन किया।

''तुम साथ नहीं आओगे पुत्र?'' कौशल्या ने प्रश्न किया।

''क्षमाप्रार्थी हूँ माता, किंतु मैं तो सम्राट् राम के सम्मुख उनके ही समान तापस वेश में नगर से बाहर नन्दीग्राम में निवास करने की शपथ ले चुका हूँ।''

तीनों मातायें, अमात्यगण और सभासदगण अवाक् से भरत का मुख देखते रह गये। मात्र गुरुदेव वशिष्ठ ही सदैव की भाँति मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे।

अपराधबोध से ग्रस्त कैकेयी तो मूक ही थी... कौशल्या और सुमित्रा ने भरत को समझाना चाहा किंतु शांत भरत के अटल निर्णय को प्रभावित

नहीं कर सकीं। विवश मातायें माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के साथ अपनी-अपनी शिविकाओं पर आरूढ़ हो प्रासाद की ओर बढ़ चलीं।

''अब आप सब भी विदा लें!'' माताओं के विदा होने के उपरांत भरत ने हाथ जोड़कर समस्त उपस्थित समुदाय से निवेदन किया।

तत्पश्चात् वे सुमन्त्र की ओर घूमे-

''तात सुमन्त्र, आप गुरुदेव को आश्रम तक छोड़ने का कष्ट और उठायें।'' कहने के साथ ही उन्होंने पुनः गुरुदेव का आशीष लिया।

सबके विदा होने के उपरांत वहाँ मात्र शत्रुघ्न बचे रहे।

''अब तुम भी विदा लो शत्रुघ्न!'' भरत बोले।

''प्रश्न ही नहीं उठता।'' शत्रुघ्न ने भी शांत किंतु दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

भरत कुछ पल एकटक शत्रुघ्न के मुख की ओर देखते रहे फिर दीर्घ निःश्वास के साथ गंभीर वाणी में बोले-

''तुम्हारे साथ रहने से मुझे निश्चय ही सहारा रहेगा किंतु प्रासाद में माताओं के साथ तुम्हारा रहना आवश्यक है। मातायें अत्यंत व्यथित हैं।''

''परंतु भ्राता...''

''मुझे अनुमान है कि यह तुम्हारे दीर्घकालीन अभ्यास के लिये कठिन होगा। किंतु यह आवश्यक है। प्रातः तुम नंदीग्राम आ सकते हो।''

शत्रुघ्न ने उत्तर देने के पूर्व समय लिया। वे भरत के मुख की ओर निहारते हुए कुछ क्षण सोचते रहे, फिर बोले-

''किंतु अभी तो दिवस शेष है!''

''निश्चय ही। किंतु आज माताओं के साथ तुम्हारा जाना आवश्यक है। कल से नित्य तुम सूर्यास्त तक मेरा हाथ बँटाया करना।''

भरत शत्रुघ्न को लेकर सशंकित थे। उन्हें प्रतीत हो रहा था कि उसके साथ उन्हें लम्बे विवाद में उलझना पड़ेगा। किंतु ऐसा नहीं हुआ। शत्रुघ्न ने एक पल सोचा और शांत स्वर में दीर्घ निःश्वास के साथ बोले-

''सम्यक। किन्तु प्रातः ही मैं आपके निकट उपस्थित हो जाऊँगा।''

शत्रुघ्न के विदा लेते ही भरत अश्वारूढ़ हुए और नंदीग्राम की ओर प्रस्थान कर दिया। वे आज शांत चित्त से विचार करना चाहते थे कि आगामी चौदह वर्ष उन्हें किस प्रकार व्यतीत करना है। अपने प्रण का निर्वाह करते हुए भी किस प्रकार कौशल के प्रति अपने सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वहन करना है।

***

नंदीग्राम अयोध्या नगरी की सीमा के बाहर एक विशाल राजकीय उपवन था। उपवन के मध्य में एक विशाल सरोवर था। उपवन की देख-रेख के लिये बीस-पच्चीस माली आदि अनुचर नियुक्त थे। भरत ने वहाँ पहुँचकर अश्व को उपवन में छोड़ दिया और स्वयं उपवन के एक छोर पर बने आवासीय खण्ड की ओर बढ़ चले। भरत को आया देखकर कई अनुचर दौड़ते हुए उनकी ओर आ गये। किंतु भरत ने अतिशय विनम्रता से सबको वापस लौटा दिया।

उन्होंने आवासीय खण्ड का एक कक्ष खोलकर, उसकी समस्त सामग्री निकालकर स्वयं ही दूसरे कक्षों में पहुँचा दी। यह सब करते-करते उन्हें प्यास अनुभव हुई। वे कक्ष से बाहर आये और अनुचर को पुकारने वाले ही थे कि सहसा रुक गये- 'वहाँ भ्राता को तो स्वयं ही सरोवर से लाना पड़ता होगा, तब मैं अनुचर से जल भला कैसे मँगवा सकता हूँ!'

वे स्वयं चलकर अनुचरों के निवास की ओर गये और पूछा-

''क्या कोई मृण्मय-घट उपलब्ध है?''

अचंभित से अनुचर ने आदेशानुसार एक मिट्टी का घड़ा लाकर दे दिया।

'भ्राता को तो संभवतः स्वयं ही पात्र गढ़ना पड़ा होगा वहाँ।' उन्होंने सोचा। सोचकर एक पल झिझके परंतु फिर घड़ा ले लिया - 'आरंभ में इतना समझौता तो करना ही पड़ेगा।'

घड़ा लेकर चलने को हुए तो सोचा कि जल पियेंगे कैसे? उसके लिये भी तो कोई छोटा पात्र होना चाहिए। अथवा पत्तों के ही पात्र बना लिया करें! कुछ सोचकर उन्होंने दो सकोरे और माँग लिये, एक बड़ा घड़े पर ढाँकने के लिये और दूसरा जल पीने के लिये।

अचंभित अनुचर ने वे भी लाकर दे दिया।

अनुचर को अटपटा तो लग रहा था। वह चाह रहा था कि वह स्वयं घड़ा लेकर सरोवर से जल भर लाये, किंतु भरत के मुख पर व्याप्त गंभीरता से सहमा, वह कुछ भी कहने का साहस नहीं कर सका।

भरत ने घड़ा लिया। स्वयं सरोवर से जल भरा और ले जाकर जो कक्ष उन्होंने खाली किया था उसमें वह घड़ा रख दिया। स्वयं लेकर जल पिया और फिर भूमि पर ही पालथी मारकर विचारमग्न हो गये।

अपने विचारों में मग्न भरत नहीं जान पाये, किंतु उनके कक्ष में प्रवेश करने के उपरांत वही अनुचर जिसने उन्हें घड़ा दिया था। सहमा हुआ सा यह सोचकर वहाँ तक आया कि 'संभव है कुमार को अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता हो।' किंतु भरत को विचारमग्न देखकर बाहर ही ठिठक गया।

कुछ पल विचार के उपरांत उसने संकेत से एक अन्य अनुचर को बुलाया। उसके आने पर उसे सारी स्थिति समझाकर अपने अन्य दायित्व भी उसे सौंप दिये और स्वयं उसी कक्ष के बाहर ही एक ओर बैठ गया। यदि कुमार को कुछ भी आवश्यकता होती है तो सेवा हेतु तत्पर।

***

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही शत्रुघ्न वहाँ उपस्थित थे। अनुचर चंचल शत्रुघ्न के साथ अपेक्षाकृत अधिक सहज थे। वे सारे ही सम्पूर्ण रात्रि व्यथित रहे थे।

पूर्वोक्त एक अनुचर तो सारी रात भरत के कक्ष के बाहर आसन जमाये बैठा ही रहा था। शेष भी बार-बार आकर वहाँ झाँक जाते थे और उससे पूछ-पाछ कर चिंतित से ही वापस लौट जाते थे।

शत्रुघ्न के द्वार से प्रवेश करते ही सबने उन्हें घेर लिया और तमाम प्रश्न करने लगे। बड़ी कठिनाई से शत्रुघ्न उन्हें समझा पाये कि अब संभवतः आगामी सम्पूर्ण चौदह वर्षों तक भरत का यही व्यवहार रहेगा। ऐसी ही तपस्वियों सी उनकी जीवनशैली रहेगी।

अब तक भरत भी दैनिक कृत्यों से निवृत्त होकर संध्योपासना कर रहे थे। जैसे ही वे उपासना से उठे शत्रुघ्न ने प्रश्न किया-

''भइया, इस भाँति भूमि पर शयन करने की क्या आवश्यकता थी?''

''भइया राम भी तो वहाँ भूमि पर ही शयन करते होंगे।''

''नहीं, मैंने देखा था; वहाँ उनकी कुटिया में कुश का बिछौना बिछा हुआ था।''

''तो मैं भी बना लूँगा।''

''अभी लेकर आता हूँ।'' शत्रुघ्न की उपस्थिति से सहज एक अनुचर हठात् बोल पड़ा।

शत्रुघ्न ने मुस्कुराकर उसे रोक दिया-

''नहीं, सुना नहीं भ्राता ने क्या कहा 'तो मैं भी बना लूँगा' तात्पर्य वे स्वयं ही बनायेंगे... तुम मात्र कुश उपलब्ध करा देना।''

भरत ने उसके लिये भी मना किया किंतु शत्रुघ्न की चढ़ी हुई भृकुटी देखकर अधिक विवाद में नहीं पड़े।

''अब क्या?'' अनुचरों के जाते ही शत्रुघ्न ने प्रश्न किया।

''सभाभवन चलते हैं। भइया की पादुकाओं से अनुमति लेकर आगे कार्य सम्पादित किये जायेंगे।''

सभाभवन के मार्ग में शत्रुघ्न ने प्रश्न किया-

''भइया, क्या भाभी के प्रति आपका कोई कर्तव्य नहीं है?''

''भइया राम और उनकी अनुपस्थिति में उनके आदेश के अनुसार कोशल के प्रति अपने कर्तव्य का सुचारु निर्वहन कर पाऊँ'', केकय से लौटने के उपरांत पहली बार भरत के अधरों पर स्मित दृष्टिगोचर हुई - ''तब किसी अन्य के प्रति कर्तव्यों के निर्वहन के विषय में विचार करूँ।''

''सब माना, फिर भी भाभी का अधिकार सर्वप्रथम है आपके ऊपर!'' शत्रुघ्न ने पुनः प्रयास किया।

''माण्डवी मेरी अर्द्धांगिनी है। उसका जितना मुझ पर अधिकार है, उतना ही दायित्व भी है मेरे दायित्वों में हाथ बँटाने का।''

''उस दायित्व की उपेक्षा उन्होंने कब की?''

''तुम जो अपेक्षा कर रहे हो मुझसे। यदि मैं उसी पथ का अनुसरण करूँगा तो मुझे और माण्डवी दोनों को ही अपने दायित्वों की उपेक्षा करनी ही पड़ेगी।''

''आपके प्रासाद में निवास करने से दायित्वों की उपेक्षा भला किस भाँति होगी?''

''जितनी सुविधाओं का उपभोग भइया और भाभी कर रहे हैं, उससे अधिक का उपभोग करने की भरत भला सोच भी कैसे सकता है।''

''परंतु पुनः वही प्रश्न उपस्थित होता है कि इस प्रकार आप भाभी के प्रति अपने दायित्वों की उपेक्षा नहीं कर रहे हैं?''

''नहीं, जिस भाँति लक्ष्मण के भइया और भाभी की सेवा में चले जाने पर, उर्मिला यहाँ माताओं की सेवा के दायित्व का निर्वहन कर रही है, उसी भाँति मेरे भ्राता के आदेश के अनुपालन में कोशल की सेवा में निरत रहने पर, माण्डवी प्रासाद में माताओं की सेवा में रहकर मेरे उस दायित्व का निर्वहन करेगी।''

"उर्मिला भाभी को यह संतोष तो है कि लक्ष्मण भइया राम और भाभी सीता की सेवा में उस बीहड़ वन में उनके सहयोग और संरक्षण हेतु गये हुए हैं। भाभी किस प्रकार संतोष करें जबकि आप यहीं उपस्थित हैं?"

"जिस भाँति मैं यहाँ नंदीग्राम में संतोष करूँगा!"

शत्रुघ्न ने असहमति मिश्रित रोष से भरत को कुछ पल घूर कर देखा। फिर बोले-

"आप अपने ज्येष्ठ होने का अनुचित लाभ ले रहे हैं। मेरे तर्कों की बलात उपेक्षा कर रहे हैं।"

भरत ने कोई उत्तर नहीं दिया। बस एक बार घूमकर शत्रुघ्न को देखा, थोड़ा सा मुस्कुराये और पुनः शांत भाव से मार्ग पर आगे बढ़ लिये।

"चलिये मान ली आप की बात।" जब शत्रुघ्न ने देखा कि भरत कोई उत्तर ही नहीं दे रहे हैं तो उन्होंने दूसरा प्रश्न किया- "किंतु आपने मुझे अपने साथ रुकने से वर्जित क्यों किया?"

"माताओं की सेवा के लिये।"

"वहाँ उनकी तीन-तीन वधुयें हैं तो सेवा हेतु।"

"एक पुत्र का भी रहना आवश्यक है।"

"क्यों? हमारी पत्नियाँ हमारे हिस्से के दायित्व का निर्वहन कर तो रही हैं। आप ने ही कहा कि पत्नी का दायित्व होता है पति के दायित्वों में बराबर हाथ बँटाना।"

"इसे यों समझो... हम चार भाइयों में से तीन ने एक-एक दायित्व सँभाल लिया है। भ्राता राम माता के अनुचित आदेश का भी सहर्ष पालन करते हुए वनवास हेतु चले गये हैं।" कहकर उन्होंने शत्रुघ्न की ओर देखा।

शत्रुघ्न ने सहमति में सिर हिला दिया तो भरत आगे बोले-

''लक्ष्मण भ्राता के सहयोग और उनकी सेवा का दायित्व निर्वहन कर रहा है।''शत्रुघ्न ने फिर सहमति में सिर हिलाया।

''मैं यहाँ उनके आदेश का पालन करने के दायित्व का निर्वहन कर रहा हूँ।''शत्रुघ्न ने इसबार सिर नहीं हिलाया बस रोष के साथ भरत को देखते रहे।

भरत ने उनकी रुष्ट दृष्टि पर ध्यान न देते हुए आगे कहा-

''अब बचा एकमात्र दायित्व माताओं की सेवा का और उसके निर्वहन हेतु बचे एकमात्र तुम। तो उसका तो तुम्हें निर्वहन करना ही पड़ेगा।''

इसी प्रकार तर्क-वितर्क करते-करते दोनों सभाभवन पहुँच गये।

***

सभाभवन में सिंहासन पर विराजमान पादुकाओं को भरत ने स्वयं अपने उत्तरीय से साफ किया। फिर कल के समान ही घुटनों पर बैठकर उनके सम्मुख शीश टिकाकर प्रणाम किया, अनुमति ली और एक ओर खड़े हो गये।

अब तक सभासदों और अमात्यों का आगमन भी आरम्भ हो गया था। भरत को खड़ा देखकर सभी उन्हें प्रणामकर, वहीं मौन खड़े होते जा रहे थे। किसी में कोई प्रश्न करने का साहस नहीं हो रहा था। सभी गुरुदेव अथवा महामात्य अथवा अमात्य सुमन्त्र के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। ये ही लोग थे जो इस समय भरत से प्रश्न करने का साहस कर सकते थे।

शीघ्र ही अमात्य सुमन्त्र ने प्रवेश किया।

''महाराज! आसन ग्रहण नहीं करेंगे?'' आते ही भरत की ओर हाथ जोड़ते हुए सुमन्त्र ने सादर प्रश्न किया।

''तात सुमन्त्र! (चारों भाई बचपन से ही जाबालि को और उन्हें इसी भाँति सम्बोधित करते चले आये थे।) महाराज तो भ्राता राम ही हैं।'' सिंहासन पर विराजित राम की पादुकाओं की ओर संकेत करते हुए वे आगे बोले- ''उनकी पादुकायें उनकी सत्ता की प्रतिनिधि हैं। मैं तो मात्र उनका सेवक हूँ। आपके लिये मैं सदैव कुमार ही रहूँगा।''

भरत का आशय समझते हुए सुमन्त्र ने भी जैसे कल भरत को करते देखा था, उसी भाँति पादुकाओं को प्रणाम किया, तत्पश्चात् प्रश्न किया-

''विराजेंगे नहीं तो कार्यवाही किस भाँति सम्पन्न होगी?''

''उसके लिये नंदीग्राम ही चलते हैं। यहाँ मात्र भ्राता से अनुमति लेने आया था।''

ऐसा ही होगा इसका कुछ-कुछ आभास अब तक सभी को हो गया था अतः किसी ने कोई अतिरिक्त प्रश्न नहीं किया। सबने मौन रहकर भरत का अनुसरण किया।

भरत इसी भाँति कोशल की सत्ता का संरक्षण करने लगे। अगले चौदह वर्षों तक वे यही करने वाले थे।

2. मेघनाद का विवाह

''सम्राट्! एक निवेदन प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूँ।'' नागराज वासुकी ने हाथ जोड़ते हुए रावण से निवेदन किया, फिर वह शिव की ओर घूमा और उनसे भी निवेदन किया-

''प्रभु आपकी भी अनुमति और आशीष की आवश्यकता है।''

वासुकी नागों का राजा और भोगवतीपुरी का शासक था। अपनी दिग्विजय यात्रा के समय जब रावण ने वासुकी को सहज ही पराजित करने के बाद भी उसे मित्र के रूप में स्वीकार किया था। तबसे वह रावण का परम हितैषी बन गया था।

आजकल रावण, मंदोदरी और मेघनाद वासुकी द्वारा आयोजित शिवार्चन-महोत्सव में, विशिष्ट राजकीय अतिथि के रूप में भाग लेने भोगवतीपुरी आये हुए थे। शिवार्चन-महोत्सव में शिव की उपस्थिति तो स्वाभाविक ही थी। देवी पार्वती का उनके साथ होना भी उतना ही स्वाभाविक था।

महोत्सव दस दिवसीय भव्य आयोजन था। प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न तक यज्ञ और पूजन चलता था और रात्रि में भोगवतीपुरी के युवाओं की विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभा का प्रदर्शन होता था। ये रात्रिकालीन प्रतिभा-प्रदर्शन कार्यक्रम अधिकांशतः प्रतिस्पर्द्धात्मक आयोजन होते थे। जहाँ तक रावण का प्रश्न था, इन आयोजनों में उसे सर्वाधिक प्रभावित स्वयं राजकुमारी सुलोचना के प्रदर्शनों ने किया था। जिस-जिस आयोजन में भी उसने प्रतिभाग किया था, सभी में अन्य प्रतिस्पर्द्धियों को बहुत पीछे छोड़ दिया था।

अद्वितीय प्रतिभा की धनी थी भोगवतीपुरी की राजकुमारी। नृत्य और गायन में उसकी प्रवीणता सच में अद्भुत थी। किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी शस्त्र-संचालन और अश्वारोहण में उसकी निपुणता। उसकी सहज चपलता और अद्भुत हस्तलाघव से रावण अत्यंत प्रभावित था।

अत्यंत प्रतिभाशालिनी होने के साथ-साथ सर्वांग सुन्दरी भी थी सुलोचना। उसमें भी नाम के अनुरूप ही उसके विशाल लोचन चुम्बकीय आकर्षण रखते थे। उसकी प्रकृति शालीनता और भरपूर आत्मविश्वास का अद्भुत संगम थी।

औपचारिक समारोह कल सम्पन्न हो गया था। निर्धारित कार्यक्रमानुसार रावणादि को आज वापस लंका प्रस्थान करना था किंतु वासुकी ने तीनों को विशेष आग्रह कर एक दिन के लिये और रोक लिया था। आग्रह करते समय उसने कहा था कि कुछ अत्यावश्यक परामर्श भी करना है। शिव का अभी कुछ सुनिश्चित नहीं था। वे एक दिन भी रुक सकते थे, एक सप्ताह भी, एक माह भी। उनका विशेष कृपापात्र सेवक नंदी उनके साथ ही था। वीरभद्र उनकी अनुपस्थिति में अन्य गणों के साथ कैलाश की व्यवस्था देख रहा था।

इस समय शिव, रावण और वासुकी उद्यान में इसी परामर्श हेतु उपस्थित थे। पार्वती और मंदोदरी महारानी शतशीर्षा के साथ अन्तःपुर में थीं, और मेघनाद भ्रमण हेतु कहीं सुदूर निकल गया था।

''तो संकोच किस बात का है, निःशंक कहिए।'' रावण ने सहजता से उत्तर दिया।

शिव कुछ नहीं बोले, बस सदैव की भाँति अर्द्ध-निलीमित नयनों से सहज स्मित के साथ दोनों को देखते रहे।

''आपने मेरी पुत्री सुलोचना को तो देखा ही होगा?'' वासुकी ने कुछ संकोच के साथ बात आगे बढ़ायी।

''नाग-शिरोमणि; आप सचमुच धन्य हैं ऐसी पुत्री को प्राप्त कर।'' रावण ने बिना लाग-लपेट के अपने हृदय के उद्गार व्यक्त कर दिये। यद्यपि वासुकी का मन्तव्य अभी उसे समझ नहीं आया था।

''सम्राट्! यदि आप अनुमति दें तो मैं सुलोचना को आपके संरक्षण में सौंपना चाहता हूँ।''

''ऐसे रत्न का संरक्षक बनकर कौन व्यक्ति स्वयं को धन्य नहीं अनुभव करेगा नागराज! किंतु पुत्री को रावण के संरक्षकत्व में सौंपने के पीछे आपका प्रयोजन स्पष्ट नहीं हुआ अभी।'' रावण ने किंचित आश्चर्य के साथ प्रश्न किया।

''सम्राट्।'' वासुकी ने मंद स्मित के साथ कहा- ''मैं युवराज इन्द्रजित के साथ सुलोचना के विवाह का प्रस्ताव रखना चाहता हूँ।''

''ओह नागराज!'' रावण अचानक चौंक सा पड़ा, फिर हँस पड़ा। हँसते हुए ही बोला- ''सांसारिक विषयों में रावण कितना अपरिपक्व है। इतनी स्पष्ट बात भी नहीं समझ पाया।''

वासुकी क्या उत्तर देता, बस मंद-मंद मुस्कुराता रहा।

''इससे सुन्दर और क्या हो सकता है।'' रावण आगे बोला। उसका स्वर उत्साहित था- ''किंतु इस विषय में निर्णय तो मेघनाद ही ले सकता है। साथ ही उसकी माता महारानी मंदोदरी से भी परामर्श करना होगा।'' कहने के साथ ही वह शिव की ओर घूमा- ''प्रभु की अनुमति भी तो लेनी होगी!''

शिव अभी भी उसी मुद्रा में थे। रावण की बात सुन उन्होंने एक पल को अपने नयन मूँदे और फिर खोलते हुए बोले-

''वर और कन्या दोनों के लिये ही इससे श्रेष्ठ कोई विकल्प विधाता ने निर्मित ही नहीं किया है।''

शिव के बोलते ही वासुकी ने अपना मस्तक उनके चरणों में रखकर उन्हें प्रणाम किया और फिर रावण से सम्बोधित हुआ-

''लीजिए सम्राट्, प्रभु की अनुमति और अनुशंसा दोनों ही मिल गयी। अब युवराज और महारानी की सम्मति लेना आपका विषय है।''

''स्वीकार है।'' रावण उत्साह से बोला- ''तो दिखवाइये कि मेघ कहाँ हैं? हमलोग अंतःपुर में चलते हैं मेघ की माता की सम्मति प्राप्त करने।''

''अभी?'' वासुकी रावण की इस तत्परता से कुछ चकित होता हुआ बोला।

''शुभस्य शीघ्रम्।'' रावण ने सहसा उत्तर दिया।

रावण और वासुकी उठ खड़े हुए। किन्तु शिव वैसे ही बैठे रहें। वासुकी ने शिव को अभी भी बैठे देखकर निवेदन किया-

''चलिये प्रभु! आप भी चलिये।''

''तुमलोग ही जाओ, वहाँ अन्तःपुर में शिव का क्या कार्य।'' कहते हुए शिव हँस पड़े और फिर उन दोनों के उपस्थिति में ही आँखें मूँदकर ध्यानस्थ हो गये। रावण और वासुकी के पास अब वहाँ से प्रस्थान करने के सिवा कोई उपाय नहीं था। मार्ग में उद्यान के द्वार पर खड़े प्रतिहारियों को वासुकी ने मेघनाद को खोजने का दायित्व सौंप दिया और स्वयं रावण के साथ रथारूढ़ हो अंतःपुर की ओर चल दिया।

***

अंतःपुर में एक ऊँचे से आसन पर देवी पार्वती विराजमान थीं और उनके सम्मुख अपेक्षाकृत छोटे आसनों पर मंदोदरी और महारानी शतशीर्षा बैठी थीं।

तीनों में सुलोचना के विवाह के विषय में ही कुछ परामर्श चल रहा था। तभी दासी ने आकर महाराज और दशानन के आगमन की सूचना दी।

"प्रभु नहीं हैं साथ में?" सूचना सुनते ही देवी पार्वती ने दासी से पूछा।

"नहीं देवी, लंकेश्वर और महाराज ही हैं।" दासी ने हाथ जोड़े हुए उत्तर दिया।

"ठीक है, आने दो।" देवी पार्वती ने अनुमति दे दी।

कुछ ही पलों में रावण और वासुकी वहाँ उपस्थित थे।

प्रणाम आदि की औपचारिकताओं के उपरांत रावण हाथ जोड़कर देवी पार्वती से सम्बोधित हुआ-

"माता, नागराज ने एक अत्यंत उत्साहजनक प्रस्ताव मेरे सम्मुख रखा है। यदि अनुमति दें तो मैं आप सबके सम्मुख निवेदन करना चाहता हूँ।"

देवी के आनन पर सदैव की भाँति ही मंद स्मित विराजमान थी। उन्होंने वैसे ही मुस्कुराते हुए, धीरे से सिर हिलाकर अनुमति दे दी।

देवी की अनुमति प्राप्त होते ही रावण ने प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया-

"देवी, नागराज अपनी पुत्री सुलोचना का विवाह हमारे पुत्र इन्द्रजित मेघनाद से करने के इच्छुक हैं।"

प्रस्ताव सुनते ही मंदोदरी प्रफुल्लित हो उठी, फिर भी कोई प्रतिक्रिया देने से पूर्व उसने एक बार देवी पार्वती की ओर देखा। देवी एक बार फिर धीरे से सिर हिलाकर प्रस्ताव के प्रति अपनी सहमति व्यक्त कर दी। अब मंदोदरी के पास अपने उत्साह पर नियंत्रण रखने का कोई कारण नहीं था। वह तत्काल महारानी से सम्बोधित हुई-

"महारानी, तनिक सुलोचना को यहाँ बुलवाइये तो!"

शतशीर्षा ने एक दासी को संकेत कर दिया। दासी संकेत का अर्थ समझकर बिना कुछ बोले कक्ष से बाहर निकल गयी। कुछ ही देर में सुलोचना वहाँ

उपस्थित हो गयी। सुलोचना के आते ही मंदोदरी ने उसे आलिंगनबद्ध कर लिया। प्रगाढ़ आलिंगन के बाद जब उसने सुलोचना को मुक्त किया तो जब तक वह कुछ समझ पाती मंदोदरी ने अपने कंठ में पड़ा मुक्ताहार निकाला और प्यार से सुलोचना के कंठ में पहना दिया।

सुलोचना कुछ सकुचा गयी। उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से अपनी माता की ओर देखा। किंतु महारानी शतशीर्षा कोई उत्तर देतीं उससे पूर्व ही रावण ने मंदोदरी को टोक दिया-

''महारानी अभी मेघ की सहमति शेष है।''

''सहमति तो अभी हमारी सुलोचना की भी शेष है।'' मंदोदरी बोली। फिर स्नेह से सुलोचना का चिबुक अपनी उँगलियों से उठाकर उसके नेत्रों में झाँकते हुए पूछा-

''क्यों पुत्री, तुझे यह प्रस्ताव स्वीकार है?''

सुलोचना पहले नहीं समझ पायी थी किंतु अब समझ गयी कि यह उसके विवाह का प्रस्ताव है। उसने लजाकर सिर झुका लिया।

''अरे! इस भाँति लजा क्यों रही है? हमें तो वह चपल-चंचल सुलोचना ही प्यारी है, जिसे हम इतने दिनों से देख रहे हैं।'' सुलोचना के लजाने पर मंदोदरी ने उसे पुनः आलिंगनबद्ध कर लिया।

मंदोदरी के कहने के ढंग पर उपस्थित सभी हँस पड़े। सुलोचना और लजा गयी। तभी रावण ने हँसते हुए नागराज को उलाहना दिया-

''नागराज, आपके अनुचर अभी तक मेघ को खोज ही नहीं पाये।''

''सम्राट्! आपका पुत्र इन्द्रजित ही नहीं 'इन्द्रियजित' भी है। क्या आपको प्रतीत होता है कि उसे खोज पाना इतना सहज होगा अनुचरों के लिये?'' वासुकी ने भी सहास ही उत्तर दिया।

''आप ऐसे उद्विग्न क्यों हो रहे हैं महाराज'', मंदोदरी रावण की आतुरता का आनन्द लेती हुई बोली- ''मेघ की प्रतिक्रिया के प्रति यदि आपके मन में कोई

आशंका हो तो तत्काल निकाल दीजिए। वह माता की इच्छा की अवहेलना कदापि नहीं कर सकता।''

''महारानी, नागराज मेघ की आज्ञाकारिता पर प्रश्नचिन्ह उपस्थित नहीं कर रहें। किन्तु अभी स्वयं नागराज ने कहा कि वह 'इन्द्रियजित' है।'' कहते-कहते रावण हँसा- ''उसकी प्रवृत्ति पिता के विपरीत अपने पितामह-प्रपितामह का अनुसरण करती है। विवाह उसके लिये भोग-विलास की अपेक्षा पितृऋण से उऋण होने हेतु एक दायित्व मात्र ही होगा। आपने क्या ध्यान नहीं दिया कि आज भी उसका अधिकांश समय प्रासाद अथवा सभाकक्ष के स्थान पर निकुम्भिला में ही व्यतीत होता है।'' रावण ने अपना संशय व्यक्त किया।

अपने विवाह की चर्चा से संकोचग्रस्त सुलोचना ने, गुरुजनों को आपसी वार्ता में व्यस्त होते देख प्रस्थान की अनुमति माँगने का उचित समय समझा। वह विनीत भाव से मंदोदरी से सम्बोधित हुई-

''माता, यदि अनुमति हो तो मैं जाऊँ... कुछ अत्यावश्यक कार्य था।''

मंदोदरी ने एक बार पुनः स्नेह से उसका सिर सहलाया और जाने की अनुमति दे दी। सुलोचना सभी को प्रणाम कर चली गयी।

संस्कारशील कन्याओं को अपने विवाह की वार्ता के मध्य उपस्थित रहने में लज्जा आती ही है। ऐसी वार्ताओं को वे छिपकर सुनना तो चाहती हैं किंतु उनमें अपनी प्रत्यक्ष उपस्थिति उन्हें असहज करती है।

उसके जाने के बाद मंदोदरी ने वार्ता का सूत्र पुनः आगे बढ़ाया-

''सटीक अनुशीलन किया है आपने अपने पुत्र का'', कहकर वह हँसी और आगे जोड़ा- ''किंतु उसके पिता पर आपका आक्षेप सर्वथा अनुचित है। विलास में प्रवृत्ति तो उनकी भी नहीं है।''

उसके इस स्नेहिल तर्क पर सभी हँस पड़े। हँसी रुकते ही वह आगे बोली-

''विवाह मेघ के लिये भोग-विलास का विषय हो अथवा पितृऋण से उऋण होने का साधन, विवाह के विरुद्ध तो नहीं ही है वह; तब आपको आशंका क्यों हो रही है भला?''

''आशंका नहीं हो रही महारानी, तथापि उसकी सहमति तो आवश्यक ही है।''

''उसकी सहमति प्राप्त करना मेरा दायित्व है।'' मंदोदरी मुस्कुराती हुई बोली- ''आप तो यह बताइये, प्रभु शिव की अनुशंसा प्राप्त की अथवा नहीं?''

''प्रभु ने अपनी अनुशंसा दे दी है।'' इस बार उत्तर वासुकी ने दिया।

ऐसे ही बतियाते हुए सब मेघनाद के आगमन की प्रतीक्षा करते रहें।

***

मेघनाद को आते-आते एक प्रहर व्यतीत हो गया।

वह जब आया तो आशंकित था कि ऐसा क्या हुआ जो उसे अविलंब बुलाया गया है। फिर जब उसे अपने विवाह-प्रस्ताव के विषय में ज्ञात हुआ तो एकाएक वह ठगा सा रह गया। यह वह भी समझ रहा था कि सुलोचना जैसी सर्वगुण-सम्पन्न कन्या बड़े भाग्य से मिलती है। उसमें खोजे से भी कोई खोट निकाल पाना संभव नहीं था। फिर भी उसने टालने का बहुत प्रयास किया। वह अभी अपना सारा समय और सारी ऊर्जा अपने अध्ययन-अन्वेषण पर ही व्यय करना चाहता था।

परंतु इस प्रस्ताव को टालने के अपने किसी भी प्रयास में वह सफल नहीं हो सका। माता-पिता, प्रभु शिव और देवी पार्वती चारों की ही संस्तुति थी इस संबंध के लिये। अंततः आगामी पूर्णमासी की तिथि इनके विवाह के लिये सुनिश्चित हो गयी।

अगले दिन प्रातः ही रावण, मन्दोदरी और मेघनाद तीनों पुष्पक से लंका के लिये वापस लौट गये। उन्हें अविलम्ब ही सुलोचना को वधू के रूप में लिवाने के लिये फिर भोगवतीपुरी लौटना था।

शिव ने मेघनाद के विवाह तक वहीं धूनी रमाने का निर्णय ले लिया था।

3. विन्ध्याचल

विन्ध्य पर्वत की घाटियों में विस्तृत वनप्रदेश दुर्गम होते हुए भी अत्यंत मनोरम था। राम समेत ये सभी यात्री वन की सुषमा पर मोहित हो गये।

''रामभद्र! क्यों न अब कुछ देर विश्राम कर लिया जाये?'' लक्ष्मण के मित्र युवा ऋषियों में से एक ने सुझाव दिया।

सुझाव राम को भी उचित प्रतीत हुआ। वे और लक्ष्मण तो बला-अतिबला के प्रभाव से भूख और थकान पर विजय प्राप्त कर चुके थे किंतु ऋषियों और सीता के साथ तो ऐसा नहीं था। राम ने विचार किया- वे तो निश्चय ही थक चुके होंगे। एक प्रहर से अधिक समय हो गया था उन्हें अविराम चलते हुए।

''उचित है ।'' राम ने उत्तर दिया और फिर लक्ष्मण से सम्बोधित हुए- ''लक्ष्मण! जैसे ही कोई उचित स्थान देखो, रुकने की व्यवस्था कर लो।''

लक्ष्मण ने सिर हिलाकर सहमति दे दी।

थोड़ी ही दूर पर एक उचित स्थान लक्ष्मण की दृष्टि में आया। पगडंडी के दाहिनी ओर थोड़ा भीतर हटकर स्वच्छ जल का एक छोटा सा सरोवर दिखाई पड़ रहा था। उसी की ओर संकेत करते हुए लक्ष्मण ने प्रस्ताव किया-

''भ्राता! उस वापी के निकट रुकते हैं चलकर। सघन तरुओं की छाया भी है और जल की उपलब्धता भी।''

सब लोग उसी ओर बढ़ चले।

सरोवर के निकट पहुँचते ही लक्ष्मण ने अपना धनुष एक वृक्ष के सहारे टिका दिया और कंधे पर टँगी पोटली उतारकर रख दी।

''बैठिए आपलोग!'' लक्ष्मण बोले और वापी की ओर बढ़ चले।

''हम सभी आते हैं।'' राम ने प्रस्ताव को संशोधित किया।

सभी ने अपने-अपने हाथों में जो भी थोड़ा-बहुत सामान था उतारकर उसी वृक्ष के नीचे रख दिया और सरोवर के निकट आकर बैठ गये। ऋषि-वृन्दों ने पहले घुटनों के बल बैठ, हाथ जोड़कर उस सरोवर को प्रणाम किया। होंठों ही होंठों में कुछ स्तोत्र-पाठ किया, फिर झुककर अँजुरी में जल लेकर अपने शरीर पर छिड़का। उनकी देखा-देखी राम और सीता ने भी यही क्रिया दोहरायी।

लक्ष्मण सरोवर के तट पर न आकर चौड़े पत्तों वाले एक वृक्ष की ओर बढ़ गये थे। कुछ ही पलों में वे उन पत्तों के कुछ दोने से बनाकर लौटे और सबसे पहले एक सीता को पकड़ाते हुए बोले-

''लीजिए भाभी, जल पीने में सहजता होगी।''

सीता ने लक्ष्मण के हाथ से दोना ले लिया और उसे सरोवर में डुबोकर पानी भरा और अपने सिर पर उँड़ेल लिया। जल सिर से होकर चेहरे पर फैल गया। सीता ने एक और दोना भरकर इस बार सीधे अपने चेहरे पर डाला, फिर अपने पल्लू से चेहरा पोंछ लिया। शीतल जल के स्पर्श से सम्पूर्ण चेतना को जैसे प्राण प्राप्त हो गये। इसके बाद उन्होंने तृप्त होने तक शीतल जल पिया।

लक्ष्मण इस बीच राम और साथी ऋषियों को भी एक-एक दोना पकड़ा चुके थे। सभी ने पहले दोने में भरकर पानी पिया और फिर सरोवर में उतर गये।

निर्मल-शीतल जल का पान करने से और सरोवर के स्वच्छ जल में कुछ देर विहार करने से सबके शरीर एक बार फिर से नवीन स्फूर्ति से भर गये। कुछ देर बाद सभी वापस आकर उसी वृक्ष के नीचे बैठ गये।

''रामभद्र! आपलोग बैठें, तब तक हमलोग कुछ फल एकत्र कर लेते हैं।'' ऋषि रजस्व ने उठते हुए राम के सम्मुख प्रस्ताव रखा।

''आपलोग क्यों कष्ट करते हैं, लक्ष्मण कर लेगा।'' राम ने सौजन्यवश लक्ष्मण की ओर संकेत करते हुए कहा। राम का संकेत देखकर लक्ष्मण बिना एक क्षण गँवाए उठकर खड़े हो गये और हँसते हुए बोले-

"हाँ ऋषिवर, वृक्षों पर फलों का आखेट तो मेरा प्रिय व्यसन है। इस कार्य में हस्तक्षेप कर आप मेरे आनन्द में बाधा न ही दें।"

"कोई बात नहीं। आप वृक्षाटन कीजिएगा। हमलोग बटोरते रहेंगे।" ऋषि देवमित्र भी हँसते हुए बोले और उठ खड़े हुए। उनके साथ शेष ऋषि भी लक्ष्मण के साथ चलने को तत्पर हो मुस्कुराते हुए उठ खडे हुए।

इन सब के जाने के बाद वहाँ मात्र राम और सीता ही शेष बचे थे। जब लक्ष्मण और ऋषिगण आँखों से ओझल हो गये तो सीता ने बात छेड़ी-

"आर्यपुत्र, अब कोई स्थाई आवास स्थापित करने के विषय में विचार कीजिए।"

"निश्चय ही करना पड़ेगा। अभी तो वनवास का बहुत काल शेष है।" राम ने घास के एक तिनके से खेलते हुए सहज उत्तर दिया।

"कितना काल शेष होगा अभी?"

"अभी तो आरम्भ ही हुआ है। अभी से क्या गणना करना!"

"ऐसा तो नहीं कि आपको यही जीवन अधिक भा रहा हो?" सीता ने हँसते हुए चुहल की- "आपकी प्रकृति के अनुरूप ही है यह जीवन।"

"सो तो है। किन्तु अयोध्या वापस तो लौटना ही होगा। अन्यथा मेरा मन तो ऐसे ही किसी अरण्य में निवास हेतु ही प्रेरित करता है।"

जब तक बाकी लोग वापस लौटे राम और सीता में यूँ ही हल्की-फुल्की चुहल होती रही।

इस दौरान न तो राम ने लक्ष्य किया और न ही सीता ने कि एक जोड़ा छिपी हुई आँखें उन पर हर पल दृष्टि रखे हुए हैं। फलों के आखेट को गये हुए लक्ष्मण और ऋषिगण भी उन आँखों को लक्ष्य नहीं कर पाये।

4. किष्किंधा

"अरे दीदी, आप मानतीं क्यों नहीं! कहा न कि मैं सब काम कर लूँगी।"

अपने पुराने अभ्यास के अनुसार अंजना प्रातः उठकर घर की सफाई में उलझ गयी थी, उसी को अपनेपन से लगभग डाँटते हुए मंगला बोली।

"दिन भर तो काम में लगी ही रहती है तू। यदि मैंने जरा सा हाथ हिला दिया तो कौन सा भूचाल आ गया!" अंजना ने प्रतिरोध किया।

"आ ही गया भूचाल, आप तत्काल झाड़ू छोड़ दीजिए।" मंगला नित्यक्रिया से निवृत्त होकर कुल्ला कर रही थी, वहीं से बोली।

यह इन दोनों के मध्य नित्य का झगड़ा था। अंजना को सदैव का अभ्यास था प्रातःकाल सूर्योदय से बहुत पूर्व ही उठने का, जबकि मंगला उससे कुछ बाद में ही उठ पाती थी। अंजना पहले उठ जाती थी तो नित्यक्रिया से निवृत्त होकर घर की सफाई में लग जाती थी। मंगला उठने के बाद नित्यक्रियाओं से निवृत होती थी तो झपटकर अंजना से झाड़ू छीन लेती थी।

मंगला को यह बुरा लगता था कि उसके होते हुए अंजना ऐसे कार्य करे। इसलिये वह पूरा प्रयास करती थी कि वह अंजना से पूर्व ही जाग जाये, पर यह हो नहीं पाता था। वह नित्य ही अंजना से कहती थी कि उसे भी अपने साथ ही जगा दिया करे, किंतु अंजना हर बार हाँ कहकर भी नहीं जगाती थी। उसे लगता था कि मंगला सारा दिन काम करने के बाद देर से सोती है, तो प्रातः उसे कच्ची नींद क्यों जगाया जाये। यह अपनेपन का झगड़ा था, इससे प्यार बढ़ता ही था।

किष्किंधा में मंगला अब तक अंजना के परिवार के साथ सुस्थापित हो चुकी थी। उसके आगमन से केसरी और अंजना दोनों ही प्रसन्न थे। मंगला के रूप में परिवार में एक बेटी का आगमन जो हुआ था।

''देवी अहिल्या भी यही करती थीं, आप भी यही करती हैं।'' मंगला आकर नित्य की भाँति अंजना से झाड़ू एक प्रकार से छीनती हुई बड़बड़ाई।

''क्या करती थीं देवी अहिल्या?'' अंजना ने झाड़ू छोड़कर आँगन में ही बिछी चारपायी पर बैठते हुए प्रश्न किया।

यह प्रश्न वह पहले भी सैकड़ों बार कर चुकी थी।

''उन्होंने भी कभी मुझे प्रातः अपने साथ नहीं जगाया।''

मंगला भी यह उत्तर इससे पहले उसे सैकड़ों बार दे चुकी थी।

''हुँह, तू और तेरी देवी अहिल्या!'' अंजना ने हँसते हुए चिढ़ाने वाले स्वर में कहा और फिर जोड़ा- ''तू याद कर उन्हें, मैं तब तक पूजा-कक्ष लीप दूँ।''

कहती हुई वह गौशाला की ओर गोबर लेने चल दी।

***

अंजना पूजा-कक्ष लीपकर स्नान के लिये जा रही थी और उधर से केसरी स्नान से निवृत्त हो, ध्यान-पूजन के लिये जा रहे थे। बीच में जब दोनों का सामना हुआ तो केसरी ने मंद हास्य के साथ प्रश्न किया-

''तुम दोनों बहनों का नित्य का झगड़ा निपट नहीं सकता किसी प्रकार?''

''तात्पर्य क्या है आपका, हमलोग क्या झगड़ालू हैं?'' अंजना ने एकदम से रुककर क्रोध का अभिनय किया।

''अरे कदापि नहीं'', केसरी ने हड़बड़ाने का अभिनय करते हुए उत्तर दिया- ''किंतु तुम दोनों के इतने उच्च स्वर में वार्तालाप करने से मेरा ध्यान गायत्री जाप से हटकर तुम्हारे वार्तालाप की ओर चला जाता है।''

केसरी का नियम था कि स्नान के समय शरीर पर जल डालने के साथ ही उनका गायत्री-पाठ आरम्भ हो जाता था; जो स्नान, तदुपरांत वस्त्र-प्रच्छालन से लेकर उगते हुए सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने तक अबाध चलता रहता था।

"इसका अर्थ है आप स्नान के समय पूर्ण मनोयोग से गायत्री जाप नहीं करते।" अंजना ने सहास उत्तर दिया और चुहल में और अधिक समय नष्ट किये बिना स्वयं स्नान के लिये चली गयी।

केसरी भी पूजा-कक्ष की ओर बढ़ चले।

किन्तु उन्हें रुक जाना पड़ा। कारण था हनुमान द्वार से प्रवेश कर रहे थे। हनुमान का स्थाई निवास तो अब ऋष्यमूक पर्वत पर ही था - सुग्रीव के साथ। दूसरे-तीसरे वे माता-पिता के दर्शन करने आ जाया करते थे। आज तो चार-पाँच दिन हो गये थे। उन्हें देखते ही केसरी ने अंजना को पुकारा-

"अरे देवी देखो, तुम्हारा बजरंग आया है।" और स्वयं हनुमान के भीतर आने की प्रतीक्षा करने लगे। अंजना ने अभी मुख प्रच्छालन ही किया था। पुत्र का आगमन सुनते ही वह स्नान भूलकर दौड़ी आयी।

हनुमान ने आकर माता-पिता दोनों के चरणों में झुककर नमन किया।

पहले केसरी और फिर अंजना ने उन्हें उठाकर वक्ष से चिपटा लिया। अंजना ने पुत्र की बलैया लेते हुए उपालंभ दिया-

"तू अपने खिलंदड़पन में अपने खाने-पीने का ध्यान नहीं रखता, देख कितना दुर्बल होता जा रहा है!"

उसकी बात सुन हनुमान तो हँस ही पड़े, साथ-साथ केसरी भी हँस पड़े।

"आप दोनों मेरा उपहास कर रहे हैं", पति और पुत्र दोनों को अपनी चिंता पर हँसते देख अंजना कुछ चिढ़े से स्वर में बोली- "आपने ही इसकी आदतें बिगाड़ी हैं।"

"अरे नहीं अम्मा, तेरा उपहास करने का साहस भला कौन कर सकता है, तू तो बजरंग की माता है।" हनुमान ने माता को आलिंगन में लपेटते हुए हँसकर उत्तर दिया- "कोई यदि प्रयास भी करे तो मुझे बताना, उसकी बुद्धि ठिकाने लगा दूँगा।"

"दूसरे किसी का तो साहस नहीं है, किंतु तुम दोनों तो करते ही रहते हो। तुझे तो जैसे मुझे चिढ़ाने में और दुःख देने में विशेष ही आनंद आता है।"

"अरे नहीं माता, मुझे भला तुझे चिढ़ाने में आनंद क्यों आयेगा! और तुझे दुःख देने की तो तेरा बजरंग स्वप्न में भी नहीं सोच सकता।" हनुमान ने आश्चर्य का स्वाँग करते हुए उत्तर दिया।

"तब फिर वहाँ बीहड़ वन में क्यों पड़ा हुआ है, यहाँ क्यों नहीं रहता आकर?"

"उत्तर तो तुझे ज्ञात ही है माता, मातुल सुग्रीव को वहाँ मेरी आवश्यकता है। फिर बचपन से ही तो उन्हीं के साथ सारा समय व्यतीत करता आया हूँ।"

"तो अब या तो विवाह कर ले अथवा स्वयं यहाँ रहकर मेरा सहयोग किया कर, मुझसे अब काम-धाम नहीं होता।" अंजना ने ब्रह्मास्त्र चलाया, परंतु वह भी व्यर्थ हो गया, हनुमान ठठाकर हँसते हुए बोले-

"आ गयी मेरी अम्मा फिर अपनी पुरानी रट पे। परंतु अब काम का उलाहना व्यर्थ है, अब तो तेरा सहयोग करने को मौसी आ गयी है।"

अभी तक केसरी मूक दर्शक बने माँ-बेटे की नोक-झोंक का आनन्द ले रहे थे, परंतु अब वे भी पत्नी के समर्थन में उतर आये-

"नहीं यह बात तो तेरी माता की उचित ही है। वैसे कन्या भी अत्यंत सुयोग्य है। विवाह की सहमति दे दे, तो सदैव सुखी रहेगा।"

"अरे, बाबा आप भी!" हनुमान आश्चर्य की मुद्रा में बोले- "आप भी अम्मा की इस योजना में सम्मिलित हैं?"

"नहीं योजना तो कोई नहीं है, बस तुम्हारी माता के प्रस्ताव पर मुझे कन्या का स्मरण हो आया।"

"सच में अत्यंत सुशील और सुघड़ है, जितनी कर्मठ है उससे अधिक विदुषी है; और सुन्दरता में तो अनुपमेय है ही।" अंजना ने बात आगे बढ़ायी।

''आप दोनों यह क्यों भूल जाते हैं कि मैंने अखंड ब्रह्मचर्य की शपथ ली हुई है!'' हनुमान ने उकताते हुए प्रश्न किया।

''ऐसी शपथ तो तुम्हारे पिता ने भी ली हुई थी, उन्होंने मुझसे विवाह किया कि नहीं!'' अंजना भी आज हथियार डालने को प्रस्तुत नहीं थी, उसे आज अपने पति का सहारा जो मिल गया था।

''उनकी शपथ तो हनुमान के मातामह, महर्षि गौतम ने तुड़वाई थी'', हनुमान ताली बजाते हुए बोले - ''इस कन्या के पिता में इतनी सामर्थ्य कहाँ जो तेरे हनुमान की शपथ तुड़वा सकें।'' हनुमान की पहचान अब अत्यंत धीर-गंभीर व्यक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी थी, किंतु माता के सम्मुख अब भी उनका शैशव हिलोरें लेने लगता था। माता से चुहल करने में उन्हें आनन्द आता था।

अब अंजना को आवेश आ गया, तीव्र स्वर में बोली-

''इस कन्या की भगिनी में इतनी सामर्थ्य है कि...''

''क्या?'' हनुमान को जैसे झटका लगा, अंजना की बात बीच में ही काटते हुए अत्यंत अचंभित होकर बोल पड़े - ''आपका तात्पर्य कहीं मंगला मौसी से तो नहीं है?''

''निस्संदेह उसी से है।'' कहती हुई अंजना हठात मुस्कुरा पड़ी- ''धन्य हो जाऊँ मैं तो उसे वधू के रूप में प्राप्त कर! जबसे आयी है, हमारी कुटिया एक बार पुनः गुंजार हो उठी है... इतनी मृदुभाषिणी है कि मुख से सदैव पुष्प ही झरते रहते हैं। मुझे तो किसी कार्य में हाथ ही नहीं लगाने देती। इतनी सुशील, इतनी योग्य...''

''बस-बस माता!'' हनुमान ने हँसते हुए फिर हस्तक्षेप किया - ''मुझे ज्ञात है, उसके गुणों का बखान करते तेरा मुख नहीं थकेगा, किंतु तू यह क्यों विस्मृत कर देती है कि मातामही ने उसे भगिनी के रूप में तुझे सौंपा था। वह तो हनुमान के लिये मातृ-स्वरूपा है। उसके साथ विवाह... असंभव!''

''तुझे तो कोई बहाना चाहिए होता है सदैव'', अंजना रोषपूर्ण स्वर में बोली- ''किंतु इस बार....''

''अरे बजरंग आया है!!'' दूर से आये मंगला के स्वर के कारण अंजना एक बार फिर अपनी बात पूरी नहीं कर पायी। वह बस कुपित दृष्टि से हनुमान को देखती ही रह गयी।

''बजरंग! तुम नित्य क्यों नहीं आते?'' मंगला ने पास आते हुए प्रश्न किया। वह भी सफाई से निवृत्त होकर अब स्नान के लिये जाने वाली थी।

''मौसी, चाहता तो मैं भी हूँ, किंतु संभव ही नहीं हो पाता।'' हनुमान ने सहज स्वर में उत्तर दिया।''

''ऐसे बहानों से दीदी को ही बहलाना तुम'', मृदु-हास्य के साथ मंगला ने जोड़ा- ''मैं नहीं बहलने वाली।''

''बहाना नहीं है यह...'' हनुमान ने कहना चाहा परंतु मंगला ने बीच में ही बात काट दी-

''रहने दो अपने तर्क, मुझे पता है तुम सुधरने वाले नहीं हो। मुझे मात्र यह बताओ कि प्रभु के आगमन के विषय में कोई समाचार है क्या तुम्हारे पास?''

''नहीं मौसी! प्रभु का समाचार प्राप्त होगा तो प्रथम तो यहाँ किष्किंधा में ही प्राप्त होगा। वहाँ अरण्य में तो सूचना प्राप्त करने का कोई साधन ही नहीं है।''

''यह भी अच्छा ही है'', मंद-मंद मुस्कुराते हुए, मौन इन सबकी नोंकझोंक का आनन्द ले रहे केसरी ने कहा- ''इसी लालच में तुम आते तो रहते हो किष्किंधा।''

केसरी की टिप्पणी पर सभी हठात् हँस पड़े। हँसी थमने पर केसरी ने आगे जोड़ा- ''किंतु यहाँ अभी तक कोई समाचार नहीं है। इतना अवश्य ज्ञात हुआ है कि वे चित्रकूट से दण्डक की ओर बढ़ चुके हैं। दण्डक पहुँच गये अथवा मार्ग में ही कहीं प्रवास कर रहे हैं, यह ज्ञात नहीं है।''

''कैसी विवशता है'', हनुमान कुछ व्यग्र स्वर में धीरे से बुदबुदाये- ''मैं सहज ही उन्हें खोजकर उनके चरणों में समर्पित हो सकता हूँ किन्तु मातामही ने मना किया हुआ है।''

5. अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य बड़ी देर से समाधि की अवस्था में अविचल बैठे हुए थे। इस बीच एक ऋषि दो बार उनकी कुटिया में झाँककर देख गये थे। कदाचित उन्हें कुछ महत्वपूर्ण कार्य था, किंतु गहन समाधि की अवस्था में स्थित महर्षि को टोका भी नहीं जा सकता था अतः बेचारे हर बार चुपचाप लौट जाते थे।

वस्तुतः महर्षि अगस्त्य इतनी देर से महर्षि परशुराम से सम्पर्क करने का प्रयास कर रहे थे। अंततः सम्पर्क स्थापित हुआ, होते ही अगस्त्य ने मुस्कुराते हुए सरल कटाक्ष किया-

''षष्ठ विष्णु को अगस्त्य का प्रणाम!''

''प्रणाम महर्षि! किंतु राम (परशुराम) को प्रणाम निवेदन कर इस अकिंचन के साथ उपहास करना आपको शोभा नहीं देता'', परशुराम ने कटाक्ष से कुछ असहज होते हुए सविनय कहा- ''आप राम के ज्येष्ठ हैं, उसके लिये सदैव वंदनीय हैं। आप उसे आशीष दीजिए।

''चिरंजीवी हो वत्स!'' अगस्त्य ने अपनी उसी सहज मुस्कान के साथ परशुराम का निवेदन स्वीकार किया, किंतु साथ ही जोड़ा - ''विष्णु समस्त ऋषि-समुदाय के लिये प्रणम्य हैं और परशुराम षष्ठ विष्णु की उपाधि से विभूषित है। इस नाते वह समस्त ऋषियों के लिये स्वतः वंदनीय है।''

''इस राम की महत्ता तो सप्तम विष्णु के अवतरण के साथ ही समाप्त हो चुकी है महर्षि। अब तो हम सब दाशरथि राम के सहयोगी की भूमिका में हैं। विष्णु-उपाधिधारी के रूप में अब दाशरथि ही हम सबके लिये वंदनीय हैं।''

''जामदग्नेय! इतना निरहंकारी कब से हो गया?'' अगस्त्य ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पुनः कटाक्ष किया- ''वह तो उद्धत-आक्रोशित योद्धा के रूप में ख्याति है।''

''महर्षि, और अधिक उपहास कर अकिंचन को लज्जित न करें। आदेश करें किस हेतु स्मरण किया।'' परशुराम को अगस्त्य जैसे वरिष्ठ महर्षि के साथ इस विनोद-वार्ता में संकोच अनुभव हो रहा था, उन्होंने विषय-परिवर्तन का प्रयास किया।

परशुराम का उत्तर सुनकर अगस्त्य हँस पड़े। हँसी रुकने पर बोले-

''मनोविनोद से बचना चाह रहे हो वत्स! चलो ऐसा ही सही। किंतु सम्पर्क स्थापित होने में इतना समय क्यों लगा?''

''आपके संकेत मुझे यथासमय मिल गये थे, किंतु मैं छात्रों के प्रशिक्षण में व्यस्त था अतः तत्काल उत्तर नहीं दे सका। सर्वप्रथम तो मैं इस धृष्टता के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ, किंतु आप समझ सकते हैं कि प्रशिक्षण के मध्य एकाएक मेरे ध्यानस्थ हो जाने से प्रशिक्षणार्थियों में उचित संदेश नहीं जाता।''

''सम्यक!'' अगस्त्य ने परशुराम का तर्क स्वीकार करते हुए कहा- ''तो अपने उत्तराधिकारी के सहयोग के लिये सतत् क्रियाशील है जामदग्नेय!''

''जी महर्षि! यही आज्ञा थी मेरे लिये ब्रह्मर्षि (विश्वामित्र) की।''

''यह तो ज्ञात ही होगा कि दाशरथि दंडक में प्रविष्ट हो चुका है।''

''मेरे संज्ञान में नहीं था अब तक यह तथ्य।'' परशुराम ने प्रसन्नता के साथ उत्तर दिया- ''सुदीर्घ काल से मेरा ऋषियों या देवों से कोई सम्पर्क नहीं हुआ। मैं स्वयं भी प्रशिक्षणों में इतना व्यस्त रहा कि इस विषय में चिंतन नहीं कर सका।''

''वस्तुतः मुझे भी ऐसा ही आभास था। तभी मैंने तुमसे सम्पर्क स्थापित किया, ताकि सूचित कर दूँ।''

''आभारी हूँ, महर्षि!''

''वैसे, जामदग्नेय ने अब तक क्या उपलब्धि अर्जित की है?''

''आप जो विराट कार्य कर रहे हैं, उसके समक्ष तो अत्यंत तुच्छ ही है।''

''फिर भी!'' अगस्त्य ने जिज्ञासा की - ''सुना है कि किसी विशेष युद्धकला का विकास किया है?''

''जी महर्षि! मैंने इसे स्थानीय भाषा में 'कलरियापट्टू'' का नाम दिया है। यदि विपक्षी दिव्यास्त्रों का प्रयोग न करे तो इसमें प्रवीण व्यक्ति निःशस्त्र ही सशस्त्र योद्धाओं के सम्पूर्ण दल को सहजता से परास्त कर सकता है।''

''साधु-साधु!'' अगस्त्य के स्वर में प्रशंसा थी- ''दिव्यास्त्रों के प्रयोग की अपनी मर्यादा होती है। फिर दिव्यास्त्र-सम्पन्न योद्धा होंगे ही कितनी दूसरे पक्ष में! उनका मानमर्दन करने हेतु राम और लक्ष्मण ही पर्याप्त हैं।''

''अन्य कोई आदेश महर्षि!'' परशुराम ने विनय सहित प्रश्न किया।

''अभी के लिये पर्याप्त है। यहाँ भी प्रतीत होता है कोई विशिष्ट पुरुष प्रतीक्षारत है।'' कहते-कहते एकाएक अगस्त्य की गंभीरता तिरोहित हो गयी और उन्होंने पुनः कटाक्षपूर्वक जोड़ा- ''अगस्त्य को उसकी सेवा में उपस्थित होना पड़ेगा।''

''तो अनुमति दें, मैं प्रशिक्षण मध्य में ही छोड़कर आ गया था।''

''अनुमति है!'' अगस्त्य ने मंद स्मित के साथ परशुराम को अनुमति दी।

''प्रणाम महर्षि!''

''चिरायु भवः!''

***

अगस्त्य समाधि से बाहर आये तो पुनः वही ऋषि कुटिया में आ उपस्थित हुए। अगस्त्य ने प्रश्नवाचक दृष्टि ऋषि की ओर उठाई तो वे प्रणाम निवेदित करते हुए बोले-

''देवेन्द्र प्रतीक्षारत हैं ऋषिवर!''

''चलो, मैं अभी आता हूँ।'' अगस्त्य ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया और एक बार पुनः नेत्र मूँद लिये। कदाचित उन्हें उठने की अभी भी कोई शीघ्रता नहीं थी।

लगभग आधे मुहूर्त बाद, अगस्त्य आश्रम के मुख्य कक्ष में इंद्र के सम्मुख उपस्थित हुए। मुख्य कक्ष से पाठक अन्यथा न ग्रहण करें, यह भी एक कुटिया ही थी, बस अपेक्षाकृत बड़े आकार की थी। यह भी अन्य कुटीरों के समान ही कच्ची ईंटों, वृक्षों की टहनियों और घास-फूस से ही बनी थी। कुटिया में इंद्र पहले से ही एक कुशासन पर विराजमान थे। महर्षि की अनुपस्थिति में देवी लोपामुद्रा आतिथ्य की भूमिका का निर्वहन कर रही थीं। अगस्त्य के आते ही वे बोलीं-

''लीजिये देवेंद्र, ऋषिवर आ गये। अब आप दोनों विचार-विनिमय कीजिए, मैं जलपान की व्यवस्था करती हूँ।'' फिर वे महर्षि अगस्त्य से सम्बोधित हुईं- ''सँभालिये ऋषिवर अपने अतिथि को।''

इतना कहकर देवी मुस्कुराती हुई कुटीर से बाहर निकल गयी। इंद्र और अगस्त्य दोनों ने ही मुस्कुराने के अतिरिक्त अन्य कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

''विलम्ब के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ, किंतु मैं आपके कार्य में ही व्यस्त था।'' मृदुल हास्य के साथ अगस्त्य बोले।

''मुझसे क्षमाप्रार्थी होकर, मुझे पाप-पंक में मत घसीटें महर्षि!'' इंद्र ने औपचारिकता निभाई।

''अरे, मुझे घसीटने की भला क्या आवश्यकता है'', अगस्त्य ने हँसते हुए कटाक्ष किया- ''पाप-पंक में तो आप पहले ही आकंठ धँसे हुए हैं।''

''महर्षि और लज्जित मत कीजिए। इंद्र पूर्व में ही आपके समक्ष प्रण कर चुका है कि भविष्य में अब उससे कोई भूल नहीं होगी।''

''देवेंद्र! ऐसे किसी प्रण का निर्वहन आपके वश में नहीं है। यह आपकी मूल प्रवृत्ति है। फिर आप देवेंद्र हैं, त्रिलोक की सर्वोच्च सत्ता। सत्ता के मद को विवेक का अंकुश कम ही नियंत्रित कर पाता है।''

''महर्षि!'' इंद्र ने विषय बदलने में ही भलाई समझी- ''क्या इंद्र अपने आगमन का प्रयोजन व्यक्त करने का साहस कर सकता है?''

''मुझे ज्ञात है, इंद्र निष्प्रयोजन किसी के पास नहीं जाता, अत्यंत स्वार्थी है वह।'' कहते हुए अगस्त्य फिर हँस पड़े।

''महर्षि! जो कुछ कहना हो आप कह लीजिये, विवश है इन्द्र आपके सम्मुख।'' इन्द्र ने हताशा से उत्तर दिया।

नारद और अगस्त्य ये दोनों ही महर्षि सर्दव उसके धैर्य की परीक्षा लेते रहते थे। अपने वाग्बाणों से वे उसके अहं को छलनी करते रहते थे और वह त्राण पाने हेतु निरुपाय सा, उनका मन भर जाने तक प्रतीक्षा भर कर पाता था। आज भी वही कर रहा था। और इस सम्पूर्ण क्रीड़ा में महर्षि के आनन पर क्रोध का कोई चिन्ह नहीं था, सहज स्मित सतत उनके अधरों पर नृत्य कर रही थी।

इन्द्र को महर्षि के इस तीखे परिहास से त्राण तब मिला जब देवी लोपामुद्रा के साथ, हाथ में जलपान के पात्र लिये, एक कन्या ने कक्ष में प्रवेश किया।

''अब परिहास स्थगित कर देवेन्द्र को जलपान करने दीजिए।'' देवी ने हँसते हुए महर्षि को सम्बोधित किया।

''मैं कहाँ कोई बाधा दे रहा हूँ!'' महर्षि ने सस्मित उत्तर दिया।

''आप बाधा तो नहीं दे रहें, किन्तु इन्हें कुछ निवेदन भी तो नहीं करने दे रहे। एक तो पहले ही इनसे इतनी प्रतीक्षा करवाई और अब उतने समय से वृथा उपहास कर इन्हें संकुचित कर रहे हैं।''

''अरे! देवेन्द्र कुछ निवेदन करने आये थे क्या?'' अगस्त्य ने अथाह आश्चर्य का प्रदर्शन करते हुए कहा- ''तब तो निश्चय ही बड़ी भूल हो गयी।''

उनके इस प्रदर्शन पर देवी हँस पड़ीं। उनके साथ आयी कन्या अपनी हँसी छिपाने के उद्देश्य से मुँह पर हाथ रख वापस पलट गयी।

मुस्कुराये बिना स्वयं देवेन्द्र भी नहीं रह सके, किन्तु उन्होंने कहा कुछ नहीं।

''तो फिर इस जलपान को सार्थकता प्रदान करने के साथ-साथ शीघ्रता से अपना निवेदन भी प्रस्तुत कीजिये, देवेन्द्र!'' अंततः अगस्त्य ने अनुमति दे ही दी।

''महर्षि अब प्रतीक्षा किस बात की है?'' अनुमति प्राप्त होते ही इन्द्र ने अपने मन का प्रश्न प्रस्तुत कर दिया।

''किस हेतु?'' अगस्त्य ने अनजान बनते हुए प्रतिप्रश्न किया।

अगस्त्य के खिलवाड़ पर ध्यान न देते हुए इन्द्र ने स्पष्ट किया-

''रावण पर आक्रमण हेतु।''

''देवेन्द्र! आपको स्वयं नहीं प्रतीत होता कि आपका प्रश्न मूर्खतापूर्ण है?'' अगस्त्य ने एक बार फिर अवसर चूके बिना कटाक्ष कर दिया।

अगस्त्य के इस सीधे कटाक्ष से इन्द्र सकपका गये। परंतु अविलम्ब सँभलते हुए पूछा-

''ऐसा क्यों कहा आपने, ऋषिवर?''

''अभी राम की उसके भावी सहयोगियों से भेंट तो होने दीजिए'', कहते-कहते अगस्त्य मुस्कुराये- ''उनका गठबंधन तो होने दीजिए।''

''तो ऐसे बानक बनाइये न, जो उनमें सम्पर्क हो और हमारी योजना अपने अंतिम चरण की ओर अग्रसर हो।''

''देवेन्द्र संयमित रहें, अति उत्साह सदैव दुर्घटना को आमंत्रण देता है।''

इन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया, बस हताशा से अगस्त्य की ओर देखते रहे।

संभवतः इन्द्र की कातरता पर अगस्त्य को दया आ गयी। इस बार वे सहानुभूतिपूर्वक बोले-

"देवेन्द्र, अपना कर्म करना हमारा दायित्व है, फल तो उस निर्णायक सत्ता के हाथ में होता है। उसके निर्णय को प्रभावित करने की शक्ति हममें नहीं होती। उसे प्रभावित करना तो दूर, हम उसके निर्णय में कोई किन्तु-परन्तु भी नहीं कर सकते। अतः श्रेयस्कर यही है अपने कर्तव्य का शुचितापूर्वक निर्वहन करते हुए संयम से उसका निर्णय फलीभूत होने की प्रतीक्षा कीजिए।''

"प्रयास तो करता हूँ ऋषिवर, किन्तु आप जैसा संयम कहाँ से लाऊँ! जब भी रावण के सम्मुख अपनी हीनता का बोध होता है, हताशा उत्कंठित करने ही लगती है।"

"यह आपकी ही समस्या नहीं है, समस्त सत्ताकांक्षियों की यही समस्या होती है। जय-पराजय उनके लिये जीवन-मरण से भी अधिक महत्वपूर्ण होती है। उनका अहम् सदैव उन्हें विचलित किये रहता है।"

अगस्त्य देर तक इसी प्रकार इंद्र को उपदेश देते रहे। इंद्र के पास चुपचाप सुनते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। बीच में कुछ बोलने का अर्थ था और भी कठोर बातें सुनने को तैयार रहना। अन्त में जब अगस्त का सुदीर्घ उपदेश समाप्त हुआ तो इन्द्र ने विनम्र भाव से प्रश्न किया-

"तो अब मेरे लिये क्या करणीय है महर्षि?"

"प्रतीक्षा।" अगस्त्य ने हँसते हुए संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

"जी!" इन्द्र ने बिना किसी प्रतिवाद के हाथ जोड़कर स्वीकार किया। वे अब किसी भी प्रकार वहाँ से पलायन कर जाने की ही इच्छा कर रहे थे किंतु सीधे उठ कर भागा भी तो नहीं जा सकता था। तभी अगस्त्य फिर बोले-

"अपना कर्तव्य तो आप देवगण लगभग सम्पूर्ण कर ही चुके हैं। अब यदि आप अपने गुरुकुलों में समय न भी दें तो भी ऋषिगण सारी व्यवस्था भलीभाँति सँभाल लेंगे।"

"तो अब अनुमति दें।" इन्द्र ने दीर्घ निःश्वास के साथ उठते हुए कहा।

"अरे, जलपान तो आपने ग्रहण ही नहीं किया!" इन्द्र को प्रस्थान हेतु तत्पर देख, अभी तक मौन बैठकर दोनों के वार्तालाप का आनन्द ले रही देवी लोपामुद्रा ने साग्रह निवेदन किया।

"नहीं देवी, पहले ही बहुत विलम्ब हो चुका है, अब चलने दीजिए।"

इंद्र असंतुष्ट ही महर्षि अगस्त्य के आश्रम से वापस लौट आये। (यह केरल राज्य में आज भी प्रचलित विशेष युद्धकला है। आज भी नृत्य के माध्यम से

केरल के मंदिरों में इसका प्रदर्शन होता है। केरलवासियों का मानना है कि इसे परशुराम ने जन्म दिया था)

6. विराध

राम और उनके साथियों के समक्ष स्थाई निवास बनाने का प्रश्न था।

जहाँ आकर ये लोग रुके थे, वह सुरम्य तो था ही साथ ही वहाँ स्वच्छ जल की उपलब्धता भी थी। रही बात भोजन की तो कन्दमूल का तो अरण्य में अभाव होता ही नहीं। अतः यही निर्णय हुआ कि यहीं स्थाई निवास निर्मित किया जाये।

कौन सा कोई भव्य निर्माण करना था, एक प्रहर में ही सबने मिलकर छः कुटीर निर्मित कर लिये। पाँच कुटीर आपस में सटे हुए थे। चार ऋषियों के लिये थे, प्रति कुटीर दो ऋषि की गणित से, पाँचवाँ लक्ष्मण के लिये। छठा कुटीर थोड़ा सा हटकर था, राम और सीता के लिये।

एक सप्ताह बिना किसी विघ्न के व्यतीत हो गया। अब तक आस-पास के क्षेत्र से ये लोग पर्याप्त परिचित हो गये थे। सम्पूर्ण निर्जन प्रदेश था यह। निकटतम बस्ती जो घूमते-फिरते, सर्वेक्षण करते उन्हें दृष्टिगोचर हुई थी वह लगभग इनके कुटीरों से एक कोस की दूरी पर थी। राम का विचार तो था साथी ऋषियों के माध्यम से उस बस्ती के निवासियों से सम्पर्क करने का, किंतु अभी तक उसका अवसर नहीं आ पाया था।

ऋषियों ने अब तक यज्ञवेदी स्थापित कर नियमित यज्ञादि कर्म आरंभ कर दिये थे। इसके साथ-साथ उन्होंने सीधी और दृढ़ टहनियाँ बीनकर पर्याप्त तीर भी तैयार कर लिये थे। निर्णायक युद्ध में ये तीर भले ही उपादेय सिद्ध नहीं होने वाले थे, परंतु तब तक... और विशेषकर अभ्यास के लिये तो सार्थक थे ही। तीरों के निर्माण के कार्य में लक्ष्मण की कुठार बहुत उपयोगी सिद्ध हुई थी। धनुष सबके पास थे ही। ऋषियों के मत से यही सब कारण थे जो वे लोग अभी तक बस्ती से सम्पर्क नहीं कर पाये थे। उनके विपरीत राम के अनुसार शिथिलता और आलस्य ही इसके कारण थे। परंतु न तो राम ने अपना मत ऋषियों के सम्मुख प्रकट किया था और न ही ऋषियों ने अपना मत राम के सम्मुख।

आठवें दिन जब ऋषिगण यज्ञादि कर्म और तदुपरांत भोजनादि से निवृत्त हो चुके, राम ने उनमें से एक को सम्बोधित किया-

''ऋषिवर सत्यप्रिय! क्यों न आज आपलोग निकटस्थ बस्ती के निवासियों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करें!''

''अवश्य रामभद्र!''

''यदि कोई असुविधा अनुभव हो तो लक्ष्मण को भी साथ ले लें।''

''कोई आवश्यकता नहीं उसकी'', ऋषि देवमित्र ने मंद स्मित के साथ उत्तर दिया- ''जब हमलोग राक्षसों से दो-दो हाथ करने को तत्पर हैं तो सामान्य वनवासियों से भला भयभीत क्यों होंगे!''

''मैं भय की बात नहीं कर रहा था...''

''तो अन्य शारीरिक सुविधाओं की कामना तो हमने कभी की ही नहीं। ऋषियों को वे काम्य होती ही नहीं।'' देवमित्र ने सहास ही पुनः उत्तर दिया।

''तो फिर विलम्ब क्यों करें, प्रस्थान किया जाये!'' सत्यप्रिय ने प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव के साथ ही आठों ऋषि उठ खड़े हुए।

***

''अब आपका क्या करने का विचार है?'' ऋषियों के जाते ही सीता ने राम से प्रश्न किया।

''हमलोग वन विहार करते हैं।'' राम ने सहज भाव से उत्तर दिया।

राम और लक्ष्मण ने अपने-अपने धनुष और तूणीर टाँगे और तीनों निकल पड़े।

विगत वर्षों में घटी घटनाओं ने लक्ष्मण के खिलंदड़ेपन को छीन लिया था, वे अब अत्यंत गंभीर और अनुशासित हो गये थे। किन्तु समय की प्रतिकूलताओं में व्यक्ति की मूल प्रकृति प्रसुप्त भले ही हो जाये, विलुप्त नहीं होती। अवसर मिलते ही वह पुनः जागकर सिर उठाने लगती है।

वन की मनोहारी छटा, स्वच्छन्द विचरते वन्य जीवों की किलोल, पक्षियों का कलरव और बीच-बीच में फलदार वृक्षों पर लटकते फल लक्ष्मण के मन को ललचाने लगे। दूर-दूर तक कहीं कोई चिंता का कारण दिखाई दे नहीं रहा था। लक्ष्मण ने अपने स्वर में अनुनय घोलते हुए राम से अनुमति माँगी-

''भइया, कुछ फल तोड़ लाऊँ?''

प्रश्न करते ही संभवतः मन में भाव आया कि मर्यादा के भयंकर पक्षपाती भाई कहीं इस उच्छृंखलता के लिये मना न कर दें, उन्होंने तुरंत ही सीता की अनुशंसा से अपने प्रस्ताव को महत्वपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास किया- ''आप भी खायेंगी भाभी!''

लक्ष्मण की चतुरता पर राम मुस्कुरा उठे परंतु वे कुछ बोलते उससे पूर्व ही हँसते हुए सीता बोल पड़ीं-

''नहीं देवर जी, मेरा तो मन नहीं है अभी।''

''क्या भाभी, आपने कभी खाये नहीं होंगे ऐसे स्वादिष्ट फल। ये विशेषकर दण्डक में ही मिलते हैं, आपकी मिथिला अथवा अयोध्या में नहीं पाये जाते।''

अब राम भी हँस पड़े, बोले-

''जाओ अच्छा, किंतु निकट ही रहना और अत्यधिक लालच मत करना।''

राम अपना कथन सम्पूर्ण कर पाते उससे पूर्व ही लक्ष्मण उड़ लिये।

राम मुस्कुराते हुए और सीता खिलखिलाती हुई आगे बढ़ चलीं।

कुछ देर तो दोनों के बीच चर्चा का विषय लक्ष्मण ही रहे फिर अचानक सीता बोल पड़ीं-

''ऐसी स्वच्छंदता कोशल में तो संभव नहीं हो सकती थी।''

''वह तो है, किंतु अपना घर तो अपना घर ही होता है, उसकी समता तो स्वर्ग भी नहीं कर सकता।''

''आप सत्य कह रहे हैं। मातृभूमि की समानता नहीं हो सकती। वैसे भी आप पुरुषों को कहीं भी विशेष अन्तर नहीं पड़ता। आप जैसे मर्यादित वहाँ थे, वैसे ही यहाँ हैं। लक्ष्मण जैसे उन्मुक्त वहाँ थे, यहाँ भी हैं।'' कहते-कहते सीता फिर हँस पड़ीं- ''किंतु मुझे तो अन्तर पड़ता है। कोशल में तो मैं इस प्रकार निर्द्वन्द्व आपके साथ विहार नहीं कर सकती थी। मुझ पर तो स्वाभाविक रूप से ही अनेक बन्धन होते वहाँ।''

''सो तो है'', राम भी मुस्कुराये- ''वहाँ आप महान इक्ष्वाकु वंश की कुलवधू थीं, युवराज्ञी थीं; दोनों पदों की मर्यादाओं के निर्वहन का दायित्व तो आप पर था ही। पद यदि अधिकार देते हैं तो दायित्व भी तो देते हैं।''

राम कुछ और कहते किंतु उसके पूर्व ही सीता उत्साह से लगभग चीख ही पड़ीं-

''आह! कितना सुन्दर शशक (खरगोश) है!''

राम ने भी देखा, एक हिमधवल शशक उनकी बायीं ओर से आया और दायीं ओर झाड़ियों में घुस गया।

''इसे पाल लेते हैं!'' सीता बोलीं और जब तक राम कोई प्रतिक्रिया दे पाते, वे भी शशक के पीछे झाड़ियों में दौड़ गयीं।

कुछ पलों में ही वे झाड़ियों और वृक्षों के बीच ओझल हो गयीं।

'इन पर भी लक्ष्मण का रंग चढ़ गया।' राम मुस्कुराते हुए मन ही मन बोले और सीता के पीछे चल पड़े।

कुछ ही पल बीते होंगे कि राम को सीता का आर्तनाद सुनाई दिया-

''रा ऽ ऽ ऽ...'' 'म' का उच्चारण वे नहीं कर पायीं।

राम तत्काल चौकन्ने हो गये। उनके पाँव विद्युतगति से स्वर की दिशा में दौड़ पड़े।

'क्या हुआ सीता संज्ञाहीन हो गयीं एकाएक अथवा किसी ने उनका मुँह दबा दिया?' राम ने अपने से ही प्रश्न किया- 'किंतु इस निर्जन में कौन हो सकता है जो उनका मुँह दबा दे। हिंस्र पशु तो ऐसा कर नहीं सकता ...'

तभी उन्हें दूर एक विशालकाय आकृति भागती हुई दिखाई दी। उसके कंधे पर सीता भी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थीं।

उस व्यक्ति में कितना बल था यह इसी से स्पष्ट था कि उसने एक हाथ से कंधे पर पड़ी सीता की जंघायें दाबी हुई थीं और दूसरा हाथ पीछे ले जाकर उससे उनके मुँह को दबाया हुआ था। इस प्रकार पीछे हाथ ले जाकर सीता जैसी सशक्त और चपल चुवती का मुख दाब पाना सहज नहीं होता किंतु उस आकृति की पकड़ इतनी बलशाली थी कि सीता सिर हिलाना तो दूर स्वर भी नहीं निकाल पा रही थीं। उनके दोनों हाथ स्वतंत्र थे जिनसे वे पूरी शक्ति से उस व्यक्ति की बाँह को नोचने-झँझोड़ने का प्रयास कर रही थीं, परंतु उस पर कोई असर ही नहीं हो रहा था।

''क्या हुआ भइया?'' पीछे से लक्ष्मण का भी व्याकुल सा स्वर सुनाई दिया।

''सीता संकट में हैं।'' राम ने उत्तर देने के साथ ही अपना धनुष कंधे से खींचा और भागते हुए व्यक्ति की जंघा को लक्ष्य कर तीर छोड़ दिया।

लक्ष्य चूकने का प्रश्न ही नहीं था। किंतु यह अयोध्या का तीक्ष्ण फल वाला बाण नहीं था। इसे तो यहीं वन में ऋषियों ने पतली टहनियों को छील कर आकार दिया था। बाण ने भागते हुए व्यक्ति की गति तो शिथिल की पर उसे रोक पाने में समर्थ नहीं हुआ।

राम ने एक और बाण छोड़ दिया। वह दूसरी जंघा में प्रविष्ट हो गया। रुका वह व्यक्ति फिर भी नहीं। तत्काल वह एक विशाल वृक्ष की ओट में हो गया।

अब बाण नहीं चलाये जा सकते थे।

अब तक लक्ष्मण भी राम के बराबर आ गये थे। राम ने भागते हुए ही उन्हें संकेत किया कि वे दूसरी ओर से उस व्यक्ति को घेर लें। लक्ष्मण ने तत्काल राम का संकेत समझ लिया और तिरछे पथ का अनुसरण करते हुए दौड़ चले। उन्होंने अभी भी धनुष कंधे से नहीं उतारा था। अतः उनकी गति राम से तीव्र ही थी।

कुछ ही पलों में दोनों उस वृक्ष के अगल-बगल पहुँच गये। दोनों ने देखा कि दोनों तीर वहीं पेड़ के पीछे निकले हुए पड़े हैं।

इधर वृक्ष घने थे अतः वह व्यक्ति और उसके कंधे पर अब भी अवश पड़ी सीता उन्हें दिखाई नहीं पड़ रही थीं।

''वो रहा!'' एकाएक लक्ष्मण चिल्लाये।

राम ने भी देखा, घने वृक्षों के बीच एक पल को उन दोनों की आकृति दिखाई पड़ी, किंतु दूसरे ही पल वे फिर से वृक्षों के बीच छुप गये। संतोष इतना ही था कि इस बार उस व्यक्ति और राम-लक्ष्मण के बीच की दूरी कम हो गयी थी। राम को विश्वास था कि अगले कुछ ही पलों में वे उसे थाम लेंगे।

इस स्थिति का आभास संभवतः उस आततायी को भी हो गया था। जैसे ही वह ऐसे स्थान पर आया जहाँ वृक्ष कुछ विरल थे, वह एकाएक पलट कर रुक गया। रुकने के साथ ही उसने सीता को अपनी ढाल के रूप में आगे खींच लिया। इस समय उसकी एक बाँह सीता के वक्ष पर कसी हुई थी और दूसरे हाथ की हथेली उनका गला जकड़े थी।रुकते ही वह आततायी चीखा-

''जहाँ हो वहीं थम जाओ अन्यथा इस स्त्री को मृत होते विलम्ब नहीं होगा।''

राम और लक्ष्मण दोनों चित्रलिखित से जहाँ थे वहीं थम गये।

''छोड़ दो उसे, उससे तुम्हारा क्या वैर है?''

''मेरा उससे वैर भला क्यों होगा?'' उसने फिर अट्टहास किया- ''ऐसी सर्वांग सुन्दर स्त्री दीर्घ अवधि के उपरांत हाथ लगी है। इसे तो कोई मूर्ख ही छोड़ेगा और मैं मूर्ख कदापि नहीं हूँ।''

''तब तो तुम्हें अपनी मृत्यु का वरण करना पड़ेगा।'' लक्ष्मण गुर्राये।

''क्रोध क्यों करते हो? तुम तापसों के पास भला स्त्री का क्या कार्य। तुमलोग या तो तापस वेश में इसके साथ पापकर्म करते होंगे अथवा इसके यौवन की आकांक्षाओं का गला घोंटते होगे।''

उसकी उद्दंडतापूर्ण बात सुनकर लक्ष्मण के नथुने फड़कने लगे। क्रोध तो राम को भी बहुत आया किंतु उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार स्वयं को संयमित रखा। वे स्थिर किंतु कठोर स्वर में बोले-

''वह मेरी परिणीता है। उस पर कुदृष्टि डालने वाला जीवित नहीं रह सकता।''

''होगी परिणीता'', उसने फिर उद्दंडतापूर्वक कहा- ''अभी तो मैंने इसे अपनी अंकशायिनी बनाने का निर्णय कर लिया है।''

''मूढ़, तेरी मति फिर गयी है क्या?'' लक्ष्मण फुफकारे। फुफकारने के साथ ही वे उस व्यक्ति के ऊपर छलांग लगाने को उद्यत हो गये।

लक्ष्मण का इरादा उसने भी भाँप लिया। वह फिर चीखा-

''ऐसा दुस्साहस मत करना। यदि अपनी स्त्री को जीवित देखना चाहते हो तो पीछे हट जाओ।''

''इक्ष्वाकुओं ने पीछे हटना नहीं सीखा।'' राम पूर्ववत कठोर किंतु स्थिर स्वर में बोले।

''तो लो...''

कहने के साथ ही उस व्यक्ति ने सीता को किसी गुड़िया के समान उठा लिया और राम की ओर उछाल दिया। उसके इस कृत्य से अचंभित राम हड़बड़ा गये। उन्होंने सीता को अपने हाथों में सँभालने के लिये धनुष छोड़ दिया।

परंतु यह उस व्यक्ति का धोखा मात्र था। उसने उछालने के साथ ही एक हाथ से सीता की कलाई थाम कर उन्हें वापस अपनी ओर खींच लिया। सीता वापस उसकी छाती से जा टकरायीं।

उस व्यक्ति की योजना तो बहुत अच्छी थी किंतु सीता को उछालने और फिर सँभालने के प्रयास में मात्र एक पल के लिये उसकी दृष्टि लक्ष्मण पर से हटी और उसी एक पल में-

"भइया, भाभी को सँभालना।" कहते हुए अपने स्थान से खड़े-खड़े ही, लक्ष्मण ने छलाँग लगा दी।

अद्भुत थी वह छलाँग।

उन्होंने जैसे हवा में उड़ते हुए अपने और आततायी के मध्य की लगभग तीन व्यक्तियों की लम्बाई के बराबर दूरी नापी और उसकी कमर को अपने हाथों में लपेटते हुए खींचते, लुढ़कते चले गये।

दोनों ही धड़ाम से गिरे। इतने पर भी उस व्यक्ति ने सीता की कलाई नहीं छोड़ी। इन दोनों के ऊपर ही सीता भी गिरी। लक्ष्मण के दुस्साहस का आभास अब उस व्यक्ति को भी हो गया था। उसने अपने दूसरे हाथ से कमर में खुँसी कटार खींच ली थी, परंतु कुछ गिरने के झटके में और कुछ अपने को सँभालने के प्रयास में उसका प्रयोग नहीं कर पाया।

सीता को एक साथ दो झटके लगे थे।

पहला, उस व्यक्ति के द्वारा फेंकने और तत्काल कलाई पकड़ कर वापस खींचने से। उस समय उन्हें ऐसा लगा था जैसे उनकी बाँह उखड़ ही गयी हो।

दूसरा गिरने का झटका। उन्हें तीव्र पीड़ा हो रही थी। सिर चकरा रहा था। फिर भी उन्होंने अपनी चेतना को नियंत्रित करते हुए गिरते-गिरते भी उस व्यक्ति की कलाई में पूरी शक्ति से काट लिया। उसे सीता से ऐसे दुस्साहस की आशा कदापि नहीं थी। वह बिलबिला गया।

उसी क्षण राम भी उसके सिर पर सवार हो चुके थे।

वह स्वयं को नियंत्रित कर कटार का प्रयोग करने की सोचता भी उससे पूर्व ही राम ने अपना पैर उसकी कटार पकड़े हाथ की कलाई पर रख दिया। अगले ही पल उन्होंने कटार उसकी हथेली से खींच ली।

उसके दूसरे हाथ पर लक्ष्मण ने खड़ी हथेली का वार कर दिया। सीता के काटने से उनकी कलाई पर उसकी पकड़ पहले की ढीली हो गयी थी। लक्ष्मण के वार के परिणामस्वरूप सीता मुक्त हो गयी।

फिर तो दोनों भाइयों ने उसे लातों पर ले लिया।

सीता उसकी पकड़ से छूटने के बाद निढाल सी एक ओर लुढ़क गयी। उनकी हालत देख लक्ष्मण चिल्लाये-

''भइया, आप भाभी को देखिये, इससे मैं निपटता हूँ।''

राम सीता की ओर पलटे और उनका सिर गोद में लेकर अपनी उँगलियाँ उनकी नाक के नीचे लगाकर उनकी श्वास की गति को परखने लगे। उनका कोमल स्पर्श पाते ही सीता आँखें खोलकर मुस्कुरा दी।

वे सीता थी। उन्हें बचपन से ही शारीरिक श्रम और चपलता का अभ्यास था। साथ ही उनकी आत्मशक्ति भी अद्भुत थी। अपने दुखते जोड़ों की उपेक्षाकर वे मुस्कुराकर ही बोलीं-

''मैं स्वस्थ हूँ, आप उससे ही निपटिये।''

आततायी शारीरिक शक्ति में किसी भी भाँति कम नहीं था किंतु ये तो राम और लक्ष्मण थे। उनकी सम्मिलित शक्ति के आगे उसका सारा पुरुषार्थ निरुपाय था। देर नहीं लगी कि उसका सारा प्रतिरोध समाप्त हो गया।

''आप छोड़िये भइया, मैं पर्याप्त हूँ।'' उसके निढाल होते ही लक्ष्मण बोले।

राम एक पग पीछे हट गये।

लक्ष्मण ने उसे बालों से पकड़ खींचकर खड़ा कर दिया। बहुत भारी था वह... पर्वताकार, किंतु लक्ष्मण की शक्ति भी पर्वतों को हिला देने की क्षमता

रखती थी। उस विशाल काया को उठाने से लक्ष्मण के स्नायु तन गये थे। तभी उन्होंने उसके बाल छोड़ दिये, उसी क्षण वह भरभराकर ढेर हो गया।

उसके गिरते ही लक्ष्मण ने एक बार फिर उसकी छाती में लात का भरपूर प्रहार किया। वह व्यक्ति मुँह से रक्त उगलता हुआ फैल गया।

लक्ष्मण ने उसकी ग्रीवा पर अपना पैर रख दिया।

''अब बोल?'' लक्ष्मण ने अपने पैर का दबाव बढ़ाते हुए प्रश्न किया।

उत्तर में वह व्यक्ति हाथ पटकते हुए 'गों-गों' का स्वर निकालने लगा।

''अपने पैर का दबाव तो कम करो, तब वह कोई उत्तर दे।'' राम ने लक्ष्मण को चेताया।

लक्ष्मण ने दबाव कम कर दिया और उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

''क्या वैर है हमसे तुम्हारा?'' इस बार राम ने प्रश्न किया।

''कुछ नहीं।'' उसने हाँफते हुए उत्तर दिया।

''तब? तब क्यों तुमने मेरी पत्नी के अपहरण का प्रयास किया?''

''मैं पहले दिन से ही इस पर आसक्त था, बस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। आज अवसर प्राप्त हुआ तो मैंने इसे खींच लिया।''

''लक्ष्मण पीछे हटो और इसे उठकर बैठने दो।'' राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया।

लक्ष्मण ने एक बार प्रश्नसूचक दृष्टि से बड़े भाई को देखा, फिर बिना कुछ कहे पीछे हट गये। किंतु पीछे हटने के साथ ही उन्होंने अभी तक उपेक्षित सी कमर में खुँसी कटार खींच कर हाथ में ले ली थी।

''उठकर बैठो।'' राम ने उस व्यक्ति को आदेशित किया।

उसने नकारात्मक रूप से सिर हिला दिया।

''उठते हो अथवा लक्ष्मण को मनमानी करने की छूट दे दूँ!''

इस धमकी का असर हुआ। वह व्यक्ति एक बार कराहा और फिर अपनी हथेलियाँ भूमि पर टेकते हुए हाँफता हुआ उठकर बैठ गया।

''हो कौन तुम? और यहाँ इस निर्जन वनप्रांत में क्या कर रहे हो?''

''मैं विराध हूँ, त्रिलोक विजयी, रक्षेन्द्र रावण का संबंधी।''

''रावण के सम्बन्धी हो तो यहाँ निर्जन में क्या कर रहे हो, लंका में जाओ।''

''जैसे तुम यहाँ विचरण कर रहे हो, मैं भी कर रहा हूँ।''

''हमें तो माता ने चौदह वर्ष के वनवास का आदेश दिया है इसलिये यहाँ आश्रय लिया है।'' लक्ष्मण उपहास करते हुए बोले- ''क्या तुम्हें भी तुम्हारे संबंधी रक्षेन्द्र ने लंका से निष्कासित कर दिया है?''

''तुम कौन होते हो पूछने वाले?'' उसने ढीठता से उत्तर दिया- ''यदि रक्षेन्द्र को ज्ञात हो गया कि तुमने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है तो समझ लो तुम्हारी क्या गति होगी!''

''तुम्हारे रक्षेन्द्र को तो जब वह सामने आयेगा तब समझ लेंगे, अभी तुम अपनी चिंता करो।'' लक्ष्मण क्रोधपूर्वक बोले।

''क्या करोगे तुम?''

''यह तो इस पर निर्भर करता है कि तुम कितने देर लगाते हो अपना सत्य परिचय देने में।''

''मैंने सत्य परिचय ही दिया है।''

''मिथ्या भाषण कर रहे हो तुम। भले ही तुमने अपना स्वरूप बिगाड़ रखा है, फिर भी तुम्हारा रंग-रूप स्पष्ट कर रहा है कि तुम लंका या यहाँ के नहीं, किसी शीत प्रदेश के निवासी हो। साथ ही रावण के विषय में जितना हम जानते हैं उसका विराध नाम का कोई सम्बन्धी नहीं है।''

''तुम्हें भ्रम हो रहा है।'' वह फिर ढीठता से बोला।

इस बार लक्ष्मण ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया, वे राम से सम्बोधित हुए-

''भइया, अभी इसे पर्याप्त प्रसाद नहीं मिला है इसीलिये ढीठता दिखा रहा है। अनुमति दीजिए मुझे...''

राम ने धीरे से मुस्कुराकर सहमति में सिर हिला दिया और स्वयं पीछे हट गये। लक्ष्मण के लिये इतना संकेत पर्याप्त था। वे आरम्भ हो गये।

थोड़ी ही देर में विराध हाथ जोड़ने लगा-

''क्षमा करें मुझे, मैं सब कुछ बताता हूँ।''

राम ने संकेत किया। लक्ष्मण ने हाथ रोक दिये और विराध के बोलने की प्रतीक्षा करने लगे।

''मैं रक्ष नहीं हूँ। वस्तुतः मैं गन्धर्व हूँ, तुम्बुरु नाम है मेरा।''

विराध के इतना कहते ही राम के कानों में अत्रि के शब्द गूँजने लगे, 'मुनिवर ने भी तो यही कहा था!'

विराध कहे जा रहा था-

''मैं अप्सरा रम्भा पर आसक्त था। इसी को लेकर मेरा कुबेर से वैरभाव हो गया। कुबेर के भय से ही मैं वहाँ से भागकर यहाँ आ गया। यहाँ रावण के कारण कुबेर अथवा उसके चरों के आने की संभावना नहीं है।''

''परंतु तुमने छद्म नाम और परिचय क्यों अपनाया?''

''मूलतः तो कुबेर से बचने के लिये ही ऐसा किया था मैंने। फिर रावण के नाम का लाभ मिलने लगा तो मैंने धीरे-धीरे स्वयं को उसका संबंधी बताना आरम्भ कर दिया।''

''रावण के नाम का क्या लाभ मिलता था तुम्हें? यहाँ तो रावण का शासन नहीं है। रावण के नाम का लाभ तो तुम्हें लंका में मिल सकता था।''

''लंका में तो दूसरे दिन ही भेद खुल जाता और तब या तो रावण मेरा वध कर देता अथवा कारा में डाल देता। फिर दण्डक में भी तो प्रकारान्तर से रावण का ही राज्य है। उसकी बहन दण्डक की साम्राज्ञी है।

''मैं स्वयं तो शक्तिशाली हूँ ही... तुमने स्वयं ही अनुभव कर लिया होगा। उसके साथ रावण का नाम ले लेने से आस-पास की बस्तियों में लोग सहज ही मुझसे भयभीत हो जाते हैं और मेरी लूटपाट का विरोध नहीं करते हैं।''

''ओह! यह बात है।'' लक्ष्मण एक पल रुके फिर पुनः प्रश्न किया-

''रावण का भय तो सम्पूर्ण आर्यावर्त में व्याप्त है किंतु अभी तक हमारा रक्ष-सत्ता के किसी भी प्रतिनिधि से साक्षात् नहीं हुआ है।'' कहकर लक्ष्मण मुस्कुराये- ''यहाँ तुम मिले, किंतु तुम तो छद्म रक्ष निकले।''

''रावण स्वयं इस क्षेत्र में संभवतः कभी नहीं आता। उसकी अर्द्धविक्षिप्त भगिनी चन्द्रनखा दण्डक की साम्राज्ञी है, परंतु उसके नाम पर वास्तविक शासन खर और दूषण का है। यहाँ से निकट ही जनस्थान में उनका निवास है।''

''अर्थात् इस प्रदेश पर खर-दूषण का शासन है?'' राम ने प्रश्न किया।

''है भी और नहीं भी।''

''तात्पर्य?''

''तकनीकी दृष्टि से तो यह प्रदेश भी दण्डकारण्य का ही भाग है किन्तु यहाँ तक उन लोगों का आना लगभग नहीं ही होता है।''

''क्यों?'' लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

''आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यदि वे इधर आते होते तो मैं भला यहाँ क्यों टिकता!'' उसने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

''ओह!'' राम के मुख से एक दीर्घ निःश्वास निकली।

कुछ समय मौन रहा फिर राम लक्ष्मण से संबोधित हुए-

''आओ लक्ष्मण चलें।''

लक्ष्मण ने एक बार प्रश्नवाचक दृष्टि से राम की ओर देखा परंतु राम को वापस मुड़ते देखकर वे भी मुड़ गये। राम ने आगे बढ़कर हाथ का सहारा देकर सीता को उठाया और स्नेह से पूछा-

"चल सकोगी?"

"हाँ!" सीता ने सप्रयास मुस्कुराते हुए संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

जैसे ही राम और सीता ने एक पग बढ़ाया, पीछे से विराध ने पुकारा-

"यह क्या कर रहे हो?"

राम ने वापस पीछे घूमकर प्रश्नवाचक दृष्टि से विराध की ओर देखा।

लक्ष्मण भी वापस घूम गये थे।

"मुझे अधमरा छोड़कर कहाँ जा रहे हो!" विराध कुछ रोषपूर्ण स्वर में बोला।

"तो?" लक्ष्मण ने उसकी ओर बढ़ते हुए प्रश्न किया।

"इस दयनीय अवस्था में जीने से कहीं श्रेष्ठ होगा मृत्यु का वरण करना। मुझे मृत्यु प्रदान करो।" विराध ने इस बार गर्वीले स्वर में आदेश सा दिया।

लक्ष्मण ने एक बार घूमकर राम की ओर देखा।

राम की दृष्टि में सहमति देखते ही उनकी उँगलियाँ अपनी कमर में खुँसी कटार पर कस गयीं।

***

सायंकाल सीता की उस बाँह में... जिसे पकड़कर विराध ने उन्हें राम की ओर उछाला था और फिर झटके से वापस खींचा था, तीव्र पीड़ा थी। खरोंचें तो सारे शरीर में ही थीं, उनमें पीड़ा भी थी किंतु वह असहनीय नहीं थी।

सीता सप्रयास मुस्कुरा रही थीं, प्रयास कर रही थीं कि उनकी पीड़ा का किसी को, विशेषकर मुनिजनों को, आभास न हो, किंतु सारे प्रयासों के बाद भी यह हो नहीं सका। मुनियों को आभास हो गया कि उनकी बाँह में कुछ कष्ट है।

स्वाभाविक है उनलोगों को जिज्ञासा भी हुई और चिंता भी। उनके प्रश्नों के उत्तर में लक्ष्मण ने उन्हें सारी बात बता दी।

''अरे'', ऋषि सत्यप्रिय ने प्रसन्नता से चौंकते हुए कहा- ''विराध मृत्यु को प्राप्त हुआ!''

''आप कैसे जानते हैं उसके विषय में?'' लक्ष्मण ने आश्चर्य से पूछा।

''आदिवासियों की जिस बस्ती में हमलोग गये थे, वहाँ उसकी दुर्दान्तता की बारम्बार चर्चा हुई। वे सब तो अत्यंत प्रसन्न होंगे उसके वध के विषय में जानकार।'' सत्यप्रिय ने बताया।

ऋषि देवमित्र भी स्वयं को रोक न सके, उन्होंने बताया-

''अत्यंत दुष्ट था यह राक्षस। नित्य ही किसी न किसी का कोई न कोई पशु छीन ले जाता था और खा जाता था। जो भी कन्या अथवा युवती उसे भा जाती थी, उसे उठा लाता था।''

***

दूसरे दिन जब ये मुनिगण पुनः बस्ती में गये तो यह हर्ष समाचार वहाँ प्रसारित कर आये। फिर क्या था, बस्ती को उस आततायी से त्राण दिलाने वाले महावीरों के दर्शनार्थियों का ताँता लग गया। ऐसे सभी दर्शनार्थी एक दृष्टि विराध के अवशेषों पर भी डालना चाहते थे। दृष्टि क्या डालना चाहते थे, उसकी मृत देह को दो-चार लातें मारकर आत्मतुष्टि पाना चाहते थे। यह आकांक्षा रखने वालों में बड़ी संख्या उन युवतियों और कन्याओं की थी जिनका अपहरण कर विराध ने मनमानी की थी।

राम की सहमति थी, लक्ष्मण ने इस अवसर का सदुपयोग करने में कोई विलम्ब नहीं किया। तीसरे दिन से ही लक्ष्मण की कक्षायें आरम्भ हो गयी। अनेक स्त्री-पुरुष इन कक्षाओं में सम्मिलित होने लगे। कुछ तो वृद्ध भी थे।

इन लोगों की भाषा थोड़ी सी भिन्न थी, फिर भी दोनों पक्ष एक-दूसरे की बात सहजता से समझ रहे थे। धीरे-धीरे यह समझ बढ़ती ही जा रही थी।

राम, लक्ष्मण, सीता तीनों ही विस्मित थे कि दो-तीन दिनों में ही उनमें से अधिकांश ने अपनी बस्ती में जाना ही छोड़ दिया। उन्होंने अपने लिये कोई

झोपड़ी आदि बनाने की भी आवश्यकता नहीं समझी, वे बस वहीं वृक्षों पर ही वानरों के समान शयन करने लगे। भोजन के लिये वनों में फलों की कमी नहीं होती। लक्ष्मण ने एक से पूछा भी कि घर नहीं जाते वे लोग रात्रि में तो वह बोला-

''क्यों वृथा आने-जाने में समय नष्ट किया जाये।''

***

लक्ष्मण की कक्षायें पूरी सफलता से चलने लगी। प्रशिक्षु, धनुर्विद्या समेत युद्धकला और परिष्कृत भाषा में तो रुचि ले ही रहे थे, एक चीज और थी जिसके प्रति वे बहुत उत्सुक थे... वह थी ऋषियों समेत लक्ष्मण की अग्नि प्रज्ज्वलित करने में दक्षता। जब भी ये अग्नि प्रज्ज्वलित करते तो वहाँ भीड़ लग जाती थी।

अंततः एक दिन एक ने पूछ ही लिया-

''आप तो काष्ठ से भी अग्नि निकाल लेते हैं वह भी इतनी शीघ्रता से, हमलोग तो देर तक पत्थरों को रगड़ते हैं तब कहीं अग्नि निकलती है।''

''अरे इसमें क्या है! यह शमी वृक्ष का काष्ठ है, यह तो अग्निगर्भा होता ही है, थोड़े से ही घर्षण से ही इससे अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है।'' ऋषियों ने समझाया।

''हमलोग तो अभी तक यही प्रयास करते हैं कि एक बार अग्नि प्रज्ज्वलित होने पर उसे बुझने ही न दें। हम उसमें काष्ठ बढ़ाते रहते हैं। वर्षा आदि में जब अग्नि बुझ जाती है तो बड़ी कठिनाई होती है।''

''तो अब कठिनाई समाप्त हुई, तुमलोग भी सीख लो यह विधि।'' कहकर लक्ष्मण उन्हें लकड़ियों के घर्षण से अग्नि प्रज्ज्वलित करने की विधि समझाने लगे।

7.शरभंग आश्रम की ओर

पन्द्रह दिन की कक्षायें हो चुकी थी, जब एक दिन संध्याकाल परस्पर वार्तालाप के मध्य राम बोले-

''लक्ष्मण, हमारा उद्देश्य यहाँ पर ही टिक जाना तो नहीं है।''

''सत्य है, किस ओर आगे बढ़ेंगे, इस पर विचार किया आपने?'' लक्ष्मण ने प्रतिप्रश्न किया।

''विचार तो किया है किंतु अभी किसी निश्चय पर नहीं पहुँचा हूँ।''

''तो सीधे जनस्थान की ओर ही प्रस्थान करते हैं। वहीं रक्षों से टकराने की कोई संभावना खोज ली जायेगी।''

''नहीं, यह उचित नहीं होगा। अभी संभवतः उचित समय नहीं है उनसे सीधे टकराने का।'' राम ने विचारमग्न मुद्रा में उत्तर दिया।

''भइया, कहा गया है शुभस्य शीघ्रम्। जो कार्य सम्पादित करना ही है उसमें अकारण विलम्ब क्यों किया जाये!'' लक्ष्मण ने उत्साह के अतिरेक में तर्क प्रस्तुत किया।

''अकारण विलम्ब नहीं है यह। क्या स्मरण नहीं है कि अत्रि मुनि ने क्या कहा था?''

''आपका इंगित किस ओर है?'' लक्ष्मण ने याद करने का प्रयास करते हुए पूछा।

''जब मैंने उनसे प्रश्न किया था कि अब हमें क्या करणीय है तो वे बोले थे कि जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है, वही आगे भी मार्ग प्रशस्त करेगा।''

''तो?''

''तो यह कि मैं नियति के संदेश की प्रतीक्षा करूँगा। रक्षों से स्वयं आगे बढ़कर युद्ध छेड़ने की स्थान पर मैं उनके युद्ध छेड़ने की प्रतीक्षा करूँगा।''

"आपकी बात मेरी समझ में नहीं आयी?" लक्ष्मण ने कुछ अचंभित होते हुए पूछा।

"अभी तक रक्षों से हमारा कोई वैर नहीं है। यह नीति विरुद्ध है कि किसी के भी प्रति अकारण शस्त्र उठाया जाये। हम रक्षों की प्रतीक्षा करेंगे कि वे कारण उत्पन्न करें।"

"यदि उन्होंने नहीं किया?"

"उन्हें करना ही पड़ेगा, यदि नियति ने हमारे हाथों उनका विनाश निश्चित कर ही रखा है, तो वह यह भी सुनिश्चित करेगी कि वे कारण उत्पन्न करें। यदि नहीं ही करते तब इस पर भी विचार किया जायेगा।"

"तो अभी हमें क्या करना है? यहाँ टिकना भी हमारा उद्देश्य नहीं है और रक्षों पर आक्रमण करना भी नहीं है... तब आखिर क्या है हमारा उद्देश्य?" लक्ष्मण ने कुछ उत्तेजित होते हुए पूछा।

"इस प्रदेश में अनेक ऋषियों के आश्रम हैं। हम उनका भ्रमण करेंगे और उन समस्त ऋषियों से आगामी युद्ध में विजय का आशीर्वाद प्राप्त करेंगे। सत्य ही ऋषियों के आशीर्वाद में महानतम शक्ति होती है।"

"सर्वप्रथम किस ओर चलेंगे?" यह प्रश्न सीता की ओर से आया था। उन्होंने इतनी देर में पहली बार हस्तक्षेप किया था।

"प्रातः लक्ष्मण के शिष्यों से विमर्श करेंगे तदुपरांत निश्चित करेंगे। वे लोग इसी क्षेत्र के निवासी हैं, वे निश्चित ही कुछ आश्रमों के विषय में जानते होंगे। यहाँ आस-पास के भूगोल से तो हम से अधिक परिचित होंगे ही।"

"उचित है, साथी ऋषिगणों से अभी चर्चा किये लेता हूँ।" कहते हुए लक्ष्मण अपनी कुटी में जाने हेतु उठ खड़े हुए।

"अपनी ओर से उन्हें उत्साहित करने का प्रयास मत करना, अपितु उन्हें यहीं रुकने का परामर्श देना। यहाँ इन स्थानीय निवासियों से उनके अच्छे संबंध स्थापित हो गये हैं। वे लोग यदि यहीं रुकेंगे तो इनका प्रशिक्षण भी चलता

रहेगा। ऋषिगण कुछ उत्तम शस्त्रास्त्रों के निर्माण की भी कोई व्यवस्था कर ही लेंगे।'' कुटी से बाहर निकलने को उद्यत लक्ष्मण को राम ने पीछे से परामर्श दिया।

''जी!'' लक्ष्मण बोले और बाहर निकल गये।

जैसा राम ने कहा था, लक्ष्मण ने वैसा ही किया किन्तु ऋषिगणों का तर्क था कि जब चित्रकूट से यहाँ तक आपके संग आये हैं तो अब आगे भी साथ ही चलेंगे। उन सभी ने एक मत से साथ ही चलने का अडिग निर्णय सुना दिया।

***

''मैं भी साथ ही चलूँगा।''

प्रातः पौ फटने के साथ, लक्ष्मण ने जैसे ही अपनी योजना अपने प्रशिक्षुओं के समक्ष रखी, उनमें से एक उठ खड़ा हुआ। उसके पीछे-पीछे अधिसंख्य उठ खड़े हुए। सबको उठते देख, जो रह गये थे वे भी उठ खड़े हुए।

एकाएक सबको साथ चलने को तत्पर देख लक्ष्मण हतप्रभ रह गये। कुछ व्यक्ति उनके साथ चलेंगे यह तो उन्हें विश्वास था, किंतु सभी चलने का मन बना लेंगे, यह उन्होंने नहीं सोचा था। कुछ पल वे सोचते रहे कि इन्हें किस प्रकार टाला जाये, फिर बोले-

''पहले अपने परिवार में सलाह कर लो तुम सभी, तब चलने की तैयारी करना।''

''उसमें सलाह क्या करनी है, वे भी चले चलेंगे।'' एक व्यक्ति ने इतनी सहजता से उत्तर दिया जैसे कहीं टहलने जाने की चर्चा हो रही हो।

यह उत्तर और भी विस्मित करने वाला था। लक्ष्मण यह सोच भी नहीं सकते थे कि कैसे सारी की सारी बस्ती अपनी सारी गृहस्थी छोड़कर एकाएक चल सकती थी।

ऋषिगण लक्ष्मण के विस्मय का कारण समझ गये। ऋषि मंत्रसिद्ध ने उनका विस्मय दूर करते हुए वनवासियों की ओर से उत्तर दिया-

"कुमार, हमारे ही समान इन लोगों के पास भी गृहस्थी जैसा कुछ नहीं होता।"

"आपलोग तो संसार से विरक्त होते हैं, किंतु इनके साथ तो इनका परिवार है।" लक्ष्मण ने न समझने वाले भाव से प्रश्न किया।

"आपने देखा नहीं कि कैसे अनेक युवक प्रथम दिवस से ही यहीं रात्रि-विश्राम भी करने लगे हैं!"

"हाँ, देखा तो है!"

"इसका कारण यही है कि ये लोग सामान्यतः घर बनाते ही नहीं हैं। प्रायः ये कन्दाराओं को ही निवास बना लेते हैं। यहाँ भी ये कन्दराओं में ही निवास कर रहे हैं। सम्पत्ति के नाम पर इनके पास कुछ गौवें हैं, कुछ श्वान हैं और मुखिया के पास एक अश्व भी है। सामग्री के नाम पर कुछ तुम्बे होते हैं प्रत्येक व्यक्ति के पास, अथवा ऐसी ही कुछ अन्य वन से स्वयमेव प्राप्त हो जाने वाली सामग्री। वस्त्र ये जहाँ रहते हैं वहीं वृक्षों के पत्तों और छाल से बना लेते हैं। हथियार इनके पास पत्थरों अथवा पशुओं की अस्थियों के बने हुए ही होते हैं। धातुओं से इनका अभी तक कोई परिचय नहीं है।

"भोजन पकाना भी अभी तक इन्होंने नहीं सीखा है। सीधे कन्दमूल का आहार करते हैं अथवा आखेट किये गये पशु-पक्षियों के भुने अथवा व्यवस्था न होने की स्थिति में कच्चे माँस का ही भक्षण कर लेते हैं।"

मंत्रसिद्ध के इस विस्तृत उत्तर पर लक्ष्मण मुस्कुरा दिये। उनकी शंका का समाधान हो गया था, अतः उन्होंने विषय को आगे बढ़ाया-

"ठीक है, परन्तु सभी को हम साथ नहीं ले जा पायेंगे, क्योंकि अभी हमारा विचार मार्ग के आश्रमों में जाकर ऋषियों का आशीष प्राप्त करने का है। अभी हम निरन्तर भ्रमणशील ही रहेंगे..."

लक्ष्मण के बात पूरी करने से पहले ही एक बोल पड़ा-

''तब तो और भी अच्छा है। आपके साथ हमलोग भी ऋषियों का आशीष प्राप्त कर लेंगे, अन्यथा तो हमारा साहस ही नहीं होता आश्रमों में प्रवेश करने का।''

विकट समस्या उत्पन्न हो गयी थी। सबको साथ ले जाने का अर्थ था आश्रमों की व्यवस्था में समस्या उत्पन्न करना, परंतु वे वनवासी थे कि रुकने को तैयार ही नहीं थे। अंततः लक्ष्मण ने स्पष्ट ही कहा-

''नहीं, सबका साथ चल पाना तो संभव नहीं है। हाँ, तुम में से कुछ को अवश्य ही हम मार्गदर्शक के रूप में अपने साथ ले चलना चाहेंगे।''

इसके उत्तर में भी चारों ओर से 'हम चलेंगे, हम चलेंगे' के स्वर गूँजने लगे। कुल मिलाकर लक्ष्मण को पर्याप्त प्रयास करना पड़ा बस्ती वालों को साथ चलने से रोकने के लिये। अनेक युवा तो किसी भी प्रकार मानने को तैयार ही नहीं थे। लक्ष्मण बड़ी कठिनाई से उनमें से बीस युवाओं का मार्गदर्शक के रूप में चयन करने में सफल हो पाये।

अब यह दल अच्छा-खासा बड़ा हो गया था।

***

उन मार्गदर्शकों ने बताया कि एक ऋषि का आश्रम वे लोग जानते हैं।

''अत्यंत विशाल आश्रम है।'' एक ने अपने दोनों हाथ पूरे खींचकर फैलाते हुए बताया।

''किन ऋषि का आश्रम है वह?'' लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

''यह तो नहीं ज्ञात'', उत्तर मिला- ''परंतु मार्ग में ही पड़ता है।''

''कोई चिन्ता नहीं, वहीं पूछ लेंगे।'' राम ने उसे पुनः उत्साहित करते हुए सरल भाव से कहा।

मार्गदर्शकों के निर्देशानुसार चलते हुए, लगभग एक प्रहर की यात्रा के उपरांत, यह पदारोहियों का दल अंततः एक आश्रम के निकट जा पहुँचा। निकट पहुँचते ही राम ने लक्ष्मण को निर्देशित किया-

''पता तो करो लक्ष्मण कि यह किन ऋषि का आश्रम है?''

''उसकी कोई आवश्यकता नहीं'', लक्ष्मण के उत्तर देने से पूर्व ही ऋषि रसज्ञ बोले- ''यह निस्संदेह महर्षि शरभंग का आश्रम है। मैं यहाँ पूर्व में भी आ चुका हूँ किंतु मार्ग के विषय में भ्रम था।''

अभी ये सब इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि लक्ष्मण ने देखा कि आकाश से रथ की आकृति का एक दैदीप्यमान विमान आश्रम में उतर रहा है। लक्ष्मण ने राम का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

राम के साथ-साथ बाकियों ने भी देखा।

इनके साथ आये इनके वनवासी मार्गदर्शक उस विमान को देखकर कुछ भयभीत से हो गये थे। स्वाभाविक भी था, उनके लिये तो आकाश में उड़ने वाला रथ कल्पना से भी परे की बात थी। उनमें से बहुत सारे तो वहीं भूमि पर दण्डवत होकर प्रणाम करने लगे और अपने ईश्वर से अपनी रक्षा की प्रार्थना करने लगे।

उनकी स्थिति देखकर लक्ष्मण हठात् हँस पड़े। कई मुनि भी मुस्कुरा उठे। उन्हें आश्वस्त करने का प्रयास करते हुए लक्ष्मण बोले-

''भय का कोई कारण नहीं है। कोई देव होंगे, महर्षि शरभंग के दर्शन प्राप्त करने हेतु पधारे होंगे।''

''संभवतः इन्द्र हैं।'' राम ने अनुमान लगाया।

''तब तो इन्हें हमसे भी सम्पर्क करना चाहिए!'' लक्ष्मण उत्साह से बोल पड़े।

राम ने कोई उत्तर नहीं दिया, बस साथी वनवासियों की ओर संकेत करते हुए आँखें तरेर दी। लक्ष्मण समझ गये कि राम उन लोगों के सामने इस विषय में बात नहीं करना चाहते। वे भी शांत हो गये।

राम और लक्ष्मण के दिलासा देने पर ही, उस आकाशचारी विमान के कारण सहमे हुए मार्गदर्शक वनवासी युवाओं के दल ने, बड़े संकोच के साथ आश्रम में प्रवेश किया। उन्हें राम आदि पर पूरा भरोसा था, आश्रम के ऋषियों पर भी पूरी आस्था थी, किंतु आकाशचारी विमान के यात्रियों से भय अधिक था।

राम ने जब आश्रम में प्रवेश किया, द्वार पर ही एक साथी ऋषि ने आकाश में उठ रहे इन्द्र के विमान की ओर संकेत किया। राम ने ऋषि के संकेत का अनुसरण किया। इन्द्र के विमान को वापस जाते देख उनकी भृकुटि पर कुछ रेखायें उभरीं, हठात् उनके मुख से निकला-

''यह क्या, ये तो जा रहे हैं! इन्होंने हमें भेंट करने का अवसर तक नहीं दिया?''

इन्द्र को यूँ चुपचाप जाते देख लक्ष्मण भी विस्मित थे, वे भी संदेह भरे स्वर में बोले-

''हाँ, ये हमारा सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शन कर सकते थे। परंतु ये तो हमें असमंजस में छोड़कर यूँ चोरों की भाँति निकल लिये, जैसे हमें देखा ही न हो।''

''देख तो निश्चित ही इन्होंने भी लिया था हमें'', ऋषि मंत्रसिद्ध ने निश्चयात्मक ढंग से टिप्पणी की - ''या तो उन्होंने हमें पहचाना नहीं, अथवा जान-बूझकर हमारी उपेक्षा की है।''

राम विवादास्पद वार्तालाप को बढ़ावा नहीं देना चाहते थे अतः उन्होंने प्रकरण को समाप्त करने का प्रयास करते हुए कहा-

''होगा कोई कारण! संभव है पहचाना ही न हो।''

यद्यपि न तो ऋषिगण और न ही लक्ष्मण उनके इस प्रयास से संतुष्ट हुए। ऋषिगण तो मौन ही रहे परंतु लक्ष्मण ने मुखर प्रतिरोध किया-

''न पहचानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता भइया, रक्षों के विनाश में हमारा नहीं, उनका ही स्वार्थ है। हम प्रकारान्तर से उनका ही कार्य करने जा रहे हैं, ऐसे में वे हमें पहचानते न हों ऐसा कैसे हो सकता है?''

''तो अन्य कोई कारण होगा।'' राम ने लक्ष्मण को शांत करना चाहा।

''कोई भी कारण हो आर्यपुत्र'', इस बार सीता भी लक्ष्मण के समर्थन में आ गयी - ''परंतु देवराज को सामान्य शिष्टाचार का तो ज्ञान होना ही चाहिए।''

बात बढ़ रही थी, अतः अब राम को स्पष्ट ही कहना पड़ा-

''परस्पर तर्क-वितर्क से कोई लाभ नहीं होने वाला, उचित होगा कि हम ऋषिवर से ही इसका कारण जानने का प्रयास करेंगे।

***

आश्रम में जो पहला ऋषि मिला उसे ही प्रणामकर राम ने अपना परिचय दिया और महर्षि के विषय में जिज्ञासा की। परिचय जानकर ऋषि ने सोत्साह इन सबका स्वागत किया और एक ओर संकेत करता हुआ बोला-

''उस ओर चले जाइये, गुरुदेव वहाँ यज्ञशाला के निकट अपनी कुटिया में हैं। वे आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

आगे-आगे राम, उनके पीछे शेष सब निर्दिष्ट दिशा में बढ़ चले। शरभंग कुटिया के द्वार पर ही मिल गये। शायद राम के स्वागत के लिये ही बाहर आ रहे थे। इन्हें देखते ही बोले-

''आइये दशरथनन्दन! मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।''

कहकर उन्होंने एक दृष्टि राम के साथ के समूह पर डाली, कुटिया में तो इतने लोगों के लिये स्थान ही नहीं था। संभवतः यही सोचकर वे सामने यज्ञशाला की ओर संकेत करते हुए बोले-

''आइये, हम सब चलकर उधर बैठते हैं।

सबने ऋषिवर का अनुगमन किया। फिर प्रणाम, आशीर्वाद और स्वागत की औपचारिकतायें सम्पन्न हुई। औपचारिकताओं से निवृत्त होकर बैठते ही लक्ष्मण ने सीधा प्रश्न कर दिया-

''ऋषिवर, एक शंका उत्पन्न हो गयी है। यदि अनुमति हो तो...'' उन्होंने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

शरभंग उनका आशय समझ गये। उन्होंने मुस्कुराते हुए प्रश्न किया-

''देवराज की बात कर रहे हैं सुमित्रानन्दन?''

''जी ऋषिवर!''

''वे आपलोगों की उपेक्षा नहीं करना चाहते थे सौमित्र, परंतु सतर्कतावश ऐसा करना आवश्यक था। लंका पर आक्रमण से पूर्व देवों का आपके साथ कैसा भी सम्पर्क आपके अभियान के लिये हितकर नहीं है?''

''ऐसी भी कौन सी सतर्कता है ऋषिवर कि वे हमसे एक औपचारिक भेंट तक नहीं कर सके?'' लक्ष्मण का रोष उनके स्वर में ही नहीं, भृकुटि में पड़े बल में भी स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था।''

''आपके प्रश्न का अवश्य उत्तर दूँगा, परंतु भोजन का समय हो रहा है। क्षुधा आप दोनों को पीड़ित नहीं करती परंतु अन्य सबको तो करती है।'' कहते-कहते महर्षि विनोदपूर्वक हँसे फिर आगे जोड़ा- ''मैं नहीं चाहता कि बाद में जानकी और ये अन्य अभ्यागत आरोप लगायें कि मैंने आतिथेय-धर्म का सम्यक् निर्वहन नहीं किया।''

लक्ष्मण आगे कुछ कहते उससे पूर्व ही शरभंग ने पुकार लगायी-

''विचित्र ऽ ऽ !''

पुकार के साथ ही एक शिष्य उपस्थित हो गया। शरभंग ने उसे निर्देश दिया-

''इन ऋषियों और अन्य लोगों को अपने साथ ले जाओ और आश्रम के अन्य ऋषियों के साथ इनके भोजन की व्यवस्था करवा दो।''

शिष्य ने धीरे से सिर हिलाकर सहमति दी तो शरभंग आगे बोले-

"जानकी को भी साथ लिये जाओ और ऋषि-पत्नियों के साथ इनके भी भोजन की व्यवस्था कर दो। हम तीनों के लिये भोजन मेरी कुटिया में ही लिये आना।"

भूख तो वाकई सबको लग रही थी, शरभंग का निर्देश सुनते ही राम और लक्ष्मण के अतिरिक्त शेष सब उठ खड़े हुए और विचित्र के साथ बाहर चले गये।

8. शरभंग का सम्बोधन-1

सबके चले जाने पर शरभंग अत्यंत मृदुल स्वर में राम से सम्बोधित हुए-

"रामभद्र! आर्य-देव संस्कृति के भविष्य के लिये यह अत्यंत संवेदनशील अभियान है। इसकी सफलता हेतु देव और ऋषिगण आप भाइयों के जन्म के पूर्व से ही अत्यंत गोपनीय ढंग से कार्यरत हैं।"

"क्या?" लक्ष्मण अपने विस्मय को नियंत्रित नहीं कर पाये। उन्हें यह तो ज्ञात था कि वे रावण का अंत करने के अभियान पर आये थे, यह थी ज्ञात था कि देव और ऋषिगणों ने इस हेतु कुछ योजना भी बना रखी है, परंतु यह उनके लिये सर्वथा नवीन रहस्योद्घाटन था कि देव और ऋषि इस योजना पर उनके जन्म से भी पूर्व से कार्यरत थे

"हाँ!" शरभंग ने मंद स्मित के साथ उत्तर दिया, फिर तत्काल आगे कहने लगे-

"हमारी सफलता इसी तथ्य पर निर्भर करती है कि प्रतिपक्षी को हमारी रणनीति की भनक न लगने पाये। अतः श्रेयस्कर यही होगा कि किसी भी व्यक्ति के पास समय से पूर्व और उसकी आवश्यकता से अधिक सूचना नहीं होनी चाहिए। चर्चा आरम्भ करने से पूर्व मैं आपको सतर्क करना चाहता हूँ कि जब तक हम योजना के अंतिम चरण में नहीं पहुँच जाते, तब तक आप महर्षि अगस्त्य और महर्षि सुतीक्ष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी से भी रणनीति विषयक कोई प्रश्न नहीं करेंगे। इतना ही नहीं इनसे भी जब इस विषय में चर्चा करेंगे तो सुनिश्चित कर लेंगे कि आस-पास अन्य कोई भी उपस्थित न हो..." कहकर शरभंग एक पल रुके फिर जोड़ा- "सीता भी!"

"सीता भी?" राम ने चौंककर प्रश्न किया- "परंतु वे तो मुझसे अभिन्न हैं। उन्हें उतना सब कुछ ज्ञात है जितना मुझे है। उनसे कुछ भी गोपनीय रख पाना

कैसे संभव होगा? फिर मुझे विश्वास है कि सीता किसी भी मूल्य पर, कितनी भी विषम परिस्थिति में भी, कोई गोपनीय सूचना शत्रु को नहीं देंगी।''

राम का कथन पूर्ण होने से पूर्व ही शरभंग असहमति में अपना सिर हिलाने लगे। राम का वाक्य पूर्ण होते ही वे चेतावनी भरे स्वर में बोले-

''अभी आपने लंकेश्वर को समझा नहीं है। त्रिदेवों और देवर्षि के उपरांत वह महानतम योगियों में से एक है... सप्तर्षियों और महर्षि अगस्त्य के समकक्ष। किसी से भी, कुछ जानने हेतु उसे पूछने की आवश्यकता नहीं होती, वह किसी के भी मन की गहराइयों में झाँककर, पलक झपकते ही वहाँ छिपे सारे रहस्यों से अवगत हो सकता है। वह समाधि में जाकर किसी से भी सम्पर्क स्थापित कर सकता है। किसी भी घटना को पुनः प्रत्यक्ष घटित होते देख सकता है।''

''यदि रावण इतना ही बड़ा योगी है तब गोपनीयता की सार्थकता ही कहाँ शेष रहती है? वह जब चाहे समाधि में जाकर हमारे सारे रहस्यों से परिचित हो सकता है!'' लक्ष्मण ने फिर तर्क किया।

''इसीलिये तो आवश्यकता है सौमित्र। इसीलिये तो आप दोनों से सतर्कता की अपेक्षा कर रहे हैं हम। जब किसी को कुछ ज्ञात ही नहीं होगा तो उसके अंतःकरण में झाँककर भी लंकेश कुछ नहीं जान पायेगा।''

''परंतु वह हमारे अथवा आपके अंतःकरण में भी तो झाँक सकता है?''

''नहीं, जितने भी व्यक्ति रणनीतिक कार्ययोजना से अवगत हैं, उनमें से किसी के भी अंतःकरण में लंकेश नहीं झाँक सकता।''

''आप तीनों तो महर्षि हैं, किंतु हम...'' लक्ष्मण ने फिर तर्क करना चाहा परंतु उनकी बात को बीच में ही काटकर शरभंग बोले-

''क्या आपको स्थाणु आश्रम में श्रीविष्णु से अपनी भेंट स्मरण नहीं है?''

''स्मरण है महर्षि!''

''उस भेंट में श्रीविष्णु ने सहज ही अपनी अनेक शक्तियाँ आप दोनों में प्रतिरोपित कर दी थी। अब आप दोनों भी इतने समर्थ हो चुके हैं कि आपकी

इच्छा के विरुद्ध आप के हृदयों की गहराइयों में उतर पाना किसी के लिये संभव नहीं है। आप लंकेश को मनचाहा दिखाकर भ्रमित भले ही न कर पायें, परंतु आपके रहस्य भी वह आपकी इच्छा के बिना नहीं जान पायेगा।''

''ओह!'' लक्ष्मण के मुख से निकला, फिर तत्काल ही उन्होंने अगला प्रश्न कर दिया-

''तो क्या आप तीनों महर्षियों के अतिरिक्त हम दोनों ही...''

''अभी तक तो आप भी अवगत नहीं हैं'', कहते हुए शरभंग हँस पड़े, फिर जोड़ा- ''जब प्रश्न उठ ही गया है तो इसी पर चर्चा कर लेते हैं कि रणनीति से अवगत कौन-कौन है!''

''जी!'' लक्ष्मण इस बार उत्साह से बोले।

उत्तर देने से पहले शरभंग ने प्रश्न किया-

''यह तो आपको ज्ञात ही होगा कि योजना के शिल्पकार देवर्षि हैं?''

''हाँ!'' लक्ष्मण ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

''देवर्षि श्रीविष्णु के कितने बड़े भक्त हैं, यह भी आपके संज्ञान में होगा?''

''यह तो सम्पूर्ण जगत के संज्ञान में है कि देवर्षि श्रीविष्णु के अन्यतम भक्त हैं। कदाचित सबसे बड़े भक्त!''

''तब क्या यह अनुमान लगाना असंगत होगा कि भले ही देवर्षि और श्रीविष्णु प्रकट कुछ भी कर रहे हो, किंतु योजना का मूल शिल्पकार श्रीविष्णु को ही होना चाहिए?''

अकस्मात लक्ष्मण के मस्तिष्क में जैसे बिजली सी कौंध गयी। उन्हें फिर स्थाणु आश्रम में रहस्यमय ढंग से श्रीविष्णु का मिलने आना स्मरण हो आया।

शरभंग कहते जा रहे थे-

''स्पष्ट है कि अभियान की रणनीति के विषय में अधिकतम ज्ञान इन दोनों को ही हो सकता है और इन दोनों के ही अंतःकरण में झाँक पाना किसी के लिये

भी संभव नहीं है। इनके अंतःकरण में झाँकने का प्रयास करने पर, लंकेश्वर वहाँ वही कुछ देखेगा जो ये दिखाना चाहेंगे।

"इन दोनों के अतिरिक्त महर्षि अगस्त्य, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि वशिष्ठ और महर्षि परशुराम भी रणनीति से अवगत हैं और ये चारों ही दशानन के समकक्ष ही योगी हैं। इनकी भी इच्छा के विरुद्ध दशानन इनके हृदय में नहीं झाँक सकता। देवगणों का सम्पूर्ण रणनीति से अवगत होना स्वाभाविक है क्योंकि अभियान की सफलता से सबसे बड़ा कंटक तो उनका ही कटेगा। वे स्वयं भी समर्थ हैं और उनकी मनीषा को सतत् श्रीविष्णु और देवर्षि की संरक्षण भी प्राप्त रहती है। न्यूनाधिक यही सौभाग्य महर्षि सुतीक्ष्ण और मुझे भी प्राप्त है।" कहकर शरभंग एक पल के लिये रुके, फिर आगे कहने लगे-

"आपकी मातायें, मंथरा और आपकी भाभी मात्र अभियान के उद्देश्य से परिचित हैं, अतः दशानन यदि उनकी स्मृतियों में झाँक भी लेता है तो कोई संकट नहीं आने वाला। वह भलीभाँति अवगत है कि सारे के सारे देव और आर्य उसके पराभव की अभिलाषा रखते हैं और वह उनकी इस अभिलाषा को मक्षिका के भिनभिनाने जितना भी महत्व नहीं देता। फिर भी सतर्कता की दृष्टि से देवर्षि ने आपकी माताओं और मंथरा की चेतना का जितना अंश इस अभियान से संबंधित है, उसे अपनी योगशक्ति के आवरण से संरक्षित कर दिया है।

"अब शेष रह जाती हैं आपकी भाभी और वे ही एकमात्र ऐसी व्यक्ति हैं जो लंकेश की अन्तर्वेधी अन्तर्दृष्टि का प्रतिरोध करने में सक्षम नहीं हैं।"

"उन्हें श्रीविष्णु अथवा देवर्षि ने संरक्षण क्यों नहीं प्रदान की?" लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

"संयोग ही नहीं बना। आपके वनवास हेतु प्रस्थान से पूर्व तो उन्हें कुछ ज्ञात ही नहीं था और अब भी वे आपके समान ही, अभियान के उद्देश्य से ही तो अवगत हैं। मैं पूर्व में ही कह चुका हूँ कि इसे लंकेश महत्व नहीं देता। परंतु अभी आपकी मुझसे जो चर्चा होगी, अथवा भविष्य में महर्षि सुतीक्ष्ण और महर्षि

अगस्त्य से आपका जो विचार-विनिमय होगा वह अत्यंत संवेदनशील होगा, उसमें रणनीतिक चर्चा और उसकी समीक्षा भी होगी। इन चर्चाओं में कुछ अंश ऐसे भी होंगे, जिनका आपकी भाभी के संज्ञान में आना, अभियान के लिये ही नहीं, स्वयं उनके लिये भी हितकर नहीं होगा।''

''परंतु महर्षि, भाभी तो सदैव हमारे साथ ही होंगी, त्रिलोक की कोई भी शक्ति उन्हें भइया से पृथक नहीं कर सकती। ऐसे में उनसे कुछ भी गुप्त रख पाना संभव कैसे होगा? इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि भइया भाभी के सम्मुख मिथ्या-भाषण नहीं कर सकते और मैं भी उनके आदेश की अवहेलना नहीं कर सकता। वे यदि प्रश्न करेंगी, तो हमें उसका सत्य उत्तर देना ही होगा। आरम्भ में भइया ने उनसे वनवास का उद्देश्य गुप्त रखने का प्रयास किया था, परंतु उसके लिये वे कितना अपराधबोध अनुभव करते थे यह मैंने स्वयं देखा है। इसी अपराधबोध से विवश हो, उन्होंने अंततः भाभी को सब कुछ बता ही दिया।''

शरभंग लक्ष्मण के तर्क से अप्रभावित रहे, वे वैसे ही शांत स्वर में बोले-

''मैंने आपसे मात्र इतना ही तो निवेदन किया है कि जब कभी आप मुझसे, महर्षि सुतीक्ष्ण से अथवा महर्षि अगस्त्य से रणनीति-विषयक चर्चा करेंगे, तब यह सुनिश्चित करेंगे कि अन्य कोई भी उसे सुन न सके। हमलोग स्वयं भी इस संदर्भ में सतर्क रहेंगे। तदुपरांत यह आपको निर्णय करना होगा कि चर्चा का कितना अंश आपको सीता से गोपनीय रखना है और कितना बता देना है।''

''फिर भी महर्षि, क्या इस सन्दर्भ में आप हमें कुछ दिशानिर्देश देंगे?''

''धीरज न खोयें सौमित्र, क्रमशः सब आपको स्पष्ट हो जायेगा और आपकी मेधा और विवेक पर हमें पूरा भरोसा है।''

''फिर भी महर्षि, एक शंका का निवारण तो कर ही दीजिए!'' शरभंग आगे कुछ बोलते, उससे पूर्व ही लक्ष्मण ने फिर निवेदन किया।

''पूछिये!'' शरभंग ने सहमति दी।

"जब इस अभियान में श्रीविष्णु जैसी शक्ति संलिप्त है तो हम प्रभु शिव और पितामह ब्रह्मा को कैसे विस्मृत कर सकते हैं। उन दोनों की क्या प्रतिक्रिया होगी? लंकेश दोनों को ही विशेष प्रिय है।"

"आपकी शंका विचारणीय है, परंतु मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उन दोनों की ओर से भी आप निश्चिंत हो सकते हैं।"

"कुछ विस्तार से बतायेंगे ऋषिवर?"

"प्रथम तो लंकेश स्वयं ही शिव से सहायता की प्रार्थना ही नहीं करेगा, उसे अपनी और लंका की सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास है। यदि करेगा भी, तो शिव को तटस्थ ही रहना पड़ेगा। ठीक वैसे ही, जैसे जब सुमाली आदि ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था, तब रहे थे। फिर यह भी स्वयंसिद्ध है कि ये तीनों महाशक्तियाँ कभी भी परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं खड़ी होतीं। और पितामह के हस्तक्षेप का मार्ग तो लंकेश ने स्वयं ही अवरुद्ध कर रखा है।"

"समझा नहीं महर्षि?"

"लंकेश ने जब पितामह से वर माँगे थे, तो उसने अति आत्मविश्वास में स्वयं ही मनुष्यों की उपेक्षा कर दी थी। इस स्थिति में जब तक देवगण युद्ध में सक्रिय हस्तक्षेप नहीं करते, पितामह भी तटस्थ रहने हेतु विवश हैं। यही तो कारण है जो रक्षों के संहार का दायित्व आपको निर्वहन करना पड़ रहा है, अन्यथा इतनी जटिल योजना पर कार्य करने के स्थान पर श्रीविष्णु स्वयं ही देवों का यह कार्य सम्पादित कर सकते थे।"

उत्तर में लक्ष्मण बस एक दीर्घ निःश्वास लेकर रह गये।

थोड़ी देर फिर मौन रहा। उसके बाद लक्ष्मण कुछ बोलना ही चाहते थे कि शरभंग ने हाथ से उन्हें मौन रहने का संकेत किया। एकाएक ऋषिवर के इस संकेत का कारण समझ न आने के कारण लक्ष्मण की भौहों पर फिर कुछ रेखायें खिंच गयी परंतु तत्काल ही वे मिट भी गयी। कारण उनकी समझ में आ गया था, एक शिष्य एक बाल्टी में पानी लिये यज्ञशाला के बाहर आ खड़ा हुआ था।

''आइये हस्त-प्रच्छालन कर लिया जाये।'' उसे देखकर शरभंग उठते हुए बोले।

यज्ञशाला से थोड़ा सा हटकर उस शिष्य ने सभी के हाथ पैर धुलवाये।

जैसे ही तीनों हाथ-पैर धोकर खड़े हुए, अपने उत्तरीय से हाथ पोंछते हुए शरभंग बोले-

''आइये कुटिया में ही चलते हैं।'' और अपनी कुटिया की ओर बढ़ चले।

दोनों भाइयों ने उनका अनुगमन किया।

कुटिया के भीतर पहले से ही तीन आसन एक पंक्ति में इस प्रकार पड़े हुए थे कि बैठने पर तीनों के मुख द्वार की ओर ही रहते। शरभंग स्वयं मध्य के आसन पर बैठ गये और उन दोनों को अपने दायें-बायें बैठने का संकेत कर दिया।

तीनों के आसनों पर बैठते ही तीन शिष्य भोजन की पत्तलें लेकर आ गये।

राम और लक्ष्मण दोनों ने ही लक्ष्य किया कि महर्षि की पत्तल में नाममात्र को कटे हुए फल रखे थे। दोनों को ही कुछ अटपटा लगा परंतु किसी ने इस पर कोई टिप्पणी नहीं की।

भोजन सामग्री परोसी जा चुकने पर शरभंग ने शिष्यों को निर्देश दिया-

''बिना पुकारे कोई भी कुटिया के पास आने की चेष्टा नहीं करेगा।''

शिष्यों ने सहमति में सिर हिला दिये और कुटिया से प्रस्थान कर गये।

उनके जाते ही शरभंग ने शास्त्रोक्त विधि से मंत्रोच्चार सहित प्रभु को नैवेद्य समर्पित किया। राम और लक्ष्मण ने भी उनका अनुसरण किया।

''आरंभ करो वत्स!'' नैवेद्य समर्पण के उपरांत शरभंग बोले और स्वयं भी अपनी पत्तल से फल का एक टुकड़ा उठा लिया। फल को दाँतों से कुतरते हुए उन्होंने वार्ता का क्रम पुनः आरम्भ किया-

"भोजन करते समय वार्ता करना उचित तो नहीं होता, परंतु आपत्तिकाल में मर्यादाओं का उल्लंघन किया जा सकता है।" कहकर वे हठात् हँस पड़े, पर तत्काल गंभीर होकर आगे कहने लगे-

"एक अद्भुत तथ्य है जो हमारी सफलता में सर्वाधिक सहयोगी है। देवों पर विजय के उपरांत लंकेश की, स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की महत्वाकांक्षा तृप्त हो गयी थी। उस समय युद्ध से विरत रहकर श्रीविष्णु ने भी प्रकारांतर से उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली थी। अब ऐसा कोई भी शासक शेष नहीं बचा था जिससे वह युद्ध करता। त्रिलोक के समस्त शासक या तो स्वतः ही उसकी अधीनता स्वीकार कर उसके मित्र बन चुके थे अथवा पराजित हो चुके थे। महत्वाकांक्षाओं के तृप्त हो जाने पर उसे एकाएक अपने पिता का स्मरण हुआ।

"उस भेंट में महर्षि विश्रवा ने उसे परामर्श दिया कि सुमाली का दौहित्र कदापि विष्णु पर श्रेष्ठता स्थापित नहीं कर सकता, परंतु पुलस्त्य का पौत्र निर्विवाद रूप से ऐसा कर सकता है। तभी से, पिता की प्रेरणा से, लंकेश्वर शक्ति के स्थान पर ज्ञान और कला की आराधना में प्रवृत्त है। वह पुलस्त्य का पौत्र है, पितामह ब्रह्मा के कुल से है, अतः अपूर्व मेधा और समस्त कलायें तो उसे जन्मना ही प्राप्त हुई है। सुमाली के संसर्ग में वे सब सोई पड़ी थी, पिता के उद्धबोधन से वे जाग्रत हो गयी। कुछ ही काल उपरांत जब देवर्षि ने त्रिलोक के समस्त महापुरुषों की उपस्थिति में उसे दशानन की उपाधि से विभूषित करने का प्रस्ताव रखा तो उसका सर्वप्रथम अनुमोदन कर श्रीविष्णु ने पुनः उसे यही संदेश देने का प्रयास किया कि वे कदापि उसके प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं। वे उसके ज्ञान और उसकी प्रतिभा का हृदय से सम्मान करते हैं।

"इस प्रकार महर्षि विश्रवा के उद्धबोधन के पश्चात से ही सुमाली का दौहित्र, दुर्धर्ष योद्धा, त्रिलोक विजेता रावण सुषुप्तावस्था में है और जो जाग्रत और क्रियाशील है, वह है महर्षि विश्रवा का पौत्र, महाज्ञानी, समस्त कलाओं का ज्ञाता और उनका उन्नायक दशानन। यदि रावण जाग्रतावस्था में होता तो हमारा कार्य सिद्ध होना अत्यंत दुष्कर हो गया होता। रावण को हमारी किसी भी

कूटनीति अथवा दुरभिसन्धि को भाँपने में समय नहीं लगा होता और उसने आरम्भ में ही हमारी सारी योजनायें ध्वस्त कर दी होतीं।्र''

''ऋषिवर, एक शंका है...'' राम ने संकोच के साथ प्रश्न किया।

''निस्संकोच कहें।''

''यदि हमारा प्रतिपक्षी विश्रवा का पौत्र, महाज्ञानी, समस्त कलाओं का उन्नायक दशानन है, तो हम उसके पराभव के आकांक्षी क्यों हैं? ऋषिगण, देव और आर्य यदि उससे मित्रता स्थापित कर लें और ज्ञान व कला के उन्नयन हेतु सब समवेत प्रयास करें, तो यह तो मानवता के लिये अत्यंत श्रेयस्कर एवं गौरव का विषय होगा।''

''नहीं राघव, भले ही सुषुप्तावस्था में है, परंतु सुमाली का दौहित्र रावण, उसी दशानन की काया में जीवित है। क्या पता कि वह कब जाग्रत हो जाये! उसका विनाश अवश्यंभावी है। फिर शासन दशानन नहीं कर रहा, वह तो ज्ञान और कलाओं को समर्पित है। शासन तो सुमाली के पुत्र, पौत्र और अन्य सम्बन्धी ही कर रहे हैं। दण्डकारण्य में चन्द्रनखा के पीछे छिपकर खर और दूषण कर रहे हैं। ये सारे पूर्णतः रक्ष संस्कृति में रचे-बसे हैं। ये सब आर्य संस्कृति के प्रति द्वेष रखते हैं। हमारी विवशता है कि रावण के विनाश के बिना उनका विनाश संभव नहीं है। वह दशानन हो अथवा रावण, उसका विनाश ही हमें श्लाघ्य है। यही नियति का निर्णय है। यही देवर्षि सहित अन्य समस्त ऋषियों का निर्णय है।''

''परंतु ऋषिवर...'' राम ने फिर कोई तर्क रखना चाहा परंतु शरभंग ने उनकी बात बीच में ही काट दी-

''फिर आप यह क्यों नहीं सोचते कि जब तक दशानन जीवित है, देव-आर्य संस्कृति के गौरव को ग्रहण लगा ही रहेगा। पराजय की टीस हमें व्यथित करती ही रहेगी। न जाने कब दशानन की काया के भीतर सोया रावण पुनः जाग जाये और एक बार पुनः त्रिलोक उसके आतंक से काँपने लगे! आर्यों और देवों का गौरव पुनः रसातल को चला जाये! आपको लोग श्रीविष्णु का अवतार मानते

हैं, सप्तम विष्णु कहते हैं परंतु यहाँ पर आपको श्रीविष्णु से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है... श्रीविष्णु मर्यादाओं को अनुशासित करते हैं और आप स्वयं उनसे अनुशासित होते हैं। श्रीविष्णु समष्टि के हित और सभ्यता के उन्नयन हेतु धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय की परिभाषायें स्वयं गढ़ते हैं जबकि आप उनकी रूढ़ परिभाषाओं से स्वयं को आबद्ध कर लेते हैं...''

श्रीविष्णु से अपनी तुलना सुनकर राम असहज हो उठे। वे धीरे से बोले-

''महर्षि, श्रीविष्णु के साथ मेरी तुलना असंगत है। वे अलौकिक हैं और मैं एक साधारण मानव हूँ।''

''नहीं राम, आप साधारण मानव हो ही कैसे सकते हैं...'' कहते हुए शरभंग धीरे से हँसे- ''नियति ने इस असाधारण कार्य हेतु आपका चयन किया है, स्वयं श्रीविष्णु ने अपनी शक्तियों से आपको विभूषित किया है। महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र ने आपको दीक्षा दी है...''

अपनी प्रशंसा ने राम को और असहज कर दिया। वे शीघ्रता से बोल पड़े-

''महर्षि, मुझे जो भी गुण प्राप्त हुए हैं, वे प्रकृति और गुरुओं का प्रताप है, उसमें मेरा कोई योगदान नहीं है। परंतु मुझे प्रतीत होता है कि हम विषय से भटक रहे हैं...''

''ठीक है'', मंद स्मित के साथ शरभंग बोले और पुनः विषय पर आ गये- ''क्योंकि लंकेश्वर इस समय दशानन के अवतार में है अतः इस समय उसका लेशमात्र भी ध्यान इस ओर नहीं है कि उसे असावधान पाकर कोई रक्ष संस्कृति को पराभूत करने का आयोजन भी रच सकता है। इन स्थितियों में, जब तक उसे किसी कारण से हम पर संदेह नहीं होता, अथवा उसके परामर्शदाता उसे सचेत नहीं करते, तब तक उसके पास स्वयं इतने कार्य हैं करने के लिये, कि वह उनकी उपेक्षा कर, समाधिस्थ हो हमारे रहस्यों को जानने का प्रयास नहीं करेगा।''

''हम इस विषय में इतना विश्वस्त कैसे हो सकते हैं कि उसके परामर्शदाताओं में से कोई उसे सतर्क करने का प्रयास नहीं करेगा?''

"वे परामर्शदाता सामान्य मनुष्य हैं, उसके समान अन्तर्वेधी दृष्टि प्राप्त कोई सिद्ध योगी नहीं। फिर भी, उन्हें संदेह न हो पाये इसके लिये हम आरम्भ से ही पूर्ण सावधान हैं। इसीलिये मैंने आपसे भी सतर्कता बरतने का निवेदन किया है।... देवराज का आपसे मिले बिना निकल जाना भी इसी सतर्कता का अंग है।"

देवेन्द्र के आचरण के लिये शरभंग का यह स्पष्टीकरण लक्ष्मण को स्वीकार्य नहीं था, अपने आक्रोश को भरसक दबाते हुए वे बोले-

"आदरणीय, धृष्टता हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ, परंतु आपका मन्तव्य मुझे स्पष्ट नहीं हुआ। आप भी तो हमसे भेंट कर रहे हैं, सारे आश्रमवासी कर रहे हैं; ऐसे में यदि देवेन्द्र भी कर लेते तो कौन सा संकट आ जाता?"

लक्ष्मण के आक्रोश से शरभंग ने रत्ती भर विचलित हुए बिना शांत स्वर में उत्तर दिया-

"देवेन्द्र के आपसे भेंट करने में, और हम आश्रमवासियों के भेंट करने में बहुत बड़ा अन्तर है सौमित्र। पितामह के हस्तक्षेप से लंकेश ने देवेन्द्र को मुक्त अवश्य कर दिया था, परंतु इससे दोनों के मध्य स्थापित शत्रुता तो समाप्त नहीं हुई। लंकेश स्वयं भले ही इस समय राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विताओं से निर्लिप्त है परंतु जो लंका की सत्ता सँभाल रहे हैं, वे तो नहीं हैं। देवराज से आपकी भेंट यदि रक्षों के संज्ञान में आ जाती तो आप भी उनकी दृष्टि में संदेहास्पद हो जाते और हम नहीं चाहते कि रणघोष से पूर्व आप रक्षों की दृष्टि में संदिग्ध बनें।"

"और रणघोष कब होगा महर्षि?" लक्ष्मण पूछ बैठे।

"अभी बहुत विलम्ब है, दस से ग्यारह वर्ष।"

"क्या?" इस उत्तर से लक्ष्मण हतप्रभ हो गये- "इस सुदीर्घ अवधि तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी हमें? तब तक तो हमारा वनवास काल भी समाप्त होने को होगा।"

"सौमित्र, समय की आवश्यकता युद्ध हेतु नहीं होती, युद्ध हेतु स्वयं को सर्वविधि सुयोग्य बनाने हेतु होती है। पितामह से वर माँगते समय रावण ने मनुष्य

जाति को दुर्बल समझकर अपने सुरक्षा चक्र में जो छिद्र छोड़ दिया है, वैसा कोई छिद्र आपको नहीं छोड़ना है... परंतु इस पर विवाद करने के स्थान पर मैं अभी आपको विन्ध्य के दक्षिण की परिस्थितियों से अवगत कराना चाहता हूँ।''

''जी!'' लक्ष्मण कुछ और प्रतिरोध कर पाते उससे पूर्व ही राम धीरे से बोल पड़े। शरभंग ने कहना आरम्भ किया-

''इस क्रम में सर्वप्रथम तो मैं आपको यह स्पष्ट कर दूँ कि आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त में जो यह धारणा व्याप्त है कि विन्ध्य के दक्षिण में सर्वत्र रक्षों का ही वर्चस्व है वह भ्रांति मात्र है।''

''क्या सत्य ही ऐसा है?'' लक्ष्मण ने जैसे आश्चर्य का अभिनय करते हुए प्रश्न किया।

''हाँ'', शरभंग ने बताना आरम्भ किया- ''विन्ध्य के दक्षिण का यह क्षेत्र एक प्रायद्वीप है जो दक्षिण की ओर निरंतर संकीर्ण होता चला गया है।'' कहने के साथ ही उन्होंने अपनी उँगली से भूमि पर एक कोणीय आकृति बना दी। इस कोण की एक भुजा ऊपर जाकर एक और कोण बनाती हुई दाहिनी ओर फैल गयी थी; ठीक प्रायद्वीपीय भारत के मानचित्र के समान। आकृति बनाकर उसके ऊपर के खुले भाग पर बीच में एक गोल घेरा सा खींचते हुए वे आगे बोले-

''यह है विन्ध्य पर्वत, जिसे पार कर आपने इस प्रदेश में प्रवेश किया है। इसके दक्षिण में यह छोटा सा प्रदेश है जहाँ यह आश्रम स्थित है। यह दण्डकारण्य का ही एक भाग है। पूर्व में दक्षिण कोशल और पश्चिम में महिष्मती से घिरा यह प्रदेश, ऐसा प्रतीत होता है जैसे शेष दण्डकारण्य की पीठ पर एक कूबड़ सा निकला हो।''

राम और लक्ष्मण ने मानचित्र जैसी उस आकृति को ध्यान से देखते हुए सहमति में सिर हिला दिया।

अपनी उँगली से एक और घेरा खींचते हुए शरभंग आगे बोले-

''प्रायद्वीप का यह उत्तरी क्षेत्र सर्वाधिक विस्तृत है। इस त्रिकोण की यह जो एक भुजा आप देख रहे हैं, जो एक और कोण बनाती हुई पूर्व की ओर और विस्तार ले गयी है... यह उत्कल प्रदेश है। उत्कल प्रदेश पूर्व में सागर तट तक फैला है। उत्कल के पश्चिम में यह दक्षिण कोशल है। इन दोनों ही राज्यों पर रक्षों का कोई प्रभाव नहीं है। दोनों ही आर्यों के राज्य है।''

राम और लक्ष्मण ने फिर समझ लेने वाले ढंग से सिर हिलाया। शरभंग फिर अपनी उँगली से संकेत करते हुए बताने लगे-

''यह मैं बता ही चुका हूँ, यह दण्डकारण्य का वह प्रदेश है जहाँ इस समय हम उपस्थित हैं... जिसे मैंने मुख्य दण्डकारण्य की पीठ पर निकले कूबड़ के समान बताया है। इसके बाद पुण्य-सलिला नर्मदा के साथ-साथ पश्चिमी सागर तट तक महिष्मती का विस्तार है। महिष्मती लंका का मित्र अवश्य है परंतु वहाँ भी रक्षों का लेशमात्र प्रभाव नहीं है। अपितु लंकेश्वर तो महिष्मती के हैहयों का ऋणी है। हैहय सम्राट अर्जुन ने उसे युद्ध में परास्त कर बंदी बना लिया था और महर्षि पुलस्त्य के निवेदन पर उसे मुक्त किया था। हैहय भी आर्य ही हैं, परंतु उनका आर्यावर्त के आर्यों से, विशेषकर कोशल से पुराना वैर चला आ रहा है। यह हमारा सौभाग्य है कि अर्जुन के पतन के उपरांत महिष्मती शक्तिशाली नहीं रहा, अन्यथा वह हमारे मार्ग की बड़ी बाधा बन सकता था। सागर मार्ग से लंका तक पहुँच कर हमें पीछे से घेर लेना उसके लिये अत्यंत सहज होता।''

''महर्षि'', लक्ष्मण ने पुनः जिज्ञासा की- ''सुना है अर्जुन और उसके साम्राज्य का विनाश महर्षि परशुराम ने किया था!''

उत्तर में शरभंग मुस्कुराकर, कुछ विनोद के साथ बोले-

''वस्तुतः अर्जुन का अंत कर, षष्ठ विष्णु ने सप्तम विष्णु के अभियान की पूर्व-पीठिका तैयार की है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि षष्ठ विष्णु ने अपने उत्तराधिकारी को अर्जुन के पराभव के रूप में अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।''

शरभंग के विनोद पर राम और लक्ष्मण भी धीरे से मुस्कुरा उठे। राम ने तो आँखें बन्द कर, हाथ जोड़, मन ही मन महर्षि परशुराम के प्रति अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त की।

शरभंग आगे बताने लगे-

''दक्षिण कोशल के दक्षिण में यह स्थान वैजयंतपुर है। यह दण्डकारण्य की राजधानी जनस्थान के पूर्व में पड़ता है। यह दानवों का राज्य है, स्वाभाविक है यह देवों और आर्यों का विरोधी है। आपको ज्ञात ही होगा कि देव, दानव और दैत्य सौतेले भाई हैं। समुद्र मंथन के उपरांत जब देवों ने छल से दानवों और दैत्यों को अमृत से वंचित कर दिया, तभी से इनका देवों से विरोध चला आ रहा है। एक प्रकार से यह उनका पारिवारिक विवाद है, परंतु जब भी देवों ने स्वयं को दुर्बल अनुभव किया, तो उन्होंने सहायता हेतु आर्य नृपों का आह्वान किया और आर्य नृपों ने उनकी सहायता की भी। स्वाभाविक रूप से दानव और दैत्य आर्यों के भी विरोधी हो गये। 'वैजयंतपुर के सम्राट् शम्बर का भी इसी कारण देवों से विवाद था। देवेन्द्र को जब प्रतीत हुआ कि देव उन पर विजय प्राप्त नहीं कर पायेंगे, तो उन्होंने सहायता हेतु आर्य नृपों का आह्वान किया। उनके सहयोग हेतु जाने वालों में आपके पिता भी थे। यह वही युद्ध था, जिसमें महारानी कैकेयी ने आपके पिता की प्राण रक्षा की थी और उनके उस उपकार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए, आपके पिता ने महारानी को दो वर प्रदान किये थे। इन्हीं वरों के परिणामस्वरूप आज आप यहाँ उपस्थित हैं।''

''ओह!'' राम के मुख से अनायास निकला- ''महर्षि क्या उस युद्ध और वरों के विषय में विस्तार से कुछ बतायेंगे? मुझे पिता के द्वारा वनवास का आदेश इतना अकस्मात हुआ कि इस सबके विषय में जानने का कोई अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। उस क्षण से पूर्व अयोध्या में कभी उन वरों की चर्चा ही नहीं हुई थी।''

"यदि समयाभाव न होता तो अवश्य बताता राघव", शरभंग क्षीण सी मुस्कान के साथ बोले- "परंतु निश्चिंत रहें, महर्षि सुतीक्ष्ण आपकी सारी जिज्ञासाओं का यथोचित शमन करेंगे।"

"समयाभाव", शरभंग आगे कुछ कहते कि अचानक लक्ष्मण ने नेत्र विस्फारित करते हुए कहा- "परंतु हमारे पास तो समय ही समय है महर्षि!"

"समयाभाव मुझे है सौमित्र और इसीलिये निवेदन है कि अनावश्यक तर्कों में समय नष्ट न करें... मुझे अपनी बात निर्विघ्न कहने दें।"

शरभंग का स्वर अब भी शांत था, परंतु लक्ष्मण ने उसमें एक अजीब सी कठोरता अनुभव की। लक्ष्मण अचकचा कर पुनः मौन हो गये और शरभंग की ओर देखने लगे। लक्ष्मण को मौन पाकर शरभंग मुस्कुराये और आगे कहने लगे-

"शम्बर की मृत्यु के उपरांत वह विशाल साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरकर शक्तिहीन हो गया। कालांतर में देवेन्द्र पर आक्रमण हेतु शक्ति-संचय करते समय लंकेश का ध्यान वैजयंतपुर पर गया। उसने अनुभव किया कि वैजयंतपुर देवों के विरुद्ध उसका स्वाभाविक मित्र हो सकता है। था भी ऐसा ही, वैजयंतपुर के समस्त खंडों के शासकों ने सहर्ष उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अधीनता ही नहीं स्वीकार की, वे सहर्ष रक्ष संस्कृति में दीक्षित भी हो गये। देवों का दर्पदलन उन सबकी सर्वप्रमुख महत्वाकांक्षा थी, इसके लिये उन्हें अपने क्षुद्र स्वार्थों का त्याग भी स्वीकार्य था। उनकी यह महत्वाकांक्षा पूर्ण भी हुई।

"हमारा सौभाग्य है कि इन्द्र-विजय के उपरांत रावण दशानन के अवतार में आ गया तथा उस युद्ध में सुमाली का अंत हो गया। तकनीकी रूप से तो वैजयंतपुर आज भी लंका के अधीन है, वहाँ के निवासी आज भी रक्ष हैं, परंतु वास्तविकता यही है कि अब लंका से उसका नहीं के बराबर सम्पर्क है और वहाँ के निवासी रक्ष होते हुए भी पुनः अपने पूर्व संस्कारों में ढल चुके हैं। वैजयंतपुर के विभिन्न खंडों के शासक एक बार पुनः अपनी महत्वाकांक्षाओं के चलते आपस में ही उलझे हुए हैं। उनका खर और दूषण के साथ कोई तालमेल नहीं है। अतः

वैजयंतपुर के लंका का अधीनस्थ राज्य होते हुए भी, हमें उससे कोई भय नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह कि आपके सम्पूर्ण यात्रा-पथ में वैजयंतपुर कहीं नहीं पड़ता, अतः उसके विषय में चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

''ऋषिवर'', इस बार राम ने आशंका प्रकट की- ''वैजयंतपुर के प्रति उदासीन होकर कहीं हम भूल तो नहीं कर रहे?''

''नहीं'', शरभंग ने आश्वस्त भाव से उत्तर दिया- ''आज इनके पास ऐसा कोई संजाल नहीं है जिससे ये उतनी दूर लंका के घटनाचक्र को जान पायें। जब तक इन्हें ज्ञात होगा और ये लंका तक पहुँचने का साहस जुटायेंगे, तब तक तो युद्ध समाप्त भी हो चुका होगा।''

शरभंग के स्पष्टीकरण को राम ने सहज भाव से स्वीकार कर लिया परंतु लक्ष्मण नहीं कर सके। उन्होंने तर्क किया-

''परंतु संशय को जीवित छोड़ने का क्या औचित्य है महर्षि? हम पहले वैजयंतपुर को ही विजित कर अपना मार्ग निष्कंटक क्यों नहीं कर लेते?''

''सौमित्र, मैंने पहले ही कहा कि लंकेश यदि सचेत हो गया, तो उसे पराजित कर पाना संभव नहीं होगा। आगामी दस वर्षों तक आपको ऐसा कोई कार्य नहीं करना है जिससे लंकेश सतर्क हो सके।''

''परंतु...'' लक्ष्मण ने फिर कुछ कहना चाहा परंतु शरभंग ने अवसर नहीं दिया- ''कोई परंतु नहीं, मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि आप अपना ध्यान जो कुछ मैं बता रहा हूँ उस पर केन्द्रित करने का प्रयास कीजिये।''

शरभंग का स्वर इस बार आदेशात्मक था अतः लक्ष्मण के पास चुप हो जाने के अतिरिक्त कोई उपाय शेष नहीं रहा। उनके मौन होते ही शरभंग पुनः मानचित्र पर अपनी उँगली टिकाते हुए आगे कहने लगे-

''धुर दक्षिण में आप देख ही रहे हैं कि यह प्रायद्वीप अंत्यंत संकीर्ण हो गया है। इस क्षेत्र में सागर तट के साथ-साथ कुछ मछुआरों की बस्तियाँ हैं। इनसे अभी हमें कोई प्रयोजन नहीं है, यह महर्षि परशुराम का कार्यक्षेत्र है और वे स्वयं

में सम्पूर्ण सक्षम हैं। इससे उत्तर में किष्किंधा है। किष्किंधा लंका का मित्र राष्ट्र अवश्य है परंतु रक्ष-संस्कृति का वहाँ भी रंचमात्र प्रभाव नहीं है। वहाँ प्रधानतः वानर जनजाति निवास करती है। कुछ मात्रा में ऋक्ष जनजाति के व्यक्ति भी हैं। वानरराज बालि किष्किंधा का अधिपति हैं। उसके बल की समता त्रिलोक में दुर्लभ है। लंकेश की दिग्विजय यात्रा में उसे सर्वप्रथम पराजय बालि के हाथों ही प्राप्त हुई थी। लंकेश की उस पराजय के बाद भी, उसके साहस से प्रसन्न हो बालि ने उसे सहर्ष अपना मित्र बना लिया और तभी से लंका और किष्किंधा के मध्य निर्बाध, मधुर मैत्री संबंध स्थापित है। बालि के बल की पराकाष्ठा यह है कि उसके विषय में सर्वत्र यह धारणा फैल गयी है कि वह युद्ध में अपने प्रतिपक्षी के भी आधे बल का हरण कर लेता है।''

''क्या सच में ऐसा है?'' लक्ष्मण ने अभिनयपूर्वक प्रश्न किया।

उत्तर में शरभंग भी मुस्कुराये- ''ऐसा भी कहीं होता है! उसके अपराजेय पौरुष के कारण ही यह मिथ्या धारणा फैल गयी है।''

कहकर शरभंग ने थोड़ा सा रुककर राम और लक्ष्मण की पत्तलों की ओर देखा। उन्होंने पाया कि चर्चा के कारण वे दोनों भोजन करना भूल ही गये थे, उन्होंने उस ओर इंगित करते हुए टोका- ''आप दोनों भोजन करते रहें। इसमें संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

''परंतु ऋषिवर, आप तो कुछ ले ही नहीं रहे!'' राम ने संकोच के साथ उत्तर दिया।

''मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं तो मात्र वार्ता करने हेतु समय का सदुपयोग कर रहा हूँ। आप निस्संकोच भोजन ग्रहण करते रहें, विलम्ब सबके लिये कष्टकर होगा।'' शरभंग ने मुस्कुराते हुए पुनः आग्रह किया।

शरभंग के आग्रह पर राम ने संकोच के साथ एक निवाला तोड़कर मुख में रख लिया। राम ने भोजन आरम्भ किया तो लक्ष्मण ने भी कर दिया।

9. शरभंग का उद्बोधन-2

दोनों के भोजन आरम्भ कर देने पर शरभंग ने पुनः कहना आरम्भ किया-

''अब दण्डक की बात करते हैं। दण्डक को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं... प्रथम तो यह क्षेत्र जिसे पूर्व में मैंने दण्डक की पीठ में उभरे कूबड़ की संज्ञा दी थी। दूसरा इस आश्रम के ठीक दक्षिण में स्थित जनस्थान और तीसरा जनस्थान के दक्षिण में किष्किंधा तक विस्तृत दण्डकारण्य की मुख्य भूमि।

''इन तीनों में इस प्रथम क्षेत्र में कुछ विशेष नहीं है। यहाँ कुछ ऋषियों के आश्रम हैं, कुछ वनवासी समूह है, जिनकी हमारे आयोजन में कोई भूमिका नहीं है। उन्हीं में से एक समूह के कुछ युवक यहाँ आपके साथ आये हैं।'' कहकर शरभंग ने एक बार मुस्कुराकर लक्ष्मण की ओर देखा फिर पुनः कहना आरम्भ कर दिया- ''रक्षों की इस क्षेत्र में सक्रियता नगण्य है। यूँ ही कभी क्रीड़ाविलास में भटकते हुए आ गये तो आ गये अन्यथा वे जनस्थान में ही सीमित रहते हैं। ''

''ऐसा क्यों ऋषिवर?'' लक्ष्मण अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पाये।

शरभंग ने एक बार उनकी ओर देखा परंतु बिना कोई प्रतिक्रिया दिये अपनी बात कहते रहे। ऋषिवर द्वारा उनके प्रश्न की यूँ उपेक्षा करना लक्ष्मण को बुरा तो लगा, परंतु वे मौन रहने के अतिरिक्त कर भी क्या सकते थे!

शरभंग कहते जा रहे थे-

''जनस्थान लगभग चालीस योजन लम्बा और दस योजन चौड़ा एक अण्डाकार सा क्षेत्र है। रावण द्वारा चन्द्रनखा को दण्डकारण्य की साम्राज्ञी बनाये जाने से पूर्व, सम्पूर्ण दण्डकारण्य में यही एकमात्र क्षेत्र था जहाँ कुछ मात्रा में ग्राम्य संरचना विकसित हो पायी थी। तब तक यहाँ के निवासी सुखी और अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप सम्पन्न थे। जनस्थान वस्तुतः इस क्षेत्र का मध्यवर्ती और सबसे बड़ा ग्राम था, इसलिये उसे ही राजधानी के रूप में चयनित किया गया। राजधानी बनने के उपरांत क्योंकि यहाँ चन्द्रनखा और खर-दूषण

को निवास करना था, अतः उनके योग्य समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं का यहाँ अद्भुत गति से विकास किया गया। इसके अतिरिक्त चौदह सहस्त्र सैनिकों और कम से कम इतने ही राजकीय कर्मचारियों और सेवक-सेविकाओं को भी यहाँ बसाया गया। इस प्रकार यह आस-पास के अनेक ग्रामों को अपने भीतर समेटता हुआ, दण्डकारण्य का एकमात्र नगर बन गया। इस नगर का मुख्य आवासीय क्षेत्र यद्यपि दस योजन लम्बा और पाँच योजन चौड़ा ही है, परंतु अब इस सम्पूर्ण चालीस योजन के क्षेत्र को ही जनस्थान के नाम से जाना जाता है और सम्पूर्ण क्षेत्र एक अर्धनगरीय क्षेत्र के रूप में विकसित हो चुका है। इस विकास से यहाँ के निवासियों की भौतिक सम्पन्नता यद्यपि अत्यधिक बढ़ गयी है, परंतु उनकी सुख-शान्ति को जैसे ग्रहण लग गया है।''

''ऐसा क्यों ऋषिवर?'' राम ने किंचित व्याकुलता से प्रश्न किया।

''चन्द्रनखा अर्द्धविक्षिप्त है। अपने पति विद्युज्जिह्व की अपने ही भाई के हाथों हुई मृत्यु के आघात को वह सहन नहीं कर पायी। वह अपने पति से अगाध प्रेम करती थी... आज भी करती है। साथ ही अब वह, एक ही समय में अपने अग्रज लंकेश से अत्यंत स्नेह भी करती है और अपने पति के हत्यारे के रूप में उससे अत्यंत घृणा भी करती है। मन की इस दुविधा ने उसकी विक्षिप्तता को और बढ़ा दिया है। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि काम पर तो विवेकी मनुष्य भी नियंत्रण नहीं रख पाते, तब अर्द्धविक्षिप्त चन्द्रनखा किस भाँति रख सकती है! उसकी इसी अतृप्त और विक्षिप्त कामवासना का दंश इस क्षेत्र के निवासी झेलते हैं। नित्य ही कोई न कोई युवा उसकी वासना की पूर्ति हेतु पकड़कर लाया जाता है, परंतु स्वामिनी के उन्मादी स्वभाव के भय से काँपता कोई साधारण युवा किस भाँति उसके साथ स्वाभाविक रतिक्रिया में प्रवृत्त होने का साहस कर सकता है! परिणाम यह होता है कि भोर होने से पूर्व ही, या तो कुपित चन्द्रनखा स्वयं ही उसका वध कर देती है, अथवा अपने वधिकों को सौंप देती है।''

''लंकेश इस विषय में कुछ नहीं करता?'' राम ने प्रश्न किया।

''लंकेश स्वयं को चन्द्रनखा का अपराधी मानता है अतः वह उसकी गतिविधियों में हस्तक्षेप करने से बचता है। खर-दूषण भी उसे यहाँ की स्थितियों के बारे में सही सूचनाएँ नहीं देते।''

''लंकेश अपनी आध्यात्मिक शक्ति से कुछ जानने का प्रयास नहीं करता?'' राम ने पुनः जिज्ञासा की।

''वह इस तथ्य से भलीभाँति अवगत है कि यदि वह अपनी अन्तर्दृष्टि से चन्द्रनखा की गतिविधियों को जानने का प्रयास करेगा, तो उसे मानसिक संताप ही प्राप्त होगा। अतः अपने अपराधबोध के चलते वह यथासंभव ऐसा करने का प्रयास नहीं करता। वस्तु स्थिति यह है कि वह यहाँ हस्तक्षेप तभी करेगा जब खर-दूषण उससे निवेदन करेंगे... वे उसे बतायेंगे कि यहाँ की स्थितियाँ नियंत्रण के बाहर हैं। आप समझ सकते हैं कि खर-दूषण ऐसा कदापि नहीं करेंगे... चन्द्रनखा की आड़ में उन्हें भी तो मनमानी करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। उसके बहाने उन्हें भी तो भोग-विलास का आनन्द उठाने का भरपूर अवसर प्राप्त होता है। चन्द्रनखा की विक्षिप्तता और इसे लेकर अपने अपराधबोध के चलते, लंकेश जनस्थान में संसाधनों की न्यूनता नहीं होने देता। चन्द्रनखा अथवा खर-दूषण एक वस्तु की आकांक्षा करते हैं तो लंकेश उन्हें दस उपलब्ध करवा देता है। स्थिति यह है कि तीनों ही आकंठ भोग-विलास में डूबे हुए हैं। अब यह स्मरण दिलाने की तो आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि जब स्वामी विलासी हो तो उनके सैनिक और अन्य कर्मचारी भला क्यों संयम रखेंगे!'' कहते हुए शरभंग अनायास ही विद्रूप से मुस्कुरा पड़े।

राम यह सब सुनकर करुणार्द्र हो उठे, परंतु मौन ही रहे। उधर लक्ष्मण के मन में दूसरा प्रश्न कुलबुला उठा। एक बार उन्होंने सोचा कि पूछें अथवा भइया के समान मौन ही रहे, परंतु अंततः उन्होंने पूछ ही लिया-

''महर्षि, लंकेश ने चन्द्रनखा के पति की हत्या किस कारण की थी?''

''वह एक दीर्घ वृत्तांत है'', शरभंग ने शांत भाव से उत्तर दिया- ''विस्तार से तो आपको महर्षि सुतीक्ष्ण ही बतायेंगे, अभी संक्षेप में इतना ही जान लें कि वह एक दुर्घटना थी। लंकेश को ज्ञात ही नहीं था कि विद्युज्जिह्व चन्द्रनखा का पति है। वेदवती के अग्निप्रवेश के कारण उस समय वह स्वयं अर्द्धविक्षिप्त था। स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के अपने उन्माद में, वह 'युद्धं देहि!' का उद्घोष करता सर्वत्र विचर रहा था। विद्युज्जिह्व से भी उसने युद्ध की याचना की और उसने अपनी मृत्यु निश्चित जानते हुए भी वह याचना स्वीकार कर ली।''

''और यह वेदवती का प्रकरण क्या है महर्षि?'' महर्षि के तनिक सा विराम लेते ही लक्ष्मण ने उत्सुकता से दूसरा प्रश्न कर दिया।''

''वह भी आपको महर्षि सुतीक्ष्ण ही बतायेंगे!'' कहकर शरभंग ने मुस्कुराते हुए प्रश्न को टाल दिया और पुनः मूल विषय पर आ गये-

''तीसरा भाग मुख्य दण्डकारण्य है। जनस्थान से किष्किंधा तक का समस्त भूभाग इसी अन्तर्गत आता है। नाम से ही स्पष्ट है कि यह सारा आरण्यक प्रदेश है... दुर्गम वनों से आच्छादित पर्वतीय और पठारी प्रदेश। यह लगभग जनशून्य प्रदेश है, निवासियों के नाम पर यहाँ या तो हम ऋषियों के आश्रम है या फिर सभ्यता से पूर्णतः अपरिचित वनवासियों के बिखरे हुए छोटे-छोटे समूह है। वैसे ही, जैसे जनस्थान के उत्तर के दण्डक में है... जैसे तुम्हारे साथी है। वे सारे प्रायः एक ही परिवार से बने समूह है। किसी में भी सौ से अधिक सदस्य नहीं होते। परिवार की दो-तीन पीढ़ियों बाद जैसे ही समूह कुछ बड़ा होने लगता है, परिवार का ही कोई न कोई सदस्य विद्रोह कर अपना पृथक समूह बना लेता है। ये समूह अधिकांशतः पर्वतीय उपत्यकाओं में निवास करते हैं। कुछ वृक्षों पर भी रहते हैं। शस्त्रों के नाम पर ये आज भी पाषाणों, वृक्षों की डालों अथवा वन्य-पशुओं की अस्थियों का ही प्रयोग करते हैं। ये आज भी न आर्य हैं न रक्ष। इनके अपने ही देवता हैं और अपनी ही धार्मिक आस्थायें हैं।''

शरभंग की बात सुनकर अनायास लक्ष्मण को पुनः अपने साथ आये वनवासी शिष्यों का स्मरण हो आया। वे भी तो ऐसे ही हैं।

उधर शरभंग बोलते जा रहे थे-

''सौमित्र, आपने प्रश्न किया था कि खर-दूषण के सैनिक जनस्थान के अतिरिक्त शेष दण्डकारण्य में सक्रिय क्यों नहीं है, तो उसका उत्तर यही है कि वे सुविधाभोगी और विलासी हो गये हैं। जनस्थान के बाहर का कठिन जीवन उन्हें श्लाघ्य नहीं है। उन्हें लंकेश का संरक्षण प्राप्त है, अतः यह भय भी नहीं है कि कोई उनके हितों पर आघात कर सकता है। इसके अतिरिक्त दण्डकारण्य के इन वनवासियों के पास कुछ होता ही नहीं, जो उन्हें प्रताड़ित कर कुछ उपलब्धि होने की संभावना हो। ऐसे में, जब सुख और सुविधा से परिपूर्ण जीवन सहज ही उपलब्ध है तो वे उसे दुष्कर बनाने की मूर्खता भला क्यों करना चाहेंगे!''

कहते-कहते एक पल के लिये शरभंग के मुख पर एक क्षीण सी स्मित की रेखा तैरी और तत्काल ही विलुप्त भी हो गयी। वे पुनः कहने लगे-

''आरम्भ में खर-दूषण के सैनिकों ने इनकी स्त्रियों को अपनी वासनापूर्ति का साधन बनाने के प्रयास अवश्य किये थे, परन्तु ये दुर्गम वन और पहेलियों के समान उलझी हुई पर्वतीय उपत्यकायें इन वनवासियों की स्वाभाविक क्रीड़ास्थली हैं। इनमें उन्हें पकड़ पाने में सैनिकों को अधिकांशतः असफलता ही प्राप्त हुई। स्त्रियाँ सैनिकों को देखते ही छलावे के समान विलुप्त हो जाती थीं, परंतु यदि कभी दो-चार सैनिक इन वनवासियों को मिल जाते थे, तो वे घात लगाकर उनका आखेट कर डालते थे। ऐसे सैनिकों के अस्थिपंजर भी कभी शेष सैनिकों को उपलब्ध नहीं हुए। ऐसी कुछ घटनाओं के उपरांत, सैनिकों ने अपने प्राण संकट में डालकर वनों में भटकना त्याग दिया। वासनापूर्ति के प्रचुर संसाधन तो उन्हें जनस्थान में उपलब्ध हो ही जाते थे।''

''तो शेष दण्डकारण्य हमारे लिये बाधारहित है?''

''पूर्णतः तो नहीं, परंतु बड़ी सीमा तक आपका सोचना सत्य है।''

"पूर्णतः नहीं से आपका तात्पर्य...?"

"इसे समझने के लिये हमें तनिक पीछे जाना पड़ेगा।" शरभंग ने एक बार पुनः मुस्कुराकर तत्काल गंभीर होते हुए बताना आरम्भ किया-

"आरम्भ में सुमाली ने इन वनवासियों तक पहुँचने का गंभीर प्रयास किया था। तब उसे शक्ति-संचय की आवश्यकता थी। वस्तुतः वह दक्षिण-पूर्व के द्वीपों में अपना प्रभाव बढ़ाना पहले ही आरम्भ कर चुका था, अब धीरे-धीरे भरतभूमि पर भी आगे बढ़ना चाहता था अतः उसने लंकेश से छिपाकर, दण्डकारण्य में अपनी छोटी-छोटी गुप्त सैन्य चौकियाँ स्थापित करने और इन वनवासियों को रक्ष संस्कृति में दीक्षित करने का प्रयास आरम्भ कर दिया। उसके इस अभियान का नेतृत्व, विरुद और प्रवर्धन नाम के दो उसके विश्वस्त अनुचर कर रहे थे। इस अभियान की विशेषता थी कि इसमें उसने बलप्रयोग को यथासंभव वर्जित कर रखा था। उसका निर्देश था कि वनवासी समूहों से टकराने के स्थान पर, उन्हें उपहार आदि देकर उनसे मित्रता स्थापित की जाये और उन्हें समझाने का प्रयास किया जाये कि आर्य उन सबको हेय दृष्टि से देखते हैं जबकि रक्ष उन्हें अपने समान ही मानते हैं। शांति से कार्य करने के पीछे उसका उद्देश्य था कि उसकी योजना की भनक बालि अथवा देवों को न लग पाये। उस समय तक लंका की जितनी शक्ति थी, उसके दृष्टिगत बालि और देव उसके लिये भयानक संकट उत्पन्न कर सकते थे।... उसकी इस योजना को सफलता भी मिली और वनवासियों ने रक्षों के प्रभाव में आना भी आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे ये चौकियाँ सुन्दरवन तक फैल गयी। इन्हीं के माध्यम से सुमाली और ताड़का के मध्य सम्पर्क स्थापित रहता था।

"अद्भुत तथ्य यह है कि जिस समय सुमाली के लिये विरुद् और प्रवर्धन ये चौकियाँ स्थापित कर रहे थे, ठीक उसी समय देवर्षि की प्रेरणा और महर्षि अगस्त्य के निर्देशन में हम ऋषियों ने भी इस क्षेत्र में गुरुकुलों की स्थापना करना आरम्भ कर दिया। किष्किंधा में देव अपने आश्रम स्थापित करना कुछ काल पूर्व ही आरम्भ कर चुके थे।"

"किष्किंधा में...?" लक्ष्मण ने कुछ कहना चाहा किंतु शरभंग ने हाथ उठाकर उन्हें शांत रहने का संकेत किया और स्वयं कहना जारी रखा-

"रक्षों के समान ही, महर्षि अगस्त्य के निर्देशन में हम भी, मित्रभाव से इन वनवासियों का विश्वास अर्जित करने का प्रयास कर रहे थे। अर्थात् एक ही समय में, दोनों विपरीत शक्तियाँ इस क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने हेतु प्रयासरत थी। इससे भी अद्भुत तथ्य यह है कि दीर्घकाल तक दोनों को ही क्षेत्र में दूसरे पक्ष की उपस्थिति का भान नहीं हो पाया। आप समझ सकते हैं कि यह स्थिति गम्भीर थी, किसी भी समय संघर्ष की स्थिति आ सकती थी परंतु नियति हमारे पक्ष में थी अतः शीघ्र ही हम लाभ की स्थिति में आ गये।"

"वह कैसे महर्षि?" लक्ष्मण ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

"सर्वप्रथम कारण तो यही था कि रक्षों की ओर से इस अभियान को रावण नहीं सुमाली देख रहा था, वह भी लंका में बैठकर; जबकि हमारा नेतृत्व स्वयं महर्षि अगस्त्य कर रहे थे और वह भी सशरीर दण्डकारण्य में उपस्थित रहकर। सुमाली कूटनीतिज्ञ कितना भी बड़ा रहा हो, परंतु आध्यात्मिक क्षमताओं में महर्षि अगस्त्य के सम्मुख वह कणमात्र ही था। महर्षि ने शीघ्र ही रक्षों की इस क्षेत्र में उपस्थिति को भाँप लिया और तदनुरूप सतर्कता बरतनी आरम्भ कर दी। उन्होंने अपने अधिकांश आश्रमों को गहन वनों में स्थानांतरित कर दिया, जहाँ पहुँच पाना इन रक्ष सैनिकों के लिये अत्यंत दुष्कर था।

"महर्षि अगस्त्य की उपस्थिति के अतिरिक्त सुमाली की योजना को पहला आघात दिया स्वयं आपलोगों ने... ताड़का के वध के रूप में। दूसरे छोर पर उनका जो सबल और विश्वस्त सहयोगी था वह अकस्मात समाप्त हो गया।

"उसे दूसरा आघात मिला लंकेश की तत्कालीन मनस्थिति के द्वारा, जिस पर उस समय स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने का उन्माद छाया हुआ था। वह त्रिलोक में घूम-घूम कर युद्ध की याचना करता फिर रहा था और सुमाली इन

यात्राओं में उसके साथ रहने हेतु विवश था। इस कारण वह दण्डकारण्य पर पूरा ध्यान नहीं दे पा रहा था।

"तीसरा आघात लगा उसी उन्माद में लंकेश के हाथों चन्द्रनखा के पति विद्युज्जिह्व का वध हो जाने से। अपनी विक्षिप्तता से चन्द्रनखा सबके लिये समस्यायें उपस्थित करने लगी। अपराधबोध से ग्रस्त लंकेश का बड़ा ध्यान अपनी प्यारी अनुजा के स्वास्थ्य पर केन्द्रित हो गया। लंकेश ने चन्द्रनखा को दण्डकारण्य में स्थापित ही इसलिये किया था, ताकि वह लंका में स्थान-स्थान पर बिखरी विद्युत की स्मृतियों से दूर रहकर सामान्य हो सके। यद्यपि इससे लाभ कोई नहीं हुआ।

"अंतिम आघात लगा इन्द्र पर अभियान में स्वयं सुमाली की मृत्यु के रूप में। यह सुमाली का गोपनीय अभियान था अतः उसकी मृत्यु के उपरांत छिन्न-भिन्न हो गया। कालांतर में, प्रहस्त और वज्रमुष्टि ने इसे पुनः संगठित करने का प्रयास अवश्य किया, परंतु वह इस कार्य को उतनी कुशलता से नहीं कर पाये, जैसी कुशलता से सुमाली करता था। सच कहा जाये तो उन्होंने इसकी आवश्यकता भी नहीं समझी... अब लंकापति त्रिलोक विजेता था, अब इन क्षुद्र वनवासियों के सहयोग से शक्ति-संचित करने का विचार भी करना ऐसा था जैसे स्वयं भागीरथी कहीं अन्यत्र से अपनी तृषा शांत करने का प्रयास करें। फिर जनस्थान में खर-दूषण अपनी सेना समेत उपस्थित हैं ही। यही सब सोचकर धीरे-धीरे वे भी इन सैन्य चौकियों की ओर से उदासीन हो गये।"

"तो अब ये चौकियाँ क्या करती हैं?" लक्ष्मण ने अगला प्रश्न किया।

"अब उनकी उपस्थिति औपचारिकता मात्र रह गयी है। उनकी संख्या भी बहुत कम हो गयी है। कार्य के नाम पर ये अब मात्र लंका और जनस्थान के मध्य संदेशों को अग्रसारित भर करती है।"

"परंतु ऋषिवर, यह क्या अतार्किक सा ध्वनित नहीं होता कि आपको तो उनकी चौकियों के विषय में पूर्ण ज्ञान है परंतु वे आपकी उपस्थिति से अनभिज्ञ

हैं? क्या ऐसा संभव नहीं है कि जिस भाँति आप उनकी उपस्थिति से भिज्ञ हैं, उसी भाँति वे भी आपकी उपस्थिति से भिज्ञ हों?''

''मैंने कब कहा कि वे हमारी उपस्थिति से अनभिज्ञ हैं।'' मुस्कुराते हुए शरभंग ने उत्तर दिया- ''वे जानते हैं कि दण्डकारण्य के वनों में ऋषियों के आश्रम है, परंतु ऋषियों के आश्रम तो होते ही वनों में हैं अतः उन्हें इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। महत्वपूर्ण यह है कि उन्हें गहन वनों में छिपे हमारे उन आश्रमों की विषय में रंच मात्र भी भान नहीं है, जहाँ हम इन वनवासी युवाओं को सैन्य प्रशिक्षण दे रहे हैं।''

''क्या कह रहे हैं ऋषिवर!?'' लक्ष्मण ही नहीं, राम की आँखें भी इस रहस्योद्घाटन से फैल गयीं- ''क्या सत्य ही ऋषिगण दण्डकारण्य के आश्रमों में सैन्य-प्रशिक्षण संचालित कर रहे हैं?''

''हाँ, राघव, यह आवश्यक था। आगत युद्ध में आपको भी तो सैन्य की आवश्यकता होगी! और हाँ, दण्डकारण्य में ही नहीं, किष्किंधा में देवों के गुरुकुलों में भी सैन्य-प्रशिक्षण कार्य संचालित हो रहा है। आपको आश्चर्य होगा कि बालि और सुग्रीव ने भी उन्हीं गुरुकुलों में प्रशिक्षण प्राप्त किया है।''

इन रहस्योद्घाटनों ने कुछ पल के लिये दोनों भाइयों को अवाक् कर दिया। किंतु राम ने शीघ्र ही स्वयं को नियंत्रित कर प्रश्न किया-

''यह सब तो अविश्वसनीय है महर्षि! एक ओर तो आप कह रहे हैं कि बालि लंकेश का मित्र है, वहीं दूसरी ओर यह बता रहे हैं कि किष्किंधा में देवों के गुरुकुलों में सैन्य-प्रशिक्षण दिया जाता है और वह भी हमारे लिये सैन्य संगठित करने के उद्देश्य से! प्रश्न उठता है कि बालि ने ऐसे गुरुकुलों को संचालित करने की अनुमति कैसे दी? परंतु आप यह भी कह रहे हैं कि स्वयं बालि भी उन्हीं गुरुकुलों में प्रशिक्षित हुआ है, अर्थात् इन गुरुकुलों का संचालन बालि के पिता के समय से हो रहा है, दूसरे शब्दों में तब से, जब लंकेश और देवों में कोई शत्रुता हुई ही नहीं थी... आपने ही बताया कि इन्द्र को पराजित करने के उपरांत से ही

रावण युद्धों से विरत हो, दशानन के अवतार में है।... सब कुछ अत्यंत उलझा हुआ सा नहीं प्रतीत हो रहा?''

''आप सत्य कह रहे हैं राघव! इन गुरुकुलों का संचालन बालि के पिता महाराज ऋक्षराज के समय से ही हो रहा है अतः बालि के अनुमति देने अथवा न देने का प्रश्न ही नहीं है। जहाँ तक लंकेश और देवों की शत्रुता और इन गुरुकुलों की स्थापना के अन्तर्सम्बन्ध का प्रश्न है तो मैं आपको स्मरण दिला दूँ कि लंकेश के उदय के बहुत पूर्व से ही सुमाली और देवों में शत्रुता चली आ रही है। श्रीविष्णु द्वारा माल्यवान, सुमाली और माली का मानमर्दन और फिर सुमाली का पुनःरुत्थान यह एक सुदीर्घ गाथा है जो महर्षि सुतीक्ष्ण ही आपको सुनायेंगे। अभी मैं आपको इतना ही बता सकता हूँ कि पितामह ब्रह्मा द्वारा लंकेश और उसके भाइयों को वरदान दिये जाने के समय से ही देवों को भविष्य की अपनी निश्चित पराजय का भान हो गया था। पितामह के वचन से संरक्षित रावण देवों के लिये अवध्य हो गया था। उसके प्राणों को संकट उत्पन्न होते ही पितामह उसकी रक्षा के लिये उपस्थित हो जाते, जैसा यम के साथ लंकेश के युद्ध में हुआ भी। पितामह के अकस्मात हस्तक्षेप के कारण यम कालदंड का प्रयोग नहीं कर पाये और अपनी उसी विवशता से उत्पन्न क्रोध के वशीभूत रणक्षेत्र से पलायन कर गये।... उसी समय देवर्षि की प्रेरणा से देवों ने किष्किंधा में गुरुकुलों की स्थापना आरम्भ कर दी थी। वास्तविकता यही है कि आरम्भ में महाराज ऋक्षराज को भी देवों की सदाशयता पर विश्वास नहीं था, फिर भी उन्होंने उन्हें गुरुकुल स्थापित करने दिये। दो कारण थे इसके पीछे, पहला तो यह कि देवों ने दैत्यों और दानवों के अतिरिक्त कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया था इसलिये उन्हें उनसे कोई भय नहीं था; दूसरा यह कि देवों से श्रेष्ठ प्रशिक्षक उन्हें और भला कहाँ प्राप्त हो सकते थे! यदि इसी बहाने उनके राज्य के युवाओं का हित हो रहा था, उनके राज्य की शक्ति में वृद्धि हो रही थी, तो उन्हें भला आपत्ति क्यों होती! देवों ने भी आरम्भ से लेकर आज तक पूरी निष्ठा से किष्किंधा के गुरुकुलों में अपने दायित्व का निर्वहन किया है।''

''परंतु महर्षि यह प्रश्न तो अभी भी अनुत्तरित ही है कि बालि तो लंकेश का मित्र है, तब किष्किंधा के आश्रमों में प्रशिक्षित योद्धा, लंका के विरुद्ध हमारा सहयोग भला क्यों करेंगे?''

''राघव, यही शंका तो आज तक देवेन्द्र के मन को भी मथ रही है और यही सोचकर रक्ष देवों के प्रति सशंकित होते हुए भी इन गुरुकुलों की उपेक्षा कर रहे हैं। परंतु जिस प्रकार देवों ने नियति पर भरोसा रखा है, आप भी रखें... साथ ही देवर्षि और श्रीविष्णु की कूटनीति पर भी भरोसा रखें। जिस प्रकार देव आशंकित होते हुए भी सम्पूर्ण समर्पण के साथ उद्योग कर रहे हैं, वैसे ही आपको भी करना होगा।''

शरभंग के कथन पर लक्ष्मण बरबस हँस पड़े, बोले-

''उद्योग से हम कब विरत हो रहे हैं महर्षि, आप ही निरंतर निषेध कर रहे हैं।''

उत्तर में शरभंग भी हँस पड़े-

''मैं उद्योग का नहीं, अविचारित उद्योग का निषेध कर रहा हूँ।''

''तो आप ही निर्दिष्ट करें कि सुविचारित उद्योग क्या होगा, किष्किंधा के वानर किस भाँति हमारे पक्षधर बनेंगे?''

''समय आने पर आपको बालि का वध करना होगा।''

शरभंग ने यह उद्घाटन कुछ यों एकाएक किया कि राम और लक्ष्मण दोनों चौंक पड़े। अनायास ही राम के मुख से निकला-

''परन्तु बालि से तो हमारी कोई शत्रुता नहीं है। अकारण...'' वे इतने व्यग्र हो गये थे कि अपना वाक्य भी पूरा नहीं कर पाये।

राम और लक्ष्मण के विपरीत शरभंग अब भी पूर्ण शांत थे। वे वैसे ही शांत स्वर में बोले-

''समय की प्रतीक्षा करें राघव, नियति कारण भी उत्पन्न करेगी। वरन् नियति अपना कार्य करना आरम्भ भी कर चुकी है।''

''तात्पर्य महर्षि?'' लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

''प्रतीक्षा कीजिये, समय ही आपके इस प्रश्न का उत्तर देगा। आपको इतना अवश्य करना होगा कि श्रीविष्णु को सदैव स्मरण रखना होगा। किसी भी उहापोह की अवस्था में निर्णय लेने से पूर्व यह अवश्य ध्यान करना होगा कि यदि आपके स्थान पर श्रीविष्णु होते तो वे क्या करते!''

''जैसा आदेश महर्षि'', राम धीरे से बोले- ''परंतु...''

वे अपनी बात पूरी कर पाते उससे पहले ही शरभंग बोल पड़े-

''परंतु के लिये कोई स्थान नहीं है कौशलेन्द्र। मैं आपको सूत्र दे चुका हूँ कि जब भी दुविधा हो, श्रीविष्णु का स्मरण करें।''

राम पूर्णतः संतुष्ट तो नहीं थे, परंतु उन्होंने आगे कोई विरोध भी नहीं किया। वे देख रहे थे कि महर्षि इस विषय में अधिक कुछ बताना नहीं चाह रहे, अतः धीरे से- ''जी!'' कहकर मौन हो गये।

राम तो मौन हो गये परंतु लक्ष्मण नहीं हो पाये। उन्होंने प्रश्न किया-

''महर्षि, देवों ने दण्डकारण्य में अपने गुरुकुल क्यों नहीं स्थापित किये?''

''यह अच्छा प्रश्न है सौमित्र'', लक्ष्मण की आशा के विपरीत शरभंग मुस्कुराते हुए बोले- ''गुरुकुल स्थापित करते समय जो कारण था वह यही था कि वानर इस क्षेत्र की सर्वाधिक बलशाली जाति है। इस क्षेत्र की ही नहीं, सम्पूर्ण जगत की सर्वाधिक शक्तिशाली जातियों में एक है। देवर्षि को विश्वास था कि देवों द्वारा सुप्रशिक्षित वानर योद्धा लंका की सेना का समुचित प्रतिरोध करने में समर्थ होंगे।''

''यह तो आरम्भ की बात हुई ऋषिवर, कालांतर में जब दण्डकारण्य में गुरुकुलों की स्थापना की गयी, तो देवगण उनसे दूर क्यों रहे?'' कहकर लक्ष्मण बस एक पल रुके और तत्पश्चात् उन्होंने दूसरा प्रश्न भी प्रस्तुत कर दिया-

"और यह भी कि जब किष्किंधा के वानरों को देव प्रशिक्षित कर ही रहे थे तो दण्डकारण्य में भी गुरुकुलों की स्थापना की आवश्यकता ही क्यों अनुभव की गयी? वहाँ के निवासी... आपने ही बताया कि सभ्यता से पूर्णतः अपरिचित है, वे भला रक्षों से युद्ध में हमारा क्या सहयोग कर पायेंगे?"

"पहले आपके पहले प्रश्न का उत्तर देता हूँ", शरभंग पहले के समान ही संयत स्वर में बोले- "सुमाली के काल से ही रक्षों की देवों से शत्रुता रही है। किष्किंधा में तो सुमाली चाहकर भी देवों की गतिविधियों को नियंत्रित नहीं कर सकता था। परंतु दण्डकारण्य की स्थिति इसके विपरीत थी। देवों को स्वर्ग में भी अपने दायित्वों का निर्वहन करना होता है अतः वे किसी आश्रम में स्थाई निवास नहीं कर सकते। वे यदि दण्डक में अपने आश्रम स्थापित करते तो उन्हें वहाँ बार-बार आना जाना पड़ता। अपने आवागमन को वे गुप्त भी नहीं रख सकते, उनके विमान दूर से ही दृष्टिगोचर हो जाते हैं। आप सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि उस स्थिति में आश्रमों में गोपनीय ढंग से सैन्य-प्रशिक्षण संचालित कर पाना संभव नहीं होता।"

"वे किष्किंधा में भी तो नियमित आते-जाते होंगे। तब भी तो उनके विमान दिखाई पड़ते होंगे... इससे क्या रक्षों को संदेह नहीं होता?"

"सुमाली को होता था, परंतु किष्किंधा के विषयों में हस्तक्षेप करने का तब उसे साहस नहीं था। वहाँ तो अपनी सैन्य चौकियाँ स्थापित करने का भी उसका साहस नहीं हुआ था। कालांतर में बालि और लंकेश की मित्रता हो जाने के उपरांत तो यह भी सुनिश्चित हो गया कि देवों द्वारा प्रशिक्षित किष्किंधा के योद्धाओं से लंका को कोई भय नहीं है। बालि अपनी बात का धनी है और लंकेश को उस पर अगाध विश्वास भी है। किष्किंधा की शक्ति से उसे कोई असुविधा नहीं है। किष्किंधा के विपरीत दण्डकारण्य में रक्षों का साम्राज्य है, वहाँ देवों की संदिग्ध गतिविधियों को लंकेश कदापि क्षमा नहीं कर सकता।" इतना कहते-कहते शरभंग के अधरों पर एक रहस्यमयी स्मित नृत्य कर गयी, उसी

स्मित के साथ उन्होंने आगे कहा- ''एक और कारण है जिससे किष्किंधा में देवों के आवागमन को सहज माना जा सकता है।''

''वह क्या?'' हठात् राम और लक्ष्मण दोनों के मुख से निकला।

''यह अब कोई गोपनीय तथ्य नहीं है कि बालि स्वयं इन्द्र का पुत्र है और सुग्रीव सूर्य का। संयोग यह हुआ कि जब अबोध बालि और सुग्रीव गौतम के आश्रम से किष्किंधा आये, ठीक उसी समय देवों ने किष्किंधा में अपने आश्रम स्थापित करना आरम्भ किया। इस कारण भी देवों का किष्किंधा में गुरुकुल स्थापित करना और वानरों को प्रशिक्षण देना स्वीकार्य है।''

''सुना तो हमने भी था ऐसा, परंतु इस पर विश्वास नहीं हुआ था।'' दोनों ही भाई बोले।

''यह सत्य है राघव!''

''परंतु सार्वजनिक रूप से तो संभवतः ऐसी कोई घोषणा न तो इन्द्र और सूर्य ने ही की है, और न ही बालि और सुग्रीव ने।''

''परंतु सत्य यही है और दशानन जैसे योगी के लिये इस सत्य को जान लेना नितांत सहज है।''

दोनों भाइयों ने विचारणीय मुद्रा में मात्र सहमति में सिर हिला दिये। उनमें से कोई कुछ बोल पाता उससे पूर्व ही शरभंग पुनः बोल पड़े-

''बालि इन्द्र का पुत्र है और यह योजना मुख्यतः इन्द्र की ही है इससे यह कदापि मत सोच लेना कि लंका के विरुद्ध युद्ध में बालि आपका सहयोगी हो सकता है। उसका वध तो आपको करना ही होगा।''

अपने विचारों में डूबे राम के मुख से उत्तर में मात्र एक शब्द ही निकल सका- ''जी!''

आगे कुछ भी कहने से पूर्व शरभंग ने एक दृष्टि राम और लक्ष्मण की पत्तलों पर डाली और फिर बाहर पुकार लगायी-

''विचित्र ऽऽ! अरे विचित्र!!''

दो ही पल में विचित्र कुटिया के द्वार पर उपस्थित हो गया।

''देखो, दोनों अतिथियों की पत्तलों में सामग्री समाप्त हो रही है।''

विचित्र ने भी एक दृष्टि दोनों की पत्तलों पर डाली और बाहर निकल गया।

राम देख रहे थे कि महर्षि शरभंग ने फल का पहला टुकड़ कुतरने के उपरांत कुछ भी ग्रहण नहीं किया है। पिछली बार जब उन्होंने इस विषय में कहा था, तो महर्षि ने बात टाल दी थी। राम एक बार सकुचाये कि महर्षि से पुनः आग्रह करें अथवा नहीं, परंतु फिर उन्होंने आग्रह कर ही दिया-

''आप भी तो ग्रहण कीजिए ऋषिवर!''

''मैं पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि आवश्यकता नहीं है।'' शरभंग पूर्ववत मुस्कुराते हुए धीरे से बोले।

राम ने फिर कुछ कहना उचित नहीं समझा, वे चुप रह गये। परंतु लक्ष्मण बोल पड़े-

''फिर भी ऋषिवर, जब भोजन के लिये बैठे ही हैं तो भोजन की उपेक्षा करना क्या उचित है?''

उत्तर में शरभंग बस धीरे से हँस दिये।

लक्ष्मण को असामान्य सा तो लगा, परंतु उन्होंने भी फिर कुछ नहीं कहा।

जब विचित्र दोनों की पत्तलों में आवश्यकतानुसार भोज्य-सामग्री परोस रहा था तब वे यही सोच रहे थे कि ऋषियों की बातें विचित्र ही होती है। फिर एकाएक वे यह स्मरण कर मुस्कुरा उठे कि भोजन परोस रहे शिष्य का नाम भी विचित्र ही है। उनकी मुस्कुराहट को राम ने भी लक्ष्य किया परंतु मात्र आँखें तरेर कर ही रह गये।

10. शरभंग का उद्धबोधन-3

विचित्र जब दोनों की पत्तलों में और भोजन सामग्री रख गया तो शरभंग ने फिर से बात आगे बढ़ायी-

''इन सबके अतिरिक्त एक अन्य तथ्य भी है जिसके कारण देवों के लिये दण्डकारण्य में गुरुकुल स्थापित करना संभव नहीं था। इन सारे ही समूहों का बाह्य विश्व से कोई सम्पर्क नहीं रहा है। ये रखना भी नहीं चाहते थे। बाहर के लोगों को ये संदेह की दृष्टि से तब भी देखते थे और आज भी देखते हैं। इनका विश्वास अर्जित कर पाना देवों के लिये अत्यंत कठिन कार्य था। उनके विमान, वेशभूषा आदि देखकर ही ये लोग भयभीत हो जाते थे।''

शरभंग की बात सुनकर लक्ष्मण को पुनः अपने साथ आये वनवासियों का स्मरण हो आया। 'वे भी तो ऐसे ही थे, इंद्र का विमान देखकर वे भी तो भयभीत हो गये थे।' फिर भी अपने स्वभाव से विवश वे पूछ बैठे-

''तो फिर आपलोग इन पर अपना समय और श्रम क्यों नष्ट कर रहे हैं।''

''उसी कारण से, जिस कारण से आप चित्रकूट से लेकर यहाँ तक अवसर प्राप्त होते ही, यही कार्य करते आये हैं।'' शरभंग ने शांति से उत्तर दिया।

शरभंग के इस उत्तर से लक्ष्मण थोड़ा सा विचलित हुए, परंतु तत्काल सँभलकर बोले-

''हम उन्हें भावी युद्ध में अपनी सहायता के लिये नहीं, अपितु स्वयं उनके हृदयों से रक्षों का भय निकालने के लिये उन्हें प्रशिक्षित करते रहे हैं।''

''सौमित्र'', शरभंग पुनः मुस्कुराये- ''लंकेश से आप दोनों एकाकी युद्ध नहीं कर सकते। आपको भी लंका की सेना के समकक्ष सैन्य की आवश्यकता होगी।''

''आपने ही बताया कि उसके लिये देव किष्किंधा में गुरुकुल संचालित कर रहे हैं और किष्किंधावासी स्वाभाविक योद्धा भी हैं।'' लक्ष्मण ने तर्क किया।

''सौमित्र, यह तो स्पष्ट है कि आपके अग्रज अकारण आपको लंका पर आक्रमण की अनुमति प्रदान नहीं करेंगे। और निश्चिय जानिये कि दशानन कदापि आपको कोई कारण नहीं देगा। यह कारण आपको प्राप्त होगा लंकेश की विक्षिप्त भगिनी चन्द्रनखा से। आपको उसे कारण उत्पन्न करने का अवसर देना होगा। वह देगी भी, परंतु तब आपका प्रथम युद्ध उससे... दूसरे शब्दों में कहें तो खर-दूषण से होगा। यह युद्ध आपके किष्किंधा पहुँचने से पूर्व ही होगा। स्पष्ट है कि किष्किंधा के योद्धा इसमें आपकी सहायता हेतु उपलब्ध नहीं होंगे। तब ये वनवासी ही आपके सहायक होंगे।''

''मात्र चौदह सहस्त्र सैन्य ही तो है खर-दूषण के पास!'' लक्ष्मण कुछ उपहास भरे स्वर में बोले- ''उसे तो मैं ही पलक झपकते नष्ट कर सकता हूँ।''

''ताड़का का सैन्य तो इतना भी नहीं था, परंतु आपने वहाँ भी तो विद्रोहियों का सहयोग लिया था।''

''वे तो सहज ही हमारे पक्ष में आ गये थे, अन्यथा हमें उनकी आवश्यकता नहीं थी।''

''थी आवश्यकता'', शरभंग मुस्कुराकर बोले- ''इसलिये नहीं कि मुझे आपके पौरुष पर कोई संदेह है, अपितु इसलिये कि किसी विशाल क्रांति से जब तक उस क्षेत्र का सामान्य जन नहीं जुड़ता, वह क्रांति असफल ही सिद्ध होती है। स्थितियों को समझने का प्रयास कीजिये, विन्ध्य के दक्षिण में उत्कल और दक्षिण कोशल के अतिरिक्त आर्य संस्कृति कहीं नहीं है... दक्षिणावर्त के लिये ये दोनों राज्य सुदूर उत्तर-पूर्व में है। इनका यहाँ दण्डकारण्य तक कोई प्रभाव नहीं है।

''हमारा उद्देश्य लंकेश को पराभूत करना मात्र नहीं है, हमारा उद्देश्य रक्ष संस्कृति को पराभूत कर, इस क्षेत्र में देव-आर्य संस्कृति के उत्थान का मार्ग

निष्कंटक करना है। इस स्थिति में, आप यदि इन सबको विश्वास में लिये बिना लंकेश का विनाश कर भी देते हैं, तो उससे न तो आर्य संस्कृति का हित होगा और न ही रक्ष-संस्कृति का विनाश होगा। आप वापस अयोध्या लौट जायेंगे तो इस क्षेत्र में रक्ष संस्कृति पुनः पनपने लगेगी। स्मरण रखिये, संस्कृतियों का प्रसार युद्ध में विजय से नहीं होता, प्रेम और सहयोग से लोगों के हृदयों पर विजय प्राप्त करने से होता है। नियति ने आपका चयन संभवतः इसीलिये किया है कि सामान्य-जन के हृदयों पर विजय प्राप्त करने हेतु, आपसे अधिक समर्थ नायक उसके पास अन्य कोई नहीं था। आपकी विष्णु-पद पर प्रतिष्ठा इस कार्य को आपके लिये सहज बना देगी।''

''परन्तु ऋषिवर, आपने ही कहा था कि ये आर्य नहीं हैं। इनके अपने देवता हैं और अपनी धार्मिक आस्थायें हैं। तब भइया का विष्णुपद उनके लिये महत्वपूर्ण कैसे हो सकता है?''

उत्तर में शरभंग धीरे से हँसे, फिर गंभीर होते हुए बोले-

''सुमाली ने इन्हें रक्ष संस्कृति में दीक्षित करने का प्रयास किया था, परंतु महर्षि अगस्त्य के निर्देशों के अनुरूप ऋषियों ने ऐसा नहीं किया। छोटे-छोटे सहयोग देकर इनका विश्वास अर्जित किया। इस सम्पूर्ण कालावधि में हमने कभी इनके अपने देवताओं और धार्मिक आस्थाओं के प्रति असहमति प्रदर्शित नहीं की, उन्हें तुच्छे दर्शाने का प्रयास नहीं किया। हमने इन पर अपनी आस्थायें थोपने का प्रयास नहीं किया वरन् इन्हें चिकित्सा ज्ञान, अक्षर ज्ञान और शस्त्र ज्ञान देने के साथ-साथ रोचक कथाओं के माध्यम से आर्य और देव नायकों से परिचित करवाया... यह बताये बिना कि वे आर्य अथवा देव हैं। यह सब इतने धीरे-धीरे और इतनी सहजता से हुआ कि ये समझ ही नहीं पाये कि कब आर्य संस्कार उनमें पैठ बनाने लगे। वे आज भी आर्य नहीं हैं परंतु फिर भी वे अपने देवताओं के साथ-साथ आर्य देवों और आर्य संस्कारों का सम्मान करने लगे हैं। वे अवतारों का सम्मान करने लगे हैं।''

शरभंग का कथन राम को पुनः असहज कर गया। उन्होंने तो सोचा था कि यहाँ आकर उन्हें इस प्रभुता के बोझ से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी, परंतु शरभंग ने पुनः उसी विषय को छेड़ दिया था। उन्हें अनायास महर्षि वाल्मीकि आश्रम की ऋषिका सुचेता का कथन स्मरण हो आया- 'यही नियति है, यही उस परमप्रभु का खेल है। उससे लड़कर आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर पायेंगे। उसकी इच्छा के समक्ष पूर्ण समर्पण ही एकमात्र मार्ग है, उसी का अनुसरण कीजिए। आप भी लोगों की आस्था को स्वीकार कीजिए। स्मरण रखिए कि लोगों की यही आस्था आपको अपने उद्देश्य की प्राप्ति करायेगी।'

राम के विपरीत शरभंग के कथन से लक्ष्मण उत्साह से भर गये। अभी तक उन्हें महर्षि की जिन बातों से उकताहट हो रही थी, अब अचानक उन्हीं में रस आने लगा। वे बोल पड़े-

''आपका कथन पूर्णतः सत्य है ऋषिवर, सामान्य जन के हृदयों पर भइया जिस निपुणता और जिस सहजता से विजय प्राप्त कर सकते हैं, त्रिलोक में अन्य कोई नहीं कर सकता। किन्तु यह मेरी समझ में नहीं आया कि इस प्रशिक्षण कार्य में हमारी भूमिका कहाँ है?''

''धैर्य रखें सौमित्र, वही बता रहा हूँ।'' शरभंग बोले- ''आप अपने हृदय से यह भ्रम निकाल दीजिए सहज ही लंकेश को परास्त कर सकते हैं। वह त्रिलोक विजेता ऐसे ही नहीं बन गया है। माना कि वह पितामह के वचन से संरक्षित था, परंतु देवों के विरुद्ध युद्ध में पितामह को तो उसकी रक्षार्थ कष्ट करना ही नहीं पड़ा। और उसका पुत्र इन्द्रजित मेघनाद,... वह तो उससे भी अधिक पराक्रमी है। जब वह पितामह से प्राप्त अपने अभेद्य रथ पर आरूढ़ होगा तब अजेय होगा। आपको बता दूँ कि अभी तक उसके अभेद्य रथ को भेद पाने में समर्थ किसी आयुध का आविष्कार नहीं हो सका है। आपका आत्मविश्वास वरेण्य है, परंतु आत्मविश्वास की अति भी आत्मघाती ही होती है। प्रतिपक्षी की वास्तविक शक्ति का आकलन किये बिना युद्ध में प्रवृत्त हो जाना मूर्खता ही होती है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि प्रतीत कुछ भी क्यों न होता हो, किंतु इस सम्पूर्ण

रणनीति के वास्तविक शिल्पकार श्रीविष्णु हैं। यदि उन्होंने इन वनवासियों का चयन आपके सहयोगियों के रूप में किया है, तो वह अकारण नहीं हो सकता।

''आप भलीभाँति समझ लें कि युद्ध मात्र योद्धा नहीं लड़ते, सैनिक भी लड़ते हैं। यही नहीं, युद्ध में सैनिकों के अतिरिक्त भी असंख्य व्यक्तियों की भूमिका होती है; जैसे चिकित्सकों के सहयोग और आहतों की सेवा-सुश्रूषा हेतु, औषधियों के निर्माण हेतु, आयुधों के निर्माण और उनकी देखभाल हेतु, पशुओं की चर्या हेतु, भोजन निर्माण संबंधी कार्यों हेतु, सबसे अधिक योद्धाओं को युद्ध क्षेत्र में निरंतर उपयुक्त आयुधों की आपूर्ति बनाये रखने हेतु। ऐसे ही अन्य भी अनेक कार्य होते हैं जिनके लिये असंख्य ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो समय आने पर युद्ध भी कर सकें और साथ ही विपक्षी सैनिकों के वारों से अपनी सुरक्षा भी कर सकें। ये समस्त कार्य यदि योद्धा ही करने लगेंगे तो युद्ध कौन करेगा? ये वनवासी किष्किंधा के योद्धाओं के समान बलशाली और निपुण भले ही न हों परंतु दुर्बल और कापुरुष भी नहीं हैं।

''एक अन्य कारण भी है, युद्ध में सैनिकों का मनोबल भी अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। सत्य है कि आपका और किष्किंधा के प्रमुख योद्धाओं का मनोबल किसी भी परिस्थिति में टूटने वाला नहीं है, परंतु किष्किंधा के साधारण सैनिकों का मनोबल तो इतने उच्च कोटि का नहीं होगा। आम धारणा है कि लंकेश अजेय है, साथ ही उसकी सेना की भी कई कोटि है। ऐसी स्थिति में सैनिकों का मनोबल बनाये रखने हेतु अपनी सेना का भी संख्याबल लंकेश की सेना के समकक्ष होना आपश्यक है। दण्डकारण्य के गुरुकुलों में प्रशिक्षित ये युवक उस आवश्यकता की पूर्ति भी करेंगे।''

शरभंग का यह सुदीर्घ वक्तव्य भी लक्ष्मण को संतुष्ट नहीं कर सका। वे पुनः कुछ कहने जा रहे थे कि राम ने उन्हें रोक दिया-

''पर्याप्त हुआ लक्ष्मण, अब बस करो।'' कहकर राम शरभंग से सम्बोधित हुए- ''महर्षि आप ही हमें निर्देशित करें कि हमें क्या करणीय है?''

शरभंग बताने लगे-

"यद्यपि दण्डकारण्य में ऋषिगण सम्पूर्ण समर्पण और क्षमता से अपने दायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं, परंतु वे ऋषि ही हैं, कोई योद्धा नहीं। उनकी क्षमतायें सीमित हैं अतः जो कुछ प्रशिक्षण ऋषिगण इन वनवासियों को प्रदान कर चुके हैं, उसका सम्यक निरीक्षण कर अपनी आवश्यकतानुसार अन्य जो भी प्रशिक्षण आप देना चाहें वह आपको प्रदान करना है। अपने वनवासकाल के आगामी दस वर्ष आपको इस कार्य हेतु ही व्यय करने हैं।"

लक्ष्मण ने एक बार फिर विरोध में कुछ कहना चाहा किंतु एक बार पुनः राम ने उनकी बात काट दी-

"कोई किंतु-परन्तु नहीं लक्ष्मण! यह हमारी संस्कृति के उत्थान का प्रश्न है। फिर इसी बहाने हमें इन निरीह वनवासियों के उद्धार के साथ ही अनायास अनेक ऋषियों के दर्शन और आशीष प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।"

भइया ने निर्णय ले लिया था तो लक्ष्मण ने भी अपनी तर्क-बुद्धि को एक ओर रख दिया। उन्होंने सीधा प्रश्न किया-

"ऐसे कितने आश्रम होंगे ऋषिवर?"

"यह लम्बा विषय है सौमित्र", उत्तर में शरभंग बोले- "महर्षि सुतीक्ष्ण ही आपको विस्तार से सब समझायेंगे। वे ही सारी व्यवस्था भी कर देंगे।"

लक्ष्मण फिर कुछ कहने को उद्यत हुए, परंतु राम ने उनकी हथेली दबाकर रोक दिया और स्वयं बोले-

"जैसा आपका आदेश ऋषिवर।"

उत्तर में शरभंग धीरे से मुस्कुराये फिर बोले-

"रामभद्र! मेरा दायित्व पूर्ण हुआ। इसके साथ ही मेरा समय भी पूर्ण हुआ। आगे का दायित्व महर्षि सुतीक्ष्ण का है। वे सर्वविधि आपको संतुष्ट करेंगे। उनके साथ मिलकर अब आपको ही भविष्य की योजना बनानी है।"

"जी!" राम सहज भाव से बोले, फिर अचानक कुछ सोचते हुए जोड़ा- "महर्षि एक जिज्ञासा और है... यदि अनुमति दें तो ...!"

"अवश्य रामभद्र!"

"महर्षि अगस्थ्य का आश्रम निकट ही होना चाहिए। उनका आशीर्वाद प्राप्त करने की मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा है। यह..."

राम अपनी बात पूरी कर पाते उससे पूर्व ही शरभंग बोल पड़े-

"महर्षि अगस्त्य का आशीर्वाद तो सदैव ही आपके साथ है राघव, परंतु उनसे आपकी भेंट दस वर्षों के उपरांत ही हो पायेगी।"

"ऐसा क्यों महर्षि?" राम ने उलझन भरे स्वर में पूछा।

उत्तर में शरभंग अचानक लक्ष्मण की ओर देखकर मुस्कुरा पड़े। उनके इस मुस्कुराहट भरे दृष्टि निक्षेप से लक्ष्मण अचरज में पड़ गये, परंतु जब तक वे कोई प्रतिक्रिया दे पाते उससे पूर्व ही शरभंग ने कहना आरम्भ कर दिया-

"सौमित्र, इस प्रश्न के उत्तर में ही आपके उस प्रश्न का भी उत्तर छिपा हुआ है जो आपने आते ही प्रस्तुत किया था।"

एक पल को तो लक्ष्मण की समझ में नहीं आया, परंतु अगले पल ही उनके मुख से निकला-

"वह... देवेन्द्र के संबंध में...?"

"हाँ... वस्तुतः जब तक आप दण्डकारण्य के समस्त गुरुकुलों का भ्रमण कर, अपने अनुसार वहाँ के प्रशिक्षुओं के प्रशिक्षण का कार्य सम्पूर्ण नहीं कर लेते, तब तक किसी भी ऐसे व्यक्ति से, जो रक्षों की दृष्टि में संदेहास्पद हो, आपकी भेंट सतर्कता की दृष्टि से उचित नहीं है।... और रक्षों के लिये देवगण और महर्षि अगस्त्य ही सर्वाधिक संदेहास्पद है।"

"संदेहास्पद से आपका क्या तात्पर्य है?" लक्ष्मण प्रश्न करने से स्वयं को रोक नहीं सके।

''इसमें न समझने जैसा तो कुछ नहीं है सौमित्र'', शरभंग ने एक बड़ी सी मुस्कान के साथ उत्तर दिया- ''इन्द्र अपनी पराजय के अपमान को पचा लेंगे इस पर रक्षों को कभी विश्वास नहीं हुआ। लंकेश इन्द्र की ओर से निश्चिंत हैं, क्योंकि उसके पास पितामह के वचनों का अभेद्य कवच है, परंतु शेष रक्ष तो निश्चिंत नहीं है। वे किष्किंधा में देवों की गतिविधियों पर अंकुश भले ही नहीं लगा सकते परंतु उन पर दृष्टि निरंतर रखते हैं। इस तथ्य को देव भी जानते हैं, तभी वे अपरिहार्य परिस्थितियों में ही दण्डक में पग रखते हैं और तब भी पूर्णतः सतर्क रहते हैं। इस स्थिति में यदि देवेन्द्र आप से एक औपचारिक भेंट भी कर लेते तो बहुत संभव था कि आप भी रक्षों की दृष्टि में संदिग्ध हो जाते। ऐसा हम किसी भी मूल्य पर होने नहीं दे सकते।''

शरभंग का कथन समाप्त होते ही लक्ष्मण ने प्रश्न किया-

''क्या आश्रमवासियों में से भी कोई लंका का गुप्तचर हो सकता है?''

''नहीं!''

''तब रक्षों को यह कैसे विदित हो सकता है कि देवेन्द्र ने हमसे भेंट की अथवा नहीं?''

''एक ही अवस्था में, यदि इसका भान होते ही कि देवेन्द्र इस आश्रम में आ सकते हैं, उन्होंने यहाँ के प्रवेश मार्गों पर दृष्टि रखने का प्रबन्ध कर दिया हो।''

''आप और देवेन्द्र दोनों ही आध्यात्मिक रूप से इतने समर्थ हैं कि यदि रक्षों ने ऐसा किया होता तो उसका पता भी लगा सकते थे और उसका प्रतिकार भी कर सकते थे।''

''मैंने कुछ समय पूर्व ही कहा था कि 'जब तक दशानन को किसी कारण से हम पर संदेह नहीं होता, अथवा उसके परामर्शदाताओं में से कोई उसे सचेत नहीं करता, तब तक उसके पास स्वयं इतने कार्य हैं करने के लिये, कि वह उनकी उपेक्षा कर, समाधिस्थ हो हमारे रहस्यों को जानने का प्रयास नहीं करेगा।'... ठीक यही स्थिति हमारी भी है। हमारे पास भी इतने कार्य हैं करने के लिये कि

उनकी उपेक्षा कर समाधिस्थ हो आश्रम के चतुर्दिक रक्षों की गतिविधियों को जानने का प्रयास करने में समय का अपव्यय करना निरापद नहीं है।

''कैसे कार्य ऋषिवर?'' लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

''उन पर चर्चा करने का समय नहीं है अभी। फिर उनमें से बहुत सारे कार्यों से आप धीरे-धीरे स्वतः ही अवगत हो जायेंगे।''

उत्तर में लक्ष्मण ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी, फिर प्रश्न किया-

''जब स्थितियाँ इतनी संवेदनशील हैं तो देवेन्द्र को इस आश्रम में आने की आवश्यकता ही क्या थी, वे समाधि द्वारा भी तो आपसे सम्पर्क कर सकते थे।''

''कुछ सीमा तक आप सत्य कह रहे हैं'', शरभंग ने धीरे से हँसते हुए उत्तर दिया- ''मेरे दृष्टिकोण से भी उनके आने की कोई आवश्यकता नहीं थी, परंतु कई बार हम भावुकतावश ऐसे कार्य कर बैठते हैं।''

''तो हमारे प्रस्थान के उपरांत आ सकते थे, अथवा हमारे आगमन के कुछ पूर्व ही आ सकते थे।''

''आपके प्रस्थान के उपरांत भेंट संभव नहीं होती और...''

इससे पूर्व के शरभंग अपना कथन पूर्ण कर पाते लक्ष्मण पूछ बैठे-

''तात्पर्य ऋषिवर, हमारे प्रस्थान के उपरांत भेंट संभव क्यों नहीं होती?''

उत्तर में शरभंग कुछ पल मौन रहे, मानो निर्णय कर रहे हों कि कहें अथवा टाल दें। फिर बोले-

''सौमित्र, मैं अपना जीवन जी चुका हूँ। अब इस देह को मात्र आपसे भेंट हेतु ही धारण किये हुए हूँ। आपसे वार्ता पूर्ण होते ही मैं इसका त्याग कर दूँगा।''

''क्याऽऽऽ ?'' आश्चर्य से दोनों भाइयों के मुख से मात्र इतना ही निकल सका।

''हाँ'', इससे पूर्व कि लक्ष्मण अचंभित अवस्था से बाहर आ पाते, शरभंग आगे बोले-

''अभी मैंने आपको बताया था कि आपकी इच्छा के बिना आपके हृदय में झाँक पाना किसी के लिये भी संभव नहीं है, इस कारण समाधि में जाकर आपसे सम्पर्क कर पाना भी हमारे लिये संभव नहीं था। आप स्वयं भी समाधि के माध्यम से हमसे सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ नहीं हैं। श्रीविष्णु चाहकर भी वह क्षमता आपमें रोपित नहीं कर पाये, उसके लिये योग में जितना पारंगत होने की आवश्यकता थी, आप नहीं थे।''

''जी!'' राम ने धीरे से सहमति दी।

''देवेन्द्र मेरे अंतिम समय में प्रत्यक्ष भेंट कर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहते थे, परंतु मेरा अंतिम समय तो आपके आगमन से निर्धारित होना था और आपके आगमन का निश्चित समय ज्ञात कर पाना संभव नहीं था, वह तो आपकी इच्छा और विवेक पर निर्भर था। जब आप यहाँ के लिये चल पड़े तब हमें आपके आगमन का ज्ञान हुआ। ज्ञात होते ही देवेन्द्र अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने आ गये और इससे पूर्व कि आप आश्रम में प्रविष्ट हो पाते, चले भी गये। यदि रक्ष किसी भाँति इस आश्रम पर दृष्टि रखने में समर्थ हो गये होंगे तो उन्होंने यह भी अवश्य देखा होगा कि आपके आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व ही देवेन्द्र का यान उड़ गया था।''

ऋषि देह त्याग को तत्पर हैं यह जानकर राम और लक्ष्मण दोनों ही व्यथित हो उठे। फिर भी लक्ष्मण अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पाये और कुछ संकोच के साथ प्रश्न किया-

''ऋषिवर, यदि धृष्टता न मानें तो एक प्रश्न करना चाहता हूँ।''

''अवश्य!'' शरभंग ने सहज भाव से अनुमति दी।

''देवेन्द्र किस कारण से कृतज्ञता....''

शरभंग एक बार पुनः धीरे से हँसकर फिर बोले-

''अत्यंत तुच्छ सा कारण है, मैंने आयु समाप्त हो जाने के उपरांत भी आपका मार्ग-निर्देशन करने हेतु, नियति के चक्र के विपरीत जाकर भी देह धारण किये

रहना स्वीकार किया, इतने भर के लिये देवेन्द्र कृतज्ञता अनुभव कर रहे हैं। अपनी व्याकुलता में वे यह भी बिसार बैठे कि यदि नियति की अनुशंसा न होती तो मैं चाहकर भी यह नहीं कर सकता था।''

''एक शंका और है महर्षि, देवर्षि तो हमारे दण्डक आगमन से पूर्व भी हमसे सम्पर्क कर सकते थे।''

''अनावश्यक था। आपके भाई जनमानस की दृष्टि में भले ही सप्तम विष्णु हैं, तथापि देवर्षि के लिये वे दशरथ पुत्र राम ही हैं, अयोध्या के युवराज। बिना किसी विशिष्ट कारण के वे आपसे भेंट करने जाते, यह मर्यादा का उल्लंघन प्रतीत होता। इसके अतिरिक्त, प्रश्न मात्र आपकी जिज्ञासाओं का शमन करने और आपको अभियान की रूपरेखा से अवगत कराने का ही नहीं था। दण्डक आपके लिये सर्वथा अपरिचित क्षेत्र है। यहाँ आपको निरंतर एक मार्ग-प्रदर्शक की आवश्यकता पड़ेगी। यह कार्य देवर्षि नहीं कर सकते थे। इसे तो किसी साधारण तपस्वी द्वारा ही सम्पादित किया जाना उचित था। मेरे आश्रम की अवस्थिति ऐसी है कि इससे हुए बिना आप दण्डक में आगे नहीं बढ़ सकते। ऋषियों के प्रति आप दोनों के, विशेषकर आपके अग्रज के मन में कितनी श्रद्धा है यह भी किसी से छिपा नहीं है अतः यह स्वाभाविक था कि मार्ग में आश्रम पड़ने पर आप मुझसे भेंट अवश्य करते। बस इसीलिये, आपके प्रथम दिशा-निर्देशन एवं आपको एक कुशल पथ-प्रदर्शक प्रदान करने हेतु, मुझे ही सर्वाधिक उपयुक्त पात्र माना गया।''

''जी!'' राम धीरे से बोले।

कुछ पल के मौन के उपरांत शरभंग पुनः बोले-

''राघव, आप महर्षि अगस्त्य का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते हैं, परंतु रक्षों की दृष्टि में जो स्थिति देवों की है, ठीक वही महर्षि अगस्त्य की भी है। उनके और रक्षों के मध्य भी अविश्वास का संबंध है। जबसे उन्होंने ताड़का के पति सुन्द का वध किया है, रक्ष उनके प्रति भी सशंकित ही रहते हैं। महर्षि का आश्रम

भी ठीक जनस्थान की सीमा पर ही स्थित है। यद्यपि खर-दूषण का साहस नहीं होता उनके आश्रम में प्रवेश करने का, तथापि उस पर दृष्टि वे निरन्तर रखते हैं। यही कारण है कि उनसे भेंट का अवसर आपको सबसे अन्त में ही प्राप्त होगा। परंतु वह भेंट आपके लिये अत्यंत महत्वपूर्ण होगी। उस भेंट में महर्षि नवीनतम परिस्थितियों के अनुकूल आपका दिशा-निर्देशन ही नहीं करेंगे, वे आपको अपने द्वारा विकसित नवीनतम दिव्यास्त्रों से भी अलंकृत करेंगे। उस भेंट के उपरांत सम्पूर्ण अभियान पूर्णतः आपके नियंत्रण में होगा, ऋषियों अथवा देवों का उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं रहेगा।''

शरभंग के चुप होते ही लक्ष्मण ने प्रश्न किया-

''महर्षि, देवेन्द्र ने हमसे भेंट इसलिये नहीं की ताकि रक्षों को हम पर सन्देह न हो। महर्षि अगस्त्य का आशीर्वाद प्राप्त करने से भी हमें इसीलिये रोक रहे हैं। दूसरी ओर हमें आप दस वर्षों तक दण्डक में आश्रम-आश्रम भटकने का निर्देश भी दे रहे हैं। यह कैसे संभव है कि इस सुदीर्घ अवधि तक हम दण्डक में विचरण करते रहें और रक्षों को हम पर सन्देह ही न हो?''

लक्ष्मण के प्रश्न पर शरभंग धीरे से मुस्कुराये फिर कहने लगे-

''जब तक आप देवों अथवा महर्षि अगस्त्य के सम्पर्क में नहीं आते, तब तक आप रक्षों की दृष्टि में संदिग्ध नहीं होंगे। मैं पूर्व में ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि दण्डक में रक्षों की सैन्य चौकियाँ अब औपचारिकता मात्र रह गयी हैं। जब भी आप एक आश्रम-से दूसरे आश्रम जायेंगे तो कोई न कोई कुशल मार्गदर्शक आपके साथ होगा जो आपको इन निष्क्रिय पड़े रक्ष सैनिकों की दृष्टि से बचाकर, बिना किसी व्यवधान के गन्तव्य तक पहुँचा देगा। यदि कभी दैवयोग से आप उनकी दृष्टि में आ भी गये तो आप तापस वेश में हैं और महर्षि अगस्त्य के अतिरिक्त अन्य सभी तपस्वियों को रक्ष नितांत निरीह प्राणी ही समझते हैं। फिर भी यदि कभी उन्होंने व्यवधान उपस्थित करने का प्रयास किया तो दस-पाँच साधारण सैनिकों की

किसी टुकड़ी को शांति से मृत्यु के दर्शन कराने में आपको कौन सा श्रम करना पड़ेगा!''

''अचानक किसी सम्पूर्ण टुकड़ी के लुप्त हो जाने से शेष टुकड़ियों को सन्देह नहीं होगा?''

''सन्देह तो तब होगा जब उन्हें ज्ञात होगा कि आपने उनके सैनिकों की हत्या की है। ऐसा तभी होगा जब आप व्यवधान डालने वाली टुकड़ी के किसी सैनिक को जीवित छोड़ देंगे। अन्यथा स्थिति में तो, उन्हें शीघ्र ज्ञात हो पाना ही सम्भव नहीं है। विभिन्न टुकड़ियों में परस्पर सम्पर्क कम ही हो पाता है। जब उन्हें ज्ञात होगा तो वे वन्य पशुओं पर सन्देह करेंगे अथवा वनवासियों पर करेंगे।''

''तो हमारे कारण वनवासियों को कष्ट सहन करना पड़ेगा।''

''अधिक संभावना तो यही है कि संदेह होने पर भी वे वनवासियों के विरुद्ध कुछ करने का साहस नहीं करेंगे। इन चौकियों पर कार्यरत सैनिक कोई विधिवत प्रशिक्षित सैनिक नहीं हैं। मैं पूर्व में ही बता चुका हूँ कि सुमाली का इन्हें निर्देश था कि वनवासियों को उपहार आदि देकर उनसे मित्रता स्थापित करें। तब लंका के पास विधिवत प्रशिक्षित सैनिकों की न्यूनता भी थी अतः विरुदप्रवर्धन ने साधारण प्रशिक्षण देकर ही लंका के सामान्य नागरिकों को इन चौकियों पर नियुक्ति प्रदान कर दी थी। अब तो दीर्घकालीन निष्क्रियता के कारण इनका शस्त्र संचालन का जो अभ्यास था, वह भी छूट चुका है। फिर भी यदि अन्य टुकड़ियाँ वनवासियों पर आक्रमण करेंगी भी तो वे स्वयं निबट लेंगे।''

''रक्ष आश्रमवासियों पर सन्देह नहीं करेंगे?''

''बताया तो कि ऋषियों को तो वे नितांत निरीह जन्तु के समान ही समझते हैं। फिर भी यदि संदेह करेंगे तो आस-पास के आश्रमवासियों पर थोड़ा-बहुत अत्याचार कर अंततः शांत हो जायेंगे।''

''यदि वे छानबीन करेंगे तो आपके गुप्त आश्रमों का भेद नहीं खुल जायेगा?''

''गहन वनों में घुसकर छानबीन करने का अकारण श्रम वे नहीं करेंगे। करेंगे भी तो उन आश्रमों तक उनकी पहुँच हो पाना साधारण कार्य नहीं है।''

''चन्द्रनखा तक नहीं जायेंगे वे?''

उत्तर में शरभंग जोर से हँस पड़े-

''इतनी छोटी सी बात के लिये भूखी सिंहनी के मुख में कूदने की मूर्खता भला कौन करेगा?''

''फिर भी?'' लक्ष्मण ने हठ किया।

''तो उसका भी कोई उपाय कर ही लिया जायेगा। आपको क्या प्रतीत होता है कि महर्षि अगस्त्य आपकी ओर से निर्लिप्त रहेंगे? आप पर उनकी निरंतर दृष्टि रहेगी। कोई भी अनपेक्षित घटना-दुर्घटना होते ही वे तत्काल आवश्यक उपाय कर लेंगे।''

बड़ी देर बाद राम ने इस तर्क-वितर्क में हस्तक्षेप किया, वे बोले-

''यदि हमारे कारण ऋषियों को कष्ट सहन करना पड़ा, तब तो यह हमारे लिये अत्यंत लज्जास्पद होगा महर्षि।''

''उन्हें यदि कष्ट सहन करना पड़ेगा तो वह आपके कारण नहीं होगा, वह उनकी देव-आर्य संस्कृति के प्रति आस्था के कारण होगा। इस विशाल यज्ञ में यदि वे भी थोड़ी सी आहुति समर्पित कर देंगे तो कोई प्रलय नहीं आ जायेगी।''

''परंतु ऋषिवर...''

''कोई परंतु नहीं राघव! यज्ञ में आहुति देने से पुण्य ही प्राप्त होता है अतः इस विषय को यहीं पर विराम दें।''

शरभंग के स्वर में आज्ञा का ऐसा भाव था कि राम और लक्ष्मण दोनों को ही मौन हो जाना पड़ा।

शरभंग ने आगे कहना आरम्भ किया-

''महत्वपूर्ण यह नहीं है कि यदि दण्डक में आपकी किसी रक्ष सैनिक से भेंट हो जाती है तो क्या होगा, महत्वपूर्ण यह है कि यदि आपका देवों अथवा महर्षि अगस्त्य से किसी प्रकार का संबंध रक्षों के संज्ञान में आ गया तो क्या होगा! मैं पूर्व में ही कह चुका हूँ कि लंकेश, उसे परास्त करने की आर्यों की आकांक्षा को तिल-मात्र भी महत्व नहीं देता। यह सोच लंकेश की ही नहीं, सभी रक्षों की है। रक्षों को यदि संदेह हो भी गया कि आप उनसे विरोध रखते हैं, तो वे आपको उपहास का पात्र ही बनायेंगे, परंतु यदि यह संदेह हो गया कि आपका किसी भी रूप में देवों अथवा महर्षि अगस्त्य से कोई गठजोड़ है, तो अवश्य ही उसकी सूचना खर-दूषण तक और तदुपरांत प्रहस्त तक पहुँच जायेगी और तब वह आपको भी संदिग्ध मानकर, आप पर दृष्टि रखवाना आरम्भ कर देगा। वह स्थिति निस्संदेह जटिल होगी।''

कुछ पल के मौन के उपरांत राम संकोचपूर्ण स्वर में बोले-

''मात्र एक जिज्ञासा और है महर्षि, यदि आप अन्यथा न लें तो...''

''संकोच न करें राघव, अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करें।''

''देवर्षि सहित समस्त महर्षिगण इस योजना का अंग है। आप सबकी सामर्थ्य का आकलन कर पाना हमारे लिये कल्पनातीत है। रक्षों का विनाश कर देना आपके लिये दुष्कर नहीं था। आपके लिये तो पितामह का वचन भी बाधक नहीं होता?''

''हमलोग ऋषि हैं राघव, योद्धा नहीं'', मंद हास्य के साथ शरभंग ने उत्तर दिया- ''हमारे पास लंकेश्वर पर आक्रमण करने का कोई कारण नहीं है। फिर नियति का आदेश भी नहीं है हमारे लिये। आपका चयन स्वयं नियति ने किया है और मैं पहले ही कह चुका हूँ कि नियति का निर्णय अंतिम होता है।''

राम ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया तो शरभंग आगे बोले-

''प्रकारान्तर से तो हम युद्ध कर ही रहे हैं। यहाँ के आश्रम आपके भावी सहयोगियों का निर्माण कर ही रहे हैं। स्पष्ट कहें तो आपकी सेना को गढ़ रहे हैं।''

"जी!" राम ने विनत भाव से, फिर से संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

राम और लक्ष्मण का भोजन तो कब का समाप्त हो चुका था। अचानक शरभंग ने दोनों की पत्तलों पर दृष्टि डाली और लक्ष्मण से प्रश्न किया-

"और कुछ लेंगे सौमित्र!"

"नहीं महर्षि पर्याप्त हो गया।"

"आप रामभद्र?"

राम ने भी हाथ जोड़ते हुए नहीं में सिर हिला दिया।

"तो अब इस चर्चा को यहीं विराम देते हैं। आपके शेष प्रश्नों का उत्तर देने के लिये महर्षि सुतीक्ष्ण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"जी!" राम धीरे से बोले।

"तो आइये हस्त-प्रच्छालन कर लें।" कहते हुए शरभंग मुस्कुराकर उठ खड़े हुए और कुटिया के द्वार की ओर बढ़ चले।

राम और लक्ष्मण ने भी उनका अनुसरण किया। लक्ष्मण ने तीनों जूठी पत्तलें उठा लीं।

कुटिया के द्वार पर दो शिष्य पहले से ही प्रतीक्षारत थे। इन लोगों के उठते ही एक शिष्य जल का पात्र लेकर इनके पीछे चल दिया और दूसरा लक्ष्मण के हाथ से पत्तलें लेने के लिये आगे बढ़ा, परंतु लक्ष्मण हिचकिचा रहे थे।

"दे दें सौमित्र", अचानक पीछे घूमते हुए शरभंग मुस्कुराकर बोले- "यहाँ अधिकांश शिष्य वनवासी ही हैं। आपको ब्राह्मण से सेवा लेने का दोष नहीं लगेगा।"

लक्ष्मण ने अपने हाथ की पत्तलें उस शिष्य को ले लेने दी।

चारों व्यक्ति कुटिया के पीछे की ओर आ गये। जलपात्र लिये खड़ा शिष्य उनके हाथ धुलवाने लगा।

तीनों लोग हाथ धो चुके तो एकाएक शरभंग बोले-

"राघव, अब विदा का समय आ गया है, आपको रात्रि होने से पूर्व ही महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम पहुँचना है।"

"तो अनुमति दें!" महर्षि का संकेत समझकर राम तत्काल उनके चरणों में झुकते हुए विनम्रता से बोले।

उन्हें आशीर्वाद देने के साथ ही शरभंग ने एक आश्रमवासी को पुकारा-

"महिदेव!"

महिदेव जैसे पुकारे जाने की प्रतीक्षा ही कर रहा था, पुकार के साथ ही हाथ जोड़कर सामने आ गया। उसके आते ही शरभंग ने निर्देश दिया-

"कृपापूर्वक रामभद्र का महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम तक मार्गदर्शन कर दो भद्र!"

महिदेव ने बिना कुछ बोले हाथ जोड़कर सिर झुका दिया। उसे संभवतः पहले से ही इस आदेश का बोध था।

तभी राम ने देखा कि आश्रम वासियों की भीड़ से घिरी सीता और चित्रकूट से ही साथ आये ऋषिगण भी उधर ही चले आ रहे हैं। उनके पीछे-पीछे लक्ष्मण के वनवासी शिष्य भी थे। उनके आते ही प्रणाम और आशीर्वाद की औपचारिकताओं के बाद शरभंग वहीं पद्मासन लगाकर समाधि में लीन हो गये।

समाधि में लीन शरभंग को राम ने एक बार पुनः साष्टांग प्रणाम किया। सीता के अतिरिक्त, उनके सभी साथियों ने उनका अनुसरण किया। भावविभोर सीता ने भी दोनों हाथ जोड़, सिर झुकारकर महर्षि को प्रणाम किया।

सब हाथ जोड़े खड़े थे, तभी समाधिस्थ शरभंग ने प्राणवायु भीतर लेते हुए ¬ का उच्चारण करना आरम्भ कर दिया। फिर सबके देखते-देखते एक चट की ध्वनि हुई और महर्षि का कपाल चटक गया। उनकी आत्मा, परमात्मा से मिलन हेतु प्रस्थान कर चुकी थी।

राम ने एक बार पुनः महर्षि को प्रणाम किया और बाहर जाने के लिये घूम गये। सभी ने उनका अनुसरण किया।

आश्रम से बाहर आते ही स्वप्निल से स्वर में सीता बोली-

''सब कुछ कितना अद्भुत है। कैसे स्वेच्छा से निर्विकार भाव से देह त्याग दी महर्षि ने!''

''ऋषि-महर्षि अद्भुत ही होते हैं। उनकी आध्यात्मिक शक्ति के सम्मुख समस्त संसार क्षुद्र होता है।'' राम ने भी श्रद्धा से नत, सम्मोहित से स्वर में उत्तर दिया।

ऋषि महिदेव के नेतृत्व में सभी सुतीक्ष्ण के आश्रम की ओर बढ़ चले। सभी मौन थे, लक्ष्मण भी जैसे सम्मोहित से थे, जैसे स्वप्नाविष्ट से चल रहे हो!

11.सुतीक्ष्ण

शरभंग के आश्रम से यह बत्तीस व्यक्तियों का दल बस निकला ही था कि शताधिक मुनियों के एक दल ने इनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

''संभवतः आप ही रघुकुलभूषण श्री राम हैं?'' मुनियों के उस दल में से एक ने अनुमान से ही राम से प्रश्न किया।

''हाँ ऋषिवर, मैं ही राम हूँ, मैं आप सबको प्रणाम निवेदन करता हूँ। आदेश करें मैं आपलोगों का क्या प्रिय कर सकता हूँ।'' राम ने सबको प्रणाम करते हुए विनम्रतापूर्वक उन सबके आगमन का कारण जानना चाहा।

''रघुकुलभूषण, जनस्थान अब तपस्वियों के निवास योग्य नहीं रह गया'', वही ऋषि पुनः बोले- ''अब आपका ही आसरा है, आप ही हम तपस्वियों को इन आततायी राक्षसों से मुक्ति प्रदान करा सकते हैं।''

ऋषियों के इस आग्रह से लक्ष्मण की भुजायें फड़कने लगीं, परन्तु राम स्वयं को धर्मसंकट में अनुभव कर रहे थे। महर्षि शरभंग ने आगामी दस वर्षों तक रक्षों के साथ किसी भी विवाद में पड़ने को स्पष्ट निषेध किया था। विवशता यह थी कि वे न तो रक्षों को दण्डित करने हेतु प्रयाण कर सकते थे और न ही ऋषियों को महर्षि शरभंग के आदेश के विषय में कुछ बता ही सकते थे।

जनस्थान से आये ऋषिगण व्यग्रता से राम के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। राम को मौन देखकर उनमें से एक ने कह ही दिया-

''किस चिन्तन में पड़ गये राघव? क्या आप भी रक्षों से भयभीत हैं?''

ऋषि की यह टिप्पणी लक्ष्मण की क्रोधाग्नि में घृत का कार्य करने हेतु पर्याप्त थी। राम ने भी यह अनुभव किया। लक्ष्मण कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त कर पाते उससे पहले ही अपने विचारों से बाहर आते हुए उन्होंने उत्तर दिया-

''आप ऐसा सोच भी कैसे सकते हैं ऋषिवर! प्रश्न भय का नहीं, आज्ञा का है। हम महर्षि शरभंग की आज्ञा से बँधे हुए हैं। महर्षि ने हमें रात्रि से पूर्व ही महर्षि सुतीक्ष्ण से भेंट करने की स्पष्ट आज्ञा दी है। इसके लिये उन्होंने अपना मार्गदर्शक भी हमारे साथ कर दिया है। यदि विवशता न होती तो हम अभी चलकर पहले रक्षों का वध कर आपका जीवन निर्विघ्न कर देते। फिर भी इसी क्षण से आप सब हमारी संरक्षण में हैं, आप निर्भय हो हमारे साथ महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम चल सकते हैं। वहाँ महर्षि से परामर्शानुसार कार्य करना ही श्रेयस्कर होगा।''

राम का उत्तर सीता और चित्रकूट से आये ऋषियों को अस्वाभाविक सा प्रतीत हुआ। वे सोच रहे थे कि 'शरणागत की गुहार की उपेक्षा कर दें, ऐसा तो राम का स्वभाव नहीं है।' वे सब महर्षि शरभंग के साथ हुई राम और लक्ष्मण की एकान्तवार्ता के विषय में पूर्णतः अनभिज्ञ जो थे। उन सबके विपरीत राम के इस उत्तर से, आवेश में होते हुए भी लक्ष्मण बरबस मुस्कुरा दिये- 'भइया भी कूटनीति समझने लगे हैं अब!'

थोड़ी सी उहापोह के उपरान्त शरणागत ऋषियों ने राम के साथ सुतीक्ष्ण के आश्रम चलने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अब यह दल पर्याप्त बड़ा हो चुका था। महिदेव के नेतृत्व में सब पुनः गंतव्य की ओर अग्रसर हुए।

***

सुतीक्ष्ण के आश्रम तक पहुँचते-पहुँचते रात्रि हो गयी थी। आश्रम के द्वार पर ही सुतीक्ष्ण राम की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे भी शरभंग की ही परम्परा के ऋषि थे। वृद्ध वे भी थे किंतु शरभंग की तुलना में तो युवा ही थे। परिचय और अभिवादन की औपचारिकताओं के उपरांत सब संध्या-पूजन में व्यस्त हो गये। सीता को ऋषि-पत्नियाँ अपने साथ लिवा ले गयी।

संध्यापूजन और भोजन के उपरांत जनस्थान से आये ऋषियों में से एक ने अपनी व्यथा-गाथा छेड़ दी। राम पुनः स्वयं को धर्मसंकट में अनुभव करने लगे,

परंतु इस समय उनके उद्धार हेतु महर्षि सुतीक्ष्ण उपस्थित थे। जैसे ही जनस्थान के ऋषि ने अपना प्रलाप आरम्भ किया, उन्होंने हाथ उठाकर उन्हें रोक दिया-

''ऋषिवर, विवरण देने की आवश्यकता नहीं है, मैं समस्त स्थितियों से भलीभाँति परिचित हूँ। परंतु कौशलेन्द्र और सौमित्र को महर्षि शरभंग ने समाधि ग्रहण करने से पूर्व कुछ अपरिहार्य दायित्व सौंपे हैं, उन्हें सम्पूर्ण करने से पूर्व ये अन्य कोई भी दायित्व ग्रहण नहीं कर सकते। ये चाहें भी तो मैं इन्हें ऐसा करने की अनुमति प्रदान नहीं कर सकता। यह महर्षि शरभंग का अपमान होगा।''

''तब हमारा क्या होगा?'' एक अन्य ऋषि व्याकुलता से बोल पड़े।

''आपको तपश्चर्या ही तो करनी है भद्र, वह आप सब यहाँ भी निर्विघ्न कर सकते हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस आश्रम में आपको कोई भी असुविधा नहीं होगी। जनस्थान से रक्षों का मूलोच्छेद होने तक आपकी सुरक्षा का सम्पूर्ण दायित्व मैं ग्रहण करता हूँ।''

''परंतु महर्षि...'' उन ऋषि ने फिर कहना चाहा परंतु सुतीक्ष्ण ने उन्हें अवसर ही नहीं दिया। वे उनकी बात को बीच में ही काटते हुए कह उठे-

''ऋषिवर, तपस्वियों को न तो स्वार्थी होना चाहिए और न ही किसी के अहित का आकांक्षी होना चाहिए, भले ही वह आपका विरोधी ही क्यों न हो, भले ही उसने आपका कितना ही अहित क्यों न किया हो। ऋषियों के लिये तो सबका सुख और सबका सौभाग्य ही काम्य होता है, अतः आप हठ त्याग कर यहीं निवास करें। देवकार्य से निवृत्त होते ही राघव आपका कार्य सम्पन्न करेंगे और तब आप निर्विघ्न जनस्थान अपने-अपने आश्रमों में लौट सकेंगे।''

उन ऋषियों ने प्रतिरोध करने का प्रयास किया, परंतु महर्षि सुतीक्ष्ण दृढ़ थे। अंततः उनका आदेश सबको शिरोधार्य करना ही पड़ा। कुछ देर बाद ही सुतीक्ष्ण ने राम और लक्ष्मण के अतिरिक्त शेष सभी को अपनी कुटिया से विदा कर दिया।

जब तक सुतीक्ष्ण उन ऋषियों से वार्ता कर रहे थे, लक्ष्मण सप्रयास मौन ही रहे थे, परंतु एकांत होते ही उन्होंने पुनः उसी प्रसंग को छेड़ दिया-

''महर्षि, शरणागत की रक्षा करना हमारा धर्म है।''

''वह तो हो गयी।''

''थोड़े से ऋषियों की हो गयी, परंतु अभी जनस्थान में और भी ऋषि हो सकते हैं।''

''नहीं हैं, आपके आगमन का संज्ञान होते ही जनस्थान के समस्त ऋषिगण आपकी शरण में आ गये थे और अब वे आपके साथ सुरक्षित यहाँ आ गये हैं।''

''निरीह प्रजा भी तो होगी, उसकी सुरक्षा भी तो होनी चाहिए!''

''वह आपकी प्रजा नहीं है, जिनकी है उन्हें ही उसकी सुरक्षा की चिन्ता करने दीजिए।''

''जनस्थान के रक्षों के विनाश में समय नहीं लगेगा, हम दोनों भाई...''

''सौमित्र, मेरा विचार है कि इन सभी विषयों पर महर्षि शरभंग से आपकी विस्तार से चर्चा हो चुकी है। पिष्टपेषण से कोई लाभ नहीं होता, हमें अब शेष चर्चा करनी चाहिए।''

सुतीक्ष्ण ने अपनी ओर से विषय समाप्त कर दिया, परंतु लक्ष्मण ने पुनः प्रयास किया-

''महर्षि शरभंग से हमारी वार्ता हुई, तब तक ये ऋषिगण हमारी शरण में नहीं आये थे। हम यदि शरणागत ऋषियों की पुकार को अनसुना कर देंगे तो रघुकुल की कीर्ति का क्या होगा? जगत हमारा उपहास करेगा, कहेगा कि जब आततायियों को दण्डित करने का समय था, तब रघुकुल के राजकुमार मुँह छिपाकर आश्रमों की सुरक्षा में शरण लेते फिरते रहे।''

''सौमित्र, जानते हैं, सारे विनाश का मूल क्या होता है?'' लक्ष्मण के निरंतर तर्कों से सुतीक्ष्ण के भी संयम का बाँध टूटने लगा था। परंतु वे महर्षि थे, उन्होंने

अपने आवेश को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर संयत किंतु दृढ़ स्वर में उत्तर दिया- ''हमारा अहम्! यह 'मैं-मेरा' अथवा 'हम-हमारा'... 'हमारा' परिवार, 'हमारे' मित्र, 'हमारा' वंश इत्यादि। जितना शीघ्र संभव हो, आप इस अहम् से बाहर आ जायें और इस सत्य को आत्मसात कर लें कि इस सृष्टि में कर्ता एक ही है- परमप्रभु! अपनी और अपने कुल की कीर्ति-अपकीर्ति का विचार उस परमप्रभु को ही करने दें और स्वयं अपनी ऊर्जा को उसी दायित्व को पूर्ण करने में व्यय करें जो परमप्रभु ने आपको सौंपा है।''

इतने स्पष्ट निषेध के बाद लक्ष्मण को मौन हो जाना पड़ा। कुछ पल के मौन के उपरांत सुतीक्ष्ण ही चुप्पी तोड़ते हुए बोले-

''तो वार्ताक्रम आगे बढ़ाया जाये!''

''जी!'' इस बार राम बोले, सीधे विषय पर आते हुए उन्होंने प्रश्न किया- ''महर्षि! दण्डकारण्य में कितने आश्रमों में प्रशिक्षण कार्य होता है?''

''एक सहस्त्र से कुछ अधिक ही है।''

''एक सहस्त्र से भी अधिक?'' लक्ष्मण के नेत्र विस्फारित हो उठे- ''इतने आश्रमों में मात्र दस वर्षों में कैसे प्रशिक्षण दिया जा सकता है?''

''इसका उपाय है हमारे पास सौमित्र'', सुतीक्ष ने मुस्कुराकर उत्तर दिया- ''हमने समस्त आश्रमों से चयनित श्रेष्ठतम प्रशिक्षणार्थियों और श्रेष्ठ प्रशिक्षकों को एक आश्रम में एकत्र कर लिया है। आपको तीन वर्षों तक इन्हीं को प्रशिक्षण देना है। इसके उपरांत ये समस्त अपने-अपने आश्रमों में लौटकर, शेष छात्रों को आपकी आवश्यकता के अनुरूप प्रशिक्षित करते रहेंगे। इन दस वर्षों की कालावधि के शेष सात वर्ष आपको मात्र आश्रमों का भ्रमण कर छात्रों को दर्शन देने होंगे और उन्हें अपना उद्धबोधन देना होगा।''

''तीन वर्ष का प्रशिक्षण तो समझ में आया ऋषिवर, परंतु शेष सात वर्ष के भ्रमण से क्या उपलब्धि होगी?'' लक्ष्मण ने असहमति से प्रश्न किया। उत्तर में सुतीक्ष्ण विनोदपूर्वक बोले-

''आपके अग्रज ऋषियों के दर्शन कर उनका आशीष प्राप्त करना चाहते हैं और ऋषिगण भी इनका दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं। आपके भ्रमण से दोनों ही पक्षों का मनोरथ सिद्ध हो जायेगा। क्या यह उपलब्धि पर्याप्त नहीं है?''

इस उत्तर से राम और लक्ष्मण भी हँस पड़े। हास्य के कुछ पलों के उपरांत पुनः सुतीक्ष्ण गम्भीर होते हुए बोले-

''सौमित्र, महर्षि शरभंग ने आपको बताया ही होगा कि ऋषिगण इन समस्त प्रशिक्षणार्थियों को आपके अग्रज के विष्णु-रूप से परिचित करवा चुके हैं। उन्होंने यह भी बताया होगा कि अब ये लोग अपने देवताओं के साथ-साथ त्रिदेवों और अवतारों पर भी आस्था रखते हैं। ऐसे में आपका उनको दर्शन देना मात्र ही उनके मनोबल में अपरिमित वृद्धि कर देगा। फिर आपलोग यदि दो दिन भी एक आश्रम में प्रवास करेंगे, तो मुझे विश्वास है कि उतने समय में ही उस आश्रम के समस्त निवासी आपके भक्त बन जायेंगे। वैसे भी आपके भइया के व्यक्तित्व में कैसा चुम्बकीय आकर्षण है, इससे आप अपरिचित नहीं होंगे!''

सुतीक्ष्ण के इस मत से लक्ष्मण सहमत थे, परंतु वार्ता जिस दिशा में मुड़ रही थी, वह राम को असहज कर रहा था। वार्ता को पुनः मूल विषय पर लाने का प्रयास करते हुए उन्होंने प्रश्न किया-

''कुल कितने युवक प्रशिक्षण ले रहे हैं इन आश्रमों में?''

''इन सहस्त्राधिक आश्रमों में कुल मिलाकर एक लक्ष के लगभग प्रशिक्षणार्थी हैं। कई लक्ष प्रशिक्षण पूर्ण भी कर चुके हैं। वे सभी उत्सुकता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

''क्या इन सबको योजना के विषय में भी ज्ञान है?'' राम ने अगला प्रश्न किया।

उत्तर में सुतीक्ष्ण फिर से हँस पड़े-

''उपहास कर रहे हैं राघव? जब जानकी तक से गोपनीयता रखी जा रही है, तब इन वनवासियों को कुछ कैसे बताया जा सकता है!''

राम ने सहमति में सिर हिलाया और मौन हो गये। फिर वे नेत्र मूँदकर जैसे कुछ सोचने लगे। इस बीच लक्ष्मण ने जिज्ञासा प्रकट की-

''महर्षि, समझ नहीं आता कुछ। भइया अकारण लंका पर आक्रमण करने हेतु प्रस्तुत नहीं हैं। महर्षि शरभंग कह रहे थे कि लंकेश हमें आक्रमण का कारण देगा नहीं। फिर...''

''उन्होंने आपको चन्द्रनखा के विषय में भी तो बताया होगा।''

''हाँ बताया था। यह भी बताया था कि वह विक्षिप्त है और वही हमें कारण देगी... परंतु साथ में यह भी कहा था कि हमें उसे कारण उपस्थित करने हेतु समय देना होगा।''

''हताश न हो सौमित्र, चन्द्रनखा को समय देना इसलिये आवश्यक है ताकि युद्ध आरम्भ करने का आरोप आप पर न आये।''

''ऐसा न हो कि हम प्रतीक्षा ही करते रह जायें और सारा समय व्यतीत हो जाये। भइया भरत ने जो भीषण प्रण ले लिया है, उसके कारण हम वनवास की अवधि से एक पल भी अधिक नहीं रुक पायेंगे।''

सुतीक्ष्ण का मन तो हँसने का हुआ, परंतु वे हँसे नहीं। प्रश्न राम और लक्ष्मण दोनों की भावनाओं का था। वे सान्त्वना देने वाले स्वर में बोले-

''हताश न हो सौमित्र! इस समर के रणनीतिकार स्वयं श्रीविष्णु हैं और देवर्षि व महर्षि अगस्त्य जैसे उनके रणनीतिकार हैं। अभी बहुत कुछ है जो आप दोनों को ज्ञात नहीं है, बहुत कुछ ऐसा भी हो सकता है जो मुझे भी ज्ञात न हो, परंतु इस विषय में मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि चन्द्रनखा समय रहते आपको अवसर प्रदान करेगी। दण्डक में लंका की गुप्तचर व्यवस्था कितनी ही जर्जर क्यों न हो, दस वर्ष व्यतीत होते-होते आपकी उपस्थिति की सूचना लंका तक अवश्य पहुँच जायेगी और तब लंकेश भले ही शांत बना रहे परंतु प्रहस्त और वज्रमुष्टि नहीं रह पायेंगे। वे चन्द्रनखा को कुछ न कुछ करने हेतु अवश्य प्रेरित करेंगे।''

"यही श्रेयस्कर है महर्षि!" अपने विचारों से बाहर आते हुए एकाएक राम बोले- "परंतु, समझ नहीं आता कि यह किस भाँति संभव होगा ऋषिवर?"

उत्तर में शरभंग फिर मुस्कुराये-

"यदि यह आपको पहले से ही ज्ञात होगा तो सब कुछ सहज-स्वाभाविक कैसे रह जायेगा? आप मात्र अपने कर्तव्य का निर्वहन करते जाइये, नियति स्वयं आपका मार्गदर्शन करती जायेगी।"

"एक शंका और है ऋषिवर!" कुछ पल बाद राम ने संकोच के साथ कहा।

"निःशंक कहें!"

"क्या इन वनवासियों के साथ ही किष्किंधा के वानरों को भी हम पर इतना विश्वास होगा कि वे इस भीषण युद्ध में स्वेच्छा से हमारा साथ देने का निर्णय लें? वे तटस्थ भी तो रह सकते हैं, उनके लिये तो हम पूर्णतया अपरिचित ही हैं।"

राम की आशंका सुनकर शरभंग जोर से हँस पड़े, बोले-

"किष्किंधावासी आर्य न होते हुए भी, आर्य-संस्कृति से मात्र परिचित ही नहीं हैं, अपितु उसमें पूर्ण आस्था भी रखते हैं।" कहकर शरभंग हल्के से मुस्कुराये, फिर रहस्यमय ढंग से आगे जोड़ा- "एक भेद की बात बताऊँ आपको, ताड़का-वध और देवी अहिल्या के उद्धार के प्रकरणों ने किष्किंधा में हमारा कार्य अत्यंत सहज बना दिया।"

"उस सब ने यहाँ तक प्रभाव डाला?" राम ने अविश्वास और हताशा से प्रश्न किया।

"निससंदेह!" सुतीक्ष्ण ने मंद हास्य के साथ स्पष्ट किया- "इस समाचार को दण्डकारण्य में प्रसारित करने में तो ऋषियों को प्रयास भी करना पड़ा परंतु किष्किंधा में तो यह स्वयं ही पहुँच गया।"

"वह कैसे?" राम ने प्रश्न किया।

"स्वयं देवी अहिल्या ने भेजा।"

"देवी अहिल्या ने? ...किष्किंधा में??" दोनों ही भाइयों को इस सूचना पर एकाएक विश्वास नहीं हुआ- "परंतु... परंतु वहाँ किसलिये?"

"इसमें विस्मयजनक कुछ भी नहीं है। इतने काल बाद पुनः संसार को अंगीकार करने पर देवी को अपनी पुत्री, जामाता और दौहित्र का स्मरण हो आना तो स्वाभाविक ही था।"

"महर्षि, कुछ स्पष्ट करने की कृपा करेंगे?" राम ने विनम्रता से आग्रह किया।

"क्यों नहीं!" सुतीक्ष्ण बोले और फिर सारा प्रकरण सुनाते चले गये (देखिये-राम)। अंत में बोले- "किष्किंधा में सभी पूरी श्रद्धा से आपको विष्णु का अवतार ही मानते हैं। सभी व्यग्रता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। और सर्वाधिक व्यग्र स्वयं हनुमान हैं। उनसे उनकी मातामही ने कहा जो था कि वे भविष्य में आपके सर्वश्रेष्ठ सहयोगी सिद्ध होंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि युगों तक उनका नाम उनके प्रभु अर्थात् आपके नाम के साथ स्मरण किया जायेगा।"

"ओह!" राम के मुख से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ी। वे यही सोचकर परेशान थे कि इस अयाचित प्रभु-पद से उनका पीछा किस प्रकार छूटेगा। तभी उन्हें पुनः वाल्मीकि आश्रम की ऋषिका सुचेता का कथन स्मरण हो आया। बरबस एक फीकी सी मुस्कान उनके अधरों पर उभर आयी- 'कदाचित उस ऋषिका ने सत्य ही कहा था, मुझे इस प्रभु-पद के साथ जीना सीखना ही पड़ेगा।'

उन्होंने सोचा और फिर अपने विचारों से बाहर आकर पुनः सुतीक्ष्ण की ओर उन्मुख हो गये। तभी एकाएक जैसे उनके मस्तिष्क में ऐसा कुछ कौंधा जिसने उन्हें किंचित व्यग्र कर दिया। लक्ष्मण इस बीच उनके प्रभु-पद को लेकर ही सुतीक्ष्ण से कुछ चुहल कर रहे थे। राम ने लक्ष्मण की बातों की पूर्णतः उपेक्षा कर दी और सुतीक्ष्ण से प्रश्न किया-

''महर्षि, इसका तात्पर्य है कि किष्किंधावासियों को हमारे आगमन का यथार्थ उद्देश्य भी ज्ञात है!''

''नहीं राघव, देवी अहिल्या ने हनुमान से मात्र इतना ही तो कहा था कि वे भविष्य में आपके सर्वश्रेष्ठ सहयोगी सिद्ध होंगे, इसमें रक्षों के विरुद्ध आपके अभियान का उल्लेख कहाँ है?''

''ओह!'' राम ने संतोष की श्वाँस ली।

कुछ पल मौन रहा, परंतु राम के हृदय में अभी भी मंथन चल रहा था। एकाएक उन्होंने पुनः प्रश्न किया-

''परंतु ऋषिवर, क्या यह उचित होगा कि हम अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु इन सबको ऐसे विनाशकारी युद्ध में झोंक दें?''

''मैं स्वीकार करता हूँ कि युद्धों में भीषण जनहानि होती है'', सुतीक्ष्ण बोले- ''परंतु जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु भी अटल है। वह मृत्यु किस रूप में आती है इसका निर्णय नियति के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता। आप युद्ध में इन लोगों की संभावित मृत्यु से दयार्द्र हो रहे हैं, परंतु इनके स्थान पर यदि अयोध्या के सैनिक होते तो क्या उनकी मृत्यु नहीं होती? अथवा लंका के निरपराध सैनिकों की मृत्यु नहीं होगी?''

''ऋषिवर, अयोध्या के हो अथवा लंका के, सैनिक तो सैनिक होते हैं। युद्ध उनकी वृत्ति का ही एक अंग होता है। वे सैन्यकर्म के लिये वेतन अथवा अन्य पारिश्रमिक प्राप्त करते हैं। परंतु हम तो इन्हें कुछ भी देने की स्थिति में नहीं हैं...''

''राघव, ये सब आपके अनुयायी बनकर युद्ध में प्रवृत्त होंगे। अनुयायी किसी पारितोषिक की आकांक्षा नहीं करते, स्वामी का हित उनका सर्वोच्च पारिश्रमिक होता है। चित्रकूट से आपके साथ इन दुर्गम वनों में आये ये मुनिगण क्या किसी पारिश्रमिक की प्रत्याशा में आपके साथ आये हैं? जब युद्ध होगा तब क्या आप इन्हें उससे विरत रख सकेंगे? इसी प्रकार, ये जो सौमित्र के अनुयायी हैं, वे भी क्या किसी पारिश्रमिक की प्रत्याशा में आपका अनुगमन कर रहे हैं?''

राम के पास कोई उत्तर नहीं था। उन्हें मौन देखकर शरभंग पुनः बोले-

"राघव, मैंने पूर्व में ही कहा कि जब नियति ने यह निर्णय कर ही लिया है तो वह स्वयं ऐसे कारण उपस्थित करेगी जो ये समस्त वनवासी सहर्ष आपके पक्ष में युद्धरत होंगे। आपको तो बस बिना उद्विग्न हुए नियति के निर्देश की प्रतीक्षा करनी है और सही समय पर उसे समझकर तदनुरूप आचरण करना है। अन्य सारे विचारों को अपने मस्तिष्क से बाहर धकेल दें।"

"जी!" राम ने शांतभाव से सहमति दी।

"अन्य कोई शंका?" यह प्रश्न सुतीक्ष्ण ने लक्ष्मण से किया था।

लक्ष्मण कुछ सोच रहे थे, सुतीक्ष्ण के बोलने से उनका ध्यान भंग हुआ, तत्काल उनके मन में वे सारे प्रश्न कुलबुलाने लगे जिनका उत्तर शरभंग ने सुतीक्ष्ण पर टाल दिया था। वे तत्काल बोले-

"शंका तो नहीं, परंतु जिज्ञासायें अनेक हैं। महर्षि शरभंग ने हमारे अनेक प्रश्न यह कहकर अनुत्तरित ही छोड़ दिये थे कि उनका उत्तर आप ही देंगे।"

"सौमित्र, आपने स्वयं ही देखा होगा कि महर्षि के पास समय का अभाव था। वे बहुत समय पूर्व ही अपनी आयु पूर्ण कर चुके थे, मात्र आप की प्रतीक्षा में ही देह धारण किये हुए थे। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि उनकी आयु कितनी रही होगी?"

"सौ वर्षों से कम तो कदापि नहीं होगी।" लक्ष्मण धीरे से बोले।

"दो सौ वर्ष से अधिक!"

यह आश्चर्यचकित करने वाला रहस्योद्घाटन था। कुछ पल के लिये दोनों भाई विस्मय से अवाक् रह गये, परंतु शीघ्र ही दोनों ने अपने को संयत कर लिया। फिर वेदवती से आरम्भ कर, शम्बर युद्ध और दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये गये वर, सुमाली की गाथा, गौतम-अंजना की गाथा, विद्युज्जिह्व का वध, बालि-सुग्रीव का विवाद आदि विभिन्न विषयों पर लक्ष्मण अपनी जिज्ञासायें प्रस्तुत

करते रहे और महर्षि सुतीक्ष्ण विस्तार से उनका समाधान करते रहे। (सारी कथायें पूर्व के खण्डों में विस्तार से आ चुकी है।)

***

वह पूरी रात्रि इसी सब में व्यतीत हो गयी। परंतु प्रातःकाल तक दोनों भाइयों की समस्त शंकाओं का समाधान हो चुका था। जब पूर्व के आकाश में सूर्य के आगमन की पूर्व सूचना लेकर लालिमा छिटकने लगी तो सुतीक्ष्ण बोले-

''राघव, अब हमें इस चर्चा को यहीं पर विराम देना होगा। नित्य क्रियाओं से निवृत्त होने का समय हो गया है।''

नित्यकर्मों से निवृत्त होकर राम और लक्ष्मण सुतीक्ष्ण की कुटिया के बाहर आये तो पाया कि उनके साथ आये सभी ऋषिगण और लक्ष्मण के शिष्य वनवासी, सब वहाँ पहले से ही एकत्र हैं। सीता भी आ चुकी हैं।

राम ने सुतीक्ष्ण के चरणों में झुकते हुए प्रस्थान की अनुमति माँगी-

''तो अब अनुमति दें महर्षि!''

''अवश्य, परंतु आगे की यात्रा आप तीनों को ही करनी है। शेष सभी यहीं आपकी प्रतीक्षा करेंगे।''

महर्षि के इतना कहते ही चित्रकूट से ही इनके साथ आये ऋषियों के प्रतिरोध भरे स्वर गूँज उठे, परंतु सुतीक्ष्ण की दृढ़ता के सम्मुख कोई प्रतिरोध टिक नहीं सका। अंततः राम, लक्ष्मण और सीता, एक मार्गदर्शक के साथ अपनी आगे की यात्रा के लिये निकल पड़े।

''शुभास्ते पंथानः सन्तु!'' विदा देते हुए महर्षि सुतीक्ष्ण ने बस इतना ही कहा।

12.किष्किंधा

''बजरंग भइया, यदि कुछ पारितोषिक दो तो एक अत्यंत शुभ सूचना दूँ।'' इठलाते हुए अंगद बोला।

अंगद नित्य के समान ही अपराह्न में रिष्यमूक पर्वत पर आया था। अब वह गुरुकुल का अपना अध्ययन-प्रशिक्षण समाप्त कर चुका था, परंतु फिर भी कभी-कभी गुरुकुल चला जाया करता था। वैसे, वह गुरुकुल जाये या न जाये, अपराह्न से लेकर संध्या तक का, बहुधा देर रात्रि तक का उसका समय ऋष्यमूक पर ही अपने काका और बजरंग भइया के सान्निध्य में व्यतीत होता था। आज भी वह प्रातः गुरुकुल गया था और वहाँ से सीधा यहाँ चला आया था।

''पहले सूचना दो, यदि सत्य ही अत्यंत शुभ हुई तो जो माँगोगे वह मिलेगा।'' हनुमान ने हँसते हुए उत्तर दिया।

''ऐसे नहीं, पहले शपथ लो।'' अंगद ने हठ किया।

''सीधी प्रकार बताते हो अथवा...'' कहते हुए हनुमान अंगद को पकड़ने दौड़े परंतु अब अंगद को पकड़ पाना क्या इतना सहज रह गया था, वह फुर्र हो गया।

ऐसा नहीं था कि अब दौड़कर अंगद को पकड़ पाना हनुमान के लिये कठिन हो गया हो। वे अब भी खेल-खेल में ही उसे पकड़ सकते थे, किंतु अब हनुमान पहले की अपेक्षा गम्भीर हो गये थे। वे अंगद के पीछे नहीं दौड़े, बस उसे दौड़ता देखकर हँसते रहे।

''शपथ लो भइया!'' अंगद ने दूर खड़े होकर पुनः हठ किया।

''अच्छा ली।'' हनुमान ने भी हँसते हुए ही उत्तर दिया- ''अब सीधी प्रकार निकट आकर पूरी बात बताओ।''

''पकड़ोगे तो नहीं?'' अंगद ने सतर्कतापूर्वक प्रश्न किया।

"अच्छा बाबा, नहीं पकड़ूँगा।"

"पक्का?"

"हाँ, पक्का। अब शीघ्र बोलो।"

"काका देखो, इन्होंने आपके सामने शपथ ली है।" अंगद ने सुग्रीव को पंच नियुक्त करते हुए कहा।

सुग्रीव जो वहीं एक पत्थर पर बैठे इन दोनों का खिलवाड़ देख रहे थे, उन्होंने भी हँसते हुए पंच बनना स्वीकार कर लिया-

"हाँ, ली तो है, किन्तु किस बात की ली है?"

"यही कि ये मुझे नहीं पकड़ेंगे।"

"किन्तु यह तो बजरंग ने कहा ही नहीं।"

"कहेंगे तभी मानी जायेगी शपथ?"

"और नहीं तो क्या! चाहो तो काका जाम्बवान से पूछ लो।" सुग्रीव ने खुल कर हँसते हुए उत्तर दिया।

अंगद ने उत्तर में प्रश्नवाचक दृष्टि, वहीं एक ओर बैठे, मंद-मंद मुस्कुराते जाम्बवान की ओर उठाई।

"और क्या, शपथ का स्पष्ट उच्चारण किया जाता है तभी वह मान्य होती है।" जाम्बवान ने भी अपनी मुस्कुराहट छिपाते हुए सहमति व्यक्त की।

यहाँ यह बतबड़ होते देख आस-पास टहल रहे अन्य वानर भी सुग्रीव के चारों ओर एकत्र हो गये थे। उन सबने भी जाम्बवान की बात पर मुहर लगा दी।

"तो पूरी बात बोलकर शपथ लीजिये भैया, तभी मैं बताऊँगा।"

"क्या बोलूँ?" हनुमान से अब अपनी हँसी पर नियन्त्रण नहीं हो सका। बोलते-बोलते वो खिलखिला पड़े।

"यही कि पास आने पर आप मुझे पकड़ेंगे नहीं।"

"बोल भी दो हनुमान, क्यों खिजा रहे हो बेचारे को।" जाम्बवान ने अंगद का पक्ष लिया।

"अब काका कह रहे हैं तब तो बात माननी ही पड़ेगी।" हनुमान मुस्कुराते हुए बोले और दोहरा दिया- "पास आने पर आप मुझे पकड़ेंगे नहीं।"

हनुमान की बात पर एक समवेत भरपूर अट्टहास, हवाओं को चीरने लगा।

इस प्रकार अपनी टाँग खींचे जाने पर अंगद कुछ खिसिया गया। वह एकाएक मुड़ते हुए बोला-

"जाओ, आप मेरा उपहास कर रहे हैं, मुझे नहीं बताना कुछ।" बोलने के साथ ही वह वापस लौटने का उपक्रम करने लगा।

"यह तो बेईमानी हुई", पीछे से हनुमान बोले- "सूचना देने की कहकर तुम ऐसे ही लौटे जा रहे हो।"

"तो फिर क्या करूँ, आप तो मेरा उपहास करने पर उतारू हैं।" अंगद ने जाते-जाते उत्तर दिया।

"ऐसा!" हनुमान बोले, और बोलने के साथ ही उन्होंने एक छलाँग लगा दी। अंगद जब तक कुछ समझता, हनुमान ने उसे कमर से पकड़कर उठा लिया और हवा में उछाल दिया।

"देखिये, करने लगे न शपथ का उल्लंघन।" अंगद हवा में ही बोला और हवा में ही गुलाटी मारते हुए जाम्बवान के पीछे खड़ा हो गया।

"एऽऽऽ!! वहाँ काका के पीछे क्यों छिप रहे हो।" हनुमान बोले।

"और क्या करूँ, यही एक स्थान सुरक्षित है।"

"अच्छा छोड़ो, बताओ क्या बताने की कह रहे थे।"

"नहीं बताता, आपने शपथ नहीं ली... अपितु शपथ का उल्लंघन और करने लगे।"

''सीधे से बता रहे हो अथवा पुनः हवा में गोता लगवाऊँ?'' हनुमान ने हँसते हुए धमकाया।

अंगद ने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। वह जाम्बवान से बोला-

''देखा बाबा, ये आपके सम्मुख ही मुझे धमका रहे हैं।''

''ऐ बजरंग! क्यों धमका रहे हो उसे?'' जाम्बवान ने मुख पर गम्भीरता ओढ़ने की चेष्टा करते हुए हनुमान को डाँटा और फिर अंगद से बोले- ''और तू भी नाटक क्यों कर रहा है, सीधे से बता क्यों नहीं देता।''

''बाबा, सूचना ही ऐसी अद्भुत है।'' अंगद ने कहा और लड़ियाते हुए अपनी एक बाँह जाम्बवान के गले में पिरोते हुए उनसे लिपट गया।

अंगद अब जाम्बवान की संरक्षण में था अतः हनुमान ने पलटी मारने में ही भलाई समझी और दुलार भरे स्वर में कहा-

''अरे बता दे, मेरा राजा भइया!''

''नहीं, पहले आप सभ्यता से शपथ लो।'' अंगद ने मुस्कुराते हुए रहस्य को और गाढ़ा करने का प्रयास किया। समाचार जानने के लिये सबकी व्यग्रता देख उसे बात को खींचने में आनन्द आ रहा था।

''अच्छा नहीं पकड़ूँगा तुम्हें!'' अंततः हनुमान ने हथियार डाल दिये।

''बाबा, अब ठीक से ली है शपथ इन्होंने?'' अंगद ने जाम्बवान से पूछा।

''हाँ, अब बता दे।'' जाम्बवान ने उसे आश्वस्त किया।

''अत्यंत शुभ सूचना है।'' कहकर अंगद फिर चुप हो गया और मुस्कुराता हुआ हनुमान की ओर देखने लगा।

''तो फिर बताता क्यों नहीं?'' हनुमान जाम्बवान की बगल में बैठते हुए बोले।

''बता तो रहा हूँ, किंतु आप बीच में टोक देते हो।''

''अच्छा बाबा, अब नहीं टोकूँगा।''

"बता दूँ बाबा?" अंगद ने फिर जाम्बवान की आँखों में झाँकते हुए प्रश्न किया।

"तू भी तो खिलवाड़ कर रहा है, बता सीधे से।"

"लोऽऽऽ, आप भी डाँटने लगे।" अंगद ने बिसूरा। उसने यह कुछ इस ढंग से कहा था कि वहाँ उपस्थित सभी एक बार फिर खिलखिला पड़े।

जाम्बवान भी हँस पड़े और प्यार से अंगद के बालों में अपनी उँगलियाँ फिराते हुए बोले- "अब बता भी दे भाई!"

"बहुत शुभ सूचना है।"

"यह तो तू तब से दस बार बता चुका है।" सुग्रीव बोले।

अंगद ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

"आज मैं गुरुकुल गया था।" अंगद आगे बोला और फिर चुप हो गया।

"फिर?" सुग्रीव ने ही सवाल किया। हनुमान तो अपने मुँह पर हाथ रखे किसी प्रकार अपनी हँसी रोकने का प्रयास कर रहे थे।

"वहाँ पता चला कि वे आ गये हैं।"

"कौन आ गये हैं?" इस बार हनुमान से भी नहीं रहा गया।

"आपके प्रभु।"

"सच!!" हनुमान उत्साह और व्यग्रता के मिले-जुले स्वर में लगभग चीखते हुए बोले और व्यग्रता में ही पुनः खड़े हो गये।"

"और क्या।" अंगद बोला- "है न शुभ समाचार।"

"कहाँ आ गये हैं, किष्किंधा में?"

"अरे नहीं बाबा, अभी तो वे ऋषियों से आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु दण्डकारण्य के गुरुकुलों में भ्रमण कर रहे हैं।"

"पक्की सूचना है? तुम्हें किसने बताया?"

''सूचना बिलकुल पक्की है, गुरुकुल में ऋषिगण परस्पर वार्ता कर रहे थे इस विषय में।''

''कौन से गुरुकुल में हैं वे?''

''किसी एक गुरुकुल में तो टिके नहीं हैं, वे तो भ्रमण कर रहे हैं, आज इसमें हैं तो कल दूसरे में।''

''फिर भी यह तो अनुमान होगा कि किस क्षेत्र में हैं?''

''नहीं है।''

''क्यों, तुमने पूछा नहीं ऋषियों से?''

''लो भला'', अंगद हाथ नचाते हुए बोला- ''जैसे मैं पूछता और वे बता देते! मेरी आहट लगते ही वे लोग बिलकुच चुप हो गये थे और फिर दूसरी बात करने लगे थे।''

''तो भी, पूछना तो चाहिए था तुम्हें।''

''हाँ!'' अंगद नाटकीय स्वर में बोला- ''और फिर प्रताड़ित होना चाहिए था उनसे!''

''चल अच्छा, मैं ही पूछ लूँगा। चल मेरे साथ।'' हनुमान अंगद का हाथ पकड़कर लगभग खींचते हुए बोल पड़े।

''ठहरो बजरंग!'' जाम्बवान ने अपनी बाँह अंगद के कंधे पर फैलाकर, उसे अपने साथ लपेटते हुए हनुमान को रोक दिया- ''ऐसा अधैर्य तुम्हें शोभा नहीं देता।''

''तब?... तब क्या करूँ मैं? अब मैं और प्रतीक्षा नहीं कर सकता।''

''प्रतीक्षा तो करनी ही पड़ेगी। तुम्हीं ने तो बताया था कि तुम्हारी मातामही ने कहा है कि उचित समय पर प्रभु स्वयं तुमसे मिलेंगे आकर।''

''कहा तो था।'' हनुमान हताश स्वर में बोले- ''परंतु... परंतु...''

''क्या परंतु?'' जाम्बवान हनुमान की व्यग्रता पर मुस्कुरा उठे।

''कैसी विवशता है! प्रभु के यहीं कहीं उपस्थित होने पर भी मैं उनसे भेंट नहीं कर सकता। उनके चरणों में अपनी कृतज्ञता ज्ञापित नहीं कर सकता!''

''हनुमान, नियति के खेलों के नियम, नियति ही निर्धारित करती है। तुम और हम प्रभु से तभी भेंट कर पायेंगे, जब प्रभु स्वयं चाहेंगे अथवा जब नियति चाहेगी।''

''तो क्या करूँ, यूँ ही हाथ पर हाथ धरे प्रतीक्षा करता रहूँ?''

''और कर भी क्या सकते हैं हम!''

''नहीं मैं प्रभु को खोजकर उनके दर्शन अवश्य करूँगा।''

''कदापि ऐसा मत करना।'' जाम्बवान कुछ तीव्र स्वर में बोले।

''किंतु...?''

''अच्छा एक कार्य कर सकते हो।'' हनुमान की छटपटाहट लक्ष्य कर जाम्बवान धीरे से बोले।

''शीघ्र कहिये!'' हनुमान फिर से जाम्बवान से बिलकुल सटकर बैठ गये और अपने हाथ से उनका घुटना हिलाते हुए पूछा।

''तुम एकाकी, किसी बहाने से दण्डकारण्य के गुरुकुलों में देख आओ। किंतु ध्यान रखना किसी को संदेह न हो कि तुम क्यों घूम रहे हो।''

''ठीक, किसी को संदेह नहीं होने दूँगा मैं।'' कहते हुए हनुमान ने उठने का उपक्रम किया किंतु जाम्बवान ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें पुनः बैठा लिया, बोले-

''इतनी व्यग्रता उचित नहीं होती। इस अवस्था में जाओगे तो अपने आपलोगों को शंका होने लगेगी कि क्या कारण है? यह बजरंग इतना उद्विग्न सा क्यों घूम रहा है?''

जाम्बवान का इतना कहना था कि हनुमान तीव्र प्रतिवाद के स्वर में बोल उठे-

"प्रभु ने मेरी मातामही का उद्धार किया है, इसके लिये मैं यदि उनके प्रति कृतज्ञता अनुभव करता हूँ और उनका दर्शन करना चाहता हूँ तो इसमें अस्वाभाविक क्या है? फिर भी यदि कोई संदेह करता है तो करता रहे, हनुमान लोगों के शंका करने के भय से, प्रभु के प्रति अपने कृतज्ञता-प्रदर्शन से विरत नहीं हो सकता।"

"स्वयं को शांत करो हनुमान! तुम तो अत्यंत धीर-गंभीर व्यक्ति हो। योग और समाधि में तुम्हारी विशेष गति है। तुम सहज ही स्वयं को इस उद्विग्नता से मुक्त कर सकते हो।" कहकर जाम्बवान ने हनुमान की पीठ थपथपायी।

"परंतु क्यों?" हनुमान ने अधीरता से प्रश्न किया।

"करो तो ...!"

जाम्बवान का आदेश था, हनुमान इसकी अवहेलना नहीं कर सकते थे। वे चुपचाप आँखें बन्द कर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे।

कुछ ही देर में वे सामान्य हो चुके थे।

"अब जाओ, किंतु अधिक जिज्ञासा दिखाने से बचना। प्रयास यही करना कि तुम्हारी गतिविधियों से किसी को कोई शंका न हो।"

"जी, ध्यान रखूँगा। मैं पूरी सतर्कता के साथ प्रभु को खोजूँगा।"

"खोज लेना तो भी दूर से ही उनके दर्शन करना। यदि देवी अहिल्या ने कहा था कि प्रभु स्वयं तुम्हें खोजेंगे, तो प्रकट में वही होने दो।"

"ठीक है!" हनुमान ने कह तो दिया किंतु उनके स्वर से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि वे इस परामर्श से तिल मात्र संतुष्ट नहीं हैं। उनके इस भाव को जाम्बवान ने भी अनुभव किया, उन्होंने फिर से चेताया-

"तुम्हारी मातामही ने यदि तुम्हें निषेध किया था, तो अकारण ही नहीं किया होगा। इस निषेध के पीछे उनका कुछ न कुछ गूढ़ मन्तव्य अवश्य रहा होगा। उनके मन्तव्य का सम्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है।"

"जी!" इस बार हनुमान का स्वर शांत था।

कहने के साथ ही वे जाने के लिये मुड़ गये। तभी उन्हें पीछे से उत्साह से भरा अंगद का स्वर सुनाई दिया-

"मैं भी चलूँ भइया?" कहते-कहते वह भी दौड़कर हनुमान के बराबर में आ गया था। हनुमान कुछ कहते उससे पहले ही जाम्बवान का स्वर उभरा-

"नहीं! हनुमान को एकाकी ही जाने दो।"

"जाने दो न बाबा!" अंगद ठुनका।

"नहीं, मैंने तुझे पहले भी मना किया था। आने में यदि विलम्ब हुआ तो महाराज को क्या उत्तर देगा तू?"

बात सही थी। अंगद को प्रतिवाद में कोई तर्क नहीं सूझा तो वह मुँह बिसूरता हुआ बोला-

"छोटे होने से सदैव हानि ही होती है, अपने मन से कुछ कर ही नहीं सकते।" उसकी बात से इस गंभीर हो गये वातावरण में भी सब मुस्कुरा उठे।

हनुमान भी हँसते हुए तीव्र वेग से ढलान पर उतरने लगे। पीछे जाम्बवान चिल्लाये-

"अधिक विलम्ब मत करना। कल तक अवश्य लौट आना।"

"यह कैसे संभव होगा काका, पता नहीं कितना समय लगे प्रभु को खोजने में।" हनुमान ने बिना रुके उत्तर दिया।

"बजरंग की क्षमताओं से हम परिचित हैं। प्रभु को खोजने में तुम्हें समय नहीं लगेगा।"

इस बार जाम्बवान को कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। उत्तर देने के लिये हनुमान वहाँ थे ही नहीं।

जाम्बवान अब अंगद की ओर घूमे-

"तुम भी किसी से कोई चर्चा मत करना इस विषय में।"

अंगद ने सहमति में सिर हिला दिया।

13.अयोध्या

राम को वन गये सात वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इन वर्षों में भरत की दिनचर्या वही रही थी जो उन्होंने पहले दिन अंगीकार की थी। वे आज भी प्रातः नित्य कर्म से निवृत्त होकर सभा भवन आते थे। वहाँ सिंहासनारूढ़ राम की पादुकाओं को प्रणामकर उनसे अनुमति और आशीष लेते थे, और तब वापस नंदीग्राम आकर दिन भर वहीं से समस्त प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते थे। सायंकाल पुनः सभाभवन आकर पादुकाओं को दिन भर के अपने क्रियाकलापों का विवरण देते थे और फिर रात्रि में नंदीग्राम वापस आकर सन्यासियों के समान भूमि पर मात्र कुश के बिछौने पर शयन करते थे। उनकी वेशभूषा, उनका आहार-व्यवहार सब कुछ सन्यासियों के समान ही था।

भरत के निर्देशानुसार, शत्रुघ्न निवास तो प्रासाद में ही कर रहे थे, किंतु उनका वहाँ जाना रात्रि में ही संभव होता था, शेष सम्पूर्ण दिवस वे भरत के सान्निध्य में ही व्यतीत करते थे। प्रासाद में अपनी पत्नी श्रुतिकीर्ति के साथ निवास करते हुए भी उन्होंने अपने तीनों अग्रजों के समान ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हुआ था।

कौशल्या अत्यंत वृद्ध प्रतीत होने लगी थी अब। आयु तो थी ही किंतु पीड़ा ने वार्धक्य की रेखाओं को और घनीभूत कर दिया था।

राम के निर्देशानुसार कैकेयी को अब अयोध्या में पूरा सम्मान प्राप्त था किंतु प्रजा के हृदय में उसके प्रति जो असीम घृणा घर कर चुकी थी, उसे कोई भी राजकीय आदेश कैसे निष्प्रभावी कर सकता था! कैकेयी स्वयं भी सांसारिक मोह-माया से विरक्त हो चुकी थी। अपने अधिकारों और दायित्वों दोनों के प्रति ही अब वह उदासीन थी।

सुमित्रा अवश्य अपेक्षाकृत सहज थी। उसकी आयु भी तो इन दोनों की अपेक्षा बहुत कम थी। वैसे भी वह सदैव से ही मितभाषिणी परंतु अधिक मननशील थी।

तीनों वधुओं ने स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार समायोजित कर लिया था। माण्डवी, उर्मिला और श्रुतकीर्ति तीनों की ही तपस्या अपने-अपने स्थान पर अत्यंत कठोर थी, परंतु तीनों सहज भाव से और सम्पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही थीं।

गुरुदेव अब अत्यंत शिथिल हो गये थे। उनकी सदैव तनी रही कटि अब झुकने लगी थी। महामात्य जाबालि चित्रकूट से वापसी के बाद से ही राजकीय कार्यों से उदासीन हो गये थे। भरत जब भी उनसे उनकी उदासीनता के विषय में प्रश्न करते थे, वे स्वास्थ्य ठीक न होने का बहाना बना देते थे। उन्होंने कई बार भरत से निवेदन किया था कि अब उन्हें कार्यमुक्त कर दिया जाये परंतु भरत ने उनका निवेदन स्वीकार नहीं किया था, वे पिता के समय से चली आयी व्यवस्था में अपने स्तर से कोई परिवर्तन नहीं करना चाहते थे। महामात्य जाबालि की उदासीनता के कारण अमात्य सुमन्त्र ही अब राजकीय विषयों में भरत के प्रधान सहयोगी थे।

सभासदगण, गणमान्य नागरिक और आमजन भी पुनः अपने सामान्य जीवन में व्यस्त हो गये थे। आरम्भ में सबको भरत के प्रति आशंकायें थीं किंतु समय ने सारी आशंकाओं को निर्मूल सिद्ध कर दिया था।

राज्य का कट्टरतावादी प्रकृति का ब्राह्मण वर्ग अब अपने लिये उचित अवसर समझ रहा था। यह वर्ग शम्बूक के उदय के आरम्भ से ही अत्यंत क्षुब्ध था। अभी तक जाबालि की उपस्थिति और गुरुदेव के उन्हें मौन समर्थन के कारण यह वर्ग विवश था। स्वयं सम्राट् दशरथ ने भी, सहमत न होते हुए भी, कभी गुरुदेव की इच्छा के विरुद्ध शम्बूक पर कोई प्रतिबंध लगाने का साहस नहीं किया था। महाराज दशरथ की मृत्यु हो चुकी थी, गुरुदेव शिथिल हो गये थे और महामात्य निष्क्रिय हो गये थे अतः इस वर्ग को प्रतीत होता था कि अब शम्बूक को संरक्षण देने वाला कोई शेष नहीं बचा था।

शम्बूक बदली हुई परिस्थितियों में स्वयं भी सशंकित था, किंतु फिर भी वह अपने दायित्वों का सदैव की भाँति ही निर्वहन किये जा रहा था।

अयोध्या के बड़े मठ के महंत जी जाबालि की उदासीनता और गुरुदेव की शिथिलता से सर्वाधिक प्रसन्न थे (देखें - पूर्व-पीठिका)। उस समय महन्त जी का दोष सिद्ध हो जाने पर भी, महामात्य जाबालि न तो उन्हें कोई कठोर दण्ड दिलवा पाये थे और न ही उन्हें ब्राह्मणत्व से च्युत करने का कोई मार्ग खोज पाये थे। अतिथियों के समान कुछ माह राजकीय अभिरक्षा में रहने के उपरान्त महन्त जी मुक्त हो गये थे। दण्ड के नाम पर उन्हें मात्र कुछ अर्थदण्ड भुगतना पड़ा था। वह भी राज्य ने नहीं लिया था, जिन व्यक्तियों को महन्त जी ने ठगा था, उन्हें दिलवाया गया था। उन व्यक्तियों ने राज्य द्वारा निर्धारित की गयी राशि, महन्त जी से प्राप्त की भी थी अथवा नहीं, यह सुनिश्चित हो पाना संभव नहीं था। दण्ड के रूप में महन्त जी ने अगर कुछ भुगता था तो वह यही था कि उस प्रकरण से उनके सम्मान को ठेस पहुँची थी। उसके बाद मठ की आय भी कम हो गयी थी।

अब परिस्थितियों को अनुकूल जानकर उन्होंने अपने समर्थकों को एकत्र करना आरम्भ कर दिया था और प्रहार करने के लिये उचित समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। पं० जगन्नाथ (देखें - राम) उनके सर्वाधिक निकट के सहयोगी बन चुके थे। उनकी शिखा आज भी शम्बूक से प्रतिशोध की प्रतीक्षा कर रही थी। उसमें आज तक पंडित जी ने गाँठ नहीं लगायी थी।

***

उस दिन पौ फटते ही पं० जगन्नाथ महन्त जी के मठ पर जा पहुँचे। वहाँ जाकर पता चला कि महन्त जी तो अभी सोकर ही नहीं उठे हैं। पंडित जी को महन्त जी का इतनी देर से उठना कुछ अस्वाभाविक सा प्रतीत हुआ। उनके मन में विचार आ रहा था कि महन्त जी को तो भोर में शीघ्र ही उठ जाना चाहिए, इतनी सारी पूजा जो करनी होती है।

''स्वास्थ्य तो ठीक है न महन्त जी का?'' उन्होंने एक सेवक से चिंता जताते हुए पूछा।

''जी, पंडित जी, वे पूर्ण स्वस्थ हैं।''

''तब फिर इतना विलम्ब क्यों हो गया आज?''

''यह तो उनका नित्य का नियम है। आप विराजिए, बस उठने वाले ही होंगे अब तो।'' सेवक ने आकाश में सूर्य की स्थिति पर एक दृष्टि डालते हुए उत्तर दिया। पंडित जी बैठ गये। सेवक उनके लिये कुछ जलपान की व्यवस्था करने चला गया।

''कहिये तो उठाऊँ महन्त जी को, वैसे क्रोध करेंगे।'' जलपान लाकर पंडित जी के सामने एक पीठिका पर रखते हुए सेवक ने हिचकते हुए पूछा।

''रहने दो, क्यों उनके क्रोध का भाजन बनोगे।'' जलपान सामने था तो पंडित जी को अब शीघ्रता नहीं थी। सेवक पुनः अपने कार्य देखने चला गया।

पंडित जी ने जब तक जलपान की सामग्री उदरस्थ की, महन्त जी भी उठ गये। वे अपने कक्ष से बाहर आये तो पंडित जी को प्रतीक्षा करते पाया।

''अरे जगन्नाथ जी, इतनी भोर में'', महन्त जी ने चकित होते हुए पूछा- ''कुछ विशेष है क्या?''

''नहीं, विशेष कुछ नहीं। बस सोचा कि बहुत दिनों से आपके दर्शन प्राप्त नहीं किये, तो चला आया।''

''वो तो अच्छा किया, किंतु इतनी भोर में?'' महन्त जी की शंका का समाधान अब भी नहीं हुआ था।

''दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होते ही सोचा कि आज प्रथम कार्य आपके दर्शन प्राप्त करने का ही किया जाये।''

''तो फिर थोड़ी सी प्रतीक्षा और कीजिये, मैं भी निवृत्त हो लूँ।''

पण्डित जगन्नाथ भलीभाँति समझते थे कि यदि महन्त जी दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने चले गये, तो कम से कम एक मुहूर्त का समय तो और लगेगा ही, अधिक भी लग जाये तो कोई बड़ी बात नहीं। अतः हड़बड़ाकर बोले-

''अरे अधिक नहीं, मात्र कुछ पल समय लूँगा आपका।''

''अच्छा कहिये तो फिर! वैसे यदि प्रतीक्षा कर लेते तो फिर चैन से वार्ता होती'', महन्त जी ने आग्रह किया- ''कितने दिन बाद तो आये हैं आप... जलपान और मँगाऊँ तब तक?''

''अरे नहीं, अभी तो किया ही है, घर से भी करके ही चला था।''

''तो आरम्भ कीजिये बिना औपचारिकता के।'' महन्त जी हँसते हुए बोले- ''आप जानते ही होंगे कि प्राकृतिक आवाहन (मल-त्याग) का वेग रोका नहीं जा सकता।''

''सो तो है।'' पंडित जी ने भी हँसी में महन्त जी का साथ दिया। महन्त जी एक दूसरी पीठिका पर बैठकर पंडित जी के मुख की ओर ताकने लगे।

''महन्त जी, इस शम्बूक के विषय में भी सोचिये कुछ'' महन्त जी के ताकने का तात्पर्य समझते हुए पंडित जी सीधे विषय पर आ गये।

''आपने कुछ सोचा है?''

''अरे'', पंडित जी चापलूस हँसी हँसते हुए बोले- ''अगर मैं कुछ सोच पाया होता तो आपको कष्ट क्यों देता। मेरे पास न तो आप जैसी बुद्धि है, न ही संसाधन।''

''चलिये, सोचते हैं। कुछ तो करना ही पड़ेगा, जाबालि ने बहुत अपमान किया था मेरा।''

''उसी का तो फल भोग रहे हैं। सुना है कुमार राम ने चित्रकूट में उन्हें बहुत प्रताड़ित किया था।'' पंडित जी ने आग को भड़काने का प्रयास करते हुए कहा।

उत्तर में महन्त जी एक ठंडी आह भरते हुए बोले-

''हाँ, सुना तो मैंने भी है। बस यही कष्ट है कि उस पूरे दृश्य को अपने नेत्रों से देखने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। आह! कैसा अपूर्व दृश्य रहा होगा, देख लेता तो हृदय का दाह कुछ तो शांत हो गया होता।''

''आप गये ही नहीं थे। गये होते तो आप भी देखते।''

''पंडित जी, उस घटना के बाद से कुछ अच्छा नहीं लगता। यही सोचा था कि यदि जाऊँगा तो उस जाबालि को देख-देख कर हृदय में कुढ़न ही होगी। मुझे क्या स्वप्न आया था कि राम जैसा सुशील और शांत रहने वाला कुमार जाबालि को इस प्रकार प्रताड़ित भी कर सकता है। वैसे आप तो गये थे, आप ही कौन सा देख पाये।''

''मेरी और आपकी स्थिति में अन्तर है। मैं तो प्रजा की भीड़ में पीछे था, आप बड़े मठ के महन्त हैं, आपको तो आगे विशिष्ट जनों में स्थान मिला होता।''

''किन्तु तब उस जाबालि के पास खड़ा होना पड़ता और मैं तो उस कापालिक का मुख तक नहीं देखना चाहता। घृणा हो गयी है उससे।''

''खैर छोड़िये इस प्रकरण को, उस घटना के बाद से तो वे वैसे ही राजसभा से एक प्रकार से निष्कासित से ही हैं। अब तो नाम के लिये ही महामात्य रह गये हैं। सुना है लज्जा के कारण अब वे राजसभा में आते भी नहीं हैं।''

''किस मुँह से आयेगा। सबके सम्मुख युवराज ने इतना अपमान कर दिया था, क्या मुँह दिखायेगा किसी को!'' महन्त जी घृणा से बोले।

''शम्बूक को ठिकाने लगाने का यही उचित अवसर है, महन्त जी! शम्बूक ठिकाने लग गया तो समझिये महामात्य भी लग गये।'' पंडित जी ने उचित अवसर जानकर प्रस्ताव किया।

''क्या योजना है आपकी? कुछ न कुछ तो अवश्य ही विचार किया होगा।'' महन्त जी ने गेंद वापस पंडित जी के ही पाले में डाल दी।

''इसमें योजना क्या बनानी है। मेरे विचार से तो महाराज भरत के सम्मुख परिवाद रखने से ही हमारा कार्य सिद्ध हो जायेगा। उसके पक्षधर दो ही तो थे

स्वयं महामात्य और गुरुदेव। महामात्य तो अब न होने के समान हैं और गुरुदेव भी अब राजकीय कार्यों में रुचि नहीं लेते। सम्पूर्ण राज-परिषद में उसका पक्ष लेने वाला अब कोई नहीं है।''

''कोई भी कुलीन व्यक्ति ऐसे अहंकारी शूद्र का पक्षधर हो भी कैसे सकता है!'' महन्त जी वितृष्णा से टिप्पणी की।

''तो निश्चित कीजिए, कब चलना है। मेरे विचार से तो महाराज से इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि यह शूद्र होकर भी वेदपाठ करता है। यदि ऐसे वेद द्रोही व्यक्ति को तत्काल कठोरतम दण्ड नहीं दिया गया तो देश से धर्म का नाश हो जायेगा।'' पंडित जी ने मार्ग सुझाया।

''वेदपाठ करता ही नहीं, अन्य शूद्रों से भी करवाता है। उन्हें भड़काता है ब्राह्मणों के विरुद्ध।'' महन्त जी ने मार्ग को और प्रशस्त किया।

''पं० त्रिलोचन (देखें राम) को भी यदि कुछ दण्ड दिलवाया जा सकता तो मन को सन्तोष प्राप्त होता। जाने क्या समझते हैं स्वयं को, जैसे वे ही सबसे बड़े न्यायाधीश हो।'' पं० जगन्नाथ ने अपने मन की भड़ास निकाली।

''वह तो संभव नहीं होगा। आपने प्रयास किया तो था।''

बतरस का अपना ही अलौकिक आनंद होता है। उस पर भी यदि वार्ता का विषय परनिंदा हो तब तो फिर कहना ही क्या, ऐसे में व्यक्ति सब कुछ भूल जाता है। यहाँ तो तीसरा कारण भी था, दोनों के साझा शत्रु महामात्य जाबालि, जो अभी तक अजेय प्रतीत होते थे, आज उन्हें पराजित कर पाने की संभावना दिखाई दे रही थी। यह इस आनन्द का ही चमत्कार था कि इस धरती के जीवधारियों के लिये जो सर्वाधिक कठिन कार्य होता है, शौच के दबाव को टाल पाना, महन्त जी के लिये उस दिन वह भी सहज हो गया। शौच की आवश्यकता उन पर तब तक दबाव नहीं बना पायी, जब तक दोनों ने अगले ही दिन, दल-बल सहित जाकर महाराज भरत के सम्मुख अपना निवेदन प्रस्तुत करने का निर्णय नहीं कर

लिया। दोनों का विचार था कि इस कार्य हेतु सहजता से ही वे न्यूनतम सौ ब्राह्मणों को तो एकत्र कर लेंगे।

दोनों का विचार आधारहीन भी नहीं था। दूसरे दिन जब धर्म-ध्वजवाहक ये दोनों व्यक्ति महाराज भरत से भेंट करने नंदीग्राम पहुँचे, तो उनके साथ डेढ़ सौ से अधिक, अत्यन्त उत्साहित ब्राह्मणों की भीड़ थी।

भरत से इन लोगों की भेंट आरंभ में तो इनका उत्साह बढ़ाने वाली ही थी। भरत ने पूरे आदर से उनका सत्कार किया। वे इनके तर्कों से भी सैद्धान्तिक रूप से सहमत थे। शूद्रों का वेदाध्ययन और अध्यापन उनके मन को भी असंतुष्ट कर रहा था। परंतु जब शम्बूक के विरुद्ध कठोर दण्ड, जो कि मृत्युदंड ही हो सकता था, पारित करने की बात आयी तो भरत ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया।

ऐसा नहीं था कि भरत ऐसे आदेश की आवश्यकता के विरुद्ध थे, वे सहमत थे। ऐसा भी नहीं था कि आज गुरुदेव अथवा जाबालि उनका विरोध करने की स्थिति में थे, दोनों ही स्वेच्छा से स्वयं को राजकीय दायित्वों से पृथक कर चुके थे। वस्तुतः भरत स्वयं को सार्वभौम शासक नहीं मानते थे, वे तो स्वयं को मात्र भ्राता राम का प्रतिनिधि ही मानते थे। ऐसे में पिता द्वारा स्थापित व्यवस्था को पलटने का अधिकारी भी वे स्वयं को नहीं मानते थे। उनका तर्क था कि, क्योंकि शम्बूक के अध्ययन और अध्यापन को स्वयं महाराज दशरथ ने वर्जित नहीं किया था, इसका सीधा सा अर्थ यही था कि इसमें उनकी सहमति थी। ऐसे में उनकी सहमति के विरुद्ध आदेश उनका उत्तराधिकारी ही पारित कर सकता था, जो कि अयोध्या के वर्तमान सार्वभौम शासक, उनके अग्रज श्रीराम थे। इसीलिये उन्होंने महन्त जी के सारे तर्कों से सहमत होते हुए भी उनका इच्छित आदेश स्वयं पारित न कर उन्हें वास्तविक महाराज के आगमन तक प्रतीक्षा करने की सलाह दे डाली।

उत्साह से झूमता गया यह दल अंततः मुँह बिसूरते हुए वापस लौट आया। जो भरत कुछ समय पूर्व तक महान शासक थे, स्वार्थसाधन में इनके सहयोगी न बन पाने के कारण अब अत्यंत अयोग्य एवं निकृष्ट शासक हो गये थे।

वापसी के मार्ग में महन्त जी ने बुझे मन से टिप्पणी की-

"मैं तो इस भरत को अत्यंत बुद्धिमान और योग्य शासक समझता था, यह तो निरा मिट्टी का लोंदा निकला।"

पं० जगन्नाथ भी आह भरते हुए बोले-

"तभी तो महाराज संविदा का उल्लंघन करके भी युवराज राम का ही राज्याभिषेक करना चाहते थे। जैसी ढोंगी माता है, वैसा ही पुत्र भी निकला।"

"धीरज धरिये जगन्नाथ जी", साथ गये एक व्यक्ति ने पंडित जगन्नाथ को दिलासा दी- "चींटी का भी दिन आता है, जब वह हाथी की सूँड़ में घुसकर उसे परास्त कर देती है। ये शम्बूक भी वही चींटी है। महाराज राम के वनवास का आधा समय तो व्यतीत हो ही गया है। उनके आते ही शम्बूक और जाबालि इन दोनों को ही इस जगत से विदा होना ही पड़ेगा।"

जाबालि राजकार्य से उदासीन हो गये थे इसका यह तात्पर्य नहीं कि उनकी सत्ता पर पकड़ शिथिल पड़ गयी थी। आज भी अमात्य-मंडल में उनके अनेक मित्र और शुभचिंतक थे। उन्हें उसी दिन सम्पूर्ण प्रकरण ज्ञात हो गया परंतु अपनी उदासीन मनस्थिति में उन्होंने इसकी भी उपेक्षा कर दी। उन्होंने मात्र इतना किया कि शम्बूक को चेतावनी दे दी कि आमागी समय उसके लिये अत्यंत संकटकारी सिद्ध होने वाला है।

शम्बूक प्रत्येक संभावित संकट के लिये मानसिक रूप से तैयार था। उसे आरम्भ में ही कहा गया जाबालि का वह कथन अभी तक स्मरण था कि उसके लिये अध्ययन कटार की धार पर चलने वाला सिद्ध होगा, परंतु यदि वह इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो शूद्रों की समाज में नियति बदलने वाला भी सिद्ध होगा, युगों-युगों तक उसका नाम स्मरण किया जायेगा। परिणाम जो भी हो, वह इस कटार की धार पर चलने को पूर्ण रूपेण तत्पर था। अन्य कोई उपाय भी तो नहीं था। इस मार्ग पर अब वह इतना आगे बढ़ आया था कि वापस लौटने का विचार करना भी संभव नहीं था।

14. किष्किंधा

विगत कुछ वर्षों में किष्किंधा में बहुत कुछ बदल गया था।

सुग्रीव के मन में बहुत दिनों तक बड़े भाई के लिये कोई वैमनस्य नहीं था। उसने बालि और तारा का भरपूर स्नेह भोगा था और वह स्नेह उसे आज भी सान्त्वना देता था कि एक न एक दिन वही स्नेह पुनः अग्रज के क्रोध पर विजय प्राप्त करेगा। परंतु जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते जा रहे थे, उसके मन में हताशा उत्पन्न होती जा रही थी और अब यह हताशा धीरे-धीरे बालि के प्रति असंतोष में परिणत होने लगी थी। फिर भी अभी तक उसके मन में बालि का स्थान लेने की महत्वाकांक्षा ने जन्म नहीं लिया था।

बालि ने जब सुग्रीव को किष्किंधा से निष्कासित किया था तब जन-सामान्य ने भी इसे गम्भीरता से नहीं लिया था। भाइयों के मध्य विवाद होने और उस विवाद में सिर-फुटौवल हो जाने में ऐसा कुछ भी नहीं था जिसे लोग कोई बहुत बड़ी दुर्घटना मानते। लोगों ने यही माना था कि यह थोड़े दिन का झगड़ा है, बालि का क्रोध उतरेगा तो झगड़ा भी मिट जायेगा और सुग्रीव एक बार पुनः किष्किंधा के युवराज के रूप में उनके मध्य होगा। परंतु ऐसा हुआ नहीं। वर्ष-वर्ष करते हुए ढाई दशक व्यतीत हो गये परंतु अभी तक बालि का क्रोध नहीं उतरा था। सुग्रीव आज भी बड़े भाई के भय से ऋष्यमूक पर्वत पर निवास कर रहा था। दूसरी ओर रूमा किष्किंधा के प्रासाद में ही निवास कर रही थी।

ऐसे में जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जा रहा था, किष्किंधा की जनता के मन में इस विषय को लेकर शंका का कीड़ा कुलबुलाने लगा था। व्यतीत होते प्रत्येक दिवस के साथ इस कीड़े का प्रकोप प्रबलतर होता जा रहा था।

इस चर्चा में सत्यता रंचमात्र भी नहीं थी, सुग्रीव को निष्कासित करते समय बालि ने स्नेहवश ही रूमा को किष्किंधा में रहने को बाध्य किया था परंतु अब लोगों को इस बात पर विश्वास नहीं रहा था। वे अब बालि को अपनी अनुज-वधू

के साथ दुराचार का दोषी मानने लगे थे। रूमा की दयनीय अवस्था के विषय में जो समाचार छन-छन कर जनता के मध्य पहुँचते थे, वे उनके मन में कुलबुला रहे कीड़े के पोषण का कार्य कर रहे थे।

इस सम्बन्ध में पहले-पहल किसने कल्पना की थी, यह किसी को ज्ञात नहीं था, परंतु विगत वर्षों में यह कल्पना दिन दूनी-रात चौगुनी की गति से फैली थी। अब तो स्थिति यह हो गयी थी कि बालि के अन्धभक्तों के अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण जनमानस इस चर्चा पर विश्वास कर चुका था।

किष्किंधा के सारे अमात्यगण भी इस चर्चा से परिचित थे और उनमें से कई धीरे-धीरे इस संभावना पर गम्भीरता से विचार भी करने लगे थे। गम्भीरता से विचार करने पर उन्होंने इस चर्चा में सत्यता के अंश भी खोजने आरम्भ कर दिये थे। तिल का ताड़ बन जाता है यह सबको ज्ञात था परंतु वे यह भी मानते थे कि ताड़ बनाने के लिये भी तिल का अस्तित्व तो आवश्यक होता ही है। उन्होंने बालि को कभी भी रूमा के कक्ष की ओर जाते नहीं देखा था, परंतु वह सम्राट् था, उसके लिये उनसे छिपकर कुछ करना कौन सा असंभव कार्य था!

चर्चा चारों ओर फैल चुकी थी, तथापि बालि से इस विषय में वार्ता करने का साहस किसी में नहीं था; फिर भी जैसे-जैसे लोगों को इस पर विश्वास होता जा रहा था, वैसे-वैसे राज्य में बालि के विरोधियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। अनुज वधू पर कुदृष्टि किष्किंधा के सरलमना नागरिकों के लिये अक्षम्य अपराध था। जैसे-जैसे लोगों के मन में बालि का विरोध बढ़ रहा था, स्वाभाविक रूप से सुग्रीव के प्रति लगाव भी बढ़ रहा था। यद्यपि इस लगाव के चलते बालि से बैर मोल लेने का साहस किसी में नहीं था, तथापि प्रजा का मूक समर्थन भी आवश्यकता पड़ने पर अत्यंत सार्थक सिद्ध होता है। समय आने पर हुआ भी।

किष्किंधा में सुग्रीव की बढ़ती लोकप्रियता के पीछे एक कारण और था। पिता की मृत्यु के उपरांत बालि तो राजकीय दायित्वों में उलझ गया था परंतु सुग्रीव सदैव निर्द्वन्द्व ही रहा था। न तो उसने स्वयं कोई दायित्व लिया था और न

ही बालि ने, उसके प्रति स्नेह के चलते, उस पर कोई भार लादा था। इस कारण उसका प्रजा के साथ जुड़ाव बालि की अपेक्षा बहुत अधिक था। हनुमान के साथ उन्मुक्त भाव से वह प्रजा के बीच विचरता रहता था। सामान्य सी बात है, उसकी अनुपस्थिति में यह जुड़ाव लोगों को उसके पक्ष में मोड़ने में बड़ा सहायक सिद्ध हो रहा था। लोगों को उसकी और हनुमान की सहजता, सरलता और चंचलता रह-रह कर स्मरण हो आती थी। उस समय उनकी जो शरारतें लोगों को अखर जाया करती थी, अब वे ही बालसुलभ क्रीड़ायें बनकर उन्हें लुभाने लगी थी।

अंगद के कानों तक भी ऐसी चर्चाओं की सूचना पहुँची थी, वह पहले ही पिता द्वारा काका की प्रताड़ना और अन्ततः निष्कासन के कारण स्वयं को उनका अपराधी समझता था, यह सब सुनकर तो उसका हृदय ही डूबने लगा। वह भलीभाँति जानता था कि इस चर्चा में रंचमात्र भी सत्यता नहीं है, परंतु क्या करता, पिता से अथवा माता से कैसे कहता कि जनता में इस प्रकार की चर्चा फैल रही है। फिर भी उसने कई बार काका और काकी के विषय में पिता से वार्ता करने का प्रयास किया था, किन्तु सदैव ही बालि ने उसे चुप करा दिया। परिणाम स्वरूप वह पिता को दुराचार का दोषी भले ही नहीं मानता था परंतु दुराग्रह का दोषी अवश्य मानने लगा था। दुर्भाग्य यह था कि नारद की भविष्यवाणी के विषय में न तो उससे कभी बालि ने चर्चा की थी और न ही तारा ने।

परिस्थितियों के सम्मुख विवश अंगद हताश और उद्विग्न हो रहा था। उसकी यह उद्विग्नता सुग्रीव और हनुमान ने भी लक्ष्य की थी और कई बार कारण भी पूछा था। परंतु अंगद क्या कहता उनसे! कैसे कहता कि राज्य में उसके पिता और काकी के मध्य अनैतिक सम्बन्धों की चर्चा फैल रही है! बार-बार पूछे जाने पर उसने ऋष्यमूक जाना कम कर दिया।

यह चर्चा फैलाने में सुग्रीव या उसके सहयोगियों का कोई हाथ नहीं था। उन्हें तो अभी तक इस विषय में कुछ ज्ञात ही नहीं था। वस्तुतः सुग्रीव के सहयोगियों में एकमात्र हनुमान ही थे जो किष्किंधा जाते रहते थे, परंतु उनसे भी इस विषय में वार्ता करने का साहस अभी तक किसी ने नहीं किया था।

परंतु जो अभी तक नहीं हुआ था वह कभी न कभी तो होना ही था।

एक दिन, तीन दिन बाद हनुमान घर गये। वे आयें न आयें, घर में उनके लिये भोजन की व्यवस्था नित्य होती थी। दाल-सब्जी आदि बनाकर चौके में चूल्हे की बगल में सुलगते उपलों की राख पर रख दी जाती थी। रोटियाँ यदि वे आ जाते थे तो ताजी सेंक दी जाती थी।

उस दिन मध्याह्न से कुछ पूर्व ही जब वे घर पहुँचे तो माता अंजना अभी चौके में ही थी। पिता खाना खा रहे थे।

''ए बजरंग!'' जैसे ही मंगला ने हनुमान के आगमन की सूचना दी, अंजना ने चौके से ही चिल्लाकर आदेश दिया- ''तत्काल नहा कर आ जा चौके में। मैं तेरी प्रतीक्षा में सारा दिन नहीं बैठी रहूँगी चूल्हे के पास।''

''अभी भूख नहीं है माता।'' हनुमान ने पास आते हुए खिलंदड़ेपन के साथ उत्तर दिया।

चारों ओर अब तक हनुमान की ख्याति एक अत्यंत गम्भीर और विचारशील व्यक्ति के रूप में फैल चुकी थी, परंतु माता के सामने वे अभी भी बालक ही बन जाते थे।

''मत होने दे भूख'', अंजना कुछ क्रोध और कुछ क्रोध के दिखावे में चिल्लाई- ''मैं भी बूढ़ी हो गयी हूँ अब। मेरे शरीर में शक्ति नहीं रही सारा दिन तेरे भोजन करने की प्रतीक्षा में चौके में बैठे रहने की।''

''अरे बहुत शक्ति है तुझमें अभी, और यदि थक जाती है तो मौसी को क्यों नहीं करने देती कार्य तू?''

''बावला है तू तो, जो कह रही हूँ वह कर। मेरी चिंता करता है तो विवाह क्यों नहीं कर लेता, ताकि मेरा हाथ बँटाने वाली आ जाये!''

''बावला मैं नहीं, तुम हो गयी हो अम्मा'', हनुमान खुलकर हँसते हुए बोले- ''मेरी भला अब विवाह की आयु रही है, वो तो कब की बीत चुकी।''

''मारूँगी अभी निकलकर, यदि अनर्गल प्रलाप किया तो... अभी आयु कहाँ निकल गयी तेरी!''

''तेरे पुत्र के विवाह के लिये क्या समय-चक्र चलना त्याग देगा। पैंतालीस बरस से अधिक हो चुकी है मेरी आयु... गिन के देख ले चाहे।''

''अच्छा उपहास बन्द कर और शीघ्र स्नान करके आ।'' अंजना बड़बड़ाई। बड़बड़ाने के साथ ही उसकी आँखें भीग गयीं। हनुमान ने भी इसे लक्ष्य किया और इस खिलवाड़ को तत्काल स्थगित कर स्नान करने चल दिये। उनके कपड़े देने के बहाने मंगला उनके पीछे-पीछे गयी और अत्यंत मंद स्वर में बोली-

''भोजन के उपरांत तनिक पीछे आ जाना, अत्यंत आवश्यक वार्ता करनी है तुझसे।''

''अभी बोलो न मौसी!'' मंगला के स्वर में चिंता और रहस्य का पुट देख हनुमान की भौहें भी कुछ सिकुड़ गयी, व्यग्रता में उनका स्वर कुछ तीव्र हो गया।

''श्श्श्श्'' मंगला ने तत्कान अपने होठों पर उँगली रखते हुए उन्हें मौन रहने का संकेत दिया- ''जो कहा है सो करो। जीजी के कानों में भनक नहीं पड़नी चाहिए।''

मंगला के इस आचरण से हनुमान का सारा खिलंदड़ापन कपूर की भाँति उड़ गया। उन्होंने शीघ्रता से स्नान किया, झटपट भोजन किया और हाथ धोकर, आगे से चक्कर काटते हुए घर के पिछवाड़े की फुलवारी की ओर बढ़ गये। मंगला उनकी प्रतीक्षा में, पहले से ही वहाँ उपस्थित थी, हनुमान को देखते ही बोली-

''बजरंग, कल प्रभासिनी मिली थी मुझे मंदिर के मार्ग में।''

''कौन प्रभासिनी?'' हनुमान ने सहज भाव से प्रश्न किया। एक तो उन्हें वैसे ही स्त्रियों में कोई रुचि नहीं थी, दूसरे दीर्घ अवधि से वे अधिकांश समय तो ऋष्यमूक पर ही रहते थे, उन्हें भला किसी प्रभासिनी की सुध कैसे होती!

''अरे, वह अपने विशेष की पत्नी... वह जो शिव मंदिर के पास रहता है!!'' मंगला ने समझाने का प्रयास किया।

''छोड़ो उसे, बात क्या हुई सो बताओ।'' हनुमान को स्त्री का परिचय जानने की कोई उत्सुकता नहीं थी वे तो व्यग्र थे उस रहस्य को जानने के लिये जो मंगला उद्घाटित करने वाली थी।

''ऐसी बात कह रही थी जो कहते भी लज्जा आती है।''

''अब बात को अकारण खींचो मत, सीधे से बता डालो। यदि कहते लज्जा आती थी तो फिर छेड़नी ही नहीं चाहिए थी।'' हनुमान ने कुछ तुनकते हुए उत्तर दिया।

''तनिक भी धैर्य नहीं है तुझमें'', मंगला उन्हें झिड़कते हुए बोली- ''बड़ी भयंकर बात कह रही थी।''

''बताओगी तब तो जानूँगा कि भयंकर थी अथवा नहीं!'' हनुमान ने अपनी अधीरता पर नियंत्रण पाने का प्रयास करते हुए अपने स्वर को यथासंभव सामान्य रखते हुए कहा।

''कह रही थी कि सम्पूर्ण नगर में चर्चा व्याप्त है कि...'' कहते-कहते मंगला बीच में ही अटक गयी।

उसके इस प्रकार अटकने से हनुमान कुछ खीजते हुए बोले-

''क्या कि... ? अब अधिक रहस्य मत बनाओ, बोल डालो।''

''कि...'', मंगला फिर थोड़ा सा झिझकी पर इस बार उसने बोल ही दिया- ''महाराज बलात तुम्हारे सुग्रीव काका की पत्नी संग दुराचार करते हैं।''

''क्या???'' हनुमान लगभग चीख ही पड़े।

मंगला ने तत्काल अपनी हथेली उनके मुख पर जमा दी-

''धीरे से... दीदी सुन लेंगी तो उन्हें कितना कष्ट होगा!''

बात हनुमान की समझ में आयी... उन्होंने एक बार, एक पल के लिये अपनी पलकें बंद की और अगले ही पल वे शांत थे। वे वही हनुमान बन गये थे, जैसे वे विख्यात थे। स्वयं को शांत करने के उपरांत वे गंभीर स्वर में बोले-

''पहली बात तो मौसी, यह जो कुछ भी उस स्त्री ने कहा है आपसे, वह सब नितांत मिथ्या है। ऐसा कुछ होता तो पिताजी के संज्ञान में अवश्य आया होता और उन्होंने उसका विरोध भी किया होता। फिर अंगद भी लगभग नित्य ही मिलता है हमलोगों से, वही कोई उल्लेख करता। परंतु... परंतु...'' कहते-कहते हनुमान भी कुछ अटक गये।

''क्या परंतु?'' अब मंगला ने प्रश्न किया।

''विगत कई माह से अंगद कुछ उद्विग्न सा तो दिखाई पड़ता है। कुछ माह से उसने उधर आना भी कम कर दिया है, विगत तीन दिनों से नहीं आया। कुछ पूछो तो कुछ न कुछ बहाना बना देता है।'' हनुमान सोचते हुए बोले।

''तो तुम उसे खोजकर बात करो। यदि जनचर्चा मिथ्या प्रलाप है तो इसके प्रवाह को अवरुद्ध करना चाहिए।''

''देखता हूँ कुछ'', हनुमान भी चिंतित हो उठे थे। उन्होंने पूछा- ''वैसे क्या कह रही थी वह, कब से फैल रही है यह चर्चा?''

''उसके कथनानुसार तो वर्षों से'', मंगला ने उत्तर दिया- ''कहती थी कि उसे तो वर्षों पूर्व ही उसके पति ने बताया था। उसे तो विश्वास ही नहीं हो रहा था कि हमलोगों को इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है, बोली कि ऐसा कैसे संभव है, तुमलोग तो राजप्रासाद की सीमा में ही निवास करते हो, निश्चय ही तुम बात को छिपाने का प्रयास कर रही हो।''

***

हनुमान उसी समय घर से निकल पड़े। अंजना रोकती रही पर वे नहीं रुके। वैसे यह सामान्य बात थी, सदैव ही यही होता था अतः अंजना ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। निकलते ही हनुमान अंगद को खोजने में जुट गये।

प्रासाद में वह नहीं था।

''मतंगवन की ओर तो नहीं गया?'' हनुमान ने तारा से पूछा।

''क्या पता'', तारा ने उत्तर दिया- ''वह क्या बता कर जाता है!''

हनुमान वापस लौट पड़े।

''सुनो तो बजरंग, बात क्या है?'' तारा ने पीछे से पूछा।

''पता नहीं, विगत तीन-चार दिन से मिला नहीं, तो मैंने सोचा उसका हाल लेता चलूँ, कहीं अस्वस्थ न हो गया हो!''

''किष्किंधा का कोई वानर पहले भी कभी अस्वस्थ होता सुना है!'' कहकर तारा हँसी, परंतु जैसे अकस्मात कोई अवरोध आ गया हो, झटके से उसकी हँसी रुक भी गयी। कुछ उदास स्वर में बोली- ''सोचना तुम्हारा भी सही है। अस्वस्थ तो वह है, शारीरिक नहीं परंतु मानसिक रूप से अस्वस्थ है। बहुत उद्विग्न रहता है विगत कुछ दिनों से। समझ नहीं आता क्या कारण है।''

''मातुल से कोई विवाद हुआ क्या?''

''जब से सुग्रीव गया है, उन दोनों में वार्ता ही कहाँ होती है जो विवाद होगा! वह तो जैसे अपने पिता से छिपता फिरता है।''

***

इसे संयोग ही कहेंगे कि जब हनुमान अंगद को किष्किंधा में खोज रहे थे तभी वह ऋष्यमूक की ओर गया हुआ था। जब किष्किंधा में अंगद हनुमान को कहीं नहीं मिला तो वे वापस लौट पड़े।

अंगद ऋष्यमूक पर ही था। संध्या होने वाली थी। अंगद अब वापसी के लिये प्रस्तुत था। सुग्रीव, जाम्बवान सभी साथ में थे, सभी अंगद को विदा करते हुए शिखर से थोड़ा नीचे तक उतर आये थे।

उसे देखते ही हनुमान लगभग चिल्लाते हुए ही बोले -

''तू यहाँ घूम रहा है और मैं वहाँ किष्किंधा में चारों ओर खोजता फिर रहा था।''

उत्तर में अंगद बस मुस्कुराकर रह गया। हनुमान को स्पष्ट प्रतीत हुआ कि उसकी मुस्कान भी सप्रयास ही थी।

अब तक हनुमान इन सब लोगों के झुंड तक पहुँच गये थे, जब अंगद ने कोई उत्तर नहीं दिया तो उन्होंने उसकी पीठ पर एक धौल लगाते हुए वातावरण में छाई गम्भीरता को तोड़ने का प्रयास करते हुए प्रश्न किया-

''इतने दिन क्यों नहीं आया रे?''

''आह!'' अंगद के मुँह से बरबस निकला, हनुमान द्वारा खेल में किया गया प्रहार भी साधारण नहीं होता था- ''भइया, सदैव उपहास अच्छा नहीं लगता।''

''अच्छा चल छोड़ दिया, किंतु यह तो बता इतने दिन क्यों नहीं आया?'' हनुमान ने अंगद को छोड़ते हुए, इस बार गम्भीरता से पूछा।

''कुछ नहीं भइया, थोड़ी अस्वस्थता अनुभव कर रहा था।''

''तन की अथवा मन की?'' हनुमान ने पुनः प्रश्न किया- ''कुछ काल से तेरा यहाँ आना बहुत कम हो गया है, क्या मातुल ने कुछ कहा है?''

''नहीं'', अंगद बोला- ''किंतु अब मुझे अनुमति दें अन्यथा विलम्ब होने पर पिता क्रोधित होंगे।''

''अरे!....'' हनुमान कुछ और कहना चाह रहे थे, परंतु उन्होंने स्वयं को रोक लिया और बोले- ''अच्छा चल जा, परंतु अब कब आयेगा?''

''कल-परसों में ही आऊँगा किसी दिन।'' अंगद ने फीकी मुस्कान के साथ उत्तर दिया।

''अवश्य आना, अन्यथा मैं वहीं चला आऊँगा, और इस बार भोर होते ही, जिससे तू कहीं निकल ही नहीं पाये।'' कहकर हनुमान पुनः मुस्कुराये।

''अवश्य आऊँगा। काका ने कुछ दायित्व सौंपा है, उसका उत्तर भी तो लाना होगा।''

हनुमान बहुत कुछ पूछना चाहते थे अंगद से, किंतु एक तो उसकी मनस्थिति के कारण और दूसरे सुग्रीव की उपस्थिति के कारण उन्होंने उसे जाने दिया। उन्हें

स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि अंगद की इस मानसिक स्थिति का कारण वही सूचना हो सकती है जो स्वयं उन्हें मंगला मौसी ने दी थी।

***

''कुछ बता रहा था?'' अंगद चला गया तो हनुमान ने सुग्रीव से प्रश्न किया।

''कुछ विशेष नहीं'', सुग्रीव ने वापस शिखर की ओर बढ़ते हुए उत्तर दिया।

''वह किसी दायित्व की बात कर रहा था?''

''हाँ, मैंने उससे कहा है कि वह एक बार मेरी ओर से भइया से क्षमा-प्रार्थना कर देखे। ...सच में अब ऊब गया हूँ मैं इस जीवन से। रूमा के भी कोई समाचार नहीं मिलते। यह तो उसके विषय में कुछ बताता ही नहीं, तुम भी कुछ ठीक से नहीं बताते; अन्य कोई साधन नहीं है मेरे पास उससे सम्पर्क करने का।''

हनुमान के पास कोई उत्तर नहीं था। आरम्भ में उन्होंने कई बार रूमा से मिलने का प्रयास किया था किंतु या तो रूमा ने अपने कक्ष का द्वार ही नहीं खोला था और यदि खोल भी दिया था तो किसी मूर्ति की भाँति संवेदनहीन, स्पन्दनहीन सी उनके सामने बैठी रही थी। उन्हें उसकी ऐसी स्थिति देखकर अत्यंत क्षोभ होता था। परन्तु उसकी इस स्थिति का वर्णन वे सुग्रीव के सम्मुख तो नहीं कर सकते थे! अतः उन्हें सदैव ही उसे कुछ न कुछ कहानी ही सुनानी होती थी। वे खूब समझते थे कि वे अपने अभिन्न मित्रवत इस मातुल से मिथ्यावादन कर रहे हैं, किंतु अन्य कोई उपाय भी नहीं था उनके पास।

कुछ वर्षों के उपरांत उन्होंने रूमा से मिलने का प्रयास ही त्याग दिया। तब से वे अपनी माता से ही उसका कुशल-क्षेम पूछ लेते थे और उनका उत्तर आज तक सदैव एक ही रहा था कि 'वह कुशल से नहीं है। उन्हें आज तक यह समझ नहीं आया था कि वह जीवित किस भाँति है!'

15.अगस्त्य आश्रम में

''कैसा अनुभव रहा सौमित्र?''

दस वर्ष सम्पूर्ण दण्डकारण्य के आश्रमों को मथने के उपरांत ये तीनों यात्री अभी-अभी वापस सुतीक्ष्ण के आश्रम लौटे थे। लौटकर जैसे ही प्रणाम और आशीर्वाद की प्रक्रिया सम्पन्न हुई, सुतीक्ष्ण ने मंद स्मित के साथ प्रश्न कर दिया।

''अद्भुत!'' लक्ष्मण ने अपूर्व उत्साह से उत्तर दिया- ''मैं तो अपना सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार आश्रमों में भ्रमण करते हुए व्यतीत कर सकता हूँ।''

''परंतु आप तो इसे समय का अपव्यय मान रहे थे!'' लक्ष्मण के उत्साह को देख सुतीक्ष्ण ने विनोद किया।

''क्यों लज्जित करते हैं महर्षि, वह मेरी अल्पज्ञता थी।''

लक्ष्मण ने यह उत्तर कुछ ऐसे नाटकीय ढंग से दिया था कि सब हँस पड़े। हँसी की लहर थमते ही सुतीक्ष्ण ने विषय परिवर्तित कर दिया-

''मार्ग में रक्षों ने अधिक व्यवधान तो नहीं डाला?''

''सूचना तो आपको प्राप्त हो ही गयी होगी'', लक्ष्मण ने पूर्ववत नाटकीय ढंग से ही उत्तर दिया- ''फिर भी आपने प्रश्न किया है तो उत्तर तो देना ही पड़ेगा।... मुझे तो यही प्रतीत हुआ कि भइया का आगमन सुनते ही रक्ष दण्डक से पलायन कर गये हैं। मात्र एक बार, लगभग तीन वर्ष पूर्व रक्ष-सैनिकों के एक दल से भेंट हुई और वे भी ऐसे निकले मानो रेत की मूर्तियों को कटारें थमा दी गयी हो। संघर्ष आरम्भ होने से पूर्व ही समाप्त हो गया। कोई आनंद नहीं आया।''

इस बार उपस्थित सभी लोगों का सम्मिलित अट्टहास गूँज उठा।

''परंतु अब निर्णायक क्षण आ गये हैं, कल प्रातःकाल ही आपको महर्षि अगस्त्य के आश्रम के लिये प्रस्थान करना है।''

''इसका आभास तो हमें आपका संदेश मिलते ही हो गया था'', इस बार राम ने उत्तर दिया- ''अंततः महर्षि के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो ही गया।''

इसके बाद देर तक चर्चा चलती रही। पूरी चर्चा में अधिकांशतः लक्ष्मण ही उल्लासित भाव से अपने अनुभव सुनाते रहे। वे इस सम्पूर्ण यात्रा में, आश्रमों के प्रशिक्षणार्थियों ही नहीं ऋषियों से भी मिले सत्कार से अभिभूत थे। राम भी संतुष्ट ही थे, उन्होंने भी अब नियति को स्वीकार कर लिया था। अब वे अपने प्रभु-पद से अधिक असहज नहीं होते थे। सबसे महत्वपूर्ण यह था कि उन्हें एक बार भी सीता से झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। आश्रमों में चल रहे सैन्य- प्रशिक्षण के उद्देश्य को लेकर सीता ने कोई प्रश्न ही नहीं किया था।

दूसरे दिन जब ये तीनों विदा हुए, तब जनस्थान के ऋषियों ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। वे संभवतः सुतीक्ष्ण के आश्रम की व्यवस्थाओं से संतुष्ट थे। चित्रकूट के ऋषियों ने अवश्य एक बार फिर राम के साथ जाने का हठ किया परंतु उन्हें सुतीक्ष्ण ने समझा लिया।

***

''ओह! यह आश्रम है अथवा कोई छोटा-मोटा वन!''

जैसे ही इन तीनों यात्रियों के मार्गदर्शक ने दूर से दिखाया कि वह सामने महर्षि अगस्त्य का आश्रम है, विस्मय से सीता के मुख से निकल पड़ा।

सीता का विस्मय अकारण भी नहीं था। इन लोगों ने अभी तक जितने भी आश्रमों में भ्रमण किया था, अगस्त्य का आश्रम उनमें विशालतम था। एकाएक उसके विस्तार का अनुमान लगा पाना सहज नहीं था।

यद्यपि इस आश्रम में प्रशिक्षण कार्य नहीं होता था, तथापि यह भी सत्य था कि दण्डकारण्य के सारे आश्रमों के गुरुकुल यहीं से नियंत्रित होते थे। इतना ही

नहीं, इस आश्रम में एक अत्यंत परिष्कृत आयुध अनुसंधानशाला भी स्थित थी, जिसमें महर्षि अगस्त्य निरंतर अनुसंधानों में व्यस्त रहते थे।

''हाँ सीते! महर्षि अगस्त्य सप्तर्षियों में स्थान रखते हैं, उनका आश्रम उनके पद और गरिमा के अनुकूल ही है।''

जब ये लोग अगस्त्य के आश्रम में पहुँचे तो दिवस के दो प्रहर व्यतीत हो चुके थे। चारों ही व्यक्ति पसीने से लथपथ थे। पहुँचते ही एक शिष्य चारों यात्रियों को सादर अगस्त्य की कुटिया तक छोड़ गया।

अगस्त्य की कुटिया भी, जब तक जितने ऋषियों के कुटीर इन लोगों ने देखे थे, आकार-प्रकार, सभी में उन सबसे बहुत भिन्न थी। वस्तुतः यह कुटिया नहीं, अत्यंत विशाल कक्ष था। इसकी छत छप्पर की न होकर किसी ऐसे पदार्थ से निर्मित थी जिससे इन लोगों में से कोई भी परिचित नहीं था। कक्ष का एक हिस्सा विभिन्न धातुओं के असंख्य छोटे-बड़े पात्रों से अटा पड़ा था।

महर्षि अगस्त्य उस समय कक्ष के उसी भाग में कुछ करने में व्यस्त थे। देवी लोपामुद्रा भी उन्हीं के पास उपस्थित थी। पता नहीं वे अनुसंधान में महर्षि का सहयोग कर रही थी अथवा राम के आगमन का समाचार पाकर आ गयी थी।

कक्ष में पहुँचकर राम महर्षि की ओर बढ़ना ही चाहते थे कि उन्होंने उन्हें रोक दिया और स्वयं ही, देवी लोपामुद्रा के साथ द्वार की ओर बढ़ आये।

प्रणाम-आशीर्वाद के उपरांत अगस्त्य ने प्रस्ताव रखा-

''राघव, भोजन का समय व्यतीत हो चुका है, अतः और विलम्ब करना उचित नहीं होगा। वार्ता हेतु बैठने से पूर्व आप सभी स्नान और भोजन से निवृत्त हो लें।''

राम, लक्ष्मण और सीता को इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति नहीं थी किंतु इनके मार्गदर्शक ने निवेदन किया-

''मुझे अनुमति दें महर्षि, यदि मैंने तत्काल प्रस्थान नहीं किया तो आश्रम पहुँचने तक रात्रि हो जायेगी।''

उसकी बात सही थी अतः महर्षि ने सहज ही उसे अनुमति प्रदान कर दी। साथ ही एक शिष्य से कहकर उसे पर्याप्त मात्रा में फल बँधवा दिये ताकि उसे मार्ग में आहार की व्यवस्था करने में विलम्ब न हो।

वह चला गया। सीता को देवी लोपामुद्रा अपने साथ लिवा गयी।

स्नान और भोजन से निवृत्त होने के उपरांत राम और लक्ष्मण को महर्षि का संदेश प्राप्त हुआ कि अब वे दोनों थोड़ा विश्राम कर लें, सायंकाल महर्षि उनसे भेंट करेंगे।

***

सूर्य अस्ताचल के पीछे लुप्त होने के लिये क्षितिज को स्पर्श करने ही वाला था, जब राम और लक्ष्मण को महर्षि का संदेश प्राप्त हुआ कि वे इनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तत्काल ही दोनों संदेशवाहक के साथ चल दिये। इस बार जिस कक्ष में इन लोगों को लाया गया, वह कक्ष नहीं था जिसमें मध्याह्न में इन लोगों की महर्षि से भेंट हुई थी।

प्रणाम-आशीर्वाद और थोड़ी सी कुशल-क्षेम की बातों के बाद राम सीधे विषय पर आ गये-

''महर्षि, हमलोग देवों के इस अभियान के प्रतिभागी तो बन गये हैं किंतु अभी तक हमें इसके विषय में विशेष कुछ भी ज्ञात नहीं है।''

उत्तर में अगस्त्य धीरे से मुस्कुरा दिये-

''सत्यता तो यह है राम, कि हम सभी की स्थिति तुम्हारे समान ही है।''

''तात्पर्य महर्षि?'' राम आश्चर्य से पूछ बैठे- ''सभी ने मुझे यही बताया है कि देवर्षि के बाद अब आप ही इस समस्त अभियान के नीति-निर्धारक हैं।''

''यह अर्द्धसत्य है राघव'', अगस्त्य ने मंद-मंद स्मित के साथ उत्तर दिया- ''मैंने तो सम्पूर्ण यज्ञ में मात्र एक समिधा डाली है।''

राम और लक्ष्मण दोनों के ही मुख पर न समझने वाले भाव थे। अगस्त्य ने भी इसे अनुभव कर लिया। उन्होंने कहा-

''चलो मैं तुम्हें आरम्भ से बताता हूँ, तभी तुमलोग सारी स्थितियों को समझ पाओगे।'' कहकर उन्होंने दोनों भाइयों पर मुस्कुराती हुई दृष्टि डाली फिर आगे बताने लगे- ''इस खेल का आरम्भ तो तभी हो गया था, जब विष्णु ने लंकेश के मातामहों को स्वर्ग से खदेड़ा था। उस संघर्ष में सबसे छोटे भाई माली की मृत्यु हो गयी थी और सबसे बड़ा माल्यवान हताश होकर संसार से विरक्त हो गया था। परंतु सुमाली जीवित बच गया था।''

''यह तो हमें ज्ञात है ऋषिवर!'' लक्ष्मण बीच में बोले।

''परंतु यह तो नहीं ज्ञात होगा कि इस तथ्य से भिज्ञ होते हुए भी विष्णु ने उसे खोजने का प्रयास नहीं किया।''

''क्यों?'' लक्ष्मण ने पुनः जिज्ञासा की।

''क्योंकि उनसे बड़ा, नाटकी सर्जक ने अन्य कोई सृजित नहीं किया है।''

''महर्षि'', लक्ष्मण ने हाथ जोड़ते हुए नाटकीय ढंग से कहा- ''कृपया यह स्मरण रखें कि आपकी प्रहेलिकायें समझ पाना हमारी तुच्छ बुद्धि की सामर्थ्य में नहीं है।''

लक्ष्मण के कहने के ढंग पर अगस्त्य खुलकर हँस पड़े। राम भी मुस्कुराने लगे। हँसी थमने पर अगस्त्य बोले-

''नाटकी तो तुम भी कम नहीं हो वत्स, तुम्हारे साथ खेलने में मुझे आनंद आता, परंतु अभी उसके लिये उपयुक्त समय नहीं है अतः जाने दो।'' कहकर वे सहसा गम्भीर हो गये- ''सृष्टि का प्रथम सूत्र बताता हूँ तुम्हें। इस सृष्टि में दो ही शाश्वत हैं- ब्रह्म और प्रकृति। ब्रह्म निरासक्त है परंतु प्रकृति को ऊर्जा ब्रह्म से ही प्राप्त होती है। इसी ऊर्जा से प्रकृति सृष्टि का संचालन करती है। वही सभी जड़-चेतन पदार्थों की सर्जना करती है, उनका विकास करती है और अंत में उनका

विनाश भी करती है। विश्वामित्र ने तुम्हें पंचमहाभूतों, ब्रह्मतत्व और उसकी ऊर्जा के विषय में बताया था, वह स्मरण ही होगा।''

दोनों भाइयों ने सहमति में सिर हिला दिये।

तो यह भी स्मरण होगा कि सृष्टि की प्रत्येक संरचना, वह चेतन हो अथवा जड़, कितनी भी सूक्ष्म हो अथवा कितनी भी विशाल; इन्हीं के संयोजन से निर्मित होती है।''

''जी!'' दोनों भाइयों ने एक साथ उत्तर दिया।

''कभी यह सोचा है कि यह कौन करता है? यह सब कैसे होता है? कैसे प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ, उद्भव और विकास की अवस्थाओं से होता हुआ अंततः विनाश को प्राप्त होता है?''

''ब्रह्म अथवा परमेश्वर करता है सब।'' लक्ष्मण बोले।

''कदाचित ध्यान नहीं दिया तुमने, मैंने आरम्भ में ही कहा था कि प्रकृति को ऊर्जा भले ही ब्रह्म से प्राप्त होती है परंतु ब्रह्म स्वयं निरासक्त है। उसे किसी सर्जना अथवा विनाश में कोई रुचि नहीं है।''

''तब महर्षि?''

''यह समस्त सृष्टि स्वतः संचालित है। प्रकृति ने सृष्टि की प्रत्येक संरचना को, प्रत्येक अणु-परमाणु को ऐसे जटिल क्रमवार सूत्रों से आबद्ध कर रखा है कि किसी एक अणु की छोटी सी क्रिया के अनुक्रम में अन्य विभिन्न अणुओं के मध्य प्रतिक्रियाओं का अनन्त क्रम संचालित होता रहता है। प्रत्येक अणु की प्रतिक्रिया पूर्व निश्चित होती है, उसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसी को नियति कहते हैं, इसी को भाग्य अथवा भोग कहते हैं।''

कुछ पल मौन रहा। लक्ष्मण महर्षि के कथन को आत्मसात् करने का प्रयास कर रहे थे। कुछ पल बाद उन्होंने पूछा-

''परंतु सब तो यही कहते हैं कि जो कुछ करता है ईश्वर करता है। वही हमें हमारे कर्मों के अनुसार फल प्रदान करता है?''

"सृष्टि का जो रहस्य है, उसे समझ पाने में आज तक कोई समर्थ नहीं हुआ है, परंतु जिज्ञासा तो सभी को होती है। बस, उस जिज्ञासा को शांत करने हेतु ईश्वर की कल्पना कर ली गयी। उसे और सरलीकृत करने हेतु शिव, ब्रह्मा और विष्णु को ब्रह्म का प्रतिरूप मान लिया गया। उन्हें ईश्वर का स्थान प्रदान कर दिया गया। तुम्हारे भइया को भी तो लोग ईश्वर का प्रतिरूप मानते हैं।"

अगस्त्य के कथन ने एकाएक लक्ष्मण के मन में एक नयी जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। उन्होंने शीघ्रता से प्रश्न प्रस्तुत किया-

"महर्षि अवतार श्रीविष्णु के साथ ही क्यों जुड़े हैं? प्रभु शिव अथवा पितामह ब्रह्मा का कोई अवतार क्यों नहीं माना गया?"

उत्तर में अगस्त्य बरबस मुसकुरा उठे, बोले-

"तुम्हारे श्रीविष्णु प्रकृति की सबसे अनूठी सर्जना हैं। शिव जगद्व्यापार से अधिकांशतः निरासक्त ही रहते हैं, जैसे ब्रह्म रहता है। पितामह की भी लगभग यही स्थिति है। दोनों मात्र विशेष भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु सक्रिय होते हैं। इन दोनों के विपरीत विष्णु, जगद्व्यापार से निर्लिप्त होते हुए भी सबमें लिप्त रहते हैं। जब भी सृष्टि के सम्मुख कोई संकट उत्पन्न होता है तो उसके समाधान हेतु वे तत्काल सक्रिय हो जाते हैं। जैसे पूर्व में अनेक अवसरों पर हुए हैं, जैसे इस समय आर्य संस्कृति के उन्नयन हेतु सक्रिय है।"

"आपने कहा कि श्रीविष्णु जगद्व्यापार से निर्लिप्त होते हुए भी सबमें लिप्त रहते हैं... इसका क्या अर्थ हुआ?"

"कभी साक्षीभाव से जीवन जीना सुना है?"

"जी!"

"विष्णु इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। तुमने शिव को क्रोधित होते सुना होगा, व्यथित होते भी सुना होगा, परंतु विष्णु को कभी नहीं सुना होगा। वे प्रत्येक परिस्थिति में शांत ही रहते हैं। कितना अद्भुत है, एक ओर तो वे आरम्भ से ही लंकेश के विनाश की व्यूह रचना करते रहे हैं, दूसरी ओर उन्मुक्त होकर

उसकी प्रशंसा करने में भी संकोच नहीं करते। और वे जो यह लंकेश की प्रशंसा करते हैं, उसमें रंचमात्र भी छलना नहीं होती, ये उनके हृदय के सच्चे उद्गार होते हैं। रक्षों के पराभव में विष्णु का अपना कोई स्वार्थ नहीं है...'' कहते-कहते वे लक्ष्मण की ओर देखकर मुस्कुराये, फिर कथन पूर्ण किया- ''तुम्हारे समान कुल की कीर्ति-अपकीर्ति की भी चिंता नहीं होती उन्हें। पूर्व में जब लंकेश ने इन्द्र पर आक्रमण किया था, तब वे युद्ध से विरत ही रहे थे। वे एक बार भी इस प्रश्न को लेकर चिंतित नहीं हुए कि लोग उन्हें कापुरुष कहेंगे।''

राम और लक्ष्मण दोनों ही मौन रहे। लक्ष्मण ने महर्षि के कथन में छिपी व्यंजना की उपेक्षा करना ही श्रेयस्कर समझा।

''परंतु छोड़ो इसे, तुम्हें प्रकृति ने पुरुषार्थ दिखाने हेतु गढ़ा है, यह तत्वज्ञान का विवाद तुम्हारे लिये नहीं है। इस नीरस विषय में तो हम नीरस ऋषियों को ही उलझने दो।'' कहकर वे फिर एक बार उन्मुक्त होकर हँस पड़े।

इससे पूर्व कि अगस्त्य की हँसी शांत हो पाती, लक्ष्मण शीघ्रता से बोल पड़े-

''मात्र एक प्रश्न महर्षि!''

''पूछो!'' अगस्त्य ने मुस्कुराते हुए अनुमति दी।

''आपके अनुसार जन्म-मृत्यु, उत्थान-पतन प्रकृति का स्वतः स्फूर्त चक्र है, तब पितामह को सृष्टा, श्रीविष्णु को पालक और प्रभु शिव को संहारक क्यों कहा जाता है?''

''यह और कुछ नहीं, मात्र सामान्यजनों को सरलीकृत ढंग से सृष्टि के रहस्य को समझाने का प्रयास है। वैसे ही जैसे जब कोई अबोध शिशु किसी गम्भीर प्रश्न के विषय में जानने का प्रयास करता है तो हम उसे कुछ भी समझाकर बहला देते हैं। अच्छा एक बात बताओ, तुम्हें अपने वंश की वंशावली तो ज्ञात ही होगी?''

''जी महर्षि!''

"तो ब्रह्मा से मरीचि, कश्यप, विवस्वान, मनु, इक्ष्वाकु होते हुए, इक्ष्वाकु वंश आज तुम भाइयों तक पहुँचा है। परंतु यह तो राजवंश का परिचय है। कोशल की प्रजा कहाँ से आयी? उसकी उत्पत्ति तो पितामह से नहीं है। एक प्रश्न और, क्या तुम्हारी तर्कबुद्धि कश्यप की पत्नियों के गर्भ से समस्त पशु-पक्षियों, कीटों और वनस्पतियों की उत्पत्ति को स्वीकार कर सकती है?... मेरी तो नहीं करती। विभिन्न राजवंशों, देवों, दानवों, दैत्यों की उत्पत्ति कश्यप से है परंतु शेष जनता की कहाँ से है?

"अब शिव की बात करते हैं। शिव को संहारक बताया गया है, परंतु उनका संहारक स्वरूप दृष्टिगोचर कहाँ होता है? यदि दक्ष-यज्ञ विध्वंस अथवा कामदेव को भस्म करने के प्रसंगों को वृथक कर दें, तो शिव का चरित्र तो सरलतम है। सब पर अत्यंत सहजता से प्रसन्न हो जाने वाले... कई प्रसंगों में तो अपनी सरलता के कारण स्वयं ही संकट में पड़ गये और तब विष्णु को ही छल-बल से उनका उद्धार करना पड़ा। जहाँ तक दक्ष और अनंग प्रकरणों का संबंध है तो उन परिस्थितियों में कोई भी वही करता जो शिव ने किया।

"विष्णु का स्वरूप अवश्य पालनकर्ता का है परंतु मनुष्यमात्र का पालनकर्ता उन्हें भी नहीं कह सकते। उन्होंने सदैव देवों का पक्ष लिया है, दैत्यों और दानवों का विरोध किया है।"

"परंतु ऋषिवर, यह तो आप भी कर रहे हैं!"

"हाँ, कर रहा हूँ! परंतु यह प्रश्न उठाकर तुमने स्वयं ही ब्रह्म के प्रतिरूप विष्णु को एक मानव की कोटि में खड़ा कर दिया है। मैं आर्य हूँ, अतः आर्य-संस्कृति का पक्षधर हूँ, परंतु विष्णु को तो समस्त सृष्टि का पालनहार परमेश्वर कहा जाता है, परमेश्वर न आर्य हो सकता है और न अनार्य। उसके लिये सभी समान होने चाहिए, उसे सबका समान हित करना चाहिए।

"एक प्रश्न और भी तो उठता है, विष्णु यदि ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर हैं, तो वे कश्यप के पुत्र कैसे हो सकते हैं? परंतु यह विषय ऐसा है, युगों के मंथन के

उपरांत भी जिस पर मनीषी एकमत नहीं हो सके हैं। सत्य मात्र इतना ही है कि ब्रह्म और प्रकृति का रहस्य हमारी बुद्धि से परे है। अतः श्रेयस्कर होगा कि हम भी इस पर मंथन छोड़कर अपने विषय पर चर्चा करें।''

''जैसा आदेश महर्षि!'' राम ने सहमति दी।

''यहाँ से प्रस्थान के उपरांत से ही कोई भी ऋषि अथवा देव आपके परामर्श हेतु उपलब्ध नहीं होगा। समस्त निर्णय आपको अपने विवेकानुसार ही लेने होंगे। आपको ज्ञात ही है, दण्डक के गुरुकुलों के वर्तमान और पूर्व योद्धाओं सहित किष्किंधा का सम्पूर्ण सैन्य आपका सहयोगी होगा। इनके अतिरिक्त अपरिहार्य परिस्थितियों में विष्णु भी परोक्ष रूप से आपके सहयोग का प्रयास करेंगे।''

''जी महर्षि!''

''चार दिन बाद प्रातःकाल शुभ मुहूर्त में यहाँ से आप सीधे पंचवटी के लिये प्रस्थान करेंगे और वहीं चन्द्रनखा के आगमन की प्रतीक्षा करेंगे।''

''आयेगी वह?'' लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

''अवश्य आयेगी? रक्षों को आपके इस आश्रम में आगमन की सूचना प्राप्त हो गयी है, और एक संदेशवाहक लंका के लिये प्रस्थान भी कर चुका है। सूचना प्राप्त होते ही प्रहस्त और वज्रमुष्टि अनिवार्य रूप से चन्द्रनखा को आपसे भेंट करने हेतु प्रेरित करेंगे।''

''महर्षि, अब डेढ़ वर्ष से भी कम समय शेष है हमारे पास। यदि प्रहस्त और वज्रमुष्टि ने पंचवटी में हमारी एकाकी उपस्थिति को महत्व नहीं दिया अथवा चन्द्रनखा ही विलम्ब से आयी, तो, सब कुछ व्यर्थ हो जायेगा!''

''नहीं करेंगे, वे कर ही नहीं सकते।''

''परंतु क्यों महर्षि?''

''प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो पाना संभव नहीं होता वत्स!''

***

कुल मिलाकर ये लोग अगस्त्य के आश्रम में पाँच दिनों तक रुके, परंतु अंतिम रात्रि को छोड़कर राम और लक्ष्मण की महर्षि से एकान्त वार्ता दुबारा नहीं हुई। इस बीच सीता से इनकी भेंट बस भोजन के समय ही हो पाती थी, अन्यथा वे देवी लोपामुद्रा के साथ ऋषि-पत्नियों के मध्य ही रहती थी।

अंतिम रात्रि में अगस्त्य ने फिर दोनों भाइयों का आवाहन किया। भोजनोपरांत दोनों भाई आश्रम के कुछ ऋषियों के साथ बैठे हुए थे कि एक युवा ऋषि ने आकर संदेश दिया-

''आप दोनों स्नान कर अनुसन्धान कक्ष में पहुँचिए, महर्षि वहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

दोनों भाइयों को इस समय स्नान के आदेश पर विस्मय तो हुआ परंतु वे बिना कोई प्रश्न किये स्नान करने चले गये। स्नान से निवृत्त होकर दोनों अनुसंधान कक्ष में पहुँचे। यह वही कक्ष था जिसमें दोनों की महर्षि से प्रथम भेंट हुई थी। इन्हें देखते ही अगस्त्य बोले-

''आओ, तुम्हारी धरोहर तुम्हें सौंप दूँ।''

''कैसी धरोहर महर्षि?'' राम ने विनम्रतापूर्वक प्रश्न किया।

''अभी सामने आता है, सामने कुशासन पर ध्यान लगाकर बैठ जाओ।''

दोनों भाइयों ने आदेश का पालन किया।

इसके उपरांत दोनों को लगभग वैसा ही अनुभव हुआ, जैसा स्थाणु आश्रम में श्रीविष्णु के साथ हुआ था। अगस्त्य उन्हें अनेक दिव्यास्त्र सौंपते गये और दोनों भाई उन्हें ग्रहण करते गये। इस प्रक्रिया में रात्रि के दो प्रहर व्यतीत हो गये।

जब तीनों समाधि से बाहर आये तो अगस्त्य बोले-

''अब थोड़ा सा विश्राम कर लो, प्रातःकाल सूर्योदय से एक घड़ी उपरांत ही शुभ मुहूर्त में तुम्हें प्रस्थान करना होगा।''

''जैसा आपका आदेश।'' राम ने सहज भाव से उत्तर दिया।

''तुमने जो संदेश प्रसारण प्रणाली विकसित की है उसे मैं और प्रभावी बना दूँगा। शीघ्र ही तुम्हें पंचवटी के आस-पास ही गुप्त संदेशवाहक का आभास मिल जायेगा। वहाँ से तुम्हारे द्वारा छोड़ा गया संदेश पालक झपकते ही हम सबको प्राप्त हो जायेगा और आवश्यकतानुसार सहायता तुम्हें उपलब्ध हो जायेगी।''

''जी महर्षि।''

''पंचवटी में गिद्धराज जटायु तुम्हारा सहयोगी होगा। उसका निवास वहाँ निकट ही है, वह मार्ग में ही तुम्हें मिल जायेगा।''

''गिद्धराज का विशेष परिचय नहीं देंगे महर्षि!'' लक्ष्मण ने उत्सुकता व्यक्त की।

''वह तुम्हें अपना परिचय स्वयं ही दे देगा।'' अगस्त्य ने बात टाल दी। अधिक कुरेदने का कोई प्रश्न ही नहीं था। इसके बाद अगस्त्य राम और लक्ष्मण को मार्ग के विषय में विस्तार से समझाने लगे।

16.पंचवटी की ओर

''भइया'', अगस्त्य आश्रम से थोड़ी दूर आते ही लक्ष्मण बोले- ''आपको ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इन ऋषियों को ज्ञात तो बहुत कुछ है किंतु ये बताते उतना ही हैं जितना चाहते हैं। हमें इन्होंने कठपुतली मात्र बना रखा है।''

लक्ष्मण की बात सुनते ही राम ठिठक गये। उन्होंने कुछ रोष से लक्ष्मण को देखा और बोले-

''यह अनुचित है लक्ष्मण। ऋषिगण सदैव हमारे वंदनीय हैं। वे कुछ भी अकारण नहीं करते, उनकी गोपनीयता में भी सार होता है। हमें उनके किसी भी आचरण पर टिप्पणी करने का अधिकार नहीं है।''

''आपका कथन सत्य है आर्यश्रेष्ठ, किंतु देवर जी का कहना भी आधारहीन तो नहीं है। ऐसा अनुभव तो मैंने भी किया है।'' सीता ने भी लक्ष्मण का पक्ष लिया।

''मैंने कहा न कि ऋषियों का प्रत्येक कृत्य समग्र मानवता के हित में ही होता है। बहुधा उस समय हम उसकी उपादेयता नहीं समझ पाते किंतु कालांतर में यह सिद्ध होता है कि वे ही सही थे। इसीलिये मैं मानता हूँ कि हमें उनके किसी आचरण पर प्रश्न उपस्थित करने का अधिकार नहीं होता। हमारा कर्तव्य है उनके निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करना।''

लक्ष्मण और सीता ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों ही जानते थे कि राम की प्रकृति ही यही है, इस विषय में अधिक वाद-विवाद उनके लिये क्लेशकारी ही सिद्ध होगा।

चलते-चलते दिन ढलने लगा था। इस बीच मध्याह्न में एक स्थान पर रुककर इन लोगों ने, वहीं वृक्षों पर उपलब्ध फलों का आहार लिया था। सीता की कोमलता को ध्यान में रखते हुए कुछ काल विश्राम भी किया था।

''हमलोग सही दिशा में तो चल रहे हैं?'' एकाएक सीता ने प्रश्न किया।

''अपनी बुद्धि के अनुसार तो सही मार्ग पर ही चल रहे हैं।'' राम ने उत्तर दिया।

''फिर भी एक बार रुककर सुनिश्चित कर लेते!'' सीता ने पुनः अपनी शंका दोहरायी।

''क्या लाभ होगा! इस निर्जन मार्ग में अभी तक तो किसी मनुष्य का चिह्न तक दिखाई नहीं पड़ा, जिससे हम मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें।'' लक्ष्मण ने हँसते हुए उत्तर दिया- ''यदि आप थकान अनुभव कर रही हो तो अवश्य कुछ क्षण विश्राम किया जा सकता है।''

''नहीं, थकान तो अनुभव नहीं हो रही। मार्ग इतना सुरम्य है कि थकन अनुभव हो ही नहीं सकती।'' सीता ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए उत्तर दिया- ''मैं तो सुनिश्चित करना चाह रही थी कि हम सही मार्ग पर हैं, अन्यथा इस गहन वन में भटकते ही रह जायेंगे।''

''यहाँ रुकने का भी कोई अर्थ नहीं होगा'', राम ने आकाश की ओर निहारते हुए उत्तर दिया- ''वो देखो, संभवतः हमारा मार्ग प्रशस्त करने हेतु ही वह पक्षियों का झुंड उधर उड़ा जा रहा है। निश्चित ही उधर कोई जल का स्रोत होगा। संभव है पुण्यसलिला गोदावरी ही हों।''

''आपका अनुमान सत्य है'', राम की बात सुन सीता ने एक लम्बी साँस खींची और फिर उत्साह से बोलीं - ''अब मुझे भी वायु में शीतलता अनुभव हो रही है। निश्चय ही हम गोदवरी के निकट ही हैं।''

कुछ काल में ही तीनों यात्री गोदावरी के तट पर थे।

अद्भुत दृश्य था यहाँ का, पश्चिम की ओर वृक्षों से ढँके ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की श्रृंखला दिखाई पड़ रही थी। उन पर्वतों के मध्य से सर्प जैसी इठलाती-बलखाती गोदावरी चली आ रही थी।

गोदावरी तक पहुँचने के साथ ही वृक्षों की सघनता एकाएक कम हो गयी। गोदावरी से चार-पाँच सौ पग तक तो लाल बजरी युक्त मैदान ही था। तीनों ने गोदावरी के शीतल जल में स्नानकर थकन उतारी। लक्ष्मण फल तोड़ लाये, तीनों ने फलाहार किया और मार्ग की सुषमा का आस्वादन करने लगे।

कुछ देर के विश्राम के उपरांत राम उठते हुए बोले-

''अब आगे बढ़ा जाये, अन्यथा अँधेरा घिर आयेगा। तब मार्ग का अनुमान करना कठिन हो जायेगा।''

राम के इतना कहते ही लक्ष्मण और सीता भी उठ खड़े हुए।

तीनों यात्री पश्चिम से पूर्व की ओर बह रही गोदावरी के साथ-साथ बढ़ने लगे। कुछ ही आगे बढ़े थे कि गोदावरी एकाएक दक्षिण की ओर घूम गयी। वहाँ से स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि गोदावरी एक बड़ा सा गोल घेरा बनाते हुए आगे फिर पूर्व की ओर मुड़ रही है। यहाँ पर राम ठिठके-

''यहीं से हमें गोदावरी का साथ छोड़ देना है, महर्षि अगस्त्य ने ऐसा ही निर्दिष्ट किया था।''

शेष दोनों ने भी सहमति में सिर हिलाया। पहले राम ने, फिर शेष दोनों ने गोदावरी को प्रणाम किया और तत्पश्चात् तीनों उसके साथ-साथ दक्षिण की ओर बढ़ने के स्थान पर पूर्व की ओर घूम गये।

आगे मार्ग में एक श्वेत वस्त्रधारी विशालकाय वृद्ध निश्चिंत मुद्रा में बैठा हुआ था। उस व्यक्ति को मात्र वयस के आधार पर ही वृद्ध कहा जा सकता था अन्यथा उसके शरीर पर कहीं भी वार्धक्य के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। उसके मुख पर यद्यपि सौम्यता के भाव थे, तो भी उसका काला रंग, विशाल देहयष्टि और विचित्र मुखाकृति उसे भयंकरता प्रदान कर रहे थे। उसके लंबे दाँत कुछ इस प्रकार निकले हुए थे कि किसी पक्षी की चोंच से प्रतीत हो रहे थे। उसके हाथों और पैरों के नख भी किसी पक्षी के नखों जैसे ही लम्बे और नुकीले थे।

उसे देखकर लक्ष्मण उसे कोई राक्षस ही समझ बैठे और उन्होंने अविलम्ब अपना धनुष सँभाल लिया।

''शांत लक्ष्मण, शांत!'' लक्ष्मण को रोकते हुए राम बोले- ''आगन्तुक निःशस्त्र है अतः आक्रामक होने का कोई कारण नहीं है।''

''उसके नख क्या स्वयं किसी शस्त्र से कम हैं भइया!'' लक्ष्मण ने उत्तर दिया, उन्होंने अब तक अपने धनुष पर तीर भी चढ़ा लिया था।

''वह तो इसके इस नितांत निर्जन में नागरिक जीवन के संसाधनों से रहित अवस्था में रहने के कारण भी हो सकते हैं। स्मरण नहीं क्या, महर्षि अगस्त्य के अनुसार यहीं कहीं गिद्धराज जटायु का निवास होना चाहिए। क्या पता ये वही हों!''

''संभव है'', लक्ष्मण ने सहमति व्यक्त करते हुए भी कटाक्ष कर दिया- ''मुखाकृति और नखों से लग भी किसी गिद्ध की भाँति ही रहा है।''

लक्ष्मण के कटाक्ष पर राम ने कुछ रोष से उनकी ओर देखा परंतु कहा कुछ नहीं। तीनों सावधानी से आगे बढ़ने लगे। वह वृद्ध निश्चिंत भाव से इन्हें आता देखता रहा। लक्ष्मण की आक्रामक मुद्रा का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

''हे भद्र! आप कौन हैं और इस निर्जन में क्या कर रहे हैं?'' निकट पहुँचकर राम ने अपनी सहज सौम्य वाणी में उससे प्रश्न किया।''

''दाशरथि! मुझे अपने पिता का मित्र ही समझो!'' वृद्ध ने मंद स्मित के साथ उन्हें चकित करते हुए उत्तर दिया।

''यदि आप हमारे पिता के मित्र हैं तो प्रणाम स्वीकार करें।'' राम ने उसे प्रणाम करते हुए उत्तर दिया।

राम का अनुसरण करते हुए सीता और लक्ष्मण ने भी उसे प्रणाम किया। किंतु इस मध्य लक्ष्मण की सतर्कता में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आयी।

''आप हमारे पिता के मित्र हैं, यह तो स्वीकार किया तथापि कुछ और परिचय तो दें।'' राम ने विनम्रता से पुनः पूछा।

"और आपने हमें पहचाना किस भाँति?" राम के पीछे ही लक्ष्मण ने भी अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

"तुम्हें पहचानने में कोई दुविधा ही नहीं थी। मुझे बहुत पहले ही महर्षि अगस्त्य का संदेश प्राप्त हो गया था कि तुमलोग आने वाले हो। उन्होंने मुझे तुम्हारा हर प्रकार सहयोग करने का भी निर्देश दिया था।" वृद्ध ने लक्ष्मण की जिज्ञासा पर हँसते हुए उत्तर दिया- "रहा मेरे विशेष परिचय का प्रश्न तो वह भी बतलाता हूँ। मैं महर्षि कश्यप और देवी ताम्रा के वंश से हूँ। देवी ताम्रा की प्रपौत्री देवी विनता मेरी पितामही हैं। मैं उनके ज्येष्ठ पुत्र अरुण का पुत्र जटायु हूँ। मेरे अग्रज सम्पाती दक्षिण में सागर तट के निकट निवास करते हैं। सत्य कहूँ तो जब से मुझे महर्षि अगस्त्य का संदेश प्राप्त हुआ है, तभी से मैं आपलोगों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"तात, इस निर्जन वन में आप जैसे हित का संग पाकर हमलोग अनुग्रहीत हैं।" राम ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया- "अब एक जिज्ञासा का शमन और करने की और कृपा करें।"

"यही न कि मेरा तुम्हारे पिता से क्या संबंध है?" जटायु ने सस्मित कहा।

"सत्य ही, यही जिज्ञासा है हमारी।"

"वह भी बताऊँगा, किंतु वह एक लम्बी कथा है। यदि उसे सुनाने बैठ गया तो रात्रि हो जायेगी। अभी तो अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान करो, मार्ग में ही वह कथा भी सुनाता चलूँगा।"

परामर्श उचित था, अब तो मार्गदर्शक भी साथ ही था, तीनों यात्रियों ने जटायु के साथ पंचवटी के लिये प्रस्थान किया। इस चार-पाँच सौ पग के मैदान के उपरांत बड़े क्षेत्र में फैला वन दिखाई दे रहा था। घूमकर आती हुई गोदावरी इस वन की दक्षिणी सीमा बना रही थी। जटायु की कथा सुनते-सुनते मार्ग कब कट गया और वे वन के किनारे पर आ पहुँचे, पता ही नहीं चला। वैसे भी दूरी कोई अधिक नहीं थी, मात्र वह मैदान ही तो पार करना था।

"यही है पंचवटी।" वन के निकट पहुँचने पर जटायु बोला- "यह पूरा वन मात्र पाँच वट-वृक्षों से बना है।

"इसीलिये इसे पंचवटी कहा गया।" लक्ष्मण ने टिप्पणी की।

***

कभी कोई प्राचीन वटवृक्ष देखा है आपने?

यदि देखा होगा तो यह भी देखा होगा कि एक ही वृक्ष की जटायें निकल-निकल कर तनों में परिवर्तित होती जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे हजारों वृक्ष आपस में जुड़े खड़े हों। एक ही वृक्ष एक अच्छा-खासा वन बन जाता है। जिस स्थान को ऐसे पाँच वन घेरे हुए हों, वह कितना अगम्य होगा सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

चारों ने उस वन के भीतर प्रवेश किया। अनेक सरीसृपों से भरा हुआ था वन। वानरों की भी कमी नहीं थी। पक्षियों का तो बसेरा ही था वहाँ। जब वन का वह हिस्सा पार कर वे लोग भीतर पहुँचे तो सीता अनायास ही चहक उठीं-

"ओह! कितना सुन्दर है।"

चारों ओर से वट-वन से घिरा हुआ, तीन-चार सौ पग के व्यास वाला लगभग वृत्ताकार मैदान था वह। पूरे मैदान में स्थान-स्थान पर अत्यंत सुंदर, सुवासित जंगली पुष्पों के वृक्ष और लतायें थीं जिन पर भाँति-भाँति के पक्षी कलरव कर रहे थे।

मैदान आरम्भ होते ही लगभग सौ पग छोड़कर अगल-बगल दो सुन्दर से छोटे-छोटे कुटीर बने हुए थे। कुटीरों का मुख वास्तुशास्त्र के अनुसार ही पूर्व की ओर था। जटायु ने यह व्यवस्था अगस्त्य का संदेश मिलते ही कर डाली थी।

"तात!" राम बोले- "बाहर से तो कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता कि इस वन के मध्य में इतना सुन्दर क्षेत्र भी हो सकता है!"

उत्तर में जटायु बस मुस्कुरा दिया।

राम, लक्ष्मण और सीता तीनों को ही महर्षि अगस्त्य के चयन पर आश्चर्य भी था और सुखद हर्ष भी। निस्संदेह यह सामरिक दृष्टि से अत्यंत लाभदायक स्थिति थी। शत्रु के लिये उन्हें खोज पाना और खोजकर भी एकाएक उन तक पहुँच पाना अत्यंत दुष्कर था।

''अब मुझे अनुमति दें'', एकाएक जटायु विदा के लिये हाथ जोड़ते हुए बोला- ''मुझे संध्या-आराधना में पहले ही विलम्ब हो चुका है।''

''तात! आप क्या यहाँ एकाकी ही निवास करते हैं?'' अचानक सीता ने जिज्ञासा प्रकट की।

''हाँ पुत्री!'' जटायु ने उत्तर दिया- ''अपने यौवनकाल में हमें, मेरा तात्पर्य है मुझे और मेरे अग्रज सम्पाती को, अपनी शक्ति पर बड़ा दंभ था। नियति ने हमें उस दंभ का दंड दिया, अग्रज अपंग हो गये... तदुपरांत हम दोनों ही वीतरागी हो गये और एकांत में निवास कर परमप्रभु का स्मरण करने लगे।''

''आह!'' सीता के मुख से निकला- ''क्या हुआ था तात!''

''वह कथा फिर कभी'', जटायु ने बात टाल दी- ''अभी तो अनुमति प्रदान करें।''

राम ने पुनः आभार व्यक्त करते हुए मुस्कुराकर अनुमति प्रदान कर दी।

देखते-देखते ही जटायु वन में विलुप्त हो गया।

17. अयोध्या

बहुत दिनों बाद आज फिर तीनों महारानियाँ एक साथ मिलकर बैठी थीं।

राम के वनगमन के उपरांत कैकेयी की मानसिक अवस्था अभी तक स्वस्थ नहीं हो पायी थी। अपने प्यारे राम और उसके साथ-साथ सीता और लक्ष्मण के प्रति भी निर्दय होने का दर्द तो था ही, पति की मृत्यु का कारण होने का अपराधबोध भी था। भरत और शत्रुघ्न ने आरंभ में उसके प्रति कटुशब्दों का प्रयोग भी किया था और अपने व्यवहार से लांछित भी किया था किंतु राम के निर्देश के उपरांत उनका उसके प्रति व्यवहार, सायास ही सही, सहज और सम्मानजनक था। भले ही मन से वे उसे अभी तक क्षमा नहीं कर पाये थे।

किन्तु प्रजा का क्या, वह तो उसे अपराधिनी ही समझती थी। वह अपनी भावनाओं को छिपाने में संकोच भी नहीं करती थी। यद्यपि उसके प्रति अपशब्द कहने पर दंडित किये जाने की राजाज्ञा भरत ने चित्रकूट से लौटते ही प्रसारित कर दी थी, किंतु किसी को दंडित तो तब किया जा सकता था जब ऐसी कोई घटना भरत के संज्ञान में आती, राजकर्मचारी भी तो कैकेयी को दोषी मानते थे तो भरत के संज्ञान में भला कौन लाता। सम्पूर्ण घटनाचक्र का यथार्थ कारण अयोध्या में मात्र तीनों माताओं और गुरुदेव वशिष्ठ को ज्ञात था किंतु वे इस विषय में किसी से चर्चा नहीं कर सकते थे। अतः जो प्रचलित हो गया था सो हो गया था।

कुल मिलाकर कैकेयी ने एक प्रकार से स्वनिर्वासन सा ले लिया था। मंथरा के प्रति वह एकाएक ही अत्यंत निर्दय हो गयी थी, मानो उससे प्रतिशोध ले रही हो। इस कारण मंथरा अब नितांत असहाय अवस्था में मृत्युशैया पर थी। तो भी, वह अपनी इस दशा में भी संतुष्ट थी, अंततः उसने रक्षों के समूल नाश की आधारशिला रख ही दी थी।

कौशल्या और सुमित्रा ने आरम्भ में बहुत प्रयास किया था कैकेयी की पीड़ा बँटाने का, किंतु उसके रुक्ष व्यवहार के चलते अंततः उन्हें भी सब कुछ नियति

और समय के हाथों में छोड़ना पड़ा था। वे जानती थीं कि कैकेयी के उनके प्रति रुक्ष व्यवहार के पीछे कोई असंतोष अथवा वैमनस्य नहीं था, उसका स्वभाव ही रूखा हो गया था। उसे सबसे बड़ा असंतोष तो स्वयं अपने प्रति ही था।

जैसी कौशल्या और सुमित्रा ने अपेक्षा की थी, समय स्वयं ही औषधि सिद्ध हुआ। राम को वन गये हुए बारह वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके थे। कैकेयी अब अपने अपराधबोध से बाहर निकलने लगी थी... या संभव है अब उसे अपने बलिदान के सुफल की प्रतीक्षा होने लगी थी।

***

मध्याह्न में एक दासी कौशल्या के पास संदेश लेकर आयी थी कि मँझली महारानी उनसे भेंट करना चाहती हैं। कौशल्या के लिये यह संदेश सान्त्वनादायक ही था। सुदीर्घ अवधि के उपरान्त कैकेयी ने अपनी ओर से किसी संवाद का प्रयास किया था। उन्होंने सहर्ष आने की अनुमति ही नहीं दी, अपनी ओर से उसके लिये संदेश भी भिजवा दिया कि वे व्यग्रता से उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। कैकेयी के इस संदेश से कौशल्या इतनी उत्साहित थीं कि यदि उनके लिये संभव होता तो वे कैकेयी के आगमन की प्रतीक्षा किये बिना स्वयं ही अविलम्ब उसके प्रासाद के लिये प्रस्थान कर देतीं। परंतु विवशता थी, वार्धक्य उन्हें अधिक चलने-फिरने की अनुमति नहीं देता था।

संदेशवाहक दासी के जाते ही उन्होंने एक दासी सुमित्रा को बुला लाने भेज दी। कुछ देर तक वे कैकेयी के आने की प्रतीक्षा करती रहीं फिर जाने क्या सूझा कि एक दासी को तीनों वधुओं को बुला लाने भी भेज दिया।

कैकेयी जब कौशल्या के प्रासाद में पहुँची, सुमित्रा उससे पूर्व ही आ चुकी थी और अपनी महारानी की पद-गरिमा की उपेक्षा कर, द्वार पर ही खड़ी कैकेयी की प्रतीक्षा कर रही थी। कैकेयी को दूर से आते देख उसने झपटकर आगे बढ़ उसका स्वागत किया और लिपट गयी-

''जीजी, ऐसी भी क्या भूल हुई हमसे जो आपने सारा नेह-नाता तोड़कर हमें पूर्णतः बिसार ही दिया।'' कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं।

''सब विधि का विधान है सुमित्रा, अन्यथा मैं क्या तुमसे पृथक रह सकती हूँ।'' कैकेयी ने भी उसे अपने आलिंगन में कसते हुए धीरे से उत्तर दिया।

''चलो कक्ष में चलते हैं, जीजी भी व्यग्रता से आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।'' सुमित्रा उससे धीरे से अलग होती हुई बोली। कैकेयी की बाँह थामे हुए ही उसने कौशल्या के कक्ष में प्रवेश किया। आँखें नीची किये मन्थर गति से कैकेयी कौशल्या के पर्यंक तक पहुँची और उसके पैरों में झुक गयी। कौशल्या ने उसके झुकते ही पूरी शक्ति से उसे खींचकर अपने सीने से लगा लिया और उलाहना सा देती हुई बोली-

''इतने काल बाद सुध आयी जीजी की?''

''आपकी स्मृति तो कभी धुँधली पड़ी ही नहीं जीजी, किंतु किस मुख से आती आपके सामने!'' कैकेयी किसी प्रकार बोली।

''पगली...'' कहते-कहते कौशल्या की आँखें भी नम हो उठीं - ''भला किस कारण लज्जा आ रही थी तुझे मुझसे?''

''मेरे ही कारण तो हम सबको दुःख के पर्वत ढोने पड़ रहे हैं... मेरे कारण ही तो ....''

''तेरे कारण...'' कौशल्या कुछ बोलने जा रही थी किंतु सुमित्रा ने उसका कंधा दाब कर रोक दिया। कौशल्या भी समझ गयी और चुपचाप कैकेयी को सीने से लगाये उसकी पीठ सहलाने लगी।

''...राम, लक्ष्मण और सीता दुर्गम वनों में भटक रहे हैं, मेरे कारण ही हमारे सारे पुत्र पत्नियों के होते हुए भी सन्यासियों सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, मेरे कारण ही तो हम तीनों को वैधव्य ढोना पड़ रहा है।''

''बोल चुकी'', कैकेयी के मौन होने के उपरांत एक क्षण प्रतीक्षा कर कौशल्या बोली- ''जो भी हुआ वह तो विधि का निर्देश था, तूने तो मात्र अपने

कर्तव्य का निर्वहन किया। राम वन गया है तो सम्पूर्ण आर्य जाति के उद्धार के लिये। जब वह लौटेगा तो हम सब की छाती गर्व से चौड़ी हो जायेगी। इतिहास युगों तक हमें राम की माता के रूप में याद रखेगा। यह सब किसके कारण होगा? एकमात्र तेरे कारण। कुछ बड़ा प्राप्त करने हेतु कुछ बड़ा त्यागना भी होता है, बिना तपस्या के कुछ भी वरेण्य प्राप्त नहीं होता। यह जो वैधव्य हम भोग रही हैं, यह उसी महान उपलब्धि के यज्ञ में हमारी छोटी सी आहुति है। फिर यह क्यों भूलती है कि सर्वाधिक त्याग तो तूने ही किया है। हम तो महाराज के जीवित होते भी कौन सा सुहागन थीं, मात्र कभी भूले-भटके ही हमें उनकी कृपादृष्टि प्राप्त होती थी, उनके बाद तू तो सत्य ही वैधव्य को प्राप्त हुई है। हम तो जगत की दृष्टि में महान बन गयी हैं परंतु तू सबसे बड़ा बलिदान करने के उपरांत भी जगत में निंदा का पात्र बन रही है। हमें यह जो भी सम्मान प्राप्त हो रहा है और त्रिलोक विजयी रावण के भय से जगत को मुक्त कराने वाले राम की माता होने के कारण जो भविष्य में प्राप्त होगा, वह सब तेरे बलिदान के कारण ही तो होगा। तो अब वैराग्य त्यागकर राम के विजयी होकर लौटने पर उसके स्वागत हेतु तत्पर हो।''

''जीजी सत्य ही कह रही हैं'', सुमित्रा भी बोली- ''मँझली जीजी, आपके कारण ही हम दोनों भी युगों तक यशभागी बनने वाली हैं।''

''तेरा एक पुत्र तो राम के साथ है... परंतु मुझ अभागिनी का पुत्र तो...''

''क्या निरर्थक प्रलाप कर रही है'', कैकेयी की बात काटते हुए, कौशल्या डाँटने वाले स्वर में बोली- ''यदि लक्ष्मण वहाँ राम का सहयोग कर रहा है तो भरत भी तो यहाँ राम के दायित्वों का ही निर्वहन कर रहा है। क्या यह उसका राम के लिये सहयोग नहीं है?''

कैकेयी कुछ नहीं बोली परंतु कौशल्या और सुमित्रा की बातों से उसका हृदय हल्का अवश्य होने लगा था।

''अच्छा, अब मुस्कुराकर दिखा'', कैकेयी को कंधों से पकड़कर उसका मुख अपने सम्मुख लाते हुए कौशल्या लाड़ से बोली- ''वधुयें भी आती ही होंगी, उनके सम्मुख तेरा इस मुद्रा में रहना उचित नहीं होगा।''

परंतु कैकेयी मुस्कुराने के स्थान पर सुबकने लगी। कौशल्या उसकी पीठ थपथपाने लगी। सुमित्रा मौन खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी कि वर्षों से कैकेयी के हृदय में घनीभूत पीड़ा के मेघ पिघलकर बह जायें। सचमुच कुछ ही पलों में कैकेयी का सुबकना रुदन में परिवर्तित हो गया। कौशल्या मौन उसकी पीठ सहलाती रही, सुमित्रा मौन उसके शांत होने की प्रतीक्षा करती रही।

''अच्छा अब शांत हो जा...'' अंततः कैकेयी के आँसू पोंछती हुई कौशल्या बोली। फिर वह सुमित्रा से सम्बोधित हुई- ''देख तो सुमित्रा, ये वधुयें क्यों नहीं आयीं अभी तक।''

सुमित्रा तत्काल बाहर निकल आयी, वधुओं को देखने।

उसे किसी को वधुओं का पता करने भेजने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी, वे तो पहले ही द्वार की ओट में खड़ीं असमंजस में एक-दूसरे को देख रही थीं। सुमित्रा को देखते ही वे उसके पैरों में झुक गयीं और फिर प्रश्नवाचन दृष्टि से उसकी ओर देखने लगीं। सुमित्रा ने अपने अधरों पर उँगली रखते हुए उन्हें चुप रहने का संकेत किया फिर कुछ तीव्र स्वर में इस प्रकार बोली जैसे किसी दूरस्थ व्यक्ति से सम्बोधित हो-

''आओ-आओ... कितना विलम्ब कर दिया तुमलोगों ने आने में।''

कुछ पल प्रतीक्षा की सुमित्रा ने, ताकि भीतर कैकेयी स्वयं को नियंत्रित कर सके, तत्पश्चात् उसने वधुओं के साथ भीतर प्रवेश किया।

निश्चित ही तीनों वधुओं को आभास तो हो ही गया था कि कुछ ऐसा अवश्य है जो तीनों माताओं के अतिरिक्त किसी को ज्ञात नहीं। वस्तुतः तीनों माताओं के मध्य हुआ अधिकांश वार्तालाप उन्होंने द्वार की ओट से सुन लिया था, किंतु उनके संस्कारी व्यक्तित्व ने, ऐसे कठिन क्षणों में कक्ष के भीतर प्रवेशकर माताओं

को संकुचित करने से रोक दिया था। इस समय भी उन्होंने सुमित्रा से कोई प्रश्न नहीं किया चुपचाप उसके साथ भीतर प्रविष्ट हो गयीं।

इन चारों के प्रविष्ट होने तक कैकेयी स्वयं को नियंत्रित कर चुकी थी। वह सायास अपने मुख पर स्मित भी ले आयी थी किंतु अश्रुओं के चिह्न तो मुख पर व्याप्त ही थे। वधुओं ने उन चिह्नों को अनदेखा कर, सहज भाव से यथा विधि कौशल्या और कैकेयी को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

तीनों को आशीर्वाद प्रदान कर कौशल्या उनसे उत्साहित स्वर में बोलीं-

''देखो तो, तुम्हारी मँझली माता आज अपने एकांतवास से बाहर आ गयी हैं। अब शीघ्र ही हम सबका शुभ समय आरम्भ होने वाला है।''

वधुयें क्या बोलतीं, परंतु इस एक वाक्य ने उनके तृषित हृदयों को कुछ रस तो प्रदान किया ही। उनके अधरों पर अपने-आप ही एक सुखद स्मित खेल गयी। ज्येष्ठ के आगमन के उपरांत उन्हें पुनः दाम्पत्य का सुख प्राप्त हो सकेगा, इसे अनुभव कर तीनों भीतर ही भीतर पुलक उठीं।

''जीजी'', एकाएक कैकेयी प्रश्न कर बैठी- ''दण्डक से कोई समाचार प्राप्त हुआ है क्या?''

''कैसे प्राप्त होगा भला!'' उत्तर सुमित्रा ने दिया- ''राम ने स्पष्ट निर्देश दिया था भरत को कि उनके पीछे अयोध्या से कोई भी उस ओर न जायें। भरत भला भाई के आदेश की अवहेलना कैसे कर सकता है।''

''जब इतने दिन धैर्य रखा है तो कुछ दिन और रख'', कौशल्या ने दिलासा दी- ''सब शुभ ही होगा।''

देर तक राजपरिवार की ये सारी महिलायें परस्पर बतियाती रहीं। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा ने पूरी सावधानी बरती कि उनके मुख से ऐसा कुछ भी न निकले जिससे वधुओं को कोई शंका हो परंतु तब भी सुमित्रा समझ रही थी कि शंका तो वधुओं को हो ही गयी है। वह स्वयं को उन्हें समुचित उत्तर देने हेतु तैयार भी कर चुकी थी।

उस दिन से कैकेयी पुनः अपने एकांतवास से बाहर आ गयी।

उसके विदा लेने से पूर्व, कौशल्या उससे मंथरा का समुचित ध्यान रखने का विशेष निर्देशात्मक आग्रह करना नहीं भूली थीं।

18. किष्किंधा

उस दिन अंगद लौटा तब तक रात्रि हो गयी थी। रात्रि में पिता के सम्मुख जाना उसने उचित नहीं समझा। दूसरे दिन बहुत प्रयास किया, द्वार तक गया भी, किंतु भीतर जाने का साहस नहीं जुटा सका। एक बार पुनः वही प्रस्ताव कि काका को क्षमा कर दें पिता... कितनी बार तो वह उनकी डाँट खा चुका था।

परंतु जाना तो था ही। काका को जाकर पिता का उत्तर भी तो सुनाना था। अगले दिन पिता से वार्ता करने का पक्का निश्चयकर वह लौट आया।

अगले दिन ....

सायंकाल सभा आदि से निवृत्त होकर बालि अपने कक्ष में एकान्त में बैठा था, तभी अंगद ने भीतर प्रवेश किया। औपचारिकताओं के उपरांत उसने धीरे से निवेदन किया-

''पिता! अब काका को क्षमा क्यों नहीं कर देते आप?''

''उसने तो कभी क्षमा माँगी नहीं, तू क्यों वृथा उसका पक्षधर बन रहा है।'' बालि ने त्योरी चढ़ाते हुए उत्तर दिया।

''उन्होंने ही क्षमा-प्रार्थना की है, मैं तो मात्र संदेश लेकर आया हूँ।''

''तू उसका संदेश-वाहक कैसे बन गया, तू तो मेरा पुत्र है?''

''आप मेरे पिता हैं, तो वे भी मेरे काका हैं।''

''तो?''

''तो कुछ नहीं, काका ने मुझसे आग्रह किया है कि आपसे निवेदन करूँ, मुझे भी उनका आग्रह उचित प्रतीत हुआ।''

''कापुरुष ऐसे ही होते हैं'', अंगद को सीधा उत्तर देने के स्थान पर बालि बोला- ''स्वयं का तो साहस नहीं हुआ, तो तुझे ढाल बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है।''

''इसमें स्वार्थ कहाँ से आ गया पिता जी। अग्रज से क्षमा-प्रार्थना करना स्वार्थ नहीं होता।''

''उसी अग्रज की हत्या का प्रयास करना तो स्वार्थ ही नहीं, नीचता होती है।''

''आप उन्हें अपनी बात कहने का अवसर क्यों नहीं देते? संभव है, वही हुआ हो जो वे कह रहे हैं।''

''क्या कह रहा है वह?''

''आपने उन्हें कहने का अवसर ही कब दिया?''

''जो सत्य सामने खड़ा हो, मात्र तेरे उस धूर्त काका के कहने से उसे झुठलाया नहीं जा सकता।''

''पिता वे धूर्त नहीं हैं।''

''तू तो इतना वाचाल कभी नहीं था'', बालि को अब क्रोध आने लगा था- ''तू नित्य उससे मिलने जाता है, यह सब जानकर भी आज तक मैंने तुझे नहीं रोका, किंतु प्रतीत होता है अब तेरा उससे मिलना प्रतिबन्धित करना पड़ेगा।''

बालि का क्रोध देखकर अंगद थोड़ा सा सकपका गया। फिर भी साहस कर किसी प्रकार बोला-

''आप मेरी बात समझने का प्रयास क्यों नहीं कर रहे हैं पिता जी?''

''मुझे इस विषय में तुझसे कोई विवाद नहीं करना। भलीभाँति समझ ले कि तेरे उस भ्रातृ-द्रोही काका को मैं किसी मूल्य पर क्षमा नहीं करने वाला। बस अब निकल जा यहाँ से अन्यथा मैं क्रोध में कहीं तुझ पर ही आघात न कर बैठूँ।''

अब और बहस करना अंगद के लिये सम्भव नहीं था। वह चुपचाप कक्ष से बाहर जाने के लिये मुड़ गया।

''और सुन!'' बालि पीछे से चिंघाड़ा- ''अब यदि मैंने सुना कि तू पुनः उसके पास गया है तो मैं तुझे भी कारा में डलवा दूँगा।''

अंगद ने सुना और मायूस सा बाहर निकल आया।

क्रोधित बालि पीछे चिल्ला रहा था-

"पहले छल से मेरी मृत्यु का प्रबन्ध किया। जब सफल नहीं हुआ तो अब मेरे पुत्र को मेरे विरुद्ध भड़काने का प्रयास कर रहा है। कापुरुष कहीं का, सम्मुख आकर वार करने का साहस नहीं है... मृत्यु के भय से मतंग वन में छिपा बैठा है। अंगद का प्रयोग कर रहा है अब।"

अंगद को समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। उसका मन रोने को कर रहा था परंतु आँसू भी नहीं आ रहे थे। रो सकता भी नहीं था, वह पुरुष था, वीर था... पुरुष भी कहीं रोते हैं!

परंतु क्या करे वह! उसे तो अभी पिता से काकी के विषय में भी वार्ता करनी थी। 'वे यदि काका को क्षमा नहीं कर सकते, तो काकी को तो इस प्रासाद के बंदीगृह से मुक्त कर ही सकते हैं। उनका भला क्या दोष है, उन्हें जाने दें अपने पति के पास!'

यही सब सोचता हुआ, अपने में डूबा अंगद कब प्रासाद से बाहर आया, कब किष्किंधा की सीमा से भी बाहर निकल आया, उसे पता ही नहीं चला। उसे चेत तो तब हुआ जब उसने पाया कि वह तो मतंग वन की सीमा में खड़ा है।

वह वहीं ठिठक गया। उसके पगों ने जैसे विद्रोह कर दिया हो। उसे जाकर काका को पिता का उत्तर सुनाना था, परंतु पग थे कि उठ ही नहीं रहे थे।

वह वापस लौट पड़ा। वह इस समय काका का सामना नहीं करना चाहता था, क्या उत्तर देता उन्हें कि पिता ने उन्हें क्षमा नहीं किया और काकी के विषय में वह कोई वार्ता कर ही नहीं पाया!

वैसे भी अँधेरा होने लगा था। उसे यह चिंता भी सताने लगी कि पिता पहले ही उस पर कुपित हैं, रात्रि में उसे अपने कक्ष में न पाकर उनका क्रोध अकारण ही और बढ़ जायेगा। तब क्रोधावेश में वे कोई और भी कठोर निर्णय न ले बैठें।

वापसी यात्रा भी वैसी ही रही जैसी जाते समय रही थी। अपने विचारों में खोया वह कब किष्किंधा की सीमा में प्रवेश कर गया उसे पता ही नहीं चला। किष्किंधा का प्रवेश द्वार कुछ सहस्त्र पग ही दूर रह गया था कि अचानक अंगद के कानों में किसी व्यक्ति का फुसफुसाता हुआ स्वर पड़ा-

''निस्संदेह महाराज बालि और रूमा के मध्य अनैतिक संबंध है।''

यह ऐसा वाक्य था जिसने अंगद की सारी अन्यमनस्कता को झिंझोड़ दिया। उसकी भृकुटी तन गयी, चेहरा तम तमा उठा, बढ़ते हुए पग अनायास ही ठिठक गये। '...पुनः वही चर्चा', वह तमतमा उठा।

वह चीखकर बोलने वाले को चेतावनी देने ही वाला था कि उसकी अन्तःचेतना ने उसे रोक लिया। वह ठिठक कर एक वृक्ष के पीछे हो गया।

अब तक पर्याप्त अंधकार हो चुका था और अंगद अपने विचारों में खोया मौन चला आ रहा था, संभवतः इसी कारण वार्तालापरत व्यक्तियों को उसके आगमन का आभास नहीं हो पाया था। वे अब भी अपने वार्तालाप में निमग्न थे।

''मूर्ख हो तुम! न जाने क्या अनर्गल प्रलाप कर रहे हो!'' दूसरा स्वर उभरा। यह अपेक्षाकृत तीव्र था।

''न तो मैं अनर्गल प्रलाप कर रहा हूँ और न ही मूर्ख हूँ। तुम ही अपनी आँखों पर राजभक्ति की पट्टी बाँधे हो।''

''राजभक्ति निस्संदेह मेरे रक्त में प्रवाहित होती है, परंतु मैं आँखों पर कोई पट्टी नहीं बाँधे हूँ। मुझे भलीभाँति पता है कि यह अनर्गल प्रलाप है। मैं तो प्रासाद में ही रहता हूँ, मैंने न तो कभी महाराज को युवराज्ञी के कक्ष की ओर जाते देखा है और न ही कभी युवराज्ञी को महाराज के कक्ष की ओर।''

''अब तो मुझे कहना ही पड़ेगा कि तुम मूर्ख हो'', पहले वाला स्वर पुनः उभरा। उस बार उस स्वर में उपहास का भाव मिश्रित था- ''वे दोनों भला एक-दूसरे के कक्ष में क्यों जायेंगे? अपने सम्बन्ध क्या वे महारानी के सामने प्रकट होने देंगे? उन्होंने अपना कोई गुप्त प्रेम घोंसला बना रखा होगा, वहीं प्रेम के हिंडोले

पर झूलते होंगे। महाराज के लिये ऐसी व्यवस्था करना क्या कोई कठिन कार्य है!''

''मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारे दुर्दिन आरम्भ होने वाले हैं, अन्यथा महाराज पर ऐसा लांछन लगाने का प्रयास न करते।''

''मित्र! मैं नहीं लगा रहा लांछन महाराज पर, यह चर्चा तो सारी किष्किंधा नगरी की जिह्वा पर है।''

''अब बस भी करो, अन्यथा मुझे महाराज से तुम्हारी शिकायत करनी पड़ेगी।'' दूसरे व्यक्ति ने डाँटने वाले स्वर में कहा।

''मैं तो बस कर दूँगा, किंतु किस-किस की जिह्वा पकड़ोगे तुम? सारी किष्किंधा में यही चर्चा है।''

''तब तो यह महाराज के संज्ञान में लाना ही पड़ेगा। बेचारी युवराज्ञी, वे तो कभी अपने कक्ष से बाहर ही नहीं निकलतीं... उनके विषय में ऐसा लोकापवाद!''

''ऐसी भूल मत कर डालना।'' पहले स्वर ने चेताया।

''महाराज को तो बताना ही पड़ेगा, ऐसी चर्चाओं को प्रतिबन्धित करना ही पड़ेगा।'' दूसरा स्वर निश्चयात्मक था।

''यदि तुम सच कह रहे हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि नियति युवराज्ञी के प्रति कुछ अधिक ही कठोरता बरत रही है। किंतु वह पृथक विषय है। जनचर्चा सत्य हो अथवा असत्य, महाराज के सामने इस विषय में कोई चर्चा करने से कोई लाभ नहीं होने वाला। तुम यदि महाराज को बताओगे तो कोई बड़ी बात नहीं कि पहले तुम ही दंड के भागी बन जाओ। न भी बनो, तो भी महाराज तिलमिलायेंगे तो अवश्य ही और तब वे जनता को प्रताड़ित कर, इस चर्चा को दबाने का प्रयास करेंगे। तुम लोक मनोविज्ञान को समझने का प्रयास करो... जिस बात को दबाने का प्रयास किया जाता है वह उतनी ही तीव्रता से फैलती है। अभी तो तुम्हारे समान अनेक लोग इस चर्चा को मिथ्या मान रहे हैं परंतु जैसे ही महाराज

इस चर्चा को रोकने के लिये कोई सक्रियता दिखायेंगे, उन लोगों को भी इस पर विश्वास होने लगेगा। लोग कहेंगे कि कुछ न कुछ तो तथ्य होगा ही चर्चा में... राई का पहाड़ बनाने के लिये भी राई की उपस्थिति तो होनी ही पड़ती है।''

''तो क्या करूँ, लोगों को ऐसे ही प्रलाप करने दूँ?''

''ईश्वर से प्रार्थना करो कि यह लोकापवाद अपनी मृत्यु मर जाये। यदि इसे मारने का प्रयास किया तो यह रक्तबीज बन जायेगा।''

अंगद इससे अधिक नहीं सुन सका। उसका पहले से ही भन्ना रहा सिर और अधिक भन्नाने लगा था परंतु उस व्यक्ति का तर्क भी उसे समझ आ रहा था कि यदि इस जनचर्चा को मारने का प्रयास किया गया तो यह रक्तबीज बन जायेगी।

वह चुपचाप प्रासाद में जाकर अपने कक्ष में घुस गया।

नींद तो रात भर नहीं आनी थी सो नहीं आयी।

***

उससे अगले सारे दिन, सारी रात वह इसी विषय में मंथन करता रहा। दूसरे दिन भी मध्याह्न तक उसका मंथन चलता ही रहा। जब कोई मार्ग नहीं सूझा, चित्त को कैसे भी शांति नहीं मिली, तो वह मतंग वन की ओर चल दिया।

आज उसका चित्त कल से भी अधिक अशांत था। वह काका का सामना भी नहीं करना चाह रहा था और किष्किंधा का प्रासाद उसे काटने को दौड़ रहा था। उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या करना है, बस किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित वह बढ़ता चला जा रहा था। अपनी सोचों में डूबा वह सिर झुकाये चला जा रहा था। उसने ध्यान ही नहीं दिया कि सामने से हनुमान आ रहे हैं।

''क्या हो गया रे'', हनुमान एकाएक उसका रास्ता रोकते हुए बोले- ''क्या हो गया है तुझे? तेरा मुख इस प्रकार मुरझाया हुआ क्यों है?''

हनुमान के एकाएक प्रकट होने से अंगद चौंक पड़ा। एकदम से उसे सूझा ही नहीं कि क्या उत्तर देना है। उसी हड़बड़ाहट में बिना सोचे-समझे, अचानक ही उसके मुख से निकला-

''तुम्हारे प्रभु कब तक प्रकट हो रहे हैं बजरंग भैया?''

''अब तो कभी भी प्रकट हो सकते हैं, मेरी सूचना के अनुसार वे पंचवटी की ओर प्रस्थान कर चुके हैं।''

उत्तर में अंगद बोला कुछ नहीं, बस खोई-खोई सी अवस्था में सिर हिला दिया।

''परंतु एकाएक तुम प्रभु के विषय में कैसे उत्सुक हो उठे?'' अब हनुमान की उत्सुकता भी जाग्रत हो चुकी थी।

''कुछ नहीं, बस ऐसे ही जिज्ञासा हुई।'' अंगद ने बात टालनी चाही।

''नहीं बताना चाहते?''

''नहीं भइया, भला तुमसे कभी कुछ छिपाया है मैंने!''

''आज से पहले तो नहीं छिपाया परंतु आज प्रयास कर रहे हो।'' हनुमान अब गम्भीर हो उठे- ''बताओ न, क्या बात है। तुम्हारी भंगिमा चीख-चीख कर कह रही है कि तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो परंतु कह नहीं पा रहे हो।''

''नहीं भइया...''

''क्या नहीं भइया, मेरी पीठ पर चढ़कर ही बड़े हुए हो तुम और अभी इतने बड़े भी नहीं हुए कि सफलतापूर्वक अपने हृदय के झंझावातों को छिपा ले जाओ। बताओ... अच्छा आओ, वन में चलते हैं, वहाँ एकान्त में चर्चा करेंगे।'' कहकर हनुमान ने अंगद का हाथ पकड़ा और उसे खींचते हुए वन के भीतर की ओर बढ़ने लगे। अंगद भी अनमना सा बिना किसी प्रतिरोध के खिंचा चला गया।

''अब बोलो।'' थोड़ा आगे जाकर हनुमान रुक गये और अंगद का हाथ छोड़ते हुए पुनः प्रश्न किया।

''भइया! काका ने पिता से वार्ता करने को कहा था... ।''

"हाँ कहा तो था, क्या उत्तर दिया उन्होंने? क्षमादान करने से मना कर दिया?"

"मना ही कर दिया... वस्तुतः उन्होंने तो मुझे कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया।"

"ओह!" हनुमान गम्भीरता से बोले- "ऐसी ही आशंका थी मुझे।" परंतु इसके कारण इतने अस्तव्यस्त से क्यों हो तुम? मुझे ही नहीं, सभी को यही आशंका थी, तो फिर इसमें असंभावित क्या हो गया?"

"भइया! व्यथा का कारण यह नहीं है।" अन्ततः अंगद कुछ खुला।

"तो जो भी है वह बताओ तो। व्यथा, किसी अपने से बाँट लेने से हृदय का बोझ कम हो जाता है।"

और फिर अंगद हनुमान को सब कुछ बताता चला गया। बताता गया और रोता गया।

***

समस्या गम्भीर थी। हनुमान को समझ नहीं आया कि तत्काल क्या कहें अंगद से। अंगद के मन में चल रहे झंझावात का उन्हें पूरा आभास था।

"इस विषय में", कुछ पल सोचने के बाद हनुमान बोले- "सुग्रीव मातुल से वार्ता करनी ही होगी।"

"मैं उनसे वार्ता नहीं कर सकूँगा इस विषय में..." हनुमान का वाक्य पूरा होने से पूर्व ही अंगद सकपकाकर पीछे हटते हुए बोल पड़ा।

"नहीं, यह विषय तुम्हारे योग्य है भी नहीं", हनुमान अंगद को अपने सीने से भींचते हुए बोले- "इस विषय में अमात्य श्रेष्ठ जाम्बवान का सहयोग लेना पड़ेगा। वे हम सब में सबसे अनुभवी हैं। वही उचित परामर्श दे सकेंगे।"

"वह आप समझो..." कहकर अंगद हनुमान के वक्ष से और अधिक चिपक गया।

कुछ पल पश्चात उसने धीरे से अपना सिर उठाया और प्रश्न किया-

''क्या आपके प्रभु कोई सहायता नहीं कर सकेंगे इस प्रकरण में?''

''अवश्य कर सकेंगे, वे तो प्रभु ही हैं। परंतु उनसे भेंट तो हो... इस विषय में भी अमात्य प्रवर जाम्बवान की सम्मति से ही कुछ करना उचित होगा।''

''जैसा आप उचित समझें।'' कहकर अंगद पुनः हनुमान के वक्ष में सिमट गया और सिसकने लगा।

''अच्छा अब बालकों के समान सिसकना बन्द करो'', हनुमान स्नेह से अंगद की पीठ थपथपाते हुए बोले- ''तुम तो वीरों में श्रेष्ठ हो, तुम्हें इस भाँति व्यथित होना शोभा नहीं देता।''

''क्या करूँ भइया! प्रयास तो कर रहा हूँ परंतु आपके सम्मुख हृदय खोलने के उपरांत ये अश्रु मेरे वश में ही नहीं रह गये हैं।''

''हो जायेंगे'', कहकर हनुमान मुस्कुराये- ''चलो अच्छा अब अश्रु पोंछो और ऊपर चलो।''

''नहीं भइया! मुझमें काका के सम्मुख पड़ने का साहस नहीं है अभी।''

''यूँ कब तक बचोगे उनसे? वे भी तो तुमसे मिलने को व्याकुल हैं। वे भी तो...''

''नहीं भइया, आप ही बता दीजिएगा उन्हें... जैसा बाबा जाम्बवान परामर्श दें। मैं कल आपसे भेंट करूँगा।''

पहले हनुमान के मन में आया कि अंगद को रोक लें, परंतु फिर कुछ सोचकर उन्होंने अपना निर्णय बदल दिया। उन्होंने अंगद को दोनों कंधों से पकड़कर उसे अपने वक्ष से अलग किया और उसकी आँखों में झाँकते हुए मुस्कुराकर बोले-''तो फिर उचित यही होगा कि तुम वापस किष्किंधा लौट जाओ। प्रासाद में न जाना चाहो तो अपनी माता को बताकर मेरे घर चले जाना और वहीं रुक जाना।''

"अरे, यह मुझे क्यों नहीं सूझा!" इस बार अंगद भी धीरे से मुस्कुराया- "बुआ की गोद ही इस समय मेरे लिये सर्वाधिक सुरक्षित आश्रय होगी।"

"जाओ तो फिर।" हनुमान उसी भाँति मुस्कुराते हुए पुनः उसकी पीठ थपथपाकर बोले।

***

अंगद के घूमते ही हनुमान के मुख पर पसरी मुस्कुराहट का स्थान व्यग्रता और चिंता ने ले लिया। वे तीव्रता से ऋष्यमूक की चढ़ाई चढ़ने लगे।

ऋष्यमूक का शिखर एक अत्यंत छोटा सा, लगभग सौ पग की परिधि का, असमतल मैदान था। सघन वृक्षों से घिरे ढलान के विपरीत शिखर पर मात्र तीन ही खूब ऊँचे वृक्ष थे।

शिखर पर पहुँचने से पूर्व ही वे एक वृक्ष की ओट में छिप गये। उनकी दृष्टि चारों ओर घूमती हुई जाम्बवान को खोजने लगी। वृद्ध जाम्बवान सुग्रीव के साथ ही बैठे हुए थे। हनुमान को कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, सुग्रीव के सम्मुख वे जाम्बवान से इस विषय में वार्ता नहीं करना चाहते थे।

जैसे ही सुग्रीव किसी कार्यवश उठकर दूसरी ओर गये, हनुमान अत्यंत त्वरित गति से वृक्षों के तनों से झूलते हुए जाम्बवान के सामने की ओर पहुँचे और वृक्ष से एक फल तोड़कर जाम्बवान के पैरों की ओर उछाल दिया। फल जैसे ही जाम्बवान के दाहिने पैर से टकराया, उन्होंने चौंककर उसके आने की दिशा की ओर दृष्टि दौड़ाई। जैसे ही दोनों की दृष्टि मिली, हनुमान ने मुख पर उँगली रखकर चुप रहने का संकेत करते हुए उन्हें अपनी ओर बुलाया।

जाम्बवान को समझते देर नहीं लगी कि अवश्य ही कुछ गम्भीर विषय है, वे भी चुपचाप उठे और धीरे से बिना कोई अधीरता दिखाये हनुमान की ओर बढ़ चले। जाम्बवान को अपनी ओर आता देखकर हनुमान पुनः डालों पर झूलते हुए नीचे उतरने लगे। लगभग मध्य में जाकर वे रुक गये और जाम्बवान के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

***

"मेरे विचार से तो हमें इस विषय में अब निर्मम होकर निर्णय लेना ही पड़ेगा।" जाम्बवान बोले।

"क्या तात्पर्य है आपका तात्?" हनुमान ने प्रश्न किया।

"सम्राट बालि यदि इसी प्रकार अपनी हठ पर अडिग रहे, तो हमें उन्हें पदच्युत करने के विकल्प को चुनना ही पड़ेगा।"

ऋष्यमूक के शिखर पर जाम्बवान, सुग्रीव, हनुमान और अन्य सहयोगी बैठे हुए थे। सभी के मुख पर गम्भीरता पसरी थी, कारण वही था जो अंगद ने हनुमान को बताया था और हनुमान ने आगे जाम्बवान को। जाम्बवान ने ही सबको आहूत कर परिस्थिति समझाई थी और तब अपना उपरोक्त विचार व्यक्त किया था।

जाम्बवान के कथन के उत्तर में उस छोटी सी सभा में मौन छा गया। सभी अपना विचार प्रकट करने के स्थान पर एक-दूसरे का मुख देखने लगे। सुग्रीव भी मौन ही रहा, भले ही अनवरत प्रताड़ना और उपेक्षा से उकताकर वह स्वयं इसी विकल्प के विषय में सोचने लगा था, फिर भी ऐसा होने की कल्पना से ही वह काँप उठता था।

जब कोई नहीं बोला तो जाम्बवान ने ही बात आगे बढ़ायी-

"परंतु कठिनाई तो यह है कि बालि अब पूर्णतः निर्द्वन्द्व हो चुका है। उचित होगा यदि मैं इसे स्वेच्छाचारी कहूँ। समझाने से वह समझने वाला नहीं है और बलप्रयोग उस पर किया नहीं जा सकता। द्वन्द्व में उसके सम्मुख एकमात्र हनुमान ही टिक सकते हैं परंतु मुझे नहीं प्रतीत होता कि ये इस हेतु प्रस्तुत होंगे।"

"कदापि नहीं!" हनुमान ने उत्तर देने में एक क्षण का भी विलंब नहीं किया- "मातुल सुग्रीव के प्रति वे कितने भी कठोर क्यों न हों किंतु मुझे तो उनसे सदैव वात्सल्य ही प्राप्त हुआ है। मैं उनके विरुद्ध द्वन्द्व की सोच भी नहीं सकता।"

"परंतु यदि किष्किंधा की मर्यादा की रक्षा करनी है तो बालि को सिंहासनच्युत करना भी आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक संयम बरत चुका

है सुग्रीव। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किष्किंधा की जनता भी इसे बालि से अधिक प्यार करती है। वह इसे ही किष्किंधापति के रूप में देखना चाहती है।''

''परंतु काका'', सुग्रीव ने टोका- ''भइया को सिहांसनच्युत करना तो उनके वध के बिना संभव ही नहीं है और मैं ऐसी आकांक्षा कदापि नहीं कर सकता। वे भले ही मुझपर कुपित हैं, भले ही वे निरंतर मेरे और रूमा के साथ अन्याय कर रहे हैं परंतु वे मेरे अग्रज हैं। मैं उनका अहित कैसे चाह सकता हूँ?''

''अब प्रश्न बालि के अथवा तुम्हारे हित-अहित का नहीं है। अब प्रश्न रूमा की मर्यादा का है। उससे भी अधिक किष्किंधा की मर्यादा का है। राष्ट्र की मर्यादा सदैव किसी भी व्यक्ति की मर्यादा से अधिक महत्वपूर्ण होती है... वह व्यक्ति भले ही स्वयं राजा ही क्यों न हो।''

''परंतु तात्...'' सुग्रीव ने कुछ बोलना चाहा पर जाम्बवान ने उसकी बात काट दी। वह बोला-

''कोई किंतु-परंतु नहीं। किष्किंधा के अहित का साथी न मैं स्वयं हो सकता हूँ और न तुम्हें किसी को होने दे सकता हूँ।''

''परंतु हम करेंगे क्या?'' इस बार हनुमान ने प्रश्न किया।

''यही तो सबसे बड़ी समस्या है।''

एक बार पुनः मौन छा गया।

''मैं ही एक बार प्रयास करूँगा बालि को समझाने का।''

''क्या यह उचित होगा तात?'' सुग्रीव जल्दी से बोला- ''वे आपका अपमान कर बैठेंगे।''

''राष्ट्र के सम्मान की रक्षा हेतु किसी व्यक्ति के मान-सम्मान का ही नहीं प्राणों का भी कोई मूल्य नहीं होता। यह प्रयास तो मुझे करना ही पड़ेगा।''

देर तक इस विषय में विचार-मंथन हुआ किंतु अंततः जाम्बवान का निर्णय ही अंतिम रहा। इतना अवश्य तय हुआ कि जाम्बवान के साथ हनुमान भी

जायेंगे। वे भले ही कुछ भी न बोलें परंतु किसी अनचाही स्थिति में जाम्बवान की सुरक्षार्थ साथ रहेंगे।

19. लंका

रात्रि का एक प्रहर व्यतीत होने को था। प्रहस्त सभाभवन से तो अपराह्न में ही लौट आया था, परंतु तभी से अपने प्रासाद में ही बने अपने कार्यालय-कक्ष में कुछ सभासदों से घिरा लंका की सर्वश्रेष्ठ मदिरा के पान में व्यस्त था। मदिरा के साथ, प्रथानुसार भुने हुए, चटपटे मांस का आस्वादन भी चल रहा था। दासी अब तक तीन बार मांस के टुकड़ों के थाल वहाँ लाकर रख चुकी थी और अब तीसरा भी समाप्तप्राय ही था।

भीतर उसकी पत्नी विधुलेखा खीज रही थी। वह उसकी दूसरी पत्नी थी और आयु में उससे आधी, अर्थात् लगभग चालीस वर्ष की थी। वह भी अद्भुत सुन्दरियों में गणना करने योग्य थी। चालीस वर्ष की वय में भी वह पच्चीस-तीस के मध्य की ही लगती थी। उसकी खीज का कारण प्रहस्त की रात्रिकालीन असंयमित दिनचर्या ही थी। वैसे यह कोई उस एक दिन का ही प्रकरण नहीं था, लगभग नित्य ही ऐसा होता था। सभाभवन से आने के उपरांत भी, देर रात तक प्रहस्त को अन्तःपुर में जाने का अवकाश प्राप्त नहीं होता था। विधुलेखा भोजन के लिये पति की प्रतीक्षा करती रहती थी और पति अपने मित्रों के साथ मदिरापान में व्यस्त रहता था। प्रहस्त तो मदिरा के साथ कुछ न कुछ उदरस्थ भी करता रहता था, परंतु विधु क्षुधा से व्याकुल होती रहती थी।

हालाँकि प्रहस्त के इस एक व्यसन के अतिरिक्त उसे उससे कोई शिकायत नहीं थी। वह एक सुलझा हुआ व्यक्ति था और सहवास में उसे अब भी पूर्णरूपेण संतुष्ट करने में सक्षम था। वह कितनी भी मदिरा क्यों न पी ले, कभी भी उन्मत्त नहीं होता था।

आज भी देह और उदर दोनों की क्षुधा से पीड़ित वह दो बार दासी के द्वारा संदेश भेज चुकी थी परंतु दोनों बार एक ही उत्तर मिला था- 'एक गम्भीर प्रकरण पर मंत्रणा चल रही है, बस कुछ ही काल में आता हूँ।'

विधुलेखा भलीभाँति समझती थी कि गम्भीर मंत्रणा मात्र एक बहाना था अतः अंततः वह स्वयं ही कार्यालय कक्ष में आ धमकी। वह आक्रोश से भरी हुई थी। उसे द्वार पर देखते ही प्रहस्त सतर्क हो गया। इससे पूर्व कि विधु कुछ बोल पाती, वह स्वयं ही चापलूसी भरे स्वर में बोल उठा-

''विधु, कुछ अत्यावश्यक कार्य है, इनसे निवृत्त होते ही मैं आता हूँ।''

''मदिरापान ही है न आपका आवश्यक कार्य।'' विधु भुनभुनाई।

''नहीं, सारे दिन के कठिन श्रम से मस्तिष्क जड़वत हो गया था'', इस बार प्रहस्त ने गम्भीर मंत्रणा का बहाना नहीं बनाया- ''उसे पुनः जाग्रत करने के लिये ही मदिरा की आवश्यकता पड़ गयी थी। तुम नहीं जानती, मस्तिष्क के स्वास्थ्य के लिये सुरा, सुधा के समान होती है।''

''यह तो आपका नित्य का बहाना है।''

''नहीं, आज बस समाप्त ही हो गया समझो, अधिकतम एक मुहूर्त।''

''इससे अधिक नहीं होना चाहिए।''

''विश्वास करो, नहीं होगा।''

विधुलेखा को विश्वास तो नहीं हुआ, परंतु वह कुछ कर भी नहीं सकती थी, भुनभुनाती हुई वापस चली गयी।

उसके जाते ही एक सभासद उठता हुआ बोला-

''अनुमति दें महामात्य, हम चलते हैं। देवी कुपित हो रही हैं।''

''अरे, चिंता मत करो'', प्रहस्त बोला, फिर थोड़ा आगे झुकते हुए, कुत्सित ढंग से हँसकर आगे जोड़ा- ''जब वह क्रोध में होती है तो सहवास के समय और अधिक उत्तेजक हो जाती है।''

अन्य सभासद बस मुस्कुराकर रह गये। महामात्य द्वारा अपनी पत्नी के प्रति की गयी इस टिप्पणी पर कोई टीका करने का उनका साहस नहीं हो सकता था। परंतु वही सभासद धीरे से हँसकर, चाटुकारिता भरे स्वर में बोला-

''अद्भत है महामात्य, इस वयस में भी आप सहवास का आनन्द ले सकते हैं। अस्सी से कम तो नहीं होगी आपकी वय!''

''परीक्षा लेना चाहते हो तो अपनी पत्नी को भेज देना किसी दिन।'' प्रहस्त कुटिलता से बोला।

उस सभासद ने महामात्य से ऐसे सीधे उत्तर की अपेक्षा नहीं की थी। वह झेंप गया, फिर भी स्वयं को सँभालता हुआ बोला-

''नहीं महामात्य, मुझे देवी का कोपभाजन नहीं बनना।''

''विधु कोप करेगी तो मुझ पर करेगी, तुम क्यों चिंतित होते हो।''

''नहीं महामात्य, अब हमें चलना ही चाहिए।'' कहते हुए वह सभासद उठ गया और कक्ष के द्वार की ओर बढ़ चला। वह महामात्य द्वारा अपना और उपहास नहीं बनवाना चाहता था। शेष सभासदों ने भी उसका अनुसरण किया।

उनके जाने के पश्चात भी प्रहस्त ने उठने का कोई प्रयास नहीं किया, वह मुस्कुराते हुए अपने पात्र की मदिरा चुसकने लगा।

एकाएक द्वार पर एक दासी प्रकट हुई।

''प्रणाम महामात्य'', वह परम्परागत ढंग से झुकते हुए अतिशय विनम्र स्वर में बोली- ''दण्डकारण्य से एक संदेशवाहक आया है। वह आपसे भेंट करने हेतु सुदीर्घ काल से प्रतीक्षा कर रहा है।''

''तो अभी तक उपस्थित क्यों नहीं हुआ, अब तो मुझे भोजन हेतु प्रस्थान करना है।''

''वह आपसे एकान्त में भेंट करना चाहता था।''

प्रहस्त के नेत्र सिकुड़ गये। एक बार उसने सोचा कि प्रातः भेंट करने के लिये कह दे, परंतु फिर कुछ सोचकर उसने उत्तर दिया-

''ठीक है भेज दो।''

कुछ ही पलों में एक औसत ऊँचाई का, काले रंग का लगभग पचास वर्षीय व्यक्ति उसके सम्मुख उपस्थित था।

''बोलो!'' प्रहस्त ने आदेश दिया।

''महामात्य, दण्डक में विचरण करते जिन दो तपस्वी वेशधारी राजपुरुषों और एक लावण्यमयी स्त्री का उल्लेख मैंने पूर्व में कई बार आपसे किया था, अब उनकी गतिविधियाँ किंचित संदिग्ध प्रतीत हो रही है।''

''क्या किया उन्होंने?''

''वे विगत कुछ दिन से अगस्त्य के आश्रम में रुके थे और अभी कल ही उन्होंने पंचवटी में अपना आश्रय बनाया है।''

''हूँ ऽऽऽ!'' प्रहस्त अलसाये से स्वर में बोला।

''वहाँ पाँचों वटों के मध्य एक सुन्दर सा स्थान है। अभी तक हमें भी उसके विषय में ज्ञात नहीं था, गुप्त रूप से उनका पीछा करने वाले सैनिक ने ही जब हमें बताया तभी हमें ज्ञात हुआ। उनके वहाँ तक पहुँचने में जटायु ने उनकी सहायता की है।''

''यह सब तो हुआ, परंतु इसमें संदिग्ध क्या है?''

''महामात्य, जो भी दण्डक में ऋषियों के दर्शनार्थ आता है, वह सर्वप्रथम महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जाकर उनका आशीर्वाद लेता है, परंतु ये लोग वर्षों तक सम्पूर्ण दण्डक का भ्रमण करने के उपरांत वहाँ गये हैं। यह मुझे असामान्य सा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अब हमें ज्ञात है कि उन दोनों में एक अयोध्या का युवराज राम है, दूसरा उसका अनुज लक्ष्मण और साथ की स्त्री राम की पत्नी सीता है।''

सीता सुनते ही प्रहस्त का आलस्य मानों कोसों दूर भाग गया। वह एकदम सचेत होकर बैठ गया। हठात् ही उसके मुख से फुसफुसाहट भरे शब्द निकले-

''सीता!''

''जी महामात्य!''

''तुम निश्चित हो?''

''जी! पूर्णतः।''

''और ये राम, लक्ष्मण तो वही है जिन्होंने ताड़का का वध किया था!''

''जी महामात्य!''

''जाओ, मैं देखता हूँ कि इस विषय में क्या करना है'', प्रहस्त ने जल्दी से कहा, फिर जोड़ा- ''और उन तीनों को अपनी दृष्टि से ओझल मत होने देना।''

''जब से वे लोग अगस्त्य आश्रम गये हैं, हमारे दो कुशल गुप्तचर निरंतर उन पर दृष्टि रखे हुए हैं।''

''परंतु इस बात की सावधानी रखना कि उन्हें इसका संज्ञान न होने पाये।''

''जी महामात्य!''

''तो जाओ अब और मुझे निरंतर सूचित करते रहना।''

वह व्यक्ति प्रणाम कर कक्ष से बाहर निकल गया।

***

प्रहस्त को जब आरम्भ में चरों ने राम, लक्ष्मण व सीता के विषय में सूचना दी थी तो उसने इसे बहुत गम्भीरता से नहीं लिया था। तब उसने यह विचार भी नहीं किया था कि सीता रावण और वेदवती की पुत्री, वही कन्या हो सकती जिसके विषय में सुमाली ने कहा था कि वह पितृकुल के सर्वनाश का कारण बनेगी। इसीलिये जब दण्डक से आये उस कूटचर ने बताया कि वे तीनों राम, लक्ष्मण और सीता हैं, तो वह भीतर तक हिल गया।

वह भूल गया कि भीतर विधु उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। उसके अन्तस में एक ही प्रश्न घुमड़ने लगा कि वह सीता है, अर्थात वह रावण की वही कन्या है जिसे उसके पिता ने पितृकुलघातिनी कहा था। पितृकुलघातिनी का सीधा सा तात्पर्य था कि वह रावण के कुल के विनाश का कारण बनने वाली है। रावण

के कुल का विनाश उसका अपना विनाश था। उसे ज्ञात था कि उस कन्या का विवाह सप्तम विष्णु उपाधिधारी, अयोध्या के युवराज राम से हुआ था, परंतु उसने कभी नहीं सोचा था कि वह कन्या अयोध्या से यहाँ दण्डकारण्य भी आ सकती है। परंतु वह यहाँ आ चुकी थी। उसके साथ में राम और लक्ष्मण भी थे, जिन्होंने ताड़का के साम्राज्य का सम्पूर्ण विनाश कर दिया था।

गम्भीर प्रश्न था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे! उसे इस समय अपने पिता पर क्रोध भी आ रहा था कि क्यों नहीं उन्होंने, उसी समय जनक को सौंपने के बहाने उस कन्या की हत्या कर डाली थी! पर अब जो हो चुका था वह तो हो ही चुका था, अब आगे क्या करणीय है इस पर विचार करना था। रावण से इस विषय में वार्ता करने का कोई अर्थ नहीं था। उसे इस अभागी कन्या से अगाध स्नेह था।

तभी विधु ने फिर कक्ष में झाँका। पति को वहाँ एकान्त में चिन्तित सा बैठा देख, उसका क्रोध विकलता में परिवर्तित हो गया।

''क्या हुआ? वह व्यक्ति क्या सूचना लाया था?''

''कुछ नहीं!'' प्रहस्त ने बलात मुख पर स्मित लाते हुए उत्तर दिया और बेमन से विधु के साथ भीतर जाने के लिये उठ खड़ा हुआ- ''आओ, चलें।'' वह विधु को सीता के विषय में नहीं बता सकता था। विधु को ही क्यों, किसी को भी कुछ नहीं बता सकता था।

उस रात्रि प्रहस्त को भोजन में कोई स्वाद नहीं आया। किसी प्रकार अनिच्छा से उसने भोजन समाप्त किया और शयन कक्ष में जाने के स्थान पर पुनः कार्यालय कक्ष की ओर बढ़ चला। विधु उससे कारण पूछती ही रह गयी परंतु- ''अभी आता हूँ!'' कहकर, पत्नी को ठगा सा खड़ा छोड़कर वह प्रासाद के द्वार की ओर बढ़ गया। वह इस समय पूर्ण एकान्त चाहता था।

द्वार तक आते-आते उसे कुछ सूझ गया। उसने वहीं नियुक्त एक सैनिक से कहा-

''अपना अश्व मुझे दो।''

''स्वामी'', सैनिक से घोर आश्चर्य से उसका मुख ताकते हुए कहने का प्रयास किया- ''रथ ....''

उसे अपना अश्व अपने स्वामी को देने में कोई हिचक नहीं थी, परंतु उसे यह उनकी मर्यादा के अनुकूल नहीं लग रहा था। सैनिक की हिचक ने प्रहस्त की भृकुटियों में बल ला दिये। वह किंचित तीव्र स्वर में बोला-

''अश्व दो।''

***

उतनी रात्रि में ही प्रहस्त अश्वारूढ़ हो वज्रमुष्टि के प्रासाद की ओर बढ़ चला। सुमाली के जीवनकाल में सारा परिवार एक ही प्रासाद में निवास करता था किंतु उसके अवसान के उपरांत, अब सभी के अपने अलग-अलग भव्य प्रासाद थे। जब प्रहस्त पहुँचा, वज्रमुष्टि सोने की तैयारी कर रहा था। प्रहस्त को असमय आया देख वह हतप्रभ रह गया।

''क्या हुआ?'' उसने आश्चर्य के साथ प्रश्न किया- ''इतनी रात्रि में, कुछ गंभीर विषय है क्या?''

वज्रमुष्टि के आश्चर्य का कारण यह भी था कि प्रशासनिक कार्यों में इससे पूर्व प्रहस्त ने कभी उससे परामर्श नहीं किया था।

''हाँ भाई'', प्रहस्त ने उत्तर दिया- ''सच में ही अत्यंत गंभीर विषय उपस्थित हुआ है।''

''उस स्थिति में तो तुम्हें रावण से परामर्श करना चाहिए था। क्या वह उपलब्ध नहीं है?''

''रावण उपलब्ध है परंतु यह ऐसा विषय है जिस पर उससे वार्ता करना संकट को आमंत्रित करना सिद्ध हो सकता है।''

''संभवतः तभी तुम इतनी रात्रि में आये हो!'' संकट की बात सुनकर भी वज्रमुष्टि मुस्कुराता हुआ बोला।

''यही बात है'', प्रहस्त ने गंभीरता से उत्तर दिया- ''मैं नहीं चाहता था कि किसी को इस विषय में भनक भी लगे। परिवार के सदस्यों को भी।''

''तो बताओ। तुम इतने चिंतित तो पूर्व में कभी दिखाई नहीं दिये।''

''कोई दास-दासी अथवा अन्य कोई व्यवधान तो नहीं डालेगा?''

''निश्चिंत रहो'', वज्रमुष्टि हल्के से हँसा- ''इस काल तक मैं समस्त सेवकों को विदा कर देता हूँ। मात्र द्वारपाल को ही तुम्हारे आगमन का संज्ञान होगा।''

''उसे आप समझा दीजिएयेगा... और परिवार के सदस्य?''

''सभी निद्रा के अधीन हो चुके होंगे अथवा होने जा रहे होंगे।''

कोई व्यवधान उपस्थित नहीं होगा इस विषय में निश्चिंत होते ही प्रहस्त सीधे विषय पर आ गया-

''आपको वेदवती की कन्या का स्मरण है?''

''वेदवती... की .. कन्या'', वज्रमुष्टि सोचता हुआ बोला- ''हाँ स्मरण हुआ। किंतु वह तो बीती बात हो गयी... इस समय उसका उल्लेख क्यों?''

''वह बीती बात नहीं हो गयी। आपको यह भी स्मरण होगा कि उसे देखते ही पिता ने कहा था कि यह कन्या पितृकुल के विनाश का कारण बनेगी!''

वज्रमुष्टि पुनः पुरानी स्मृतियों पर से धूल झाड़ने का प्रयास करने लगा। कुछ पल उपरांत बोला-

''हाँ, कहा तो था ऐसा पितृव्य ने, परंतु उसके बाद से तो कभी उस कन्या की चर्चा ही नहीं हुई। इस समय एकाएक तुम उसका उल्लेख क्यों कर रहे हो?''

''वह कन्या दण्डकारण्य में आ उपस्थित हुई है।''

''तो क्या हुआ, निपटा दो उसे वहीं।''

"यह संभव होता तो मैं अब तक कर चुका होता, आपसे सहयोग माँगने नहीं आता।"

"संभव क्यों नहीं है? खर-दूषण से कहो, वे निपटा देंगे।"

"अपनी स्मृतियों से धूल झाड़िये भ्राता, वह अयोध्या के युवराज राम की पत्नी है।"

इस पर वज्रमुष्टि चौंका-

"राम? वही अयोध्या का निर्वासित राजकुमार, जिसने ताड़का का वध किया था?"

"हाँ वही।"

"तब तो सहज नहीं होगा खर-दूषण के लिये उससे पार पाना।" अब वज्रमुष्टि को भी विषय की गंभीरता का अनुभव हुआ।

"आप मेरी बात समझ क्यों नहीं रहे?" प्रहस्त कुछ खीजता हुआ बोला- "खर-दूषण उनसे पार पा पायेंगे अथवा नहीं यह विषय ही नहीं है। इस संबंध में उनका सहयोग लेने का अर्थ है रावण के कोप को आमंत्रण देना। आपको क्या अनुमान नहीं है कि उस कन्या में अभी भी रावण के प्राण बसते हैं। वह मात्र उसकी एक झलक पाने के उद्देश्य से स्वयंवर में गया था।"

"ऐसा तुम कैसे कह सकते हो?"

"वह उस धनुष को उठाने में समर्थ था, फिर भी उसने उसे उठाया नहीं। प्रतिस्पर्द्धा में जाकर भी उसमें प्रतिभाग नहीं किया, मात्र धनुष को प्रणाम किया और लौट आया। उसे भलीभाँति ज्ञात था कि उसकी और वेदवती की पुत्री सीरध्वज के यहाँ सीता के नाम से पल रही है।"

"तो उसे बता क्यों नहीं देते कि वह कन्या पितृकुलघातिनी है! उसका विनाश किये बिना रक्ष कुल की रक्षा नहीं हो सकती।"

"उसके सम्मुख जिस सत्य का उद्घाटन करने का साहस पिता नहीं कर सके, वह मैं कैसे कर सकता हूँ। यदि हम उसे बताते भी हैं तो वह हमारे कथन पर विश्वास क्यों करेगा? वह यह प्रश्न क्यों नहीं करेगा कि हमने इतने वर्षों तक यह सत्य उसे क्यों नहीं बताया?"

"उससे कह सकते हो कि वह स्वयं समाधि में जाकर उसके लक्षणों का परीक्षण कर लें!"

"कैसे करेगा? मुझे तो प्रतीत होता है कि कन्या के जन्म के समय वह मात्र उसका मुख ही देखता रहा था, अन्यथा भले ही उस समय वह विक्षिप्तावस्था में था, तब भी वे लक्षण उसकी दृष्टि में अवश्य आ गये होते। स्वयंवर में भी उसने मात्र सीता का मुख ही देखा होगा।"

"वह पितृव्य की स्मृतियों में भी तो झाँक सकता है!"

"आपको क्या यह भी ज्ञात नहीं कि मृत व्यक्ति की स्मृतियों में नहीं झाँका जा सकता?"

"पितृव्य ने हमें यह भी नहीं बताया कि उन्होंने ऐसे कौन से लक्षण देखे थे जिनके आधार पर उसे पितृकुलघातिनी घोषित कर दिया था।"

"बताकर जाते तो भी हम क्या कर लेते!" प्रहस्त हताशा से बोला।

"अब यदि हमारे आदेश से खर-दूषण इन लोगों के विरुद्ध कोई कार्यवाही करते हैं तो वह रावण से छिपी नहीं रहेगी और तब वह पता नहीं क्या प्रतिक्रिया देगा। जैसे इसकी माता की मृत्यु के समय वह उन्मत्त हो गया था, वैसे ही कहीं इसकी मृत्यु से भी हो गया..." वज्रमुष्टि ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। कुछ पल रुककर वह पुनः बोला-

"तब तो इसके उन्माद को निकलने का मार्ग देने हेतु दिग्विजय का उपाय था परंतु अब तो वह पहले ही त्रिलोक-विजेता है। अब तो उसका क्रोध हम पर ही उतरेगा।"

''संतोष यही है कि उसे अभी तक ज्ञात नहीं है कि सीता यहीं दण्डक में निवास कर रही है, अन्यथा मुझे आश्चर्य नहीं होता यदि वह उसे लंका में ही आमंत्रित कर देता।''

''वे कब से हैं दण्डक में?'' अचानक वज्रमुष्टि ने प्रश्न किया।

''दण्डक में कब से हैं यह तो निश्चित नहीं बता सकता, परंतु उनके वनवास के तेरह वर्ष व्यतीत होने को है।''

''और तुम अब तक सोये ही रहे?'' वज्रमुष्टि के स्वर में आश्चर्य और क्रोध दोनों थे।

''वे राम, सीता और लक्ष्मण हैं यह तो मुझे अभी ज्ञात हुआ है। ज्ञात होते ही मैं सीधा आपसे परामर्श लेने आ गया।''

''दण्डक में अभी तक उनकी क्या गतिविधियाँ रही है?''

उत्तर में प्रहस्त को जो कुछ भी ज्ञात था, वह उसने वज्रमुष्टि को बता दिया।

''वे सम्पूर्ण दण्डक में विचरण करने के उपरांत अगस्त्य से मिलने गये यह तो निस्संदेह किसी षड्यंत्र की ओर संकेत कर रहा है।'' सब सुनने के उपरांत वज्रमुष्टि ने भी चिंतित भाव से प्रतिक्रिया दी।

''इसी सूचना ने तो मुझे व्यग्र किया। मुझे समझ नहीं आ रहा कि वे तीनों इतने वर्षों तक दण्डक में चुपचाप क्या करते रहे! निस्संदेह किसी न किसी षड्यंत्र की रचना करते रहे होंगे और अगस्त्य समेत सारे ऋषिगण उस षड्यंत्र में भागीदार होंगे।''

''तुम्हारा अनुमान तर्कपूर्ण है। ये ऋषिगण तो वैसे ही हम रक्षों से द्रोह रखते हैं।'' कहने के साथ ही वज्रमुष्टि एकाएक चौंक सा पड़ा, जैसे अचानक उसके संज्ञान में कोई अत्यंत गम्भीर विषय आ गया हो। वह उत्तेजित होता हुआ बोला - ''उधर निकट ही किष्किंधा में देव भी उपस्थित हैं। निस्संदेह देव और ऋषि संयुक्त रूप से किसी षड्यंत्र की रचना कर रहे हैं और ये तीनों भी उस षड्यंत्र में सम्मिलित हैं।''

''ओह!'' हठात् प्रहस्त के मुख से निकला।

''मुझे तो आरम्भ से ही किष्किंधा में संचालित देवों के इन आश्रमों पर संदेह रहा है।'' वज्रमुष्टि आक्रोश भरे स्वर में बोला।

''सच कहूँ तो मुझे भी रहा है, परंतु किष्किंधा के आन्तरिक विषयों में हम हस्तक्षेप भी तो नहीं कर सकते।''

''वे तीनों अभी किष्किंधा तक पहुँचे तो नहीं हैं?''

''नहीं, अभी तक तो नहीं।''

''यद्यपि बालि हमारा मित्र है परंतु वह भी कुम्भ की भाँति ही मूर्ख है। देव और ऋषि मिलकर उसे बहका सकते हैं।''

''तब तो स्थिति अत्यंत विषम हो जायेगी!'' प्रहस्त की व्यग्रता और बढ़ गयी। वह हताश होता हुआ बोला - यदि देव और ऋषि किष्किंधा को फुसलाने में सफल हो गये तब इस सीता से मुक्ति पाना अत्यंत दुष्कर हो जायेगा। कैसे भी इस संकट को तत्काल समाप्त करना ही होगा।''

''उस पर तो हम कबके सहमत हैं, परंतु प्रश्न तो यही है कि कैसे!''

दोनों बैठकर सीता से मुक्ति का उपाय सोचने लगे। रात्रि के दो प्रहर और व्यतीत हो गये। इस बीच दोनों ने अनेक उपायों पर चर्चा की, परंतु अन्त में प्रत्येक उपाय में कोई न कोई छिद्र निकल ही आया था।

दोनों की आँखों से नींद मानो किसी उद्धत प्रेमिका के समान रूठ कर चली गयी थी। दोनों को यह भी आभास नहीं हो रहा था कि प्रातः काल बस होने ही वाला था। ऐसे में ही एकाएक प्रहस्त उत्तेजना से लगभग चीख पड़ा-

''चन्द्र, उसे कैसे भूल गये हम!''

''तात्पर्य क्या है तुम्हारा'', वज्रमुष्टि ना समझ आने वाले भाव से बोला- ''चन्द्र कोई योद्धा है जो उन्हें समाप्त कर देगी?''

''परंतु यदि चन्द्र उनके द्वारा आहत होती है, अथवा मृत्यु को प्राप्त होती है, तो हमें अवसर प्राप्त हो जायेगा उन्हें समाप्त करने का।''

''परंतु चन्द्र हमारे कहने से उन पर आक्रमण करने जायेगी ही क्यों?'' वज्रमुष्टि अब भी कुछ नहीं समझा था।

''हम उससे कुछ कहेंगे ही नहीं!'' प्रहस्त रहस्यमय ढंग से बोला। बड़ी देर बाद उसके मुख पर सन्तोष के भाव आये थे।

''स्पष्ट कहो, क्या कहना चाहते हो।''

''चन्द्र अर्द्धविक्षिप्त है। उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता उसकी अतृप्त कामवासना है। जब उसे ज्ञात होगा कि उसके क्षेत्र में दो अद्वितीय सुदर्शन पुरुष निवास कर रहे हैं तो वह अवश्य ही उनसे सम्पर्क स्थापित करेगी और उनके सम्मुख रमण का प्रस्ताव रखेगी।''

''प्रथम प्रश्न तो यही है कि यदि हम उसे सूचना नहीं देंगे तो फिर देगा कौन'', वज्रमुष्टि ने शंका प्रकट की- ''और दूसरा यह भी है कि यदि उन्होंने उसका रमण का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तब क्या होगा? तब तो स्थिति और विकट हो जायेगी।''

''ऐसा कुछ नहीं होगा'', प्रहस्त संतोष से बोला- ''आपकी पहली शंका का उत्तर है कि चन्द्र की दासियों में एक मेरी विश्वासपात्र है, वह सब सँभाल लेगी। आपकी दूसरी शंका भी निर्मूल है, जैसा सुना है, यह राम भी हमारे मेघ के समान ही संन्यासी प्रकृति का है। वह भी एकपत्नीव्रता है।''

''फिर भी...''

''फिर भी नहीं'', वज्रमुष्टि की बात बीच में ही काटता हुआ प्रहस्त उत्साह से बोला- ''कोई शंका करने से पहले मेरी सम्पूर्ण योजना सुन लीजिये।''

प्रातःकाल जब प्रहस्त वापस अपने प्रासाद लौटा, तो वह लगभग चिंतामुक्त था।

20. चन्द्रनखा

"साम्राज्ञी, यदि अभय प्रदान करें तो एक प्रस्ताव रखने का साहस करे दासी!" अवसर देखकर चन्द्रनखा से उसकी एक दासी ने निवेदन किया।

यह प्रहस्त की वही विश्वसनीय सेविका थी, जिसका उसने वज्रमुष्टि से उल्लेख किया था। इसकी चतुरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यह लगभग डेढ़ दशक से चन्द्रनखा की सेवा में थी और अभी तक पूर्णतः सुरक्षित थी। इतनी सुदीर्घ अवधि तक चन्द्र की सेवा में रहने के कारण वह किसी सीमा तक उसकी मुँहलगी भी हो गयी थी।

"चल, दिया अभय।" आज कई दिनों के उपरांत अकारण ही चन्द्रनखा का चित्त प्रसन्न था।

वैसे अकारण उसका चित्त प्रसन्न होना कोई उल्लेखनीय बात नहीं थी, उसका चित्त प्रसन्न अथवा अप्रसन्न जैसा भी होता था अकारण ही होता था। यही नहीं उसे प्रसन्न से अप्रसन्न और अप्रसन्न से प्रसन्न होते भी न तो तनिक भी समय लगता था और न ही उस परिवर्तन का कारण कोई समझ पाता था।

"साम्राज्ञी कितनी सुहावनी ऋतु है, क्यों न ऐसे में वन-विहार हेतु चला जाये!" दासी ने अनुमति मिलते ही प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया।

"प्रस्ताव तो तेरा उत्तम है!" चन्द्रनखा उत्साहित हो उठी।

"तो विलम्ब किस बात का, चलिये।" सेविका ने उत्साह पर सान धरी।

"रक्षकों को सन्नद्ध होने को कह दे।"

"क्या अनर्थ करना चाह रही हैं आप भी", सेविका ने अभिनय के साथ कहा- "रक्षक उन्मुक्त विहार में अनावश्यक व्यवधान ही डालेंगे।"

"सो तो निश्चय ही डालेंगे, परन्तु साम्राज्ञी की मर्यादा..."

"आप क्या किसी मर्यादा के आधीन हैं साम्राज्ञी?"

''कदापि नहीं।''

''तो चलिये।''

''अश्व तो मँगा।''

''जैसी आज्ञा!'' सेविका बोली और तुरंत बाहर दासियों से अश्वों के लिये कहने निकल गयी।

चन्द्र ने उठकर अपने कटिबन्ध में दोनों ओर एक-एक कटार घुरसी, शीश पर मुकुट धारण किया और एक पीठिका पर बैठकर सेविका के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी।

सेविका लौटी तो उसने पूछा-

''शस्त्र है तेरे पास?''

''जी साम्राज्ञी, कटारी है।'' उसने अपनी कंचुकी में छिपी छोटी सी चाकूनुमा कटारी निकाल कर दिखाई।

दोनों कक्ष से बाहर आ गयी।

कक्ष के बाहर भयभीत दासियाँ असमंजस में खड़ी थीं, पता नहीं उनके लिये क्या आदेश दे दें साम्राज्ञी। असंभव नहीं था कि वे अपने अश्व के पीछे दौड़ते हुए आने का ही आदेश दे डालें। उनकी साँस में साँस तभी आयी जब साथ की सेविका ने हाथ से संकेत करते हुए कहा - ''एकाकी।''

अब तक एक रक्षक दो अश्व ले आया था। एक चन्द्रनखा का था, साम्राज्ञी के अश्व की गरिमा के अनुकूल सुसज्जित, दूसरा साधारण सा सेविका के लिये।

पहले चन्द्रनखा अश्व पर आरूढ़ हुई, उसके पीछे सेविका भी बैठी और दोनों निकल पड़ीं। प्रासाद के द्वार पर भी रक्षकों का साहस नहीं था चन्द्रनखा से कुछ पूछने का, उनमें से एक ने उस सेविका से ही प्रश्न किया तो उसने निश्चिंतता से उत्तर दे दिया-

''विहार हेतु जा रही हैं, किसी को साथ आने की आवश्यकता नहीं।''

थोड़ा आगे बढ़ने पर सेविका अपना अश्व चन्द्रनखा के बराबर लायी और रहस्यमय स्वर में बोली - ''साम्राज्ञी! मैं विशेष प्रयोजन से आपको लायी हूँ। आज्ञा दें तो...'' कहकर उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

''तो बोलती क्यों नहीं। रहस्य क्यों बढ़ा रही है?'' चन्द्र एकाएक क्रोधित दिखाई पड़ने लगी।

''आजकल निकट ही दो युवा तपस्वी निवास कर रहे हैं। वे...''

''क्या तेरे शीश पर काल मँडरा रहा है जो मुझे तपस्वियों के विषय में बताकर मेरा समय नष्ट कर रही है?'' कहते-कहते चन्द्रनखा ने क्रोध से अश्व की वल्गा खींच दी और आग्नेय नेत्रों से सेविका को घूरने लगी। एकाएक वल्गा खींच देने से अश्व हिनहिनाकर वहीं थम गया।

''वस्तुतः वे तपस्वी वेश में राजपुरुष हैं। उनका व्यक्तित्व ऐसा है जैसे स्वयं कामदेव ने अवतार लिया हो। आप एक बार उन्हें देखेंगी तो देखती ही रह जायेंगी।'' चन्द्र का क्रोध देखकर सेविका शीघ्रता से बोली।

''यदि तेरा कथन असत्य निकला तो तेरी मृत्यु निश्चित है।'' चन्द्र का क्रोध कुछ कम होता लगा, किंतु स्वर की कठोरता अब भी वैसी ही थी।

''प्रत्यक्षं किं प्रमाणं! आप स्वयं देख लीजियेगा।'' सेविका का खोया साहस पुनः लौटने लगा।

''तो दिखा। कहाँ हैं वे?''

''पंचवटी में।''

''राजपुरुष होकर वे कीट-पतंगों से सेवित उस अन्धकूप समान वन में क्या कर रहे हैं?'' चन्द्रनखा आश्चर्य से बोल पड़ी। परंतु क्षणांश में ही उसका आश्चर्य क्रोध में परिवर्तित हो गया। वह अपनी कटार लहराती हुई लगभग चीख पड़ी - ''निश्चय ही तू मिथ्या भाषण कर रही है। तू मेरी सर्वाधिक प्रिय सेविका रही है किंतु प्रतीत होता है तूने अपने काल का आवाहन करने का निश्चय कर लिया है।''

सेविका चन्द्रनखा के क्रोध को देखकर काँप गयी, परंतु वह चन्द्रनखा के साथ सुदीर्घ अवधि व्यतीत कर चुकी थी और चन्द्र के ऐसे क्रोध का जाने कितनी बार सामना कर चुकी थी। वह समझती थी कि उसे ऐसे अवसर पर क्या करना है। अपने भय पर नियंत्रण रखते हुए उसने उत्तर दिया - ''मैं आपसे मिथ्या भाषण करने का साहस कदापि नहीं कर सकती साम्राज्ञी। मैं आपको उनके दर्शन करवा दूँगी, तब तो मानेंगी आप!''

''उस स्थान पर तो कोई चन्द्र के भय से त्राण पाने हेतु ही छिप सकता है। उन व्यक्तियों के चन्द्र से भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। ...निश्चय ही ऐसे किन्हीं व्यक्तियों का अस्तित्व ही नहीं है।''

''है साम्राज्ञी, मैं आपको उनके दर्शन करवाऊँगी। यदि वे वहाँ न मिले तो आप जो भी दण्ड प्रदान करेंगी, मैं सहर्ष स्वीकार करूँगी।''

''वह तो तुझे करना ही पड़ेगा। चन्द्र के कोप से पीड़ित के पास अन्य कोई मार्ग ही नहीं होता।'' कहती हुई चन्द्रनखा हठात् अपना क्रोध भूलकर हँस पड़ी। हँसी थमने पर उसने प्रश्न किया- ''तुझे कैसे ज्ञात कि पंचवटी में ऐसे कोई पुरुष निवास कर रहे हैं? तू भला वहाँ क्या करने गयी थी?''

सेविका कैसे कह देती कि उसे स्वयं महामात्य प्रहस्त ने इसकी सूचना दी है। वह बात बनाते हुए बोली-

''मुझे मेरी एक सखी ने बताया।''

''तब निश्चय ही तेरी सखी ने तुझसे मिथ्या भाषण किया है। उस घोर वन में यदि कोई छिपा हो तो उसे सम्पूर्ण सैन्य भी सहजता से नहीं खोज सकता, तब तेरी सखी ने एकाकी उन्हें कैसे खोज लिया?''

अत्यंत कठिन प्रश्न था, परंतु उसे तत्काल उत्तर देना था। क्षणांश में उसे सूझा कि विषय को थोड़ा सा मोड़कर ही वह स्वामिनी के कोप से बच सकती है। बिना सोचे उसके मुख से निकला - ''स्वामिनी! वह सम्पूर्ण वन पाँच विशालय वट-वृक्षों से बना है।''

''यह तो सभी को ज्ञात है।''

''परंतु यह तो सबको ज्ञात नहीं कि वे पाँचों वट-वृक्ष एक वृत्ताकार परिधि में स्थित है और उनके मध्य एक छोटा सा रमणीक उपवन सदृश क्षेत्र है।''

''क्या तू सत्य कह रही है?'' चन्द्रनखा को अब भी विश्वास नहीं हो रहा था।

''पूर्णतः सत्य है स्वामिनी और उसी उपवन में कन्दर्प सदृश सुदर्शन, वे दोनों राजपुरुष निवास कर रहे हैं।''

''विश्वास नहीं होता।''

''कह तो रही हूँ कि मैं आपको उनके दर्शन करवा दूँगी।''

''चल तो फिर। परंतु यदि तेरा कथन मिथ्या सिद्ध हुआ तो परिणाम की तू स्वयं उत्तरदायी होगी।'' चन्द्रनखा ने चेतावनी दी।

''जी साम्राज्ञी!'' सेविका को विश्वास था कि जब स्वयं प्रहस्त ने यह सूचना दी है तो सूचना असत्य नहीं हो सकती, तो भी चन्द्र के स्वर की कठोरता से वह सिहर उठी।

दोनों पंचवटी की ओर बढ़ चलीं। आवेग में चन्द्रनखा ने अश्व को एड़ लगा दी थी, सेविका के लिये उसके अश्व के साथ चल पाना असंभव हो रहा था, वह क्रमशः पीछे छूटने लगी।

''साम्राज्ञी रुक जाइये। उस भीषण वन में आपका एकाकी जाना उचित नहीं होगा।'' वह पीछे से चिल्लायी।

बात संभवतः चन्द्रनखा की समझ में आ गयी। उसने अपनी गति थोड़ी धीमी कर दी। फिर भी, उसकी गति अभी भी इतनी तीव्र थी कि उसके और सेविका के मध्य की दूरी कम नहीं हो पा रही थी। सेविका जब पंचवटी वन की सीमा पर पहुँची तो चन्द्रनखा वहाँ खड़ी उसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

''चल अब मार्ग दिखा'', उसके पहुँचते ही वह बोली- ''परंतु ठहर, पहले प्रकाश का कुछ प्रबन्ध कर ले।''

बाहर से ऐसा ही प्रतीत हो रहा था जैसे भीतर गहन अंधकार होगा।

"उसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी साम्राज्ञी! अभी दिवस है, अभी इतना प्रकाश होगा भीतर कि हमें मार्ग खोजने में कोई असुविधा नहीं होगी।" सेविका ने उत्तर दिया।

"तो चल फिर।" चन्द्रनखा ने आदेश दिया।

आगे-आगे सेविका, पीछे-पीछे चन्द्रनखा वन में घुस गयी।

घुसते ही चन्द्रनखा झुँझला गयी। स्थान-स्थान पर वृक्षों के मध्य वट-वृक्षों की जटाएँ तोड़कर बाँध दी गयी थी, जो उनके अश्वों के लिये प्रबल अवरोध बन रही थी। निश्चय ही ये जटाएँ किसी ने सोद्देश्य बाँधी थी। अगले ही क्षण उसकी झुँझलाहट मुस्कान में परिवर्तित हो गयी।

'चतुर हैं!' उसने प्रशंसात्मक ढंग से मन ही मन सोचा और अश्व से उतर पड़ी। उसकी देखा-देखी सेविका भी उतर पड़ी। इन अवांछित अवरोधों से वह भी विस्मित थी। तभी चन्द्रनखा ने उसे आदेश दिया-

"अश्वों को यही बाँध दे। पदाति ही उचित होगा।"

अश्वों को वहीं बाँधकर जटाओं के अवरोधों के मध्य से निकलती हुईं दोनों आगे बढ़ चली। जैसे ही ये दोनों उस वट-वन के छोर के समीप पहुँची, अपने कुटीर के बाहर विचरण करते राम और लक्ष्मण उन्हें दिखाई पड़ने लगे। सेविका ने स्वयं भी उन्हें पहली बार ही देखा था। देखकर वह स्वयं भी उन पर मोहित हुए बिना न रह सकी। ऐसे में उसके लिये यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि उसकी स्वामिनी के मन की क्या गति हो रही होगी।

कुछ सोचकर सेविका छोर से थोड़ा सा पहले ही रुक गयी और मुड़कर चन्द्रनखा की ओर देखने लगी। चन्द्रनखा की स्थिति देखकर वह बरबस मुस्कुरा उठी। वही हुआ था जिसका उसे अनुमान था। चन्द्रनखा पहले ही अपने स्थान पर ठिठक चुकी थी और उस हजारों तनों वाले वट के एक तने के पीछे छिपी हुई, एकटक उन दिव्य-पुरुषों को निहार रही थी।

सेविका भी पलटी और आकर मौन अपनी स्वामिनी के पीछे खड़ी हो गयी। देर तक चन्द्रनखा वैसे ही चित्रलिखित सी खड़ी दोनों पुरुषों को निहारती रही। सेविका उसके पीछे खड़ी मंद-मंद मुस्कुराती रही।

अकस्मात चंद्र ने एक दीर्घ निःश्वास ली और पीछे घूम पड़ी।

''क्या हुआ स्वामिनी।'' उसके अचानक घूम पड़ने से सेविका सहम गयी, 'कहीं साम्राज्ञी ने उसकी मुस्कुराहट देख न ली हो!' किंतु उसका भय व्यर्थ था। चंद्र को कोई सुध ही नहीं थी इस समय। वह तो अपने सपनों के संसार में खोयी हुई थी। सेविका को देख उसे कुछ चेत हुआ, उसने यंत्रचालित ढंग से अपने गले से मुक्ताहार उतारकर उसकी ओर उछाल दिया। सेविका धन्य हो गयी।

''ये तो मन्मथ से भी अधिक मनमोहक हैं।'' चन्द्रनखा बोली, दूसरे ही क्षण उसने अपने कथन में संशोधन किया- ''मनमोहक नहीं सम्मोहक।'' कहने के साथ ही वह पलटी और वापस लौट पड़ी।

सेविका अचंभित थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसकी स्वामिनी लौट क्यों पड़ी। वह तो सोच रही थी कि वह अभी उन दिव्य पुरुषों से प्रणय-निवेदन करने दौड़ जायेगी। इसी उलझन में पड़ी वह भी चुपचाप चंद्रनखा के पीछे-पीछे लौट पड़ी। जिज्ञासा उसे बारम्बार उकसा रही थी किंतु इस अवस्था में स्वामिनी से कोई भी प्रश्न करना घातक सिद्ध हो सकता था।

सेविका की जिज्ञासा को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी, प्रासाद लौटते ही स्वतः उसका शमन हो गया। यथार्थ में उसकी स्वामिनी उन दिव्य पुरुषों के तेज के सम्मुख अपने रूप की कान्ति को किंचित मलिन अनुभव कर रही थी। उसकी दृष्टि सीता पर भी पड़ी थी और वह उसके सम्मुख अपने सौन्दर्य को हीन अनुभव कर रही थी।

वह अनिंद्य सुन्दरी थी इसमें कोई शंका नहीं थी। पितामह द्वारा दी गयी औषधियों और बताये गये उपचारों के प्रभाव से उसका सौन्दर्य और उसकी त्वचा की कांति अभी भी अक्षुण्ण थी, परंतु समय को पराजित करना किसी के लिये

भी संभव नहीं होता। चन्द्रनखा पर भी आयु ने अपना प्रभाव तो डाला ही था। यथार्थ तो यह था कि उसकी आयु सीता से दुगनी से भी अधिक ही थी। जब उसका विद्युज्जिव्ह से प्रणय और गंधर्व-विवाह हुआ था, तब तक सीता का जन्म भी नहीं हुआ था। सीता इस समय तीस वर्ष की पूर्ण युवा थीं जबकि वह स्वयं वार्धक्य की सीमा को स्पर्श कर रही थी।

यही सब सोचकर चन्द्रनखा उस समय लौट पड़ी थी। वह अपने इन प्रेमास्पदों के सम्मुख अपने सौन्दर्य के सम्पूर्ण वैभव के साथ प्रणय-निवेदन करना चाहती थी। जनस्थान लौटते ही उसने सारी दासियों को अपनी उबटन-प्रसाधन में व्यस्त कर दिया।

***

दूसरे दिन चंद्र ने अपने जीवनकाल का सर्वश्रेष्ठ प्रसाधन किया। सर्वश्रेष्ठ शृंगार किया और चल पड़ी राम और लक्ष्मण से प्रणय निवेदन करने। आज उसे सेविका को साथ लेने की आवश्यकता नहीं थी। उसने सारथी को बुलाकर रथ निकलवाया और उसे पंचवटी चलने का आदेश दे रथारूढ़ हो गयी।

उसके साथ जाने की आवश्यकता सेविका को भी नहीं थी किंतु फिर भी वह छिपकर पीछे-पीछे गयी, उसे प्रहस्त तक सम्पूर्ण सूचना जो पहुँचानी थी।

21. नियति का संकेत

आज राम और लक्ष्मण सीता की रसोई के लिये, कुटिया के आस-पास सूखी लकड़ियाँ बटोर रहे थे। यह उनका नित्य का कर्म था। सीता चित्रकूट में चूल्हा बनाना सीख चुकी थीं और यहाँ आने के दूसरे दिन से ही उन्होंने रसोई बनानी आरम्भ कर दी थी। भोजन पकाने के लिये भी उन्होंने मिट्टी का एक कामचलाऊ पात्र भी गढ़ लिया था, भोजन ग्रहण करने हेतु वहाँ वट-पत्रों की कोई कमी नहीं थी, उन्हीं से पत्तलें बना ली गयी थी।

इन लोगों को पंचवटी आये एक मास से कुछ अधिक ही व्यतीत हो चुका था। विगत दस वर्ष इन तीनों के लिये अत्यंत व्यस्त रहे थे, परंतु पंचवटी में आने के उपरांत से नित्यकर्म और भोजन के अतिरिक्त करने को कुछ था ही नहीं। इस रिक्तता को भरने के लिये तीनों अपना सम्पूर्ण समय अभ्यास और टहनियों के कामचलाऊ बाण गढ़ने में व्यय किया करते थे।

इसके अतिरिक्त एक कार्य और किया था उन्होंने, उन्होंने उस सम्पूर्ण वट-वन प्रदेश में खूब विचरण किया था। अब वे उसके पत्ते-पत्ते से परिचित थे। राम के निर्देश पर तीनों ने मिलकर सम्पूर्ण वन में वृक्षों की जटाएँ तोड़-तोड़कर स्थान-स्थान पर वृक्षों के बीच बाँध दी थी। इस प्रकार एकाएक वहाँ आने वालों के लिये एक और अवरोध उत्पन्न हो गया था। अश्वारोही तो इन जटाओं के कारण वन में प्रवेश कर ही नहीं सकते थे। उसके लिये इन जटाओं को तोड़ना आवश्यक था और उसमें अतिरिक्त समय तो व्यय होता ही होता, जो उनकी गति को अत्यधिक धीमा कर देता। पैदल सैनिकों के लिये भी यह उनकी गति को पर्याप्त धीमा करने वाला था।

अवरोध इन्होंने ही बनाये थे अतः इन्हें भलीभाँति ज्ञात था कि अवरोधों के मध्य कहाँ से मार्ग है। इस मार्ग को न्यूनतम समय में पार करने का तीनों ने पर्याप्त अभयास भी कर लिया था, अतः इनके लिये वे सहज-सुगम्य थे। लक्ष्मण यद्यपि

इस सारे खटराग के पक्ष में नहीं थे, परंतु राम के निर्देश को वे सदैव आदेशवत ही ग्रहण करते आये थे।

***

''भइया! कितने दिन तो व्यतीत हो गये हमें यहाँ आये, अभी तक नियति ने कोई संकेत नहीं दिया। महर्षि अगस्त्य की बताई चन्द्रनखा भी अभी तक प्रकट नहीं हुई!'' लकड़ियाँ बटोरते-बटोरते ही लक्ष्मण ने कुछ ऊबे हुए स्वर में धीरे से प्रश्न किया। रोमांचप्रिय लक्ष्मण को अब और प्रतीक्षा सह्य नहीं हो रही थी।

''व्यग्र क्यों होते हो'', राम ने हँसते हुए उत्तर दिया- ''यदि महर्षि ने कहा है तो ऐसा होकर ही रहेगा, महर्षि त्रिकालदर्शी हैं।''

लक्ष्मण को राम के उत्तर से खीज सी हुई किंतु भाई के प्रति सम्मान के कारण वे चुप रह गये और पुनः अपने काम में लग गये।

''पर्याप्त हो गयी अब तो भइया।'' अपनी बटोरी लकड़ियों को एक लता से लपेटते हुए लक्ष्मण बोले। लक्ष्मण राम से थोड़ा आगे थे। उन्हें उत्तर देने के लिये जैसे ही राम ने दृष्टि उठाई, मंद स्मित उनके अधरों पर खेल गयी।

अपने प्रश्न के उत्तर हेतु राम की ओर देख रहे लक्ष्मण, उनके इस प्रकार अचानक मुस्कुराने से कुछ हतप्रभ हो उठे। राम के अधरों पर सदैव ही एक मधुर स्मित नर्तन करती रहती थी किंतु यह उनकी वह स्वाभाविक स्मित नहीं थी। यह विशिष्ट थी और विशेष कारण के बिना यह विशिष्ट मुस्कुराहट उनके अधरों पर नहीं आती थी। उन्होंने भी राम की दृष्टि का अनुसरण किया... और सामने जो देखा, उसे देखकर वे खुलकर मुस्कुरा उठे। सामने से आपादमस्तक रत्नाभूषणों का शृंगार किये एक अतीव सुन्दरी इठलाती चली आ रही थी। राम और लक्ष्मण दोनों को ही अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि यही चन्द्रनखा है।

अगस्त्य का अनुमान सत्य ही निकला था।

चन्द्रनखा ने अपना रथ वन के बाहर ही छोड़ दिया था। रथ वन में आ भी नहीं सकता था और चन्द्रनखा उसे लाना भी नहीं चाहती थी।

"हे सुदर्शन युवक! मैं दण्डकारण्य की साम्राज्ञी, त्रिलोकेश्वर रावण की भगिनी, त्रिलोकसुन्दरी चन्द्रनखा हूँ। तुम्हें इससे पूर्व कभी इस क्षेत्र में नहीं देखा, अपना परिचय नहीं दोगे?" चन्द्रनखा ने समीप आते ही अपने यौवन का भरपूर प्रदर्शन करते हुए अधरों पर सम्मोहक मुस्कान बिखेरकर प्रश्न किया।

"साम्राज्ञी", राम ने भी पूरे सम्मान से उत्तर दिया- "मैं अयोध्या का राजकुमार दाशरथि राम हूँ। यह मेरा अनुज लक्ष्मण है। पिता ने मुझे चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा दी थी, उसी का अनुपालन कर रहा हूँ। स्नेहवश लक्ष्मण और मेरी पत्नी सीता भी वनवास में मेरे साथ ही आये हैं। यहाँ पंचवटी में आये हमें अभी मात्र एक माह ही हुआ है, तभी साम्राज्ञी की हमसे भेंट नहीं हो पायी।"

"ओह, कितना मूर्ख होगा वह पिता जिसने तुम जैसे सुशील और सुदर्शन पुत्र को राज्य से निष्कासित कर दिया। तुम..."

"क्षमा करें साम्राज्ञी", राम ने किंचित कठोर स्वर से चन्द्रनखा की बात काटते हुए उत्तर दिया- "पिता के लिये अपशब्द राम को सह्य नहीं है, यह सदैव ध्यान रखिए। रही बात मेरे निष्कासित होने की तो जान लें राम अयोध्या से निष्कासित नहीं है। वह पिता की आज्ञा से मात्र चौदह वर्षों के लिये वनवास कर रहा है।"

चन्द्रनखा को राम से ऐसे उत्तर की आशा स्वप्न में भी नहीं थी। उसे क्रोध भी आया किंतु काम का आवेग क्रोध से बहुत अधिक तीव्र था। वह क्षणांश में ही पुनः सँभली और बोली-

"यदि तुम्हें मेरे शब्द अप्रिय प्रतीत हुए तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। मेरा आशय तुम्हारे पिता का अपमान करना कदापि नहीं था। मैं तो मात्र तुम्हारे सान्निध्य में अपना समय व्यतीत करना चाहती हूँ। तुम मेरे साथ मेरे प्रासाद चलो, वहाँ तुम्हें त्रिलोक के समस्त ऐश्वर्य उपलब्ध होंगे।"

''देवी, आपने मेरे कथन पर ध्यान नहीं दिया संभवतः, वनवास का अर्थ वन में वास ही हो सकता है। मैं आपके साथ आपके प्रासाद में किस भाँति निवास कर सकता हूँ।'' राम ने पुनः चन्द्रनखा का निवेदन अस्वीकार कर दिया।

''धन्य है वह माता जिसने तुम जैसे आज्ञाकारी पुत्र को जन्म दिया'', चन्द्रनखा ने अब चापलूसी का मार्ग अपनाया- ''परंतु मेरा प्रस्ताव स्वीकार करने से तुम्हारे पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं होगा। मेरा प्रासाद जनस्थान में है और जनस्थान सहित यह सम्पूर्ण प्रदेश ही दण्डकारण्य का भाग है। इस प्रकार मेरा प्रासाद भी अरण्य में ही स्थित है।''

''मुझ पर अकारण सदय होने के लिये पुनः धन्यवाद साम्राज्ञी, परंतु मैं आपका प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकता। प्रासाद तो प्रासाद ही होता है, वह वन में होते हुए भी वन का भाग नहीं हो सकता।''

चन्द्रनखा राम के व्यवहार से हतप्रभ थी और लक्ष्मण मुँह घुमाकर अपनी हँसी रोकने का प्रयास कर रहे थे। किसी अपरिचिता नारी का स्वर सुनकर अब तक सीता भी कुटीर से बाहर आ गयी थीं।

एक प्रयास निष्फल हुआ तो चन्द्रनखा ने अपनी वाणी में भरपूर रस घोलते हुए नया प्रस्ताव रखा - ''तो तुम्हारे लिये मैं स्वयं अपना प्रासाद त्यागकर तुम्हारी कुटी में निवास कर लूँगी।''

''किंतु किस हेतु साम्राज्ञी? आप मेरे लिये अपना प्रासाद त्यागकर मेरी कुटिया में निवास क्यों करेंगी?'' राम ने सब समझते हुए भी अनजान बनकर प्रश्न किया।

''तुम्हारे सौभाग्य से मैं अभी तक अविवाहित हूँ। आज तक अपने योग्य कोई पुरुष मिला ही नहीं मुझे। आज प्रथम अवसर है जब कोई पुरुष मेरे मन पर अधिकार करने में समर्थ हुआ है। मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूँ।''

''यह तो नितांत असंभव है साम्राज्ञी, मैं तो पहले से ही विवाहित हूँ। वह देखिये सामने मेरी अर्द्धांगिनी सीता खड़ी हैं।''

"मुझे सपत्नी बनने में भी कोई आपत्ति नहीं है।" चन्द्रनखा व्यग्रता से बोली। लक्ष्मण के लिये अब हँसी रोक पानी बड़ा कठिन हो रहा था।

सीता को पहले तो प्रकरण समझ में नहीं आया था, किंतु अब समझ आ गया, वे भी मुस्कुराने लगीं। दोनों को ही इस खेल में आनंद आ रहा था। उधर राम ने चन्द्रनखा का नया प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिया - "वह भी संभव नहीं है साम्राज्ञी, मैं एकपत्नीव्रता हूँ।"

"उसमें भी कोई बाधा नहीं है। हम रक्षों में बिना विवाह के भी रमण करने की प्रथा है। मैं तुम्हारे साथ बिना विवाह के भी रमण करने हेतु प्रस्तुत हूँ।"

चन्द्रनखा की अतृप्त कामवासना के विषय में राम को अगस्त्य ने बताया था किंतु उन्हें यह अनुमान नहीं था कि वह पीछे पड़कर ही रह जायेगी। स्त्री के नाते वे उसका सम्मान करना चाह रहे थे परंतु उसके निरंतर नवीन प्रस्ताव उन्हें निरंतर उलझन में डालते चले जा रहे थे। उन्हें पता था कि आगे बढ़ने का मार्ग उन्हें इस चन्द्रनखा के माध्यम से ही प्राप्त होगा, परंतु इसके लिये वे न तो अपनी प्रियतमा के साथ धोखा कर सकते थे और न ही अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन कर सकते थे। वह अभी तक आक्रामक नहीं हुई थी, जब तक वह आक्रामक नहीं होती, वे भी नहीं हो सकते थे। ऊपर से वह नारी थी, नारी पर वे वैसे भी वार नहीं कर सकते थे.... तभी अचानक उन्हें उपाय सूझ गया, वे बोले - "वह भी असंभव है साम्राज्ञी। परंतु एक उपाय है आपके लिये।"

"क्या, अविलंब बताइये। आप जो भी कहेंगे मुझे स्वीकार होगा।" चन्द्रनखा ने व्यग्रता से उत्तर दिया।

लक्ष्मण और सीता के लिये भी राम का यह कथन अनुमान से परे था। वे दोनों भी चौंककर उत्सुकता से राम के आगे बोलने की प्रतीक्षा करने लगे।

"यह सामने मेरा अनुज है... लक्ष्मण। आप देख ही रही होंगी कि यह मुझसे भी अधिक सुदर्शन है। मैं श्यामल हूँ परंतु यह तो गौरवर्ण है। आप अपना प्रस्ताव इसके सम्मुख रख सकती हैं।"

लक्ष्मण बुरी तरह चौंक गये। वे तो अभी तक राम की विवशता का आनंद ले रहे थे, किंतु राम ऐसा खिलवाड़ भी कर सकते हैं यह उन्होंने नहीं सोचा था। राम ने तो एकाएक गेंद उनकी ओर ही उछाल दी थी।

उधर राम का उत्तर सुन चन्द्रनखा लक्ष्मण की ओर मुड़ी। उसने उनके सर्वांग पर दृष्टि फिराई तो पाया- 'कम तो यह भी नहीं है।'

वह हंसिनी सी लहराती हुई लक्ष्मण की ओर बढ़ी। उसे अपनी ओर आते देख लक्ष्मण हड़बड़ा गये, पीछे हटते हुए शीघ्रता से बोले - ''नहीं साम्राज्ञी, यह कदापि संभव नहीं है। मैं तो सेवक हूँ अपने इन भाई और भाभी का। साम्राज्ञी का मेल कहीं सेवक के साथ हो सकता है! आप इनसे ही निवेदन कीजिये।''

जब राम ने चन्द्रनखा रूपी गेंद लक्ष्मण की ओर उछाली थी तो एकाएक वे असहज हो गये थे, किंतु जब उन्होंने भी सफलतापूर्वक गेंद वापस राम की ओर उछाल दी तो उन्हें भी इस खेल में आनन्द आने लगा। अब तो चन्द्रनखा की स्थिति विषम हो गयी, राम उसे लक्ष्मण की ओर फेरते और लक्ष्मण वापस राम की ओर लौटा देते। दोनों ही इस नवीन क्रीड़ा का आनन्द लेते हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि चन्द्रनखा कुछ ऐसा कर बैठे जिससे उनका लंका की ओर बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हो जाये।

और चन्द्रनखा ऐसा कर ही बैठी।

चन्द्रनखा क्या, कोई भी होता तो दोनों भाइयों के इस खिलवाड़ से झल्ला जाता। झल्लाहट में चन्द्रनखा को यही प्रतीत हुआ कि यह सामने खड़ी स्त्री ही उसकी आकांक्षाओं के मार्ग की एकमात्र कंटक है। बस फिर क्या था वह कमर से कटार निकालकर चिल्लाती हुई सीता की ओर झपटी।

सीता भी इस खेल का आनन्द लेती हुई, कुटिया से पर्याप्त आगे बढ़ आयी थीं। इस समय चारों की स्थिति कुछ इस प्रकार थी कि चन्द्रनखा ठीक सामने लगभग बारह पग की दूरी से सीता की ओर कटार लिये झपट रही थी। राम

उसके दाहिनी ओर लगभग इतनी ही दूरी पर थे और लक्ष्मण उसके पीछे लगभग बीस पग की दूरी पर थे।

सत्ता के मद और क्रोध के आवेश में चन्द्रनखा सीता पर झपट तो पड़ी परंतु वह भूल गयी कि ये तीनों उससे भयभीत रहने वाली उसकी प्रजा नहीं हैं, न ही इस समय वह अपने सैनिकों के संरक्षण में है। वह यह भी भूल गयी कि भले ही ब्रह्मा द्वारा प्रदान किये गये उपचारों के परिणामस्वरूप उसकी देह पर अभी भी यौवन प्रतिबिम्बित होता है, उसकी त्वचा अभी भी स्निग्ध है परंतु यथार्थ में तो वह अब वृद्धावस्था की देहरी पर खड़ी है।

राम और लक्ष्मण साथ न होते तो भी सीता एकाकी ही उससे निपटने में समर्थ थीं। वे पूर्ण युवा स्त्री थीं। चन्द्र की देह की चपलता जहाँ उसकी वय और विलास ने छीन ली थी, वहीं वनवास के कठोर जीवन और अनुशासन-अभ्यास के कारण सीता अब भी चीता के समान चपल थीं। सुप्रशिक्षित योद्धा तो वे थीं ही। जैसे ही चन्द्रनखा सीता की ओर झपटी, तीन प्रतिक्रियायें एकसाथ हुई-

राम भले ही सीता से चन्द्र की अपेक्षा ड्योढी दूरी पर थे, किंतु वे राम थे। चन्द्र के झपटते ही उन्होंने भी अपना एक हाथ आगे की ओर फैलाते हुए छलाँग लगा दी। सीता भी तत्काल अपने कटिबंध में घुरसी छोटी सी कटारी निकालकर प्रत्याक्रमण के लिये सन्नद्ध हो गयीं। पंचवटी आने के उपरांत तीनों में से कोई भी किसी भी समय निःशस्त्र नहीं रहता था।

चन्द्र की कटार और सीता की कटारी दोनों का लक्ष्य एक-दूसरे का वक्षस्थल था। परंतु चन्द्र सीता तक पहुँच पाती, उससे पूर्व ही राम का हाथ बीच में आ गया। चन्द्र झटका खाकर वहीं रुक गयी। रुक ही नहीं गयी अपने ही वेग के कारण थोड़ा सा आगे की ओर भी झुक गयी। परंतु सीता का हाथ तो क्रिया कर चुका था। चन्द्र के एकाएक झटका खाकर रुक जाने और किंचित झुक जाने के कारण उनके हाथ की कटारी उसके वक्ष में तो नहीं धँसी परंतु उसकी नासिका का अग्रभाग अवश्य उड़ाती चली गयी।

तीसरी प्रतिक्रिया जो हुई, वह लक्ष्मण की ओर से हुई थी। इतना समय नहीं था कि वे देखते कि राम सीता को बचाने के लिये क्या कर रहे हैं। उन्होंने भी तत्काल अपने कंधे से धनुष खींचा और यहीं टहनियों को काट-छाँटकर बनाये गये दो कामचलाऊ शर चाप पर चढ़ाकर इस प्रकार छोड़ दिये कि वे चन्द्रनखा की ग्रीवा के इधर-उधर से, उसके बालों को स्पर्श करते हुए उसे चेतावनी देकर निकल जायें। उनका उद्देश्य उसे किसी प्रकार की शारीरिक क्षति पहुँचाना नहीं था। परंतु उसके झटका खाकर रुक जाने और किंचित झुक जाने के कारण दूरी अनुमान से दो पग कम हो गयी, ऊँचाई भी थोड़ी कम हो गयी... परिणामस्वरूप उनके बाण उसके कानों को कतरते हुए निकल गये।

चन्द्र के नाक और कान में लगा कोई भी घाव गंभीर नहीं था फिर भी तीनों ही स्थानों से रक्तस्राव होने लगा था। इन घावों के विपरीत वह घाव अत्यंत गम्भीर था जो उसके हृदय में लगा था, अपमान का घाव। वह उसे सहन नहीं कर सकी और फनफनाती हुई वहाँ से निकल गयी।

राम और लक्ष्मण दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, अब विशेष सतर्कता की आवश्यकता थी। दोनों को विश्वास था कि अब चन्द्रनखा सीधी खर-दूषण के पास जायेगी और फिर वे दोनों अपने चौदह सहस्त्र सैन्य के साथ चढ़ आयेंगे।

आँखों ही आँखों में दोनों भाइयों में वार्ता हुई। फिर राम गंभीर भाव से कुटिया के भीतर गये और भीतर से एक शंख लाकर पूर्व निर्धारित विधि से एक विशेष घोष कर दिया।

नियति अपना संकेत दे चुकी थी। राम का शंखनाद अभियान के निर्णायक चरण के आरम्भ का उद्घोष था।

राम के शंखनाद के प्रत्युत्तर में कहीं दूर से आता ढोल का स्वर तीनों प्राणियों ने स्पष्ट सुना। स्वर अत्यंत मद्धिम था तो भी स्पष्ट था। यह इस बात का संकेत था कि उनका संदेश उचित स्थान पर उचित व्यक्तियों द्वारा ग्रहण कर लिया गया

है। यह इस बात का भी संकेत था कि महर्षि अगस्त्य का सूचना-तंत्र सुचारु रूप से कार्यरत है।

22.खर-दूषण वध

''भइया, क्या हमारे मित्रगण समय पर सहायता हेतु आ पायेंगे?'' लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

''चिंतित हो क्या?'' राम कोई उत्तर देते उससे पूर्व ही हँसते हुए सीता ने कटाक्ष किया।

''चिंतित होने का कोई प्रश्न ही नहीं है भाभी। आपका लक्ष्मण एकाकी ही खर-दूषण के सम्पूर्ण सैन्य का नाश करने में सक्षम है। विवशता तो यह है कि उसे इसकी अनुमति नहीं है। निर्देश है कि हमें यह युद्ध महर्षि अगस्त्य द्वारा प्रशिक्षित इन अर्द्ध-योद्धाओं के सहयोग से विजित करना है।''

''तो जब अपने बाहुबल पर पूर्ण विश्वास है तो चिंता क्या, महर्षि की ओर से सहायता समय से आये अथवा विलंब से!''

''आप सत्य कह रही हैं भाभी, परंतु मुझे क्षोभ होता है कि ऋषिगण हमारी क्षमताओं का उचित मूल्यांकन नहीं कर रहे।''

''ऐसा नहीं है लक्ष्मण'', राम ने तुरंत टोका- ''महर्षि हमारी क्षमताओं का अनुचित मूल्यांकन नहीं कर रहे। यह सत्य है कि तुम्हारे शस्त्र-संचालन की समता त्रिलोक में विरले योद्धा ही कर सकते हैं परंतु इसे भी ध्यान में रखो कि हमारे पास बाण सीमित संख्या में ही हैं और दिव्यास्त्ररहित योद्धाओं के विरुद्ध हम दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं कर सकते। मुझे नहीं प्रतीत होता कि खर-दूषण समेत उसके सैन्य में कोई भी दिव्यास्त्रधारी होगा।''

''आत्मरक्षार्थ तो कर ही सकते हैं, वह तो प्रतिबंधित नहीं है।''

''अब तुम स्वयं अपनी क्षमताओं का अपमान कर रहे हो। आत्मरक्षार्थ तो हमारी कृपाणें ही पर्याप्त हैं। हमारे हाथ में कृपाण रहते किस आयुध का साहस हो सकता है हमें स्पर्श करने का?''

"तो क्या आक्रमणकारियों के विरुद्ध हम आत्मरक्षा ही करते रहेंगे? हम उनका विनाश करने आये हैं, आत्मरक्षार्थ नहीं।"

लक्ष्मण के कटाक्ष पर राम हँसे। हँसते हुए ही बोले - "आत्मरक्षार्थ घूमती हमारी कटारें शून्य में विलास नहीं करती रहेंगी, उनकी परिधि में आने वाले प्रत्येक प्रतिपक्षी योद्धा की ग्रीवा स्वयमेव उनका ग्रास बनती रहेगी।"

"और हमारे धनुष? हमारे दिव्यास्त्र?"

"उनके प्रयोग का भी समय आयेगा लक्ष्मण!"

"नहीं भइया, परंतु ...."

"कोई परंतु नहीं, इस युद्ध में हमारे धनुषों को विश्राम ही करना होगा। फिर भी यदि आवश्यकता पड़ी तो गुरुदेव विश्वामित्र, स्वयं श्रीविष्णु और महर्षि अगस्त्य के दिये हुए कौमोदिकी गदा जैसे अनेक चमत्कारी आयुध हैं हमारे पास, जो दिव्यास्त्रों की कोटि में नहीं आते, हम उनका प्रयोग कर सकते हैं।"

लक्ष्मण ने कोई उत्तर नहीं दिया। सीता उनके क्षोभ पर मंद-मंद मुस्कुरा रही थी।

"और कोई शंका?" राम ने लक्ष्मण को मौन देख मुस्कुराते हुए प्रश्न किया।

"एक है।" कुछ सोचते हुए लक्ष्मण एकाएक बोले।

"तो तुम शंका मन में कब से रखने लगे?" राम ने कटाक्ष किया- "झटपट कह डालो।"

"अब तो हमारे पास कारण है। रावण की भगिनी ने भाभी पर प्राणघातक आक्रमण किया है, अब हम खर-दूषण के आगमन की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हैं? वे आक्रमण करें उससे पूर्व ही हम आक्रमण क्यों नहीं कर देते। दिव्यास्त्रों के अतिरिक्त शेष विशिष्ट आयुधों के प्रयोग के प्रति तो आपने सहमति दे ही दी है, अब तो हम उन्हें क्रीड़ा-विलास मात्र में ही समाप्त कर सकते हैं। तदुपरांत किष्किंधा के योद्धाओं को साथ लेते हुए लंका पर चढ़ चलते हैं।"

राम पुनः हँसे।

"इतनी व्यग्रता की आवश्यकता नहीं है। चन्द्रनखा सीता पर आक्रमण करने नहीं आयी थी, वह तो मात्र हमसे प्रणय-निवेदन करने आयी थी। उसे उत्तेजित करने का कार्य तो हमने किया। इसे एक दुर्घटना ही माना जायेगा, जिसमें हमारी सतर्कता के कारण सीता को कोई हानि नहीं हुई, स्वयं चन्द्रनखा ही आहत हो गयी। उसके इस कृत्य के लिये दशानन को उत्तरदायी किस भाँति ठहराया जा सकता है?"

लक्ष्मण ने कोई उत्तर नहीं दिया, बस हताशा में धीरे से सिर झटक दिया। उनकी इस प्रतिक्रिया पर सीता हठात् हँस पड़ीं। सीता के हँसने पर लक्ष्मण भी हँस पड़े। हँसते हुए ही बोले - "तो अभी भी हमें प्रतीक्षा ही करनी है। विधाता ही जाने यह प्रतीक्षा कब समाप्त होगी!"

लक्ष्मण के उत्तर पर सीता और जोर से हँस पड़ीं। यद्यपि वे लक्ष्मण से सहमत थीं परंतु उनके जितनी व्यग्र नहीं थीं।

***

चन्द्रनखा पंचवटी से बाहर आयी तो क्रोध से फुफकार रही थी। उसकी अवस्था देखकर, बाहर रथ के साथ प्रतीक्षा कर रहे सारथी के हाथ-पैर फूल गये। वह कुछ समझ पाता उससे पूर्व ही चन्द्रनखा उछलकर रथ पर सवार हुई और चीखकर आदेश दिया - "खर के प्रासाद... तीव्रतम गति से!"

सारथी ने बिना कोई प्रतिक्रिया दिये आदेश का पालन किया। स्वामिनी की जो अवस्था थी, उसमें कुछ भी बोलने का उसका साहस ही नहीं था।

चन्द्रनखा को इस अवस्था में आते देख खर के प्रासाद के द्वारपाल भी घबरा गये। उन्होंने दूर से ही उसे देखकर प्रासाद के विशाल कपाट खोल दिये। रथ के द्वार पर पहुँचते ही चन्द्रनखा ने सारथी को रुकने का संकेत किया और खर और दूषण का नाम लेकर अपनी पूरी शक्ति से पुकारने लगी।

संयोग से प्रासाद में खर और दूषण दोनों ही उपस्थित थे। वे भीतर एक कक्ष में थे अतः चन्द्र की पुकार उन तक नहीं पहुँच पा रही थी, परंतु प्रासाद के सेवकों तक तो पहुँच ही रही थी। तत्काल कुछ सेवकों ने दौड़ते हुए जाकर उन्हें सूचना दी। सुनते ही दोनों हड़बड़ाकर बाहर की ओर भागे।

बाहर चन्द्र की स्थिति देखते ही दोनों हतप्रभ रह गये। उसके घावों से बहता हुआ रक्त तो सूख चुका था परंतु उस रक्त और क्रोध के आवेग ने उसकी मुखाकृति को अत्यंत भयंकर बना दिया था।

''यह कैसे हुआ स्वामिनी?'' खर ने चन्द्र को देखते ही प्रश्न किया।

''सम्पूर्ण सैन्य को सज्ज होने का आदेश दो।'' रथ से उतरे बिना ही चन्द्र चीखी।

''आप रथ से नीचे तो आयें!'' चन्द्रनखा की आहत और विक्षिप्त अवस्था देखते हुए खर ने व्यग्रता से कहा- ''दूषण तत्काल राजवैद्य को आहूत करो।''

चन्द्रनखा ने खर की बातों पर जैसे कान ही नहीं दिया, वह फिर से चीखी-

''आदेश का पालन हो।''

खर ने दूषण की ओर दृष्टि फिराई। दूषण बिना कहे ही दृष्टि का अर्थ समझकर बाहर निकल गया।

''स्वामिनी, कुछ बतायें तो... क्या हुआ, कैसे हुआ ...?''

क्रोधावेश के कारण चन्द्रनखा का सारा शरीर काँप रहा था। उसकी अवस्था ऐसी नहीं थी कि वह कुछ बता पाती। वह मात्र इतना ही बोल पायी-

''पंचवटी में दो उद्धत पुरुष एक स्त्री के साथ टिके हुए हैं।''

खर को समझ नहीं आया कि दो पुरुषों को दंडित करने के लिये सम्पूर्ण सैन्य की क्या आवश्यकता है, परंतु चन्द्रनखा को कुछ समझा पाना भी संभव नहीं था। वैसे क्रोध तो स्वयं उसे भी विकट आ रहा था। दण्डकारण्य की साम्राज्ञी, रावण की चहेती बहन को आहत करने वाले का दण्ड मृत्यु से कम कुछ भी नहीं

हो सकता था। उसने एक पल विचार किया, फिर एक सेवक को अपने विशिष्ट अंगरक्षक दल के नायक को बुला लाने का आदेश दिया।

कुछ ही क्षणों में नायक उनके सम्मुख उपस्थित था। स्वामिनी की दशा देखकर वह भी हतप्रभ था।

''दल सन्नद्ध है?'' खर ने नायक से प्रश्न किया।

''जी!'' नायक ने तन कर खड़े होते हुए उत्तर दिया।

''कितने अश्वारोही हैं?''

''पचास!''

''पंचवटी में दो पुरुष और एक स्त्री कहीं से आये हैं। उन्होंने स्वामिनी के सम्मान पर आघात करने का दुस्साहस किया है। तत्काल प्रस्थान करो।''

''मूर्ख हो तुम!'' अचानक चन्द्रनखा चीखी- ''इन लोगों की सामर्थ्य नहीं हो सकती उनके सम्मुख खड़े भी होने की।''

नायक तब तक प्रस्थान कर चुका था। फिर भी साम्राज्ञी के मुख से निकले शब्द उसके कानों में पड़ गये थे। साम्राज्ञी द्वारा अपनी सामर्थ्य पर इस प्रकार संदेह किये जाने से वह तिलमिला गया, परंतु अपना क्रोध वह साम्राज्ञी पर तो नहीं उतार सकता था। उसकी प्रस्थान की गति और तीव्र हो गयी। उसका सारा क्रोध पंचवटी में छिपे उन उद्धत पुरुषों पर उतरने को व्याकुल हो रहा था। उनके साथ की स्त्री के साथ, वह उनके सम्मुख ही पूरी दुर्दान्तता से बलात्कार करने का संकल्प ले चुका था।

इधर चन्द्रनखा की बात सुनकर खर ने उसे सान्त्वना देने का प्रयास किया - ''साम्राज्ञी, वे अत्यंत...''

चन्द्रनखा ने उसकी बात काट दी - ''वे राम और लक्ष्मण हैं। वही जिन्होंने ताड़का का वध किया था।''

''क्या??''

इस बार खर के चौंकने की बारी थी। अभी तक तो उसे यह सब चन्द्र की विक्षिप्तावस्था का प्रलाप ही प्रतीत हो रहा था परंतु यदि वे सत्य ही राम और लक्ष्मण थे तो उन्हें हल्के में नहीं लिया जा सकता था। चन्द्रनखा कहे जा रही थी - ''हाँ, अतः उन्हें गम्भीरता से लो और पूर्ण सन्नद्ध होकर चलो।''

''जैसी आज्ञा साम्राज्ञी!'' खर बोला। अब वह चन्द्र से पूर्णतः सहमत था। वह तत्काल द्वार-रक्षक को बुलाकर उसे आवश्यक निर्देश देने लगा।

तभी राजवैद्य आ गया। दूषण ने सैन्य को तैयार होने का आदेश देने हेतु जाते हुए, उसे भी सूचना भिजवा दी थी।

राजवैद्य जैसे ही चन्द्रनखा की ओर बढ़ा, चन्द्र खर पर बिफर पड़ी - ''मैं स्वस्थ हूँ मूर्ख, तुम अपना पूरा ध्यान सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ प्रस्थान पर लगाओ।''

''मैं वही कर रहा हूँ साम्राज्ञी, परंतु जब तक सैन्य सज्ज होकर एकत्र होता है तब तक आप उपचार...''

पर चन्द्रनखा ने उसकी बात फिर बीच में ही काट दी - ''अपने कार्य पर ध्यान दो मूर्ख!''

अब खर ने उसके सामने से हट जाना ही श्रेयस्कर समझा। वैद्य ने भी कुछ पल चन्द्रनखा को समझाने का व्यर्थ सा प्रयास किया, परंतु अंततः वह भी निराश ही वापस लौट गया।

लगभग एक मुहूर्त में ही प्रासाद के बाहर सैन्य एकत्र होने लगा। अब तक खर और दूषण दोनों ही लौट आये थे, परंतु उनका चन्द्रनखा से कुछ भी कहने का साहस नहीं हो रहा था। जैसे ही सैन्य एकत्र हुआ, खर ने सबको प्रस्थान का आदेश दे दिया। अश्वारोहियों को पदाति सैन्य के साथ विलम्ब न हो अतः उसने उन्हें तीव्रतम गति से आगे बढ़ जाने का संकेत कर दिया।

***

जब प्रतीक्षा ही करनी थी तो लक्ष्मण ने पूर्व की ओर के वट के ऊपर चढ़कर ही करना उपयुक्त समझा। नीचे से तो वट के तनों के जंगल के कारण आगन्तुक दिखाई ही नहीं पड़ते! वृक्षारोहण तो वैसे भी उनका प्रिय विलास था। वे चढ़ते-चढ़ते उस सबसे ऊँची डाल पर पहुँच गये जो उनका भार सह सकती थी। अभी दूर-दूर तक किसी हलचल का कोई चिह्न नहीं था।

सीता पुनः अपनी रसोई में व्यस्त हो गयीं। भोजन तैयार होते ही उन्होंने पूरी शक्ति से चिल्लाकर लक्ष्मण को टेर लगायी। लक्ष्मण इतनी दूर थे कि इसके बिना उन्हें सुनाई ही नहीं देता।

भोजन प्राप्तकर लक्ष्मण पुनः उसी डाल पर आसन जमाकर बैठ गये। रोमांच की प्रतीक्षा में ही दिवस का दूसरा प्रहर व्यतीत हो गया। तीसरा प्रहर भी आधा व्यतीत होने को था जब लक्ष्मण को पूर्व की ओर अर्थात् जनस्थान की ओर से धूल के बादल उड़ते हुए दिखाई पड़े।

लक्ष्मण वानरों के समान कूदते हुए नीचे आये, राम और सीता को सूचना दी तथा अगले ही क्षण कटिबंध से लटक रही दोनों कृपाणें खींचकर वन की ओर भागे। लक्ष्मण को इस प्रकार उत्तेजित देख राम तीव्र स्वर में बोले

- ''रुको लक्ष्मण, हम सीता को अरक्षित नहीं छोड़ सकते, तुम यहीं इनके पास ठहरो।''

''भाभी के पास आप ठहरिये भइया। आगन्तुकों का स्वागत मैं करता हूँ।''

''नहीं, तुम्हें अभी अनेक अवसर प्राप्त होंगे शौर्य-प्रदर्शन के।''

''वे तो आपको भी प्राप्त होंगे!'' लक्ष्मण किंचित उद्धत स्वर में बोले। एक तो वे पहले ही प्रतीक्षा से उकता चुके थे, उस पर जब अवसर आया था तो पुनः राम उन्हें रोमांच से विरत रखना चाह रहे थे।

''आप दोनों ही जाइये, मैं सक्षम हूँ अपनी रक्षा में। फिर इस वन को पार कर किसी का एकाएक यहाँ तक पहुँच पाना सहज नहीं है। मार्ग में इतने अवरोध बना दिये हैं आपने।'' सीता ने आत्मविश्वास से परिपूर्ण स्वर में प्रस्ताव किया।

''नहीं, लक्ष्मण यहाँ रुकेंगे आपके पास, यह मेरा आदेश है।'' राम ने स्पष्ट रूप से प्रतिवाद के सारे मार्ग अवरुद्ध कर दिये। लक्ष्मण मायूसी से कंधे झटककर रह गये। सीता बस मुस्कुरायीं, अपनी क्षमताओं पर राम का अविश्वास रुचा उन्हें भी नहीं था, परंतु उनकी प्रतिक्रिया संयत थी।

कुछ ही पलों में राम उस वट-वन में विलुप्त हो गये।

***

राम वट-वन से बाहर आकर आक्रमणकारियों के निकट आने की प्रतीक्षा करने लगे। सबसे पहले लगभग पचास अश्वारोही प्रकट हुए। वे राम से कुछ पग पूर्व ही ठहर गये।

''रे दुस्साहसी, अपनी मृत्यु का वरण करने हेतु तत्पर हो जा।'' उनमें से एक क्रोध से चीखा।

''तुम कौन हो, खर अथवा दूषण?'' राम ने मुस्कुराते हुए प्रतिप्रश्न किया।

''तुम जैसे कीटों को मसलने हेतु स्वामियों को अपने हाथों को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।'' उसी व्यक्ति ने चुटकी बजाते हुए दंभ से उत्तर दिया।

''तो प्रतीक्षा किस बात की कर रहे हो, क्या तुम्हारे स्वामियों ने आक्रमण का आदेश नहीं दिया?'' राम अब भी मुस्कुरा रहे थे।

''प्रतीत होता है मुत्यु का वरण करने की विशेष शीघ्रता है तुझे। तेरा साथी अधिक बुद्धिमान है जो साथ की स्त्री को लेकर भाग गया। परंतु उसकी यह बुद्धिमानी भी उनकी सुरक्षा नहीं कर पायेगी।'' चीखता हुआ वह अश्वारोही राम की ओर झपटा। उसके पीछे-पीछे दो-तीन और झपटे।

संभवतः इन लोगों को ज्ञात नहीं था कि राम कौन हैं, तभी ऐसा दुस्साहस कर बैठे थे। पलक झपकते ही तीनों रक्त-वमन करते भूमि पर बिछे हुए थे। उनके अश्व अपने स्वामियों की चिंता किये बिना हिनहिनाते हुए दूर भाग गये।

फिर तो क्रम ही चल निकला। राम के दोनों हाथों में थमी कृपाणें ऐसी विद्युत गति से घूम रही थी कि उनके चारों ओर एक अभेद्य कवच सा बन गया

था। कोई भी अस्त्र-शस्त्र उस कवच को छेद नहीं पा रहा था। उस घूर्णन की परिधि में आने वाली प्रत्येक वस्तु, चाहे वह अस्त्र-शस्त्र हो अथवा कोई सैनिक अथवा अश्व, दो टुकड़ों में बँटती चली जा रही थी। उन पचास अश्वारोहियों को समाप्त होने में समय ही नहीं लगा।

राम जानते थे कि यह अंत नहीं था। उन्होंने पुनः पूर्व की ओर अपनी दृष्टि टिका दी। कुछ ही समय उपरांत उन्हें दूर क्षितिज में फिर धूल के उठते हुए मेघ दृष्टिगोचर होने लगे। यह जनस्थान की मुख्य अश्वारोही सेना थी।

उनके पास आते ही राम पुनः गतिशील हो गये। अब मात्र उनकी कृपाणें ही गतिशील नहीं थीं, वे स्वयं भी निरंतर दायें-बायें और आगे की ओर गति कर रहे थे। विवशता थी उनकी, जिस स्थान पर भी वे कुछ पल स्थिर हो जाते थे, वहीं लोथों के ढेर लग जा रहे थे। मनुष्यों और अश्वों का रक्त और मांस मिलकर ऐसे फिसलन भरे कीचड़ का निर्माण कर रहा था, जिस पर टिककर खड़ा हो पाना असंभव था। कुछ ही देर में वह क्षेत्र क्षत-विक्षत जीवित-मृत रक्ष सैनिकों और अश्वों के ढेर से पट गया। परंतु राम के पास अभी विश्राम करने का अवसर नहीं था। अश्वारोहियों के दल टिड्डियों के समान बढ़ते ही चले आ रहे थे। राम को सुस्ताने की आवश्यकता भी नहीं थी। वे बिना थके, बिना खाये-पिये, बिना सोये, कई दिनों तक निरंतर इसी भाँति, इतनी ही ऊर्जस्विता के साथ युद्धरत रह सकते थे।

पीछे आने वाले अश्वारोही रक्ष-सैनिकों ने जब अपनी अग्रगामी टुकड़ी की एक अकेले व्यक्ति के सम्मुख यह दुर्दशा देखी तो वे दंग रह गये। उनमें से बहुत से तो यही नहीं समझ पा रहे थे कि उनके साथी युद्ध किससे कर रहे थे। अश्वारोहियों के झुण्ड के मध्य राम उन्हें दिखाई ही नहीं पड़ रहे थे। जो समझ पाये वे उन्हें कोई अलौकिक शक्ति मानने लगे। खर-दूषण और रावण के भय से वे राम की शरण में आने का साहस तो नहीं कर सकते थे, किंतु राम से युद्ध करने का साहस भी नहीं जुटा पा रहे थे। उन्होंने सबकी आँख बचाकर वहाँ से पलायन कर जाना ही श्रेयस्कर समझा। जिन्होंने पलायन नहीं किया, उनमें से जो

भाग्यशाली थे वे राम की कृपाण के वार से एकबारगी ही इस नश्वर जीवन के कष्टों से छुटकारा पा गये। जो उतने भाग्यशाली सिद्ध नहीं हुए वे गम्भीर रूप से आहत होकर भूमि पर प्राणान्तक कष्ट भोगते हुए छटपटाते रहे।

खर-दूषण के अश्वारोहियों के सम्मुख एक भीषण समस्या यह भी थी कि राम एकाकी थे। राम के साथ भी सैन्य होता तो वे उससे भिड़ते परन्तु एक राम को चतुर्दिक भला कितने अश्वारोही घेर सकते थे! वे एक-एक, दो-दो कर ही आक्रमण कर पा रहे थे और राम के हाथों मुक्ति पाते जा रहे थे। शेष सैनिक, जिन्होंने पलायन नहीं किया था, वे मात्र पीछे से अपने शस्त्र लहराने और कोलाहल मचाने का ही कार्य कर पा रहे थे। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि उनके पास कोलाहल मचाने के अतिरिक्त कोई कार्य ही नहीं था, कार्य तो जो भी था, वह राम को करना था और वे ही कर भी रहे थे।

एक मुहूर्त में ही वहाँ लोथों के पर्वत खड़े हो गये। अब तक राम बहुत आगे बढ़ आये थे। तभी पूर्व की ओर से पैदल सैनिकों का विशाल सागर सा लहराता हुआ उमड़ने लगा। राम को उस ओर देखने का अवकाश नहीं था। उनका ध्यान तो उन्हें चारों ओर से घेरे अश्वारोहियों को समाप्त करने पर ही था। उन्हें इस ओर भी ध्यान देने का अवकाश नहीं था कि महर्षि अगस्त्य की ओर से सहायता अभी तक क्यों नहीं आयी थी!

पैदल सैनिकों का सागर निकट आ गया।

चीखते-चिल्लाते, दशानन, चन्द्रनखा और खर-दूषण की जयकार करते ये सैनिक, जब पर्याप्त निकट आ गये तो एकबार तो चकित रह गये। उन्हें चारों ओर अपने ही अश्वारोही सैनिकों के शव बिखरे दिखाई दे रहे थे। उन्हें यह भी दिखाई दे रहा था कि उनके अनेक अश्वारोही अभी भी एक ओर झुंड बनाये हुए हैं किंतु वे किससे युद्ध कर रहे हैं यह उन्हें दिखाई ही नहीं दे रहा था।

कुछ पल वे उहापोह में पड़े रहे कि उन्हें करना क्या है। वे तो युद्ध करने आये थे परंतु विपक्षी तो कहीं दिख ही नहीं रहा था, जितने भी दिख रहे थे अपने ही

सैनिक थे। धीरे-धीरे इस किंकर्तव्यविमूढ़ता से उबरते हुए ये सैनिक चारों ओर फैलने लगे।

युद्धरत राम से थोड़ी ही दूरी पर, वट-वन की डालों में छिपा जटायु प्रशंसात्मक दृष्टि से राम की कृपाणों का नर्तन देख रहा था। वह किसी भी आपात स्थिति में राम की सहायता करने हेतु कृतसंकल्प था परंतु अभी उसे अपने बीच में कूदने की कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हो रही थी। फिर भी उसे अपना निःशस्त्र होना जितना आज अखर रहा था उतना जीवन में पहले कभी नहीं अखरा था। अखरना क्या, पूर्व में तो कभी उसे शस्त्रों की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई थी।

तभी दक्षिण की ओर से भी धूल के बादल उठना आरम्भ हो गया। इस बादल को सबसे पहले जटायु ने ही देखा, देखते ही उसके ओठों पर संतुष्ट मुस्कुराहट खेल गयी। यह निश्चय ही अगस्त्य की ओर से आने वाली सहायता थी। खर-दूषण की सेना वृक्षों की ओट के कारण अभी धूल के इन बादलों को नहीं देख पा रही थी। राम को तो अवकाश ही नहीं था कुछ और देखने का।

कुछ देर में जब इस बादल ने वृक्षों से भी ऊपर उठना आरम्भ किया तो उसने रक्ष सैनिकों का ध्यान भी आकर्षित किया। अश्वारोही अभी भी राम से ही उलझे हुए थे। ये अब सौ से अधिक नहीं बचे थे। कितने अश्वारोही मारे जा चुके थे, कितने आहत थे और कितने प्राणरक्षा हेतु पलायन कर गये थे, इसकी कोई गिनती किसी के पास नहीं था।

थोड़ी ही देर में धूल का बादल सेना में परिवर्तित होने लगा। अब खर-दूषण के पैदल सैनिकों को अपने आगमन का उद्देश्य प्राप्त हो गया, वे इस नयी आयी सेना के साथ भिड़ गये। राम को घेरे हुए अश्वारोहियों की संख्या निरंतर कम होते-होते अंततः समाप्त हो गयी।

***

चन्द्र ने जब खर-दूषण को बताया था कि उनका सामना राम और लक्ष्मण से होने वाला है, तभी उन्हें प्रतीत हो गया था कि संघर्ष कठिन सिद्ध होने वाला है, परंतु वहाँ पहुँचकर उन्होंने जो देखा उस पर सहसा उन्हें विश्वास नहीं हुआ।

ये लोग दस सहस्त्र पैदल सेना के पीछे-पीछे अठारह रथों में वहाँ पहुँचे थे। इनमें एक रथ चन्द्रनखा का था और दो खर-दूषण के। शेष सारे रथ उनकी सेना के अन्य विशिष्ट सेनापतियों के थे। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि एक एकाकी व्यक्ति ने उनकी सम्पूर्ण अश्वारोही सेना को समाप्त कर दिया था। उसके दोनों हाथों में घूम रही कटारों की गति अविश्वसनीय थी। कोई भी अस्त्र-शस्त्र उन कटारों की गति को भेदकर उस पुरुष के शरीर को स्पर्श नहीं कर पा रहा था।

तभी उन्हें अचंभित करने वाली एक और घटना घटित हो गयी। उन्हें तो यही ज्ञात था कि इन तीनों का कोई सहयोगी नहीं है परंतु उनके देखते-देखते ही दक्षिण से एक अन्य सेना आ पहुँची और उनकी पैदल सेना का विनाश करने में जुट गयी। इस सेना की संख्या उनकी सेना से कम कदापि नहीं थी।

उस सैन्य को देख खर स्वयं को चन्द्रनखा से पूछने से रोक नहीं सका - ''आप तो कह रही थीं कि वे तीन ही हैं परंतु यह सैन्य कहाँ से आ गया इनकी सहायता हेतु?''

''सब तुम्हारी अयोग्यताओं का दुष्परिणाम है'', उत्तर में चन्द्रनखा फुफकारी- ''राज्य की व्यवस्थायें तुम देखते हो, मैं नहीं। तुम्हारी नाक के नीचे कोई इतना विशाल सैन्य संजोता रहा और तुम्हें पता तक नहीं चला।''

चन्द्रनखा के कथन में सत्य था, यह खर को भी समझ आ रहा था। चन्द्र से तर्क करने से वैसे भी कोई लाभ नहीं था, वह पहले ही विक्षिप्त थी और इस समय तो अपमान और हताशा से और भी विक्षिप्त हो रही थी। वह किसी तरह उसे वहीं रुकने को मनाकर स्वयं आगे बढ़ गया।

***

अगस्त्य की सेना के साथ गुँथे हुए रक्ष-सैनिकों की चिंता करने की राम को आवश्यकता नहीं थी। वे देख रहे थे कि अगस्त्य की ओर से आये सैनिक रक्षों से कम नहीं थे। युद्ध में भी वे भारी ही पड़ रहे थे। उन्होंने अपना ध्यान खर-दूषण की ओर लगाया। उन्होंने देखा कि दूर लगभग पन्द्रह-सोलह रथ खड़े हुए हैं। वे सब दो विशिष्ट रथों को घेरे हुए खड़े थे। राम को अनुमान लगाने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि ये दोनों ही खर और दूषण है। इन दोनों में भी खर को पहचानना सहज ही था। उसका रथ उसके पद की गरिमा के अनुरूप सर्वश्रेष्ठ था।

''प्रतीत होता है रक्ष योद्धा अपने सैन्य के पराक्रम पर ही मुदित रहते हैं, उनमें स्वयं आकर युद्ध करने का साहस नहीं होता।'' राम ने घन-गर्जन सदृश हुँकार के साथ व्यंग्य किया।

''यह तो तुझे अभी समर में ज्ञात हो जायेगा कि रक्ष योद्धा कैसे होते हैं!'' उत्तर में सेनापति दूषण चीखा और अपने सारथी को आगे बढ़ने का संकेत किया।

''आप क्यों कष्ट करते हैं'', यह कितना भी बड़ा योद्धा क्यों न हो, इस अकेले के लिये हम ही बहुत हैं।'' खर-दूषण के रथों को घेरे खड़े रथों में से एक पर आसीन योद्धा बोला। यह स्थूलाक्ष था।

बोलने के साथ ही उसने हाथ से शेष योद्धाओं को संकेत किया और सारे रथ राम को घेरने के लिये दौड़ पड़े।

अगस्त्य की ओर से आये सैन्य के साथ वे आठों ऋषि भी थे जो चित्रकूट से ही राम के साथ आये थे। उन लोगों ने जब देखा कि इधर स्थिति नियंत्रण में है तो वे आठों निकलकर उधर आ गये जिधर राम एकाकी खर-दूषण और उसके विशिष्ट साथियों से युद्धरत थे।

राम इस युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग न करने हेतु कटिबद्ध थे। उनके इस निश्चय ने शीघ्र ही उनके सम्मुख विषम स्थिति उत्पन्न कर दी। यह युद्ध कृपाणों का नहीं, धनुष-बाण का था। राम के तूणीर में शर शीघ्र ही समाप्त होने लगे।

राम अपनी कृपाणों की सहायता से शत्रु पक्ष के वारों को निरस्त तो कर सकते थे किंतु वे स्वयं उन दूरस्थ शत्रुओं पर वार नहीं कर सकते थे।

इस विषम स्थिति को ऋषियों ने भी लक्ष्य किया।

इसे जटायु ने भी लक्ष्य किया। लक्ष्य करते ही वह वृक्ष से कूद पड़ा और राम की ओर दौड़ा। परंतु तभी वह रुक गया। उसके मुख पर क्षण भर पहले व्याप्त व्याकुलता का स्थान पुनः मुस्कुराहट ने ले लिया। वह देख रहा था कि ऋषियों ने स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए तत्काल उचित निर्णय लिया था।

युद्ध-क्षेत्र में युद्धक सामग्री की कोई न्यूनता नहीं थी। हताहत सैनिकों के धनुष-बाण, कृपाणें, ढालें, भाले... सभी प्रकार के शस्त्र चारों ओर बिखरे पड़े थे। तीन ऋषियों ने झपटकर अपने दोनों हाथों में एक-एक ढाल थामी और उन ढालों की सुरक्षा में शेष ऋषि शत्रु-पक्ष की ओर से आ रहे बाणों को एकत्र कर राम तक पहुँचाने लगे।

अब युद्ध का निर्णय मात्र समय का खेल था। एक मुहूर्त से भी कम में राम ने उन सारे योद्धाओं को धराशायी कर दिया। उनके बाद दूषण और अंत में खर को भी समाप्त होने में अधिक समय नहीं लगा।

अगस्त्य की ओर से आये सैनिकों का कार्य राम ने बिना उनके साथ खड़े हुए ही सहज कर दिया। जैसे ही राम के हाथों खर-दूषण के विशिष्ट योद्धाओं का धराशायी होना आरम्भ हुआ, शेष बचे रक्ष सैनिकों ने युद्ध से विरत होना आरम्भ कर दिया। दूषण के गिरते-गिरते अगस्त्य के शिष्यों से युद्ध करने हेतु कोई रक्ष सैनिक शेष नहीं बचा था।

जटायु पुनः वट-वृक्षों की शाखाओं में विलुप्त हो गया था।

खर के समाप्त होते ही राम ने धन्यवाद ज्ञापित करती दृष्टि से, समय पर सहायता हेतु आ गये, चित्रकूट वासी, मनसिज आदि ऋषियों की ओर देखा। वे कुछ कहते उससे पूर्व ही उनमें से एक, देवमित्र बोल पड़े - ''नहीं रामभद्र! कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है।''

राम भी उन ऋषियों की भावनाओं का सम्मान करते हुए बस मुस्कुराकर रह गये। कुछ क्षण बाद वे बोले - ''ऋषिवर, एक सहयोग की और आवश्यकता है।''

''निस्संकोच कहिये।''

''इस वट-वन के मध्य, कुटीर में लक्ष्मण और सीता हैं। मेरे आदेश से बँधे वे युद्ध में सम्मिलित नहीं हो पाये, परंतु मेरी कुशलता जानने हेतु दोनों व्यग्र तो हो ही रहे होंगे। आपलोग कृपया जाकर उन्हें सूचित कर दें कि दण्डकारण्य से रक्षों का विनाश हो चुका है।''

''आप नहीं चलेंगे?'' ऋषि मनसिज ने प्रश्न किया।

''इन समस्त आहतों की चिकित्सा और मृतकों का उचित रीति से दाह-संस्कार करवाना मेरा दायित्व है। मैं उसके पश्चात् ही आ सकूँगा।''

''वह व्यवस्था ऋषिगण देख लेंगे, महर्षि अगस्त्य ने इस हेतु यथोचित व्यवस्था और निर्देश के साथ हमें भेजा है।'' मनसिज ने बताया।

''मुझे विश्वास था कि महर्षि ने ऐसा ही किया होगा, परंतु इससे मैं अपने दायित्व से मुक्त तो नहीं हो जाता!'' राम ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

''जैसी आपकी इच्छा।'' मनसिज ने और तर्क नहीं किया।

''अन्धकार होने लगा है'', राम चलने को उद्यत ऋषियों को टोकते हुए बोले- ''प्रकाश की क्या व्यवस्था है।''

''चिंता न करें, हमारे पास उसकी भी व्यवस्था है।'' मनसिज ने बताया।

तभी दूर एक मशाल प्रज्ज्वलित हो उठी। उसी ओर संकेत करते हुए मनसिज आगे बोले- ''जब आप यहाँ रुक ही रहे हैं तो उचित होगा कि आप भी उधर ही चलें और अपने निर्देशन में सारे कार्य सम्पन्न करायें। हम भी प्रकाश हेतु मशाल ले लेंगे वहाँ से।''

परामर्श उचित ही था, राम सबके साथ उधर ही बढ़ चले। मार्ग में उन्होंने इन ऋषियों को वन में अपने बाँधे गये अवरोधों के विषय में भी बता दिया। जब तक ये लोग पहुँचे, एक-एक कर अनेक मशालें प्रज्ज्वलित हो गयी थी। उन ऋषियों ने एक मशाल ली और वट-वन में विलुप्त हो गये। राम शेष ऋषियों और सैनिकों के साथ आहतों को सँभालने और मृतकों की देहों को सहेजने में लग गये।

कुछ ही देर में लक्ष्मण और सीता भी वहाँ आ गये। जैसे ही मनसिज आदि उनकी कुटिया तक पहुँचे थे, वैसे ही वे चल पड़े थे। उनका तर्क था कि युद्ध समाप्त होने के साथ ही राम का उनके वहीं रुकने का आदेश भी स्वतः ही समाप्त हो गया था। वह आदेश तो मात्र सीता की सुरक्षा की दृष्टि से दिया गया था, अब मित्रों के मध्य उनकी सुरक्षा के प्रति चिंतित होने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। आहतों को खोजते, मृतकों की देहों को सहेजते सूर्योदय कब हो गया, पता ही नहीं चला, परंतु पूरी रात्रि के परिश्रम के उपरांत भी चन्द्रनखा का कोई चिह्न तक प्राप्त नहीं हो सका।

@VipBooksNovels

23. रावण को सूचना

खर और दूषण के धराशायी होते ही चन्द्रनखा और विक्षिप्त हो उठी, परंतु सारथी ने अपना कर्तव्य निर्धारित करने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया। दूषण के गिरते ही उसने रथ मोड़ दिया। चन्द्रनखा चीखती रही परंतु उसने उस पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। वह शीघ्रातिशीघ्र साम्राज्ञी को सुरक्षित निकाल ले जाना चाहता था। यद्यपि यह कार्य उसके लिये सुकर कदापि नहीं था, चन्द्रनखा का सारा क्रोध, सारा उन्माद अकेले उसे ही झेलना पड़ रहा था, तथापि साम्राज्ञी की सुरक्षा उसके लिये अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान थी।

क्रोधोन्माद में चन्द्रनखा कभी विलाप कर रही थी, तो कभी स्वयं राम का वध करने हेतु रथ से कूद पड़ने को तत्पर हो रही थी, परंतु सारथी उसके प्रलापों को अनसुना कर, रथ को सागर की ओर दौड़ाये लिये जा रहा था। थोड़ी ही देर में जब अपने आदेशों की अवहेलना से कुपित चन्द्रनखा ने कशा सारथी से छीनकर, उसकी ही पीठ पर बरसानी आरम्भ कर दी, तब भी उसने धैर्य नहीं खोया। प्रशिक्षित अश्वों को नियन्त्रित करने के लिये कशा की आवश्यकता नहीं थी, उसे मात्र कशाघातों से होनी वाली अपनी पीड़ा को सहन करना था, जो वह करता रहा। थोड़ी देर में चन्द्र को भी अपनी विवशता समझ आ गयी और वह शिथिल पड़ गयी। कुछ ही पलों में वह निढाल सी रथ में एक ओर लुढ़क गयी।

सारथी को साम्राज्ञी की ओर देखने की आवश्यकता नहीं थी, रथ पूर्ण सुरक्षित और सुविधाजनक था, यदि साम्राज्ञी स्वयं ही दुस्साहस का परिचय देकर रथ से कूदने का निर्णय न ले लेतीं, तो उन्हें कुछ नहीं होना था। उसकी एकमेव चिंता इस समय यही थी कि यदि प्रतिपक्षियों ने साम्राज्ञी को खोजने के लिये अश्वारोहियों को उनके पीछे भेज दिया तो क्या होगा! प्रतिपक्षियों के पास भले ही अपने अश्व नहीं थे, परंतु रक्ष सेना के ही अनेक अश्व उन्हें सहज ही प्राप्त हो

सकते थे। उसे अपने जीवित रहते तो साम्राज्ञी को विरोधियों के हाथों में नहीं पड़ने देना था।

थोड़ा आगे बढ़ने पर जब उसे निश्चय हो गया कि उनका पीछा नहीं किया जा रहा है, तो उसने रथ के साथ ही बँधी मशालें प्रज्ज्वलित कर दी। वैसे यह सारा क्षेत्र उसका और उसके अश्वों का खूब पहचाना हुआ था, मशालें न भी होती तो उनके मार्ग भटकने अथवा दुर्घटनाग्रस्त होने की सम्भावना नहीं थी।

तट पर उसे ज्ञात था कि लंका का पोत उसे कहाँ मिलने की सम्भावना है। वह ईश्वर से यही प्रार्थना कर रहा था कि पोत तट पर ही उपस्थित हो, सागर में निकल न गया हो। सौभाग्य से लंका का पोत अभी तट पर ही था। चन्द्रनखा तो पोत पर सवार सैन्य अधिकारियों को कुछ बताने की स्थिति में थी ही नहीं, सारथी ने ही उन्हें सारी परिस्थिति से अवगत करवाया। खर-दूषण समेत दण्डकारण्य स्थित लंका का सम्पूर्ण सैन्य मारा जा चुका है, यह सूचना पोत के अधिकारियों के लिये भी अत्यंत विस्मयकारी थी। एकाएक तो उन्हें इस पर विश्वास ही नहीं हुआ, परंतु चन्द्र और सारथी की स्थिति स्वयं बता रही थी कि सूचना सत्य थी।

यह एक मध्यम आकार का पोत था। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार इसे दो दिन पश्चात लंका के लिये प्रस्थान करना था, परंतु इन परिस्थितियों में निर्धारित समय-सारिणी कोई अर्थ नहीं रखती थी। पोत के प्रधान ने एक बार भी कोई प्रश्न किये बिना नाविकों को पोत के लंगर खोल देने का आदेश दे दिया।

एक काम उसने और किया। लंका के पास बहुत सारे प्रशिक्षित गरुड़ जाति के पक्षी थे। ये आवश्यकता पड़ने पर संदेशवाहक का कार्य भी करते थे। ऐसा ही एक गरुड़ उनके पोत पर भी उपलब्ध था। पोत-प्रधान के संकेत पर एक सैनिक ने एक तुरही जैसे वाद्य से विशेष ध्वनि निकाली। कुछ ही क्षणों में उनका प्रशिक्षित गरुड़ आकाश में मँडराने लगा। कुछ क्षण पोत की परिक्रमा करने के उपरांत वह आकर प्रधान के कंधे पर बैठ गया। संदेश प्रधान ने पहले ही लिख

रखा था, वह उसने गरुड़ के गले में बाँध दिया। बस, प्रधान का संकेत पाते ही वह आकाशचारी संदेशवाहक, संदेश लेकर लंका की ओर उड़ गया।

अब यह यह निश्चित हो गया था कि उनके लंका पहुँने से पूर्व ही सम्राट् यहाँ की परिस्थितियों से अवगत हो चुके होंगे। यथार्थ कहें तो वह सम्राट् को खर-दूषण की मृत्यु और दण्डकारण्य के साम्राज्य के पतन की सूचना देने से भी अधिक व्यग्र, उन्हें उनकी इस विक्षिप्त भगिनी की सूचना देने और उसे सुरक्षित उनके हाथों में सौंपने के लिये था। उसका अनुमान था कि चन्द्रनखा के विषय में ज्ञात होते ही सम्राट् उसे शीघ्रातिशीघ्र सुरक्षित लिवा लाने हेतु उचित प्रबन्ध अवश्य करेंगे। संभव है, सम्राट् स्वयं पुष्पक से आकर चन्द्रनखा को लिवा ले जायें। जितनी देर तक यह विक्षिप्त साम्राज्ञी उसके साथ थी, उसके प्राण संकट में ही थे।

पोत पर चिकित्सक भी उपलब्ध था, परंतु वह सामान्य सा वैद्य था जिसने अभी तक पोत पर नाविकों की ही चिकित्सा की थी। उसे कभी किसी इतने महत्वपूर्ण व्यक्तित्व की भी चिकित्सा करनी पड़ेगी, ऐसा उसने सोचा भी नहीं था। सम्राट् की यह एकमात्र भगिनी पूर्व से ही अर्द्धविक्षिप्त है, यह उसे भी ज्ञात था। उसे ही क्यों, लंका में सभी को ज्ञात था। उसका साहस नहीं हो रहा था चन्द्रनखा को कोई औषधि देने का, परंतु न देने से भी तो काम नहीं चलने वाला था। बचने का कोई मार्ग ही नहीं था।

अंत में उसे यही उपयुक्त प्रतीत हुआ कि किसी प्रकार चन्द्रनखा को सुला दे। उसने दूध में औषधि मिलाकर चन्द्रनखा को दी, परंतु चन्द्रनखा ने हाथ मार कर वह दुग्ध-पात्र फेंक दिया। बल प्रयोग उस पर किया नहीं जा सकता था। वैद्य, सारथी और पोत का नायक सम्पूर्ण रात्रि प्रयास करते रहे, मनुहारें करते रहे; तब जाकर कहीं दूसरे दिन मध्याह्न से कुछ पूर्व चन्द्रनखा ने एक पात्र दूध पिया। दूध में वैद्य ने पर्याप्त मधु मिला दिया था ताकि औषधि का स्वाद दब जाये। इस बात की पूरी-पूरी आशंका थी कि यदि चन्द्रनखा को औषधि दिये जाने का संदेह हो जाता तो वह दूध का वह पात्र भी फेंक देती।

अपनी बुद्धि के अनुसार वैद्य ने सामान्य से दोगुनी मात्रा में औषधि दी थी, परंतु चन्द्रनखा के लिये वह भी अपर्याप्त ही सिद्ध हुई। बड़े प्रयासों के बाद रात्रि में ये लोग उसे पुनः एक पात्र दूध पिला पाये। इस बार वैद्य ने इसमें पहले से भी दुगुनी मात्रा में औषधि मिलाई थी।

इस बार औषधि ने कार्य किया। धीरे-धीरे चन्द्रनखा सो गयी। उसके सो जाने पर सबने चैन की साँस ली। प्रातः उसके पूरी तरह चेत में आने से पूर्व ही पुनः उतनी ही मात्रा में औषधि दूध के साथ उसे दे दी गयी। पूर्ण जाग्रत न होने के कारण वह बिना अधिक प्रतिरोध के औषधियुक्त दूध पी गयी।

''क्यों न इन्हें निरंतर सुलाये ही रखा जाये?'' जब चन्द्रनखा पुनः सो गयी और वे सब कुछ तसल्ली के साथ बैठे तो एकाएक वैद्य ने पोत-प्रधान से प्रश्न किया।

''दो दिन तक तो कोई चिंता नहीं है, जो उचित समझो करो। पूर्ण अचेत रखना चाहो तो वही रखो। परंतु उसके उपरांत यही श्रेयस्कर होगा कि ये अर्द्धचेतन अवस्था में ही रहें। मेरा अनुमान है कि हमारा गरुड़ दो से ढाई दिनों में लंका पहुँच जायेगा। तत्पश्चात् इतनी महत्वपूर्ण सूचना तत्काल सम्राट् के संज्ञान में लायी जायेगी। तब संभव है वे तत्काल पुष्पक से स्वयं इन्हें लिवाने आ जायें। इनके प्रति उनका कितना लगाव है सभी को ज्ञात है।''

''जी, निश्चित ही सम्राट् स्वयं आयेंगे पुष्पक से। मैं ध्यान रखूँगा कि दो दिनों के उपरांत इन्हें औषधि की सीमा से अधिक मात्रा न दी जाये।''

''इतने समय में तो इनकी मानसिक अवस्था में पर्याप्त सुधार आना चाहिए!'' प्रधान ने संभावना प्रकट की।

''निश्चित ही आना चाहिए। इनकी मानसिक अवस्था पूर्व में ही असंतुलित थी, उस पर यह भयानक आघात... ऐसे में इनके मस्तिष्क को जितना विश्राम मिलेगा, उतनी ही इनकी दशा सुधरेगी।''

इन लोगों का अनुमान सत्य सिद्ध हुआ। गरुड़ को ठीक ढाई दिन ही लगा लंका तक पहुँचने में।

रात्रि के तीन प्रहर व्यतीत होने को थी जब प्रगाढ़ निद्रा में सोया हुआ लंका का गरुड़ प्रशिक्षक असमय अपने कानों के पास गरुड़ का तीखा स्वर सुनकर हड़बड़ा कर जाग गया। गरुड़ कक्ष के खुले वातायन से भीतर आकर उसकी छाती पर बैठा अपने पंख फड़फड़ा रहा था। प्रशिक्षक ने अपने भाग्य को कोसते हुए उसके गले में बँधा संदेश खोला और उसकी पीठ थपथपाकर उसे भी जाकर विश्राम करने का आदेश दिया।

गरुड़ शिकारी पक्षी होता है, उसके लिये भोजन की व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी, प्रशिक्षक के कक्ष के आगे, चारों ओर से घिरा हुआ, किसी उपवन सदृश एक विशाल आँगन था जिसमें उसके गरुड़ों के लिये सभी प्रकार के भोजन का सदैव प्रबन्ध रहता था।

गरुड़ के जाने के उपरांत प्रशिक्षक ने एक बार तो वह संदेश बिना देखे ही अपने तकिये के नीचे रख लिया और पुनः सोने लगा किंतु तभी उसकी अंतःप्रेरणा ने उसे उसके कर्तव्य का भान करा दिया। वह संदेश का पत्र लेकर उठा और कक्ष के एक कोने में रखे दीप-स्तंम्भ के पास जाकर दीपक की बाती बढ़ायी और संदेश पढ़ने लगा। संदेश पढ़ते ही वह काँप उठा। उसकी आँखों में समाई नींद जाने कहाँ भाग गयी। उसने बिना कोई विलम्ब किये अंगवस्त्र कंधे पर डाला और घर से बाहर की ओर भागा।

वह घर में एकाकी ही रहता था। उसके साथी विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी ही थे जिन्हें वह प्रशिक्षित करता था। दिन के समय उसके पाँच सहयोगी भी उसके आवास में होते थे जो कि रात्रि में अपने-अपने घर चले जाते थे।

बाहर आकर उसने मुख्य द्वार के बगल में ही बनी, तीन अश्वों की छोटी सी अश्वशाला से एक अश्व खोला और उस पर सवार होकर सरपट प्रहस्त के आवास की ओर दौड़ पड़ा। अयोध्या के समान ही लंका में भी रात्रि में घरों के द्वार बन्द

किये जाने की कोई प्रथा नहीं थी। फिर उसका निवास तो लंका के विशाल प्रासाद में ही स्थित था।

भागते हुए ही उसने अपनी अंतःप्रेरणा का धन्यवाद दिया जिसने उसे कर्तव्यपालन में इतनी भयानक चूक करने से रोक लिया था। कुछ ही काल में वह महामात्य के प्रासाद के द्वार पर था।

द्वार पर पहुँचते ही, अश्व पर बैठे-बैठे ही वह व्यग्रता से द्वार-रक्षकों से सम्बोधित हुआ - ''महामात्य से मिलना है, अभी।''

प्रशिक्षक को द्वार-रक्षक भलीभाँति पहचानते थे। उसकी व्यग्रता देखकर वे चौंक पड़े, फिर भी एक बोला - ''अश्व से नीचे तो उतरो, कारण तो बताओ। देख नहीं रहे, तीन प्रहर रात्रि व्यतीत हो रही है। इस समय महामात्य को जगाना उचित होगा क्या?''

''हाँ, कुछ ही काल में वे स्वयं जाग जायेंगे।'' एक अन्य ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाई।

वहाँ पर कुल बीस सशस्त्र द्वार रक्षक थे, इस हलचल से शेष सब भी वहीं एकत्र हो गये। सभी गरुड़-प्रशिक्षक को कुछ काल और प्रतीक्षा कर लेने के लिये समझाने लगे। सभी को भय था कि रात्रि के इस प्रहर में महामात्य को जगाना संकट का कारण बन सकता था। परंतु गरुड़-प्रशिक्षक किसी की बात सुनने को तैयार ही नहीं था। वह न तो कारण बता रहा था और न ही प्रतीक्षा करने को तैयार था। द्वार-रक्षकों द्वारा अधिक प्रतिरोध करने पर वह आवेश में आता जा रहा था। अंततः वह बोला - ''मुझे भेंट करने दो, विश्वास न हो तो एक व्यक्ति मेरे साथ चलो। मुझे मात्र इतना कहना है कि किसी भी स्थिति में मुझे इसी समय महामात्य से सम्पर्क करना होगा। विलम्ब अत्यंत घातक सिद्ध हो सकता है।''

''समझ लो, इस प्रयास के कारण तुम दण्डित भी किये जा सकते हो।'' पहला वाला द्वार-रक्षक चेतावनी भरे स्वर में बोला।

"होने दो। परंतु यदि विलम्ब हुआ तो निश्चय ही मुझे और तुमलोगों को भी दंडित होना पड़ेगा।

द्वारपालों ने और बहस नहीं की। उनमें से एक अपने अश्व पर आरूढ़ हुआ और प्रशिक्षक को साथ लेकर प्रहस्त के कक्ष की ओर बढ़ चला।

एक दासी को भेजा गया प्रहस्त को जगाने हेतु। सहमती हुई दासी ने जाकर प्रहस्त के कक्ष के द्वार पर टँगे घंटे पर हल्की सी चोट की। पहली चोट के उत्तर में ही भीतर से प्रहस्त का उनींदा सा स्वर सुनाई दिया - "भीतर आओ।"

दासी भीतर चली गयी। लगभग उलटे पैर ही वह वापस लौटी और प्रशिक्षक व द्वारपाल को भीतर जाने का संकेत किया।

दोनों भीतर गये।

"क्या है?" उन्हें देखते ही प्रहस्त का खीजा हुआ स्वर वातावरण में उभरा। उत्तर में गरुड़-प्रशिक्षक ने चुपचाप संदेश उसकी ओर बढ़ा दिया।

संदेश को पढ़ते ही प्रहस्त बुरी तरह चौंक पड़ा। लिखा था - 'दण्डकारण्य में उपस्थित सम्पूर्ण रक्ष सेना समाप्त हो गयी है। मात्र साम्राज्ञी किसी प्रकार सुरक्षित पोत तक आ पायी हैं, परंतु वे भी आहत हैं। अधिक विवरण ज्ञात नहीं है।'

उत्तेजित और चिंतित अवस्था में प्रहस्त तत्काल उठा। उसका आलस्य तपते हुए तवे पर पड़ी जल की बूँद के समान वाष्प बनकर उड़ गया था। उसने एक दृष्टि पर्यंक पर बेसुध सो रही अपनी पत्नी पर डाली, फिर झपटकर अपना उत्तरीय कंधे पर डाला और प्रशिक्षक को साथ चलने का संकेत करता हुआ बोला - "आओ मेरे साथ।"

"मैं भी?" प्रशिक्षक इस आदेश पर कुछ असहज हो उठा।

प्रहस्त ने प्रशिक्षक को कोई उत्तर नहीं दिया। उसके स्थान पर उसने कक्ष के द्वार की ओर बढ़ते हुए ताली बजाकर दासी को आने का संकेत किया।

दूसरे ही पल द्वार पर दासी प्रकट हुई।

"रथ!" प्रहस्त ने आदेश दिया और कक्ष के बाहर निकल आया। भयभीत से प्रशिक्षक ने भी उसका अनुसरण किया। कक्ष के बाहर आकर उसने एक दृष्टि प्रशिक्षक पर डाली, उसका सफेद पड़ा चेहरा देखकर उसे सान्त्वना देने का प्रयास करते हुए बोला - "शांत रहो, भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

अब प्रशिक्षक थोड़ा सहज हुआ। प्रहस्त ने अगला आदेश दिया-

"तुम अपने अश्व पर सम्राट् के प्रासाद के द्वार तक पहुँचो।"

कहने के साथ ही वह स्वयं, कक्ष के द्वार पर रथ के आगमन की प्रतीक्षा करने के स्थान पर प्रासाद के द्वार की ओर बढ़ चला।

***

संदेश देखकर रावण की भी वही गति हुई जो प्रहस्त की हुई थी।

उसने भी मात्र एक क्षण कुछ सोचा और उठ खड़ा हुआ।

"अपने गरुड़ को लेकर पुष्पक-प्रांगण के द्वार पर पहुँचो... अविलंब।" उसने प्रशिक्षक को आदेश दिया।

प्रहस्त के ही रथ पर रावण पुष्पक-प्रांगण तक पहुँचा।

यद्यपि प्रशिक्षक एकाएक गरुड़ को लेकर आने के सम्राट् के आदेश का कारण नहीं समझा था, परंतु अश्व पर आरूढ़ होते-होते उसके ज्ञानचक्षु खुल गये। सागर के इस क्षेत्र में लंका के अनेक पोत सतत विचरण किया करते थे। ऐसे में सम्राट् के लिये यह अत्यंत दुरुह कार्य सिद्ध होने वाला था कि उन्हें किस पोत पर पुष्पक को उतारना है। गरुड़ के साथ होने पर यह कार्य स्वयमेव अत्यंत सहज हो जाना था। वह अपने अश्व को सरपट दौड़ाता हुआ ही अपने निवास की ओर दौड़ पड़ा।

24. चन्द्रनखा का उद्धार

रावण वाचाल नहीं था, फिर भी पोत तक की सम्पूर्ण यात्रा में वह असामान्य रूप से मौन रहा। प्रहस्त ने वार्तालाप आरम्भ करने का प्रयास भी किया परंतु रावण मात्र 'हूँ' करके रह गया। प्रहस्त ने भी आगे अधिक प्रयास नहीं किया। प्रशिक्षक बेचारा सकपकाया सा एक ओर सिकुड़ा बैठा था। सम्राट् के साथ, वह भी पुष्पक में, यात्रा करने का उसका यह पहला अवसर था।

रावण ऊपर से तो शांत था, परंतु उसके मन में दावानल दहक रहा था। वह चन्द्रनखा के लिये चिंतित हो रहा था, साथ ही उसका मन उस व्यक्ति पर उबल रहा था जिसने मात्र उसकी भगिनी को आहत करने का साहस ही नहीं किया था, खर-दूषण समेत दण्डकारण्य में उपस्थित लंका के सम्पूर्ण सैन्य का संहार भी कर डाला था। वह समाधि में जाकर सम्पूर्ण घटना को प्रत्यक्ष देखना चाहता था, परंतु उसका न तो समय था और न ही अवसर। फिर भी उसे इस बात का पूर्ण विश्वास था कि इसके पीछे अवश्य ही देवों की कोई दुरभिसन्धि होगी। वह बड़ी कठिनाई से अपनी भावनाओं पर नियंत्रण कर पा रहा था। बार-बार भिंचती हुई मुट्ठियों के साथ वह संकल्प ले रहा था कि चन्द्रनखा को सुरक्षित लंका पहुँचाकर वह इस घटना के दोषियों को ही दंडित नहीं करेगा, एक बार पुनः इन्द्र का मानमर्दन करेगा। बहुत हो चुकी ज्ञान और कला की आराधना, उसे एक बार पुनः दशानन की खोल से बाहर आकर, त्रिलोक-विजेता, दुर्धर्ष रावण को जाग्रत करना पड़ेगा।

***

उनका पुष्पक कई पोतों को पारकर उड़ता रहा। सूर्य आकाश में ऊपर उठता जा रहा था। सभी की व्यग्र दृष्टि गरुड़ पर टिकी हुई थी और वह सागर को निहारता हुआ शांत बैठा था। उसके प्रशिक्षक ने उसकी पीठ विशेष ढंग से थपथपाकर उसे समझा दिया था कि उसे क्या करना था।

एकाएक गरुड़ चिचियाकर पंख फड़फड़ाने लगा। यह संकेत था कि उसकी दृष्टि में वह पोत आ चुका है जिस पर उन्हें उतरना है। प्रशिक्षक ने पुनः उसकी पीठ थपककर उसे उड़ जाने का संकेत कर दिया।

पुष्पक के यात्रियों को नीचे दो पोत सागर में विचरते दिखाई पड़ रहे थे। दोनों ही लंका की ओर बढ़ रहे थे। रावण की दृष्टि ने स्पष्ट अनुभव किया कि पीछे वाले पोत की गति विशेष ही तीव्र है। उसने अनुमान लगाया कि यही पोत उनका गंतव्य होना चाहिए। गरुड़ की उड़ान से अभी कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था। परंतु कुछ ही पलों में रावण का अनुमान सत्य सिद्ध होने लगा, जब इन लोगों ने देखा कि गरुड़ आगे वाले पोत को पार कर आगे बढ़ गया है। रावण ने भी पुष्पक को उसी पोत की दिशा में उतारना आरंभ कर दिया। गरुड़ जब तक उस पोत की ओर गोता मारता, पुष्पक उस पर उतर चुका था।

***

पोत का प्रधान इन लोगों को उस कक्ष की ओर ले चला जिसमें चन्द्र लेटी हुई थी।

''चन्द्र तुम्हारे पोत तक कैसे पहुँची?'' एकाएक रावण ने प्रश्न किया।

''अपने रथ पर सम्राट्।''

''स्वयं लेकर आयी थी रथ अथवा सारथी था साथ में?''

''जी, सारथी लाया था। साम्राज्ञी तो इस अवस्था में थी ही नहीं कि रथ को संचालित कर पातीं।''

''तो पहले सारथी को ही बुलाओ।'' चन्द्र के कक्ष की ओर बढ़ते रावण के पग एकाएक थम गये।

सारथी को बुलाया गया। सम्राट् की उपस्थिति से वह भयभीत था, परंतु सुदीर्घ अवधि तक चन्द्रनखा की सेवा में रहा होने के कारण, अब तक अपने भय पर नियंत्रण पाना सीख चुका था, अतः ऊपर से लगभग सामान्य ही दिखाई पड़ रहा था। उसने आते ही यथाविधि सम्राट् को प्रणाम किया।

उसके प्रणाम के उत्तर में रावण ने बस धीरे से सिर हिलाया और फिर सीधा प्रश्न किया - ''किसने किया यह दुस्साहस?''

''ज्ञात नहीं सम्राट्!'' सारथी ने धीरे से उत्तर दिया।

''कोई ध्वज नहीं थे, सेना के साथ।''

''सेना थी ही नहीं सम्राट्! वह व्यक्ति एकाकी था। बहुत बाद में उसकी सहायता हेतु तपस्वियों की एक सेना अवश्य आ गयी थी।''

''क्या?'' रावण आश्चर्य से भर गया- ''विस्तार से बताओ सब।''

''सम्राट्, अधिपति खर ने अश्वारोहियों को आगे भेज दिया था। पीछे से जब पैदल सेना के साथ हम पंचवटी पहुँचे तो पाया कि उस एकाकी व्यक्ति ने ही उन सबका संहार कर डाला था। हमारे सामने ही तपस्वियों का एक सैन्य उसकी सहायता हेतु वहाँ आया, परंतु यदि वह न भी आता तो मुझे तो प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति एकाकी ही सबका संहार करने में समर्थ था। तपस्वियों की सेना ने तो मात्र पैदल सेना से ही युद्ध किया। अधिपति खर और सेनापति दूषण समेत अन्य सभी योद्धाओं का वध भी उस व्यक्ति ने एकाकी ही किया।''

''था कौन वह?''

''नहीं ज्ञात सम्राट्!''

''कैसा दिखता था?''

''श्यामल वर्ण, खूब ऊँचा और सुगठित शरीर वाला। उसकी वेशभूषा तो तपस्वियों वाली थी परंतु व्यक्तित्व से कोई राजपुरुष ही प्रतीत होता था।''

''और कुछ उल्लेखनीय?''

सारथी कुछ पल मौन रहा फिर धीरे से न में सिर हिला दिया।

''तुम दोनों कैसे बचे?''

''स्वामिनी ने मुझे कुछ पहले ही रुक जाने का आदेश दिया था। वहाँ वृक्षों की ओट से हम सब देख रहे थे। जैसे-जैसे एक-एक करके सेनापति गिरते जा रहे थे, स्वामिनी क्रोधावेश से...'' आगे कहने में सारथी कुछ हिचकने लगा।

''जो भी कहना है, निर्भय होकर कहो। तुमने अपनी स्वामिनी की रक्षा की है, अतः मैं तुम्हें अभय देता हूँ।'' उसे हिचकते देख रावण ने उसे आश्वस्त किया।

सारथी आगे कहने लगा - ''अपने महारथियों को काल का ग्रास बनते देख स्वामिनी क्रोधावेश से उन्मत्त सी होती जा रही थीं। मुझे उनकी अत्यंत चिंता हो रही थी। फिर जैसे ही मैंने देखा कि सेनापति दूषण ने भी मृत्यु का वरण कर लिया, मैंने स्वामिनी को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से तत्काल रथ को घुमाया और और वहाँ से भगा दिया। हम कुछ ही दूर बढ़े होंगे कि मैंने अधिपति खर की भी चीत्कार सुनी, मुझे विश्वास हो गया कि वे भी मारे गये। उसके बाद मैंने पीछे मुड़कर देखने का भी प्रयास नहीं किया बस रथ को सागर की ओर भगाता चला आया। हमारे सौभाग्य से किसी ने हमारे पीछे आने का प्रयास नहीं किया अन्यथा....'' उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

''अर्थात चन्द्र ने युद्ध में भाग नहीं लिया था?''

''नहीं?''

''फिर वह आहत कैसे हुई?''

''वह तो पूर्वाह्न में हुई थीं।''

''मैंने तुम्हें विस्तार से सब बताने को कहा था!''

रावण का स्वर तीव्र नहीं था पर कठोर था। सारथी के मुख पर इस स्वर से स्वेद बिंदु झलक आये। वह सकपका कर बोला - ''ज्-ज् जी!''

''तो बताओ... आरम्भ से ही आरम्भ करो।''

सारथी कुछ पल सिर झुकाकर कुछ सोचता रहा, जैसे घटनाओं के सूत्र जोड़ने का प्रयास कर रहा हो। रावण धैर्य से उसे देखता रहा। फिर सारथी ने बताना आरम्भ किया-

''एक दिन पूर्व स्वामिनी मन्दरिका के साथ विहार के लिये गयी थीं। कहाँ गयी थीं, यह मैं नहीं बता सकता क्योंकि वे दोनों अश्वों से ही गयी थीं और किसी को भी साथ आने को मना कर दिया था। वे जब लौटीं तो अत्यंत उत्साहित थीं। अगले दिन प्रातः ही उन्होंने मुझे रथ पंचवटी की ओर ले चलने का आदेश दिया। वहाँ पहुँचने पर मुझे रथ के साथ बाहर ही प्रतीक्षा करने का आदेश देकर वे अत्यंत उत्साह से पदाति ही वन के भीतर प्रविष्ट हो गयीं। मैं निश्चयपूर्वक तो नहीं कह सकता परंतु संभवतः भीतर वे इसी व्यक्ति से भेंट करने गयी होंगी। कुछ समय उपरांत जब वे लौटी तो उन्हें देखकर मैं भय और आश्चर्य से जड़ रह गया। वे अत्यंत क्रोध में थीं और उनकी नासिका और कानों से रक्त प्रवाहित हो रहा था। आते ही वे झपटकर रथ में आरूढ़ हुयीं और मुझे अधिपति के प्रासाद की ओर चलने का आदेश दे दिया। इससे आगे का मैं बता ही चुका हूँ।''

''अर्थात् चन्द्र परिचित थी उस व्यक्ति से!''

''निश्चयपूर्वक तो नहीं कह सकता सम्राट्, परंतु मेरा अनुमान यही है कि परिचित थीं। न होतीं तो एकाकी उस वट-वन में क्यों जातीं!''

''तुम इस व्यक्ति को नहीं जानते?''

''नहीं सम्राट्, पूर्व में कभी इसे नहीं देखा।''

रावण ने दो पल विचार किया फिर एकाएक पूछा - ''यह मंदरिका कहाँ मिलेगी?''

प्रश्न तो रावण ने सारथी से किया था परंतु उत्तर प्रहस्त ने दिया - ''जनस्थान में ही कहीं होगी।''

प्रहस्त के हस्तक्षेप पर रावण की भौहें एक बार थोड़ी सी सिकुड़ीं परंतु उसने क्षणांश में ही स्वयं पर नियंत्रण कर लिया - ''आप जानते हैं इसे?''

''भलीभाँति। यह लंका की सर्वाधिक चतुर दासियों में से एक है। जब मैंने पाया कि चन्द्र के पास कोई दासी अधिक दिन टिक नहीं पाती; या तो वह उसे भगा देती है अथवा मृत्यु के मुख में धकेल देती है, तो मैंने ही इसे उसकी सेवा

में नियुक्त किया था। इसने भी मुझे निराश नहीं किया, विगत एक दशक से यह चन्द्र की विश्वासपात्र बनी हुई है और उसकी विवादास्पद गतिविधियों से हमें भी सूचित करती रहती है।''

''ऐसा करने की क्या आवश्यकता थी?'' रावण ने असंतोष से पूछा।

''आप तो जानते ही हैं कि चन्द्र की जो मानसिक दशा है उसमें वह कभी भी किसी विपत्ति को आमंत्रण दे सकती हैं। कई बार ऐसे अवसर आये भी हैं और ऐसे प्रत्येक अवसर पर मंदरिका ने हमें समय रहते स्थिति से अवगत ही नहीं कराया, अपने प्रयासों से स्थितियों को और अधिक जटिल होने से भी बचा लिया।''

''इस इतने बड़े काण्ड की सूचना तो नहीं प्रेषित की उसने!''

''निश्चय ही प्रेषित की होगी'', प्रहस्त विश्वासपूर्वक बोला, फिर उसने आगे जोड़ा- ''यदि वह जीवित होगी तो।... सम्राट् स्मरण रखें कि उसके पास जनस्थान से उड़कर लंका आने का कोई साधन नहीं है।''

''हमारे पास तो है'', इस बार रावण हल्के से मुस्कुराया- ''चन्द्र को लेकर हम पुष्पक से सीधे जनस्थान ही चलते हैं और वहाँ से आपकी इस मंदरिका को भी ले लेते हैं। फिर लंका में ही विस्तार से वार्ता करेंगे तीनों से।''

''जैसा आप उचित समझें, किंतु लंका की अस्मिता पर आघात करने वाले इन दुस्साहसियों को समुचित दंड देना आवश्यक है।''

''निश्चित ही है, परंतु जिसने खर-दूषण जैसे योद्धाओं को एकाकी परास्त कर दिया, उसके विरुद्ध सुविचारित अभियान ही बुद्धिमत्ता होगी।'' प्रहस्त को उत्तर देने के साथ ही रावण पुनः सारथी से सम्बोधित हुआ- ''चन्द्र गयी क्यों थी उस व्यक्ति के पास? वह चाहती तो उसे ही जनस्थान बुला सकती थी।''

सारथी एक पल के लिये झिझका फिर उसने विनम्रता से उत्तर दिया - ''इस विषय में मैं अकिंचन क्या कह सकता हूँ सम्राट्! परंतु एक दिन पूर्व मंदरिका स्वामिनी के साथ गयी थी, कदाचित वह कुछ बता सके।''

उसकी भंगिमा से रावण को यह समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि वह अवश्य ही कुछ जानता है, अथवा कुछ अनुमान लगा रहा है परंतु कहने का साहस नहीं कर पा रहा है। उसने फिर कुरेदा - ''तथापि उसके आचरण आदि से कुछ तो अनुमान लगाया ही होगा तुमने।''

''मैं... मैं ...'', उत्तर में सारथी हकलाने लगा।

''स्पष्ट कहो।''

''मैं... मैं कैसे कुछ कह दूँ सम्राट्! मैं कैसे कोई अनुमान लगा सकता हूँ।''

''अच्छा यह बताओ, जाते समय चन्द्र आवेश में थी?''

''नहीं सम्राट्, मैंने पहले ही बताया कि जाते समय वे अत्यंत प्रसन्न मुद्रा में थीं। वापसी में अवश्य आवेश में थीं।''

''वह तो होना ही था, उस पर आघात करने का साहस किया था वहाँ किसी ने। इस अपमान के उपरांत उसका आवेश में होना स्वाभाविक था।'' रावण सहजता से बोला।

''जी!'' सारथी ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

''और बताओ।'' रावण ने पुनः कुरेदा।

''मुझे जो भी ज्ञात था सब बता चुका सम्राट्, इससे अधिक मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।'' सारथी लगभग घिघियाता हुआ सा बोला।

''अनुमान लगाओ'', रावण को अब भी उससे किसी सार्थक उत्तर की आशा थी- ''उस यात्रा में एकमात्र तुम ही थे उसके साथ, अथवा अश्व थे जो किसी प्रश्न का उत्तर दे नहीं सकते।''

''चन्द्र से ही क्यों नहीं पूछ लेते हम!'' प्रहस्त ने हस्तक्षेप किया। उसे संभवतः आशंका थी कि अधिक कुरेदने से कहीं रावण को उसकी संलिप्तता का ज्ञान न हो जाये।

''आपको क्या प्रतीत होता है, चन्द्र जो कुछ बतायेगी वह विश्वास योग्य होगा?'' कहकर रावण हल्के से मुस्कुराया और पुनः सारथी की ओर आकृष्ट हुआ- ''भय त्यागकर निस्संकोच वह बताओ, जो तुम अनुमान लगा सकते हो।''

''सम्राट्...'' सारथी अब भी अपना अनुमान व्यक्त करने का साहस नहीं जुटा पा रहा था परंतु रावण को संभवतः अनुमान था।

''क्यों न चन्द्र से वार्ता के उपरांत इससे और प्रश्न करें।'' प्रहस्त ने पुनः हस्तक्षेप किया- ''तब तक यह कुछ संयत भी हो जायेगा और इसे अपनी स्मृति को टटोलने का समय भी मिल जायेगा।''

''सुना नहीं तुमने'', रावण ने तो जैसे प्रहस्त की बात सुनी ही नहीं थी, वह पुनः सारथी से ही सम्बोधित हुआ- ''तुम्हें अभय है, तुम्हारे द्वारा कहे गये किसी भी कथन का तुम्हारे विरुद्ध उपयोग नहीं किया जायेगा'', एकाएक रावण का स्वर कठोर हो गया- परन्तु यदि तुमने सही-सही अपना अनुमान व्यक्त नहीं किया, तो तुम्हें मैं स्वयं अपने हाथों से अभी काल को समर्पित कर दूँगा।''

''न... नहीं सम्राट्!'' रावण की चेतावनी से सारथी सिहर उठा।

''तो बोलो, जो कुछ भी जानते हो सब बोलो। जो भी अनुमान लगा सकते हो वह भी बोलो।''

''मन्दरिका के साथ गयीं वे जबसे वापस लौटी थीं, तभी से अत्यंत प्रसन्न थीं। आते ही उन्होंने समस्त प्रसाधिकाओं को आहूत कर लिया था और प्रसाधन में व्यस्त हो गयी थीं। दूसरे दिन पंचवटी जाने से पूर्व उन्होंने अपूर्व शृंगार किया था और अत्यंत उत्साह के साथ पंचवटी गयी थीं।''

''इसमें नया क्या बताया तुमने? मार्ग में इतनी देर तुम अपनी साम्राज्ञी के साथ रहे थे, उनके उत्साह और उनकी भाव-भंगिमा से कोई अनुमान नहीं लगा पाये तुम। तुम तो उसकी प्रत्येक यात्रा में उसके सारथी रहते होंगे, तुमसे अधिक भला कौन जान सकता है कि किस उद्देश्य से की गयी यात्रा में उनकी मनस्थिति कैसी रहती थी!''

''मुझे अभय प्रदान किया है सम्राट् ने!'' सारथी ने जैसे पुनः अपने हृदय की सान्त्वना के लिये रावण को उसका वचन याद दिलाया।

''किया है'', इस बार रावण हँस पड़ा- ''तुम्हारे सम्राट् का वचन कभी मिथ्या नहीं होता, यह तुम्हें भी ज्ञात होगा।''

''सम्राट्, वे संभवतः उस व्यक्ति पर मोहित हो गयी थीं और उससे प्रणय-निवेदन करने गयी थीं।''

''और कुछ?'' रावण ने मुस्कुराते हुए पुनः प्रश्न किया।

''और संभवतः उन व्यक्ति ने उसका निवेदन ठुकरा दिया था'', सारथी पहले ठिठका फिर एक साँस में बोल पड़ा- ''तब संभवतः स्वामिनी ने क्रोध में उस पर आक्रमण कर दिया होगा। मैंने देखा है कि स्वामिनी को कोई गंभीर आघात नहीं लगा है, इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उस व्यक्ति ने उनके द्वारा आक्रमण किये जाने पर सांकेतिक दण्ड-स्वरूप उनके ....'' कहते-कहते सारथी चुप हो गया।

परंतु रावण को तो उत्तर मिल चुका था। ऐसा ही कुछ संभवतः उसका भी अनुमान था। एक पल को उसकी मुखमुद्रा विकृत हो उठी। उस एक पल में ही सारथी बुरी तरह सिहर उठा, वह काँपता हुआ 'त्राहिमाम्-त्राहिमाम्' जपता रावण के चरणों में गिर पड़ा।

''तुम्हें अभय है।'' रावण बोला और प्रहस्त को चन्द्र के कक्ष की ओर चलने का संकेत किया।

जब सब चन्द्रनखा के कक्ष में पहुँचे तो वह जाग्रत अवस्था में थी। उसे दी गयी औषधियों ने उसे उस उन्मादित अवस्था से बाहर आने में पर्याप्त सहायता की थी। अब वह चीख नहीं रही थी, बस शून्य में ताकती हुई मौन बैठी थी। वैद्य ने उसके कानों और नाक के घावों पर भी लेप लगा दिया था। इतने व्यक्तियों के कक्ष में प्रवेश करने की आहट की भी चन्द्र पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, वह उसी भाँति शून्य में ताकती बैठी रही।

रावण और प्रहस्त के अतिरिक्त शेष सभी द्वार पर ही ठिठक गये।

स्वाभाविक रूप से रावण आगे-आगे था।

चन्द्र के समीप पहुँचकर उसने उसे कंधों से थामकर ऊपर उठाया। चन्द्र ने यद्यपि उठने में कोई सहयोग नहीं किया, तथापि रावण के लिये उसे उठा लेना अत्यंत सहज था। रावण ने उसे उठाकर अपने आलिंगन में समेट लिया और स्नेह से धीरे-धीरे उसका सिर थपकने लगा।

इसकी प्रतिक्रिया भी उसे मिली। चंद्र धीरे-धीरे सिसकने लगी।

रावण ने कुछ देर उसे सिसकने दिया, फिर कंधों से ही पकड़कर उसे सामने किया, उसके चिबुक के नीचे अपने दाहिने हाथ की उँगलियाँ लगाकर उसका मुख इतना उठाया कि चन्द्र के नेत्र उसके नेत्रों में देख सकें। उसके बाद सब कुछ सहज ही था। दृष्टि मिलते ही उसने चन्द्र को अपने सम्मोहन के प्रभाव में लेना आरम्भ कर दिया। कुछ ही समय में चन्द्र शांत होकर रावण की बाहों में झूल गयी। वह अपने भाई के सम्मोहन की प्रगाढ़ निद्रा में सो चुकी थी।

***

चन्द्र, प्रहस्त और सारथी को साथ लेकर रावण पुनः पुष्पक में आरूढ़ हुआ। कुछ ही क्षणों में पुष्पक जनस्थान के लिये उड़ चला। जनस्थान में मन्दरिका को खोजने में कोई कठिनाई नहीं आयी। उसे भी साथ लेकर पुष्पक वापस लंका की ओर उड़ चला।

पुष्पक जब अपने नियत प्रांगण में उतरा तब तक रात्रि घिरने लगी थी। पुष्पक-प्रांगण के द्वार पर पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था के साथ-साथ एक रथ भी सदैव तैयार रहता था। जैसे ही सब लोग पुष्पक से बाहर आये, रावण का रथ उसकी प्रतीक्षा में था। पुष्पक को आकाश में देखते ही सारथी ने रथ प्रांगण में लाकर निर्धारित स्थान पर लगा दिया था।

रथ में सवारियों के बैठने के स्थान के पीछे भी सेवकों के, प्रायः चँवर डुलाने वालों के, खड़े होने का स्थान था। उधर ही संकेत करता हुआ रावण मंदरिका और चन्द्र के सारथी से सम्बोधित हुआ - ''पीछे खड़े हो जाओ।''

दोनों ने आदेश का पालन किया। उनके खड़े होते ही रावण प्रहस्त के साथ रथ पर बैठा और सारथी से सम्बोधित हुआ - ''महामात्य के प्रासाद की ओर।''

प्रहस्त चकित सा उसकी ओर देखता रह गया, परंतु रावण के मुख पर छाई गम्भीरता ने उसे कोई प्रश्न नहीं करने दिया।

रथ के प्रहस्त के प्रासाद के द्वार पर रुकते ही रावण बोला - ''महामात्य, प्रातःकाल राजसभा में भेंट होगी।''

रथ से नीचे उतरता प्रहस्त एक बार पुनः चौंक पड़ा। राजसभा के अतिरिक्त रावण उसे सदैव मातुल ही कहता था, परंतु आज वह उसे महामात्य सम्बोधित कर रहा था। इसके साथ ही वह मंदरिका और चन्द्र के सारथी को भी अपने साथ ही ले गया था। उसके मन में से एक चिंतित स्वर उभरा- 'चाहता क्या है यह? क्या यह मुझसे छिपाकर इन दोनों से पूछताछ करना चाहता है? कहीं यह मुझ पर कोई सन्देह तो नहीं कर रहा!' यह विचार आते ही उसका मन विचलित हो उठा।

उधर, रावण को प्रहस्त की विस्मित मुद्रा पर दृष्टि डालने का अवकाश नहीं था। उसके उतरते ही उसने सारथी को रथ घुमाकर प्रासाद चलने का आदेश दे दिया।

रावण का रथ जैसे ही प्रासाद के द्वार पर पहुँचा, द्वार-रक्षकों ने पूरे कपाट खोल दिये और स्वयं सम्मानपूर्वक सिर झुकाकर एक ओर खड़े हो गये। द्वार से भीतर प्रवेश करते ही रावण ने सारथी को अगला निर्देश दिया - ''विश्रामालय!''

सारथी ने रथ को विश्रामालय की ओर घुमा दिया।

25. विश्रामालय

रावण का विश्रामालय भी किसी प्रासाद से कम नहीं था। द्वार पर इस समय भी बीस सशस्त्र प्रहरी सन्नद्ध थे। रथ भवन के द्वार पर रुकते ही, रावण चन्द्र को अपनी बाहों में सँभालकर नीचे उतरा और सारथी को जाने की अनुमति दे दी। फिर वह कक्ष के द्वार की ओर बढ़ा। सतर्क प्रहरी और भी सतर्क हो गये। उन्होंने उसके लिये मार्ग छोड़ दिया और सम्मान से सिर झुकाकर खड़े हो गये।

"जब तक मैं अनुमति न दूँ, किसी को भवन के निकट भी मत फटकने देना। मैं अपने अध्ययन-कक्ष में हूँ।" द्वार पर पहुँचते ही रावण ने प्रहरियों को आदेश दिया और चन्द्र को अपनी बाहों में उठाये-उठाये ही भीतर प्रविष्ट हो गया। मंदरिका और चन्द्र के सारथी ने उसका अनुसरण किया।

मार्ग में कई अनुचर और सेविकायें मिलीं। सबने उचित रीति से उसके प्रति सम्मान प्रकट किया और सिर झुकाकर, दीवार से लगभग सटकर खड़े होकर उसे मार्ग प्रदान किया। उन सबकी उपस्थिति से निरपेक्ष रावण अपने मार्ग पर बढ़ता चला गया।

अध्ययन-कक्ष भवन के ठीक मध्य में बना एक विशाल कक्ष था। कक्ष के बाहर मात्र एक ही प्रहरी नियुक्त था। रावण को देखते ही उसने भी सम्मान में सिर झुकाया और फिर कक्ष के कपाट खोलकर एक ओर खड़ा हो गया। रावण और उसके पीछे-पीछे मंदरिका और चन्द्र का सारथी भीतर प्रविष्ट हो गये। उनके भीतर जाते ही प्रहरी ने कपाट पुनः बन्द कर दिये। उसे सदैव से ऐसा ही निर्देश था। अध्ययन के समय रावण किसी प्रकार का व्यवधान पसंद नहीं करता था।

पूरा कक्ष पुस्तकों और पांडुलिपियों से अटा पड़ा था। मध्य में सम्राट् की गरिमा के अनुकूल एक आसन था।

"यहीं प्रतीक्षा करो।" रावण बोला और कक्ष की दीवार के साथ-साथ चलता हुआ पूर्वी दीवार तक पहुँचा। पूर्वी दीवार के मध्य में एक और द्वार था।

रावण ने चन्द्रनखा को अपने एक हाथ में साधकर दूसरे हाथ से द्वार खोला और भीतर प्रविष्ट हो गया।

यह अपेक्षाकृत एक छोटा कक्ष था। इसकी सज्जा भी साधारण ही थी। कक्ष में एक ओर एक पर्यंक पड़ा था और दूसरी ओर भूमि पर एक कुशासन बिछा था। रावण ने चन्द्रनखा को पर्यंक पर लिटा दिया और फिर स्वयं बाहर अध्ययन कक्ष में आकर अपने आसन पर बैठ गया। मंदरिका और सारथी उसके सामने खड़े थे। उन दोनों से वार्ता करने के उपरांत ही वह चन्द्र को निद्रा से बाहर लाना चाह रहा था। चन्द्र से वार्ता करने के उपरांत उसने समाधि में जाकर सबकी बातों का परीक्षण करने का निर्णय लिया था।

''चन्द्र को उस दिन तुम अपने साथ कहाँ लेकर गयी थीं?'' आसन पर बैठते ही रावण ने मंदरिका के मुख पर दृष्टि जमाते हुए सीधा प्रश्न किया।

''पंचवटी सम्राट्!''

''क्यों?''

''मुझे ज्ञात हुआ था कि वहाँ तपस्वी वेशधारी दो दिव्य राजपुरुष और एक अत्यंत सुन्दरी स्त्री आकर ठहरे हैं। मैंने उनका उल्लेख स्वामिनी से किया तो वे उनसे मिलने को उत्सुक हो उठीं... ।

''तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ?''

''वो... सम्राट... बस किसी से सुना था।'' इस बार उत्तर देने में मंदरिका हकला गयी। वह निर्णय नहीं कर पा रही थी कि महामात्य का नाम ले अथवा नहीं।

''तुम्हारा विवरण सुनने के उपरांत मैं समाधिस्थ होकर उसका परीक्षण करूँगा। अब तुम स्वयं निर्णय कर लो कि तुम्हारा हित किस में है।''

रावण का स्वर अत्यंत धीमा था परंतु उसमें छिपी हुई धमकी ने मंदरिका को भीतर तक सिहरा दिया। वह एक पल तो सिर झुकाये खड़ी रही फिर जो कुछ भी

उसे ज्ञात था, वह सब रावण को बताती चली गयी। रावण चुपचाप सुनता रहा, जब उसने महामात्य का नाम लिया तब भी उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

''परंतु वहाँ युद्ध में तो मात्र एक ही व्यक्ति उपस्थित था? दूसरा व्यक्ति और वह स्त्री कहाँ गये?''

''मुझे कोई अनुमान नहीं सम्राट्!''

''तुम्हें यह अनुमान है कि तुम्हारे इस सम्पूर्ण कथन से क्या अर्थ ध्वनित होता है?''

मन्दरिका से कुछ बोलते नहीं बना। भय की एक ठंडी लहर उसके सम्पूर्ण शरीर में उतरती चली गयी। रावण कुछ पल उसके उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा फिर बोला - ''उत्तर नहीं दिया।''

''सम्राट्, मुझे स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं था कि वे दोनों पुरुष स्वामिनी के साथ ऐसा करने का साहस करेंगे...''

रावण ने उसकी बात बीच में ही काट दी - ''मैं उनकी बात नहीं कर रहा, मैं महामात्य की बात कर रहा हूँ। तुम्हारे कथन से ध्वनित होता है कि महामात्य ने षड्यंत्रपूर्वक चन्द्र को उनसे मिलने भेजा। इससे उन्हें क्या लाभ मिलने वाला था?''

मंदरिका काँपती हुई मौन खड़ी रही।

रावण ने अगला प्रश्न किया - ''महामात्य ने तुम्हें उनका परिचय नहीं दिया था?''

''नहीं सम्राट्!''

रावण अब सारथी की ओर घूमा। उसने प्रश्न किया - ''तुम्हें कुछ और स्मरण हुआ?''

''जी सम्राट्... सर्वनाश के उपरांत जब मैं पंचवटी से स्वामिनी को लेकर भाग रहा था तो पीछे अर्धचेतन अवस्था में उन्होंने कई बार एक नाम लिया था।''

''क्या?''

'''राम', वे कह रही थीं कि 'राम, मैं तेरा वध कर दूँगी।'''

'राम' यह नाम सुनकर रावण की भृकुटियों में बल पड़ गये। उसे क्षणांश भी नहीं लगा यह समझने में कि यह राम कौन हो सकता है। लगता भी क्यों, वह आखिर उसकी प्यारी पुत्री का पति था। उसके मस्तिष्क में बिजली सी कौंधी- 'यह राम यहाँ पंचवटी में क्या कर रहा है? यदि कथित व्यक्ति राम है तो दूसरा व्यक्ति निस्संदेह लक्ष्मण होगा। तो क्या उनके साथ की स्त्री सीता है?'

वह तत्काल मंदरिका की ओर घूमा और प्रश्न किया - ''महामात्य ने कहा था कि तुम उन्हें चन्द्र की प्रत्येक गतिविधि की सूचना भेजती हो?''

मंदरिका ने धीरे से सिर हिला दिया।

''तो चन्द्र के साथ घटी सम्पूर्ण घटना की सूचना भी भेजी होगी?''

मंदरिका को एकाएक समझ नहीं आया कि क्या उत्तर दे, वह हकलाने लगी - ''मैं... मैं... वह सम्राट्... वह...''

''स्पष्ट उत्तर दो।'' रावण का तीखा स्वर गूँजा।

मंदरिका ने किसी भाँति स्वयं को कुछ संयत किया और बोली - ''उसका अवकाश ही नहीं मिला सम्राट्!''

''क्यों? तुमने जो बताया, उसके अनुसार तो तुम एक दिन पूर्व गयी थीं चन्द्र के पास। अगले दिन तो चन्द्र तुम्हें ले नहीं गयी थी, उसकी अनुपस्थिति में तो तुम्हारे पास अवकाश ही अवकाश था।''

''वह सम्राट्...''

''स्पष्ट कहो, तुम दूसरे दिन भी उसके संज्ञान में आये बिना उसके पीछे गयी थीं।''

मंदरिका के पास स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था, वह हकलाते हुए ही बोली - ''ज... जी सम्राट्! मेरा जाना आवश्यक था, क्योंकि

मुझे महामात्य को सम्पूर्ण घटना की सूचना भेजनी थी। चूक होने पर मुझे दंड का भागी बनना पड़ता।''

''अभी तो तुमने मुझे इस विषय में कुछ नहीं बताया। क्या तुमने अपने सम्राट् से छल करने का प्रयास नहीं किया है।''

क्या उत्तर देती मंदरिका, उसे तो अपने जीवन की डोर किसी भी क्षण टूटती प्रतीत हो रही थी। वह सिर झुकाये खड़ी रही। उसके नेत्रों में पानी भर आया। अचानक रावण का फुसफुसाहट जैसा स्वर सुनकर वह चौंकी, सम्राट् कह रहे थे - ''सिर उठाकर सीधे मेरे नेत्रों में देखो।''

मंदरिका ने आदेश का पालन किया।

''पंचवटी में पहुँचने के उपरांत तुमने जो कुछ भी देखा, उसे स्मरण करो।'' मंदरिका को सम्राट् का वैसा ही फुसफुसाता हुआ स्वर पुनः सुनाई दिया।

वह अवश सी हो गयी थी। उसके विचार, बिना प्रयास के ही पंचवटी में पहुँच गये, जहाँ वह चन्द्र के पहुँचने के कुछ बाद पहुँची थी। चन्द्र के रथ को उसने बहुत दूर से ही देख लिया था, जबकि चन्द्र के सारथी का पूरा ध्यान क्योंकि वन की ओर था अतः वह उसे नहीं देख पाया था। तत्पश्चात् वह चन्द्र के रथ से पर्याप्त दूरी रखते हुए, पूरी सावधानी से वन में प्रविष्ट हुई थी। वहाँ घटी प्रत्येक घटना उसने देखी थी और अब उसकी आँखों से रावण भी उन्हें देख रहा था।

चन्द्र के चले जाने के उपरांत वह भी लौट आयी थी, अतः युद्ध और उसके परिणाम के विषय में रावण उससे कुछ भी नहीं जान पाया, परंतु जितना उसने जाना था उतने से ही अब उसे इसमें कोई शंका नहीं थी कि पंचवटी के मध्य में उपस्थिति स्त्री और कोई नहीं उसकी पुत्री सीता ही थी। इस सत्य का संज्ञान होते ही उसकी स्वयं की अवस्था अर्द्धविक्षिप्त जैसी हो रही थी। उसे अब ज्ञात था कि सम्पूर्ण प्रकरण में राम का दोष मात्र इतना ही था कि चन्द्र के हठ पकड़ लेने पर वह उसके साथ खिलवाड़ करने लगा था, परंतु उसके बाद जो कुछ हुआ उसमें राम, लक्ष्मण अथवा सीता का कोई दोष नहीं था। राम ने तो चन्द्र को बचाने का

पूरा प्रयास किया था, यदि उसने समय रहते उसे थाम न लिया होता तो सीता की कटारी उसके वक्ष को विदीर्ण कर चुकी होती। लक्ष्मण ने भी सामान्य सरकंडों से बने बाणों से ही प्रहार किया था और वह भी उसके शरीर को लक्ष्य कर नहीं किया था, वह तो चन्द्र को एकाएक राम द्वारा रोक लिये जाने से स्थिति ही ऐसी बन गयी थी कि वे बाण उसके कानों को स्पर्श करते हुए निकल गये थे। रावण पहले ही देख चुका था कि चन्द्र का कोई भी घाव गंभीर नहीं था। अब उसे यह भी ज्ञात हो चुका था कि सीता के अतिरिक्त अन्य किसी ने उसे आहत करने के उद्देश्य से वार किया भी नहीं था और सीता ने जो कुछ किया था, वह आत्मरक्षार्थ किया था। चन्द्र द्वारा स्वयं पर प्राणघातक प्रहार करते देख वह चुपचाप खड़ी तो नहीं रह सकती थी।

देर तक रावण इसी उहापोह में पड़ा रहा। वह मंदरिका की स्मृतियों से अपनी स्मृतियों को विलग अवश्य कर चुका था परंतु उसे अपने सम्मोहन से मुक्त करने का उसे ध्यान ही नहीं रहा। अचानक द्वार पर थपकी का स्वर सुनकर वह अपनी विचार-तंद्रा से बाहर आया।

''क्या है?'' उसने अत्यंत वितृष्णा से पूछा।

''सम्राट्'', द्वार के बाहर से ही प्रहरी का स्वर उभरा- ''महामात्य भेंट करना चाहते हैं।''

''अभी अवकाश नहीं है। मैंने उनसे कहा तो था कि कल राजसभा में भेंट होगी।''

''आवश्यक है सम्राट्!'' इस बार प्रहस्त का स्वर उभरा।''

''कल राजसभा में, और महामात्य के प्रस्थान के उपरांत भवन के प्रहरियों को चेतावनी दे दो कि उन्हें मेरे आदेश का उल्लंघन करने का उनका साहस कैसे हुआ! मैंने उनसे कहा था कि जब तक मैं अनुमति न दूँ, किसी को भी भवन के पास भी न फटकने दें। किसी को भी का अर्थ किसी को भी होता है।''

इतना कहकर रावण पुनः अपने सम्मुख उपस्थित मंदरिका और सारथी की ओर घूमा। उसे ध्यान आया कि मंदरिका अभी भी उसके सम्मोहन से आबद्ध है। उसने धीरे-धीरे उसे सम्मोहन से मुक्त किया। मंदरिका खोई-खोई सी अपने चारों ओर देखने लगी, उसे समझ नहीं आ रहा था कि अभी उसके साथ क्या हुआ था। सारथी भी चिंतित सा, भयभीत सा दोनों को मूर्खों की भाँति ताक रहा था।

''तुम दोनों को अभी कुछ समय तक राजकीय संरक्षण में रहना पड़ेगा।'' एकाएक रावण बोला, उसके स्वर में उद्विग्नता थी।

दोनों हड़बड़ा गये, उनकी समझ में ही नहीं आया कि क्या प्रतिक्रिया दें। उसी हड़बड़ाहट में सारथी के मुख से निकला - ''क... किंतु हमारा अपराध सम्राट्?''

''कोई अपराध नहीं है। मैं तुम्हें निरुद्ध नहीं कर रहा, परंतु यह, क्या नाम बताया था... मंदरिका, यह मंदरिका समझ रही होगी कि तुम दोनों की मुझसे यह एकान्त भेंट महामात्य को रुचिकर नहीं लगी होगी। उनके द्वारा तुम्हारा अहित हो सकता है, अतः तुम दोनों के लिये यही श्रेयस्कर होगा कि जब तक इस प्रकरण का पटाक्षेप नहीं हो जाता, तब तक राज्य के संरक्षण में ही निवास करो।''

सम्राट् के निर्णय का विरोध करने का साहस कौन करता, फिर कम से कम मंदरिका को तो उनकी बात भलीभाँति समझ भी आ रही थी। दोनों ने मौन भाव से सिर झुका लिया।

रावण ने द्वार की ओर मुख करके पुकारा - ''यहाँ आओ!''

पुकार सुनते ही प्रहरी आकर रावण के सम्मुख उपस्थित हो गया।

''आगामी आदेश तक ये दोनों पुस्तकालय के ही पश्चिमी कक्ष में रहेंगे। इनकी भोजनादि की व्यवस्था तुम स्वयं करोगे। इस बीच मेरे अतिरिक्त किसी भी अन्य को यहाँ प्रवेश की अनुमति नहीं रहेगी। प्रशासक को समझा देना कि सर्वत्र यह समाचार प्रसारित करना सुनिश्चित करे कि स्वामिनी की सुरक्षा करते हुए इन दोनों की मृत्यु हो गयी है।''

प्रहरी ने सहमति में सिर हिला दिया।

अब रावण मंदरिका और चन्द्र के सारथी से सम्बोधित हुआ-

"यदि प्राणों की सुरक्षा चाहते हो तो इस कक्ष के द्वार से बाहर आने का प्रयास मत करना। जीवन यापन की सारी व्यवस्था तुम्हें वहीं उपलब्ध हो जायेगी।"

***

चन्द्रनखा अभी भी कक्ष में उसी पर्यंक में पड़ी सो रही थी। उसके सामने खड़ा रावण अत्यंत आवेश में था। उसने चन्द्रनखा को अभी भी जगाने का प्रयास नहीं किया था। इसकी उसे आवश्यकता ही नहीं अनुभव हुई थी। उसे विश्वास था कि जो कुछ उसे मंदरिका के माध्यम से ज्ञात हो चुका है, चन्द्र के माध्यम से उससे अधिक कुछ भी ज्ञान होने वाला नहीं है। वास्तविकता तो यह थी कि वह इस समय सोते में ही चन्द्र का गला घोंट देना चाहता था। चन्द्र के साथ हुई दुर्घटना की सूचना मिलने से लेकर अब तक उसने जो संयम का ओढ़ना ओढ़ रखा था, अब वह उसे तार-तार कर फेंक देना चाहता था।

उसे तीन व्यक्तियों पर अपार क्रोध आ रहा था- चन्द्र पर, क्योंकि उसने सीता पर प्राणघातक प्रहार करने का प्रयास किया था। राम पर, कि वह क्यों अपने साथ सीता को भी वन में लेकर आया था और महामात्य प्रहस्त पर कि उन्होंने जानबूझ कर ऐसी स्थिति उत्पन्न की थी कि चन्द्र सीता की हत्या कर दे।

अब परिस्थितियाँ ऐसा रूप ले चुकी थीं कि उसे समय नहीं आ रहा था कि क्या करे। उसके अंतस में निरंतर आवेश की उत्ताल तरंगे उछल-उछल कर उसे आमंत्रित कर रही थीं कि त्याग दे यह दशानन का रूप और फिर से रावण बनकर त्रिलोक को उलट-पलट कर रख दे। प्रश्न मात्र चन्द्र और प्रहस्त का ही नहीं था, प्रश्न यह भी था कि खर-दूषण के विरुद्ध राम की सहायता करने तपस्वियों की कोई सेना आयी थी। इसका क्या अर्थ था? देवों से तो वह किसी भी प्रकार की दुष्टता की कल्पना कर सकता था, परंतु ऋषियों से उसका कौन सा विरोध था...

वे क्यों इस विवाद में पड़े? कब उन्होंने तपस्या त्याग कर सैन्यकर्म अपना लिया? वे न भी आते तो भी राम के सम्मुख खर-दूषण का सैन्य तिनके के समान ही था, फिर भी वे युद्ध करने आये... क्या जताना चाहते हैं वे? उसे आभास हो रहा था कि ऋषियों ने यह राम की सहायता के उद्देश्य से नहीं किया है, उसे तो किसी सहायता की आवश्यकता थी ही नहीं, ऋषियों ने युद्ध वेश धारण कर उसका उपहास करने का प्रयास किया है, उसे खुलकर चुनौती देने का प्रयास किया है।

किसी प्रकार उसने स्वयं को शांत किया और कुशासन पर बैठकर समाधि में उतरने का प्रयास करने लगा। अपनी उत्तेजित मनोदशा के चलते, आज वह तत्काल समाधिस्थ नहीं हो पाया, कुछ समय लगा... परंतु अंततः वह सफल हुआ।

समाधिस्थ होकर उसने राम के अंतःकरण में झाँकने का प्रयास किया। उसके विश्वास के विपरीत उसे असफलता हाथ लगी। राम के अंतःकरण में उसे धुंध के अतिरिक्त कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। उसकी आशंका गहरी होने लगी। राम अथवा लक्ष्मण इतने सिद्ध योगी कदापि नहीं हो सकते कि उसके लिये प्रतिरोध प्रस्तुत कर सकें, अवश्य ही यह कार्य अगस्त्य अथवा देवर्षि अथवा विष्णु का है। वह जानता था कि इन तीनों के हृदय में झाँकने का प्रयास करना व्यर्थ था। तब क्या करे... ?

अंततः उसने सीता के हृदय में झाँकने का निर्णय किया। परिणाम उसके लिये सुखद नहीं रहा, भयंकर आघात लगा उसके हृदय को। उसने पाया कि सीता भी अन्य आर्यों की भाँति ही उसके पराभव की आकांक्षी है। किंतु इसमें कोई विशेष बात नहीं थी, यह तो स्वाभाविक ही था। वह आर्यों के मध्य ही रही थी अतः उसकी सोच भी वही होनी थी जो शेष आर्यों की थी। अधिक आघात उसे इस बात से लगा कि राम और लक्ष्मण के दण्डक आगमन के पीछे देवों की कूटनीति थी और उनका उद्देश्य रक्षों का नाश करना था। योजना क्या थी देवों की, इस विषय में सीता की स्मृतियों में कोई सूचना नहीं थी, परंतु जो भी सूचना थी, वही रावण को झकझोरने के लिये पर्याप्त थी।

समाधि ने उसे कोई हल देने के स्थान पर और उलझा दिया था, और व्यथित कर दिया था। एक बार फिर उसके हृदय में त्रिलोक को मथ डालने की भावना बलवती होने लगी थी। बड़े प्रयास से उसने अपनी इस भावना को नियंत्रित किया, परंतु यह प्रश्न तो अब भी उसके सम्मुख मुँह बाये खड़ा था कि उसका क्या कर्तव्य है। वह किसी के साथ इस विषय में परामर्श करना चाहता था, परंतु इस हेतु कोई सत्पात्र उसे नहीं दिखाई पड़ रहा था। जिसके विषय में भी सोचता था, उसी की गतिविधियाँ उसे संदिग्ध दिखाई पड़ रही थी।

इसी उहापोह में उसे कितना समय व्यतीत हो गया, इसका उसे आभास तब हुआ जब वातायन से सूर्योदय से पूर्व की लालिमा दिखाई पड़ने लगी।

''ओह!'' एक हताश सी ध्वनि उसके मुख से निकल गयी। परंतु तत्काल उसके नेत्रों में एक आशा की किरण जाग उठी। उसे अपने पिता विश्रवा का स्मरण हो आया था। उसका मन कह रहा था - 'निस्संदेह, पिता ही इस समय मुझे उपयुक्त परामर्श दे सकते हैं।'

26. पिता की शरण में

"प्रणाम पिताश्री!" विश्रवा से सम्पर्क स्थापित होने में उसे कोई समय नहीं लगा। सम्पर्क स्थापित होते ही उसने आन्तरिक श्रद्धा से उनका अभिवादन किया।

"यशस्वी भव!" विश्रवा की ओर से उत्तर आया।

"आप कुशल से तो हैं पिताश्री?" रावण ने औपचारिकता का निर्वाह किया।

उत्तर में विश्रवा हँसते हुए बोले - "वीतरागी तो सदैव कुशल से ही होते हैं पुत्र, अपनी कहो। सुदीर्घ अवधि के उपरांत स्मरण हुआ पिता का!"

"कुशलता से ही हूँ पिताश्री!"

"कुशलता होती तो तुम्हें इतना अवकाश कहाँ मिलता कि एकांत में पड़े इस निरासक्त वृद्ध को स्मरण करते!" कहते हुए विश्रवा पुनः हँसे- "अतः अनावश्यक औपचारिकता को त्यागकर अपना स्पष्ट मंतव्य व्यक्त करो।"

"पिताश्री, मैं अनिर्णय की स्थिति में हूँ। कृपापूर्वक मेरा मार्गदर्शन करें।"

"अवश्य, परंतु क्या रावण मेरा परामर्श स्वीकार करेगा?"

"उपहास कर रहे हैं? रावण की मृत्यु तो तभी हो गयी थी जब इन्द्र की पराजय के उपरांत आपने मुझे पौलस्त्य को जाग्रत करने का निर्देश दिया था।"

"काश, ऐसा हो सकता!" विश्रवा का हताश सा स्वर उभरा- "हम कितना भी चाह लें, परंतु होता तो वही है जो नियति चाहती है। नियति का निर्णय कदाचित यही है कि अब पौलस्त्य विराम लें। वैसे भी अब उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो चुका है, वह जगत को ज्ञान का इतना उपहार दे चुका है कि युगों तक जगत उसका ऋणी रहेगा।"

"आप कहना क्या चाहते हैं पिताश्री?" रावण ने न समझने वाले भाव से प्रश्न किया।

"तुम स्वयं देखो, जबसे यह नवीन घटनाचक्र आरम्भ हुआ है क्या तुम्हारी प्रतिक्रियायें, पौलस्त्य दशानन की रही हैं? क्या आवेश तुम्हें आन्दोलित नहीं कर रहा? क्या मोह तुम्हें व्यथित नहीं कर रहा? क्या तुम्हारे मन में बारम्बार त्रिलोक को भस्म कर देने की आकांक्षा जाग्रत नहीं हो रही?"

रावण से उत्तर देते नहीं बना। पिता सच ही तो कह रहे थे। उसे मौन देखकर विश्रवा पुनः बोले - "फिर जब नेपथ्य से स्वयं श्रीविष्णु ने भविष्य के सम्पूर्ण सूत्र थाम लिये हों, जब समस्त महर्षि और समस्त देव एक रावण को परास्त करने हेतु उद्योगरत हों... तब पुलस्त्य के जाग्रत रहने का प्रयोजन ही क्या शेष रहता है। पुलस्त्य के पौत्र का कार्य तो ज्ञान और कला की आराधना थी। अब तो सुमाली के दौहित्र को ही पुनः जाग्रत होना होगा।"

"क्या सच में विष्णु समेत समस्त देव और ऋषिगण मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं?"

"तुमने राम के मन में झाँकने का प्रयास किया था न?"

"जी, किया था।"

"क्या उपलब्धि हुई?"

"शून्य, वहाँ मात्र धुन्ध का ही साम्राज्य दृष्टिगत हुआ।"

"तब भी नहीं समझे?"

"अनुमान लगाया था।"

"सत्य था तुम्हारा अनुमान। राम की स्मृतियाँ, राम की चेतना... सब श्रीविष्णु द्वारा संरक्षित है। राम की ही नहीं, लक्ष्मण की भी। श्रीविष्णु ने कूटनीति के अतिरिक्त अपनी लगभग समस्त शक्तियाँ राम में प्रतिरोपित कर दी हैं। राम अब मात्र सप्तम विष्णु उपाधिधारी ही नहीं है, वह विष्णु का प्रत्यक्ष प्रतिरूप है। मर्यादित प्रतिरूप!"

"तब, मेरा क्या कर्तव्य है?"

"तुम्हारा कर्तव्य तो नियति ने स्वयं निर्धारित कर दिया है, तुम्हें युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय दिखाई देता है क्या?"

"परंतु पिताश्री, मैं सीता को कष्ट नहीं देना चाहता। वह मेरी पुत्री है।"

"तुमने यह कैसे सोच लिया कि तुम्हारा कुछ चाहना अथवा न चाहना नियति के निर्णय को प्रभावित कर सकता है? नियति के निर्णय में हस्तक्षेप करने की सामर्थ्य किसी में नहीं होती। दशानन में भी नहीं है, रावण में भी नहीं।"

"मेरा तात्पर्य यह नहीं था पिताश्री!"

"मुझे ज्ञात है। मुझे ज्ञात है कि इतने वर्षों के उपरांत अपनी परित्यक्ता पुत्री को अपने इतने निकट और इतनी विषम परिस्थितियों में पाकर तुम्हारा हृदय विगलित हो रहा है। तुम्हें राम पर क्रोध भी आ रहा है और तुम उसका अहित भी नहीं करना चाहते।"

"सत्य में, मेरा हृदय इसी उहापोह में फँसा है। वनवास का आदेश राम को हुआ था, उसे क्या आवश्यकता थी सीता को भी अपने साथ लाने की! उससे भी अधिक यह कि आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त में क्या वनों का अकाल पड़ गया है जो उसे इतनी दूर दण्डक में आना पड़ा! वह अपनी वनवास की अवधि वहीं कहीं भी तो व्यतीत कर सकता था। न वह यहाँ आता और न प्रहस्त चन्द्रनखा का प्रयोग कर, उसके और मेरे मध्य संघर्ष की यह अयाचित परिस्थिति उत्पन्न कर पाता।"

"पुत्र, श्रीविष्णु के समान परिस्थितियों को अविचलित भाव से स्वीकार करना सीखो। जब नियति तुम्हारे अनुकूल थी, तब वे संघर्ष से विरत रहे। सत्य तो यही है कि स्वयं नियति के उपरांत, वे सर्वश्रेष्ठ हैं; फिर भी जब तक दशानन जाग्रत रहा, पौलस्त्य जाग्रत रहा, उन्होंने हृदय से उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की। परंतु इस अवधि में भी, भले ही जगत को प्रतीत हो रहा था कि वे शांत बैठे अनुकूल समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, वे शांत नहीं थे। वे सतत् अपनी भावी रणनीति को क्रियान्वित कर रहे थे। जैसे ही अनुकूल समय आया, उन्होंने ऐसी

परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी कि दशानन को नेपथ्य में धकेलकर रावण को प्रत्यक्ष आना ही पड़े। वे दशानन का सम्मान करते हैं, परंतु सुमाली के दौहित्र रावण का अंत करना उनका प्रथम लक्ष्य है।''

''इस संघर्ष को किसी भी भाँति टाला नहीं जा सकता पिताश्री?''

''नहीं पुत्र, नियति का यही निर्णय है। पुत्री-मोह के वशीभूत हो, यदि तुम लहू का घूँट पीकर लंका की अवमानना की उपेक्षा करना भी चाहोगे तो तुम्हारे मातुलगण करने नहीं देंगे। यदि तुम उन सबके सम्मिलित आक्रोश को बलात दमित भी कर दोगे तो श्रीविष्णु और देवर्षि कोई अन्य विषय उभार देंगे, जिसकी उपेक्षा कर पाना तुम्हारे लिये संभव नहीं होगा। सत्य यही है कि नियति को पढ़ने में इन दोनों से अधिक समर्थ कोई नहीं है, और वे दोनों अभिन्न हैं। अतः उनकी सम्मिलित शक्ति को पराजित कर पाना असंभव है। तुम्हें स्मरण होगा कि बाल्यकाल में जब तुमने पितामह ब्रह्मा से अमर होने का वर माँगा था, तब उन्होंने इसे अपनी सामर्थ्य से बाहर बताया था। उस समय तुमने पितामह से यही तो कामना की थी कि देव, दानव, दैत्य, यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि कोई भी तुम्हारा वध न कर पायें... मनुष्यों को तुमने उपेक्षणीय समझा था। तुमने कितनी बड़ी मूर्खता की थी, यह तो तुम्हें तभी स्पष्ट हो गया होगा, जब बालि और अर्जुन ने तुम्हें परास्त किया था। तब नियति तुम्हारे अनुकूल थी अतः इन दोनों में से किसी ने भी तुम्हारा वध करने का प्रयास नहीं किया। परंतु अब नियति तुम्हारे प्रतिकूल है, एक बार पुनः एक मनुष्य तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी है और पुत्री के प्रति मोह, साथ ही साथ अपराध-बोध से ग्रस्त तुम उस प्रतिद्वन्द्वी की मृत्यु के आकांक्षी नहीं हो। अब तुम्हारे रक्षणार्थ पितामह भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते।''

''परंतु पिताश्री, देवर्षि तो मुझसे स्नेह करते हैं, मुझे सम्मान भी देते हैं। मुझे दशानन की उपाधि से उन्होंने ही विभूषित किया था? मैं भी उन्हें आपसे कम सम्मान नहीं देता। तो वे मेरे पराभव के आकांक्षी क्यों हैं?''

"वे तुमसे द्वेष नहीं करते। वे तो सबसे स्नेह करते हैं, सभी का हित चाहते हैं। परंतु वे आर्य-देव संस्कृति के अभिभावक समान हैं और तुम रक्ष संस्कृति के संरक्षक हो। यही एकमात्र कारण है कि वे तुम्हारा सम्मान करते हुए भी तुम्हारे पराभव के आकांक्षी हैं।"

"यह उनका मेरे प्रति अन्याय है।"

"नहीं वत्स, यह उनकी आस्था है। स्वयं सर्वशक्तिमान ने, जिसका रहस्य कोई नहीं जानता, यह आस्था उनकी चेतना में रोपित की है।"

"परंतु मैं भी तो आर्य ही हूँ पिताश्री! मैंने आर्य संस्कृति में व्याप्त तर्कहीन आडम्बरों का विरोध किया है, आर्य संस्कारों का नहीं। उनका तो मैं स्वयं अनुपालन करता हूँ, हृदय से उनका सम्मान करता हूँ।"

"परंतु दैववशात् तुम रक्ष-संस्कृति के संरक्षक भी तो हो, जिसमें वर्चस्व सुमाली के वंशजों का है।"

"इसके लिये आप दोषी नहीं हैं क्या? आपने हमें अपने संरक्षण से विलग क्यों किया? हमारी अबोधावस्था में ही जब माता हमें एक-एक कर मातामह के संरक्षण में सौंपती रहीं, तब आपने उनका विरोध क्यों नहीं किया?"

"पुत्र", विश्रवा मुस्कुरा उठे- "मैंने शब्द 'दैववशात्' का भी प्रयोग किया है। इसका तात्पर्य तुम समझ सकते हो। इसमें तुम्हारी अपनी इच्छा का कोई महत्व नहीं था, तुम्हारे लिये यह दायित्व तो सर्वशक्तिमान अथवा नियति, जो भी कहना चाहो कह सकते हो, ने पूर्व में ही निर्धारित कर रखा था। तुम चाहकर भी स्वयं को इस दायित्व से मुक्त नहीं कर सकते थे।" कहकर विश्रवा ने एक पल का विराम लिया और फिर आगे जोड़ा- "जब तक तुम्हारी इस काया में प्राण हैं, तुम इससे मुक्त हो भी नहीं सकते। मैं भी, चाहकर भी, इसमें तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता।"

"अब उसकी कोई उपादेयता भी नहीं है पिताश्री! जब मेरी पुत्री ही..." रावण ने हताशा से सिर झटकते हुए अपना वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

कुछ पल मौन रहा।

मौन विश्रवा ने ही तोड़ा - "तुम सीता की स्मृतियों में थोड़ी और गहराई तक उतरोगे तो जानोगे कि राम दण्डक में अकारण नहीं आया है। उसे मात्र वनवास का नहीं, स्पष्ट रूप से दण्डक में निवास का आदेश हुआ था। इस आदेश के पीछे नियति का ही खेल था, नियति के विधान से, देवर्षि की प्रेरणा से वशिष्ठ ने कैकेयी को ऐसा वर माँगने हेतु प्रेरित किया था।"

"परंतु क्यों पिताश्री?"

"क्योंकि राम का जन्म ही रावण के वध के लिये हुआ है। उसे इस हेतु समर्थ बनाने हेतु श्रीविष्णु ने अपनी शक्तियाँ उसमें प्रतिरोपित की हैं।"

रावण चौंक पड़ा। उसने ऐसे किसी रहस्योद्घाटन की आशा नहीं की थी। उसने नेत्र विस्फारित हो गये। हठात् उसके मुख से चीत्कार सी निकली - "क्या???"

"हाँ पुत्र! यही सत्य है।"

"और आप यह सब जानते थे?"

"यदि प्रयास करते तो तुम भी जान सकते थे।"

"तो आपने मुझे सचेत क्यों नहीं किया?" पिता के कथन को अनसुना करते हुए रावण ने आरोप लगाते स्वर में कहा।

"भयभीत हो?"

"नहीं, परंतु फिर भी!"

"क्या लाभ होता, नियति का लेख मिटाया तो नहीं जा सकता था। फिर यदि पूर्व में ही तुम्हें इस सत्य का संज्ञान हो गया होता, तो कदाचित पौलस्त्य तभी विश्राम ले लेता और दशानन के रूप में पौलस्त्य ने विश्व को ज्ञान और कला की जो अमूल्य धरोहर प्रदान की है वह नहीं प्रदान कर पाता।"

"ओह! अर्थात आप भी स्वार्थी निकले!" रावण विषाद भरे स्वर में बोला।

''पुत्र, स्वार्थ से रहित तो इस सृष्टि में कुछ भी नहीं है। श्लाघ्य यह है कि हमारा स्वार्थ निज कल्याण नहीं, मानवता का कल्याण होना चाहिए। यही मेरा भी स्वार्थ था। मैं मानवता को दशानन द्वारा दिये जाने वाले दाय से वंचित रखना कैसे चाह सकता था!''

फिर कुछ पल मौन रहा, फिर रावण धीरे से बोला-''अब नियति जो भी चाहे मुझे स्वीकार है। मुझे यही संतोष है कि मेरी वेदवती की साध पूरी हुई। उसने अपनी पुत्री के लिये विष्णु की आकांक्षा की थी, तो उसे प्रकारान्तर से विष्णु प्राप्त भी हुआ। आपने ही तो अभी कहा कि राम विष्णु का प्रतिरूप है।''

''मैं पुनः यही कहता हूँ।''

''वैसे भी मेरे आधे प्राण तो वेदवती अपने साथ ही ले गयी थी। उसके बाद रावण में बचा ही क्या था, प्रतिहिंसा में जलता हुआ एक विक्षिप्त। अब यह तो अपेक्षा कर सकता हूँ कि मैं स्वर्ग में अपनी वेदवती से पुनः भेंट कर पाऊँगा।'' कहकर रावण कुछ पल के लिये रुका। मौन विश्रवा उसके आगे बोलने की प्रतीक्षा करते रहे। कुछ पल बाद रावण पुनः बोला- ''बस एक साध रह गयी, मैं अपनी पुत्री को दुलार नहीं पाया। उसको नित्यप्रति खिलता हुआ नहीं देख पाया, उसके लिये कुछ कर नहीं पाया। विधाता ने यही सबसे बड़ा छल किया मेरे साथ।''

''तुम्हारी पुत्री को हृदय की गहराइयों से प्यार करने वाला पति मिला है, एक नारी के लिये इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है।'' पिता ने शब्दों के लेप से पुत्र के हृदय की पीड़ा को कम करने का प्रयास किया।

उत्तर में रावण एक दीर्घ निःश्वास लेकर बोला - ''हाँ, इसी सान्त्वना के साथ हृदय को समझाने का प्रयास करूँगा। संभव है, विधाता इस जन्म की साध अगले जन्म में पूरी करें।''

विश्रवा कुछ नहीं बोले।

रावण भी कुछ पल और मौन रहा, फिर अचानक हाथ जोड़ते हुए बोला - ''तो विदा दीजिए पिताश्री! प्रणाम निवेदित करता हूँ।''

न जाने विश्रवा को क्या सूझा कि रावण को विदा देने के स्थान पर वे बोले - ''एक बार प्रहस्त की स्मृतियों में फिर से झाँककर देखना, अभी की भी और तब की भी जब सुमाली ने तुम्हें वेदवती की पुत्री का परित्याग करने हेतु विवश किया था।''

''उससे भी क्या लाभ होगा? जब नियति ने मेरे पराभव का स्वांग रच ही लिया है तो अब और कुछ जानने को शेष ही कहाँ रह जाता है!''

''कुछ तो उपलब्धि होगी ही!'' कहकर विश्रवा पुनः मुस्कुराये- ''और इस प्रकार हताश होना न तो दशानन को शोभा देता है और न ही रावण को। दशानन को सृष्टि के अधिकतम संभव रहस्यों से भिज्ञ होना ही चाहिए और रावण की जिजीविषा उसकी अंतिम श्वाँस तक समाप्त नहीं होनी चाहिए। इस अंतिम भेंट में यही मेरा अपने पुत्र को उपदेश है। मुझे गर्व है कि भले ही श्रीविष्णु की कूटनीति मेरे पुत्र को परास्त करने में सफल होगी, क्योंकि यही नियति का निर्णय है, परंतु वे भी उसे महानतम तपस्वियों की अंतिम कामना मोक्ष की प्राप्ति से वंचित नहीं कर पायेंगे। राम, जिसे श्रीविष्णु ने अपनी लगभग समस्त शक्तियों से विभूषित कर दिया है, उसे भी अन्ततः आकर मेरे पुत्र से दीक्षा लेनी ही पड़ेगी। स्मरण रखो पुत्र, पंचतत्वों से निर्मित इस नश्वर काया को एक न एक दिन नष्ट होना ही पड़ता है, किसी की कुछ शीघ्र नष्ट हो जाती है, तो किसी की अपेक्षाकृत विलम्ब से; परंतु अविनाशी कोई नहीं होता। देवों ने अमृतपान किया है, उन्हें अमर कहते हैं परंतु उन्हें भी एक न एक दिन नष्ट होना ही पड़ता है। अन्तर यदि पड़ता है तो इस सत्य से पड़ता है कि यशःकाय रूप में कौन कितनी दीर्घ अवधि तक जीवित रहता है। मेरा आशीष है कि इस नश्वर काया के नष्ट होने के उपरांत तुम यशःकाय होकर युग-युगान्तर तक जीवित रहोगे। मुझे कोई स्मरण नहीं रखेगा, तुम्हारे पितामह को कोई स्मरण नहीं रखेगा परंतु तुम युग-युगान्तर तक स्मरण किये जाओगे।''

''प्रणाम पिताश्री!''

''यशस्वी भवः पुत्र! समग्र मानव जाति को तुम पर सदैव गर्व रहेगा।''

27. राजसभा

राजसभा में पहुँचने में रावण को पर्याप्त विलम्ब हो गया।

विश्रवा से वार्ता कर जब वह समाधि से बाहर आया, तो उसे पिता का अंतिम निर्देश स्मरण था। एक बार तो उसने सोचा कि अब क्या लाभ, परंतु तत्काल ही उसके मन ने विरोध किया- 'पिता के निर्देश की उपेक्षा नहीं की जा सकती।' वह पुनः समाधि में चला गया। इस बार समाधि से बाहर आने पर उसके मुख पर एक शांत दृढ़ता थी, जैसे उसने कोई बड़ा निर्णय कर लिया हो।

उसने समय की ओर ध्यान दिया तो पाया कि राजसभा जाने के लिये बहुत विलम्ब हो गया है। फिर भी उसने जाने का ही निश्चय किया। वह नित्यक्रियाओं से निवृत्त हुआ और बिना जलपान के ही राजसभा के लिये निकल पड़ा।

***

उस दिन सभाकक्ष में ही नहीं, सम्पूर्ण लंका में आवेश मिश्रित अतिरिक्त हलचल थी। सभाभवन में तो आज विकट भीड़ थी। स्वाभाविक भी था, रात्रि में ही यह समाचार दावानल की भाँति समूची लंका में फैल गया था कि किसी ने सम्राट् की प्रिय भगिनी, दण्डकारण्य की साम्राज्ञी, चन्द्रनखा के नाक-कान काट लिये हैं और खर-दूषण समेत दण्डकारण्य में स्थित लंका के समस्त सैन्य का संहार कर दिया है।

'क्यों?'

इसका उत्तर किसी के पास नहीं था। जानने को उत्सुक सब थे, परंतु जिज्ञासा शान्त करने वाला कोई नहीं था। महामात्य बहुत पहले ही उद्घोषणा कर चुके थे कि शीघ्र ही सम्राट आकर इस विषय में अपने निर्णय की घोषणा करेंगे।

उपस्थित सभी के अंतस में क्रोध का सागर हिलोरें ले रहा था कि ऐसा दुस्साहस किसने किया है? सभी को विश्वास था कि सभा में सम्राट् उस दुस्साहसी को भयानक मृत्यु देने की घोषणा करेंगे।

कहीं-कहीं यह सम्भावना भी प्रकट की जा रही थी कि इस सब के पीछे गुपचुप रूप से किष्किंधा, प्रकारान्तर से बालि का हाथ हो सकता है। बहुतों को इस संभावना पर विश्वास भी हो रहा था क्योंकि यह सूचना भी थी कि उन दुस्साहसी युवकों की सहायता के लिये पंचवटी में तपस्वियों की एक विशाल सेना आ गयी थी जिसने लंका की दंडकारण्य स्थित सेना का संहार किया था। बालि को दोष देने वालों का तर्क था कि ऐसा साहस बालि के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। निरीह तपस्वी तो कदापि नहीं। तपस्वियों के वेश में किष्किंधा के वानर ही होंगे। इन लोगों का यही मानना था कि किया-धरा तो सब बालि का ही है, वे दोनों युवक तो मात्र उसकी कूटनीति की पटकथा के महत्वहीन पात्र भर हैं और अकारण यशलाभ कर रहे हैं।

बहुतों को इस समाचार पर विश्वास नहीं हो रहा था। उनका तर्क था कि बालि योद्धा है, वह पूर्व में भी त्रिलोकेश्वर दशानन को परास्त कर चुका है। वह छिपकर वार कदापि नहीं कर सकता। उससे उसे कोई लाभ नहीं होने वाला। हो न हो इस सबके पीछे देवों की ही कोई कूटनीति है।

और भी कई मत थे परंतु इस विषय में कोई मतभेद नहीं था कि उन दोनों दुस्साहसी युवकों को उनके किये का भयानक दण्ड अवश्य मिलना चाहिए ताकि भविष्य में कोई लंका के विरुद्ध खड़ा होने का साहस न कर सके।

विगत दिवस जो कुछ भी घटा था, प्रहस्त उससे वज्रमुष्टि को अवगत करा चुका था। उसने अपनी यह आशंका भी वज्रमुष्टि के सम्मुख व्यक्त कर दी थी कि कदाचित रावण को उसकी भूमिका पर संदेह हो गया है। रावण के आगमन की व्यग्रता से प्रतीक्षा करते हुए दोनों फुसफुसाते हुए निरंतर भविष्य की रणनीति पर चर्चा करते रहे थे। रावण को उनकी भूमिका पर सन्देह था फिर भी उन्हें विश्वास

था कि रावण विशाल सेना के साथ उन्हें राम पर आक्रमण का आदेश अवश्य देगा और तब वे अकस्मात आक्रमण कर, युद्ध के मध्य सीता को समाप्त करने का कोई न कोई अवसर बना ही लेंगे। राम के पास कोई दुर्ग तो है नहीं जिसमें वह सीता को सुरक्षित रख सके, कुटिया में कहाँ से कोई बाण आकर कब सीता को बेध गया कौन जान सकेगा! इस सब में वे बस इतनी सतर्कता रखना चाहते थे कि उनके किसी भी आचरण से रावण को यह सन्देह न होने पाये कि वे सीता का अहित चाहते हैं। यदि ऐसा हो गया तो उसे समय नहीं लगेगा उनकी स्मृतियों में झाँककर सारा सत्य जान लेने में। वे मन ही मन मना रहे थे कि रावण उनकी स्मृतियों में झाँकने का प्रयास न करे।

सम्राट् को आने में हो रहे विलम्ब से उपस्थित भीड़ की व्यग्रता निरन्तर बढ़ती ही जा रही थी। प्रतीक्षा सबको असह्य हो रही थी, परंतु सम्राट् के प्रति कोई टिप्पणी करने का साहस किसी का नहीं था। फिर भी व्यग्र जनसमूह का भीषण कोलाहल तो सर्वत्र बिखरा ही हुआ था। रक्षक भी इस कोलाहल को बढ़ा ही रहे थे। वे स्वयं परस्पर इसी समस्या पर तर्क-वितर्क में उलझे हुए थे, जनसमूह को शांत कौन करवाता!

***

तभी सम्राट् के रथ ने प्रांगण में प्रवेश किया। तत्काल कोलाहल शांत हो गया। जैसे ही रावण अपने सिंहासन पर आसीन हुआ सभा की कार्यवाही आरम्भ हो गयी। प्रथागत औपचारिकताओं के उपरांत महामात्य प्रहस्त ने पिछले कुछ दिनों में घटित सम्पूर्ण घटनाक्रम सभा के समक्ष रखा और सम्राट् से अविलम्ब पंचवटी पर आक्रमण की अनुमति चाही। सारी सभा ने आक्रोश भरे कोलाहल से महामात्य की माँग के प्रति सहमति व्यक्त की।

उत्तर में रावण मौन रहा परंतु अनायास ही उसका सिर नकारात्मक रूप से हिलने लगा।

सम्राट् की प्रतिक्रिया देखकर भीड़ का कोलाहल और तीव्र हो गया-

''अनुमति दें सम्राट्! अनुमति दें सम्राट्! ऐसा दुस्साहस करने वालों का दण्ड भयानक मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।''

रावण ने हाथ उठाकर भीड़ को शांत होने का संकेत किया।

कोलाहल मद्धम पड़ गया।

रावण कुछ बोलता उससे पूर्व ही विभीषण उठ खड़ा हुआ। उसने हाथ जोड़कर बोलने की अनुमति माँगी जो रावण ने सहज रूप से सिर के संकेत से प्रदान कर दी।

सभा में फुसफुसाहट आरम्भ हो गयी। लंका में एक न्यायप्रिय, सज्जन और योग्य पुरुष के रूप में विभीषण का सम्मान था। सम्राट् के भाई के नाते भी उसका सम्मान था परंतु लोग उसे देवों का पक्षधर मानते थे जो किसी भी लंकावासी को सह्य नहीं था। विभीषण के खड़े होने से उन लोगों के विश्वास को बल मिला जो यह मान रहे थे कि इस सबके पीछे निश्चय ही देवों की कोई कूटनीति है।

''सम्राट्!'' विभीषण ने बोलना आरम्भ किया- ''कोई भी निर्णय लेने से पूर्व यह विचारणीय है कि उपरोक्त युवकों ने यह दुस्साहस दुराग्रहवश किया अथवा उन्हें इसके लिये विवश कर दिया गया। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की गयी कि उनके पास अन्य कोई मार्ग ही शेष नहीं रहा। जितनी मुझे सूचना है उसके अनुसार तो दूसरी संभावना ही सत्य है। संभव है कि जितना महामात्य ने अभी सभा को बताया, सम्राट् के पास उसके अतिरिक्त और भी कोई महत्वपूर्ण सूचना हो इस विषय में।''

विभीषण का तर्क सुनकर रावण के मुख पर मुस्कान आना ही चाहती थी कि वह सँभल गया। वह पूर्ववत गम्भीरता धारण किये विभीषण को सुनता रहा।

विभीषण जितनी देर बोला, सभा में फुसफुसाहट चलती रही। उसके बैठते ही सभा में सन्नाटा छा गया, सभी की उत्सुक टकटकी सम्राट् की ओर लग गयी।

''विभीषण के तर्क विचारणीय हैं'', विभीषण के बैठते ही रावण बोला- ''कोई पुरुष यदि अपनी पत्नी के प्रति निष्ठावान है तो उसे परस्त्री के साथ संबंध

बनाने हेतु विवश करना कदापि उचित नहीं ठहराया जा सकता। चन्द्रनखा ने यही किया है। वह सम्राट् की भगिनी है, दण्डकारण्य की साम्राज्ञी है परंतु इससे सत्य तो परिवर्तित नहीं हो जाता।''

''परंतु सम्राट्, यह तो समर्थ पुरुषों में प्रचलित सामान्य प्रथा है। इसे तो उनके पुरुषार्थ का द्योतक माना जाता है।'' वज्रमुष्टि ने बीच में टोका।

''प्रथा होने से ही कोई कार्य नैतिक नहीं हो जाता सेनापति! मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने भी एकाधिक विवाह किये हैं, अपनी पत्नियों के अतिरिक्त भी अनेक स्त्रियों से मेरे संबंध रहे हैं परंतु इससे परस्त्रीगमन नैतिक तो नहीं हो जाता।''

रावण के कथन से सभा में उपस्थित जनसमूह की उद्विग्नता बढ़ने लगी। लोग अवाक् थे। परंतु प्रहस्त से बोले बिना न रहा गया। उसने पुनः टोका - ''परंतु उन्होंने लंका की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाया है, यदि उन्हें समुचित दण्ड दिये बिना छोड़ दिया गया तो अन्यों का भी साहस बढ़ेगा।''

''मैं कब कह रहा हूँ कि उन्हें दण्डित नहीं किया जाना चाहिए!''

''परंतु सम्राट् तो उनकी पक्षधरता करते प्रतीत हो रहे हैं।''

''मैं मात्र न्याय की पक्षधरता कर रहा हूँ। महामात्य ने जो कुछ सभा को बताया वह अर्द्धसत्य है। यथार्थ तो यह है कि इन्हें अभी पूरे सत्य का स्वयं ही ज्ञान नहीं है। यथार्थ आप सबको मैं बताता हूँ'', कहकर रावण ने एक दृष्टि पूरी सभा पर फिराई, फिर आगे बोला - ''जब उन दोनों युवकों ने चन्द्रनखा का विवाह का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तो चन्द्र ने राम की पत्नी पर अपनी कृपाण से आक्रमण कर दिया। राम की पत्नी सीता भी कोई साधारण युवती नहीं है, उसने अपनी किशोरावस्था में सहज ही प्रभु शिव का विशिष्ट धनुष, जिसे त्रिलोक के महान योद्धा हिला तक नहीं पाये थे, सहज ही उठा लिया था। वह स्वयं प्रशिक्षित योद्धा है। चन्द्रनखा के आक्रमण के प्रत्युत्तर में उसने भी प्रत्याक्रमण कर दिया। प्रत्येक व्यक्ति को आत्मरक्षार्थ प्रत्याक्रमण का अधिकार

होता है। ...यदि राम ने हस्तक्षेप न किया होता तो संभव था कि सीता की कटार चन्द्र की नासिका को छोटा सा आघात देने के स्थान पर उसका वक्ष बेध गयी होती। चन्द्र अपनी आयु और अपनी विलासी प्रवृत्ति के कारण अब कितनी चपल रह गयी है सभी को ज्ञात है, उसके विपरीत सीता, मैंने पूर्व में ही बताया, प्रशिक्षित और अनुशासित योद्धा है। चन्द्र को तो राम का कृतज्ञ होना चाहिए था कि उसके कारण उसकी प्राणरक्षा हो गयी। ...परंतु हुआ इसके विपरीत, चन्द्र ने खर, दूषण और जनस्थान के सम्पूर्ण सैन्य के साथ जाकर उन पर आक्रमण कर दिया। वह तो अर्द्धविक्षिप्त है ही किंतु खर को यह कैसे विस्मृत हो गया कि राम और लक्ष्मण, मात्र इन दो ने ही ताड़का के साम्राज्य का विध्वंस किया था। उसे कैसे विस्मृत हो गया कि प्रभु शिव के जिस धनुष को त्रिलोक में मात्र तीन अथवा चार व्यक्ति उठा सकते थे, राम ने उसे उठाया ही नहीं उसे भंग भी कर स्वयंवर में सीता का वरण किया था। अब मुझे यह भी ज्ञात है कि राम दिव्यास्त्रों के ज्ञान में महर्षि परशुराम और इन्द्रजित मेघनाद के समकक्ष है... यही यथार्थ है कि इस एकमात्र क्षेत्र में वह मुझसे भी श्रेष्ठ है। ऐसे सामर्थ्यवान योद्धा पर मूर्खतापूर्ण ढंग से आक्रमण करने का फल खर और दूषण को भोगना पड़ा। उनके साथ चौदह सहस्त्र सैनिकों के प्राण अकारण चले गये।''

रावण के इस वक्तव्य से विभीषण के अतिरिक्त सभी असंतुष्ट थे किंतु सम्राट् का विरोध करने का साहस कौन करता! मेघनाद सदैव की भाँति शांत था, उसके हृदय के भावों का अनुमान करना संभव नहीं था।

विरोध तो नहीं, किंतु कुछ बोलने का साहस पुनः वज्रमुष्टि ने किया - ''परंतु सम्राट्, यह लंका की अस्मिता का प्रश्न है। जिस कारण भी किया, राम ने लंका के सम्राट् की भगिनी और दण्डकारण्य की साम्राज्ञी चन्द्रनखा का अपमान किया है... इसके अतिरिक्त उसने सम्राट् के संबंधी खर और दण्डकारण्य के सेनापति दूषण सहित हमारे चौदह सहस्त्र सैनिकों का वध किया है। उसे समुचित दण्ड तो देना ही होगा। वह लंका का अपराधी है और यह सम्राट् का दायित्व है कि वे लंका के अपराधी के लिये दण्ड की घोषणा करें और यह दण्ड प्राण-दण्ड

से न्यून किसी भी भाँति नहीं हो सकता। राम ने खर-दूषण का वध कर लंका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की है, लंका अब उसके विरुद्ध युद्ध से विरत नहीं रह सकता।''

''सेनापति, जो मूर्खता खर ने की थी, वही करने का परामर्श दे रहे हैं आप मुझे! युद्ध की घोषणा राम ने नहीं, चन्द्र के कहने पर खर-दूषण ने की थी। उन्होंने ही आक्रमण किया था। और आपने संभवतः सुना नहीं जो मैंने कहा, यथार्थ यही है कि दिव्यास्त्रों के ज्ञान में राम मुझसे भी श्रेष्ठ है।''

''तो क्या सम्राट् उससे भयभीत हैं।''

''कदापि नहीं, किंतु मैं मूर्खतापूर्ण युद्ध का पक्षधर नहीं हूँ। खर और दूषण की मृत्यु तो उनकी मूर्खता का परिणाम है। अपनी मृत्यु के वे स्वयं उत्तरदायी हैं। उन्हें राम पर आक्रमण करने से पूर्व लंका से, अपने सम्राट् से परामर्श करना चाहिए था। वे दण्डकारण्य में लंका के प्रतिनिधि थे, स्वतंत्र शासक नहीं। वे चन्द्रनखा के प्रति नहीं, लंका के सम्राट् के प्रति उत्तरदायी थे, उन्हें भलीभाँति ज्ञात था कि चन्द्रनखा की मनोदशा किसी हठी शिशु के समान है, जिसे बहलाने भर के लिये दण्डकारण्य के सिंहासन के रूप में एक खिलौना दे दिया गया। ऐसी शिशुओं के समान हठ करने वाली, अर्द्धविक्षिप्त चन्द्रनखा के कहने भर से उन्होंने राम से युद्ध ठान लिया! इसे उनकी मूर्खता के अतिरिक्त अन्य कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती। अपनी मूर्खता का फल उन्होंने भोगा। राम के सम्मुख अन्य कोई मार्ग ही नहीं था। युद्धाकांक्षी को युद्ध का दान देना योद्धा का धर्म है, वही राम ने किया। वह यदि युद्धरत न होता तो दूषण क्या राम को जीवित छोड़ देता? कदापि नहीं। यदि राम ने आक्रमण किया होता तभी वह दोषी होता। ...पूर्व में जब स्वयं रावण ने 'युद्धंदेहि' का उद्घोष करते हुए बालि से, यह जानते हुए भी कि द्वन्द्व-युद्ध में वह बालि से निश्चित ही परास्त होगा, द्वन्द्व-युद्ध की आकांक्षा की थी और परास्त हुआ था तो उसका उत्तरदायी वह स्वयं था। उस युद्ध में यदि बालि उसे जीवित छोड़ देने का उपकार न करता तो अपनी मृत्यु के लिये भी वह स्वयं ही उत्तरदायी होता। ...इसी भाँति सहस्त्रबाहु से युद्ध में यदि रावण का प्राणान्त

हो जाता तो उसके लिये भी वह स्वयं ही उत्तरदायी होता। युद्ध की आकांक्षा सहस्त्रबाहु ने नहीं रावण ने की थी। तब खर-दूषण को यदि युद्ध में प्राण त्यागने पड़े तो उसका उत्तरदायी राम कैसे हो सकता है!''

रावण के तर्कों से सहमत न होते हुए भी किसी के पास उनका उत्तर नहीं था। सभी मौन थे। मात्र विभीषण सहमत था उससे। परंतु यह संभवतः अंतिम बार था जब विभीषण उससे सहमत था।

अपनी बात कहकर रावण ने एक क्षण का विराम लिया, एक बार पुनः चारों ओर दृष्टि घुमाई, फिर आगे बोला - ''चन्द्रनखा का अपमान करने के लिये निश्चित ही राम और लक्ष्मण दोषी हैं। स्मरण रखें चंद्र का अपमान करने के लिये, उसे आहत करने के लिये नहीं... वह तो सीता और चन्द्र दोनों की प्राण-रक्षा के उद्देश्य से किया उन्होंने। किसी भी पुरुष का प्रथम कर्तव्य है अपनी पत्नी की रक्षा करना, उससे राम विरत कैसे रह सकता था।''

''तब?'' इस बार वज्रमुष्टि खीज के साथ बोला- ''तब फिर अब उनका दोष ही क्या बचा! लंका को लंकापति की भगिनी के अपमान को विनतभाव से स्वीकार कर उन दुस्साहसी युवकों के सम्मुख नतमस्तक हो जाना चाहिए!''

वज्रमुष्टि की खीज पर रावण मुस्कुरा उठा। मुस्कुराते हुए ही बोला - ''ऐसा नहीं है। संभवतः आपने मेरे शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। राम और लक्ष्मण चन्द्र का अपमान करने के दोषी हैं। उन्होंने चन्द्र के साथ खिलवाड़ करने का दुस्साहस किया। उसने उनसे प्रणय निवेदन ही तो किया था, यदि नहीं स्वीकार था तो स्पष्ट कह देते। उसके साथ खेलने का, उसका उपहास करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था। वह यदि मानसिक रूप से सुस्थिर होती तो उनसे प्रणय निवेदन करने जाती ही क्यों! कोई भी साम्राज्ञी... साम्राज्ञी ही क्यों, कोई भी सामान्य स्त्री, किसी अपरिचित पुरुष के पास जाकर इस प्रकार एकाएक उससे प्रणय निवेदन नहीं कर सकती... वह भी उसकी पत्नी की उपस्थिति में। राम अथवा लक्ष्मण यह तर्क नहीं प्रस्तुत कर सकते कि उन्हें चन्द्र की मानसिक अवस्था के विषय में

ज्ञात नहीं था। कोई भी सुयोग्य व्यक्ति कुछ पलों के सान्निध्य में ही यह अनुमान लगा सकता है कि चन्द्रनखा मानसिक रूप से अस्वस्थ है। वे दोनों तो सुयोग्यों में भी श्रेष्ठतम में स्थान रखते हैं। फिर वे बारह वर्षों से अधिक समय से दण्डकारण्य में भ्रमण कर रहे हैं। यह संभव ही नहीं है कि इस दीर्घ अवधि में किसी ने उन्हें इस तथ्य से अवगत ही न कराया हो कि दण्डकारण्य की साम्राज्ञी चन्द्रनखा अर्द्धविक्षिप्त है।''

''चलिये, किसी कृत्य के लिये तो उन्हें दोषी माना आपने'', रावण के रुकते ही वज्रमुष्टि बोला- ''इसी कृत्य के लिये उन्हें दण्डित करने की अनुमति प्रदान कीजिए हमें।''

''नहीं, उन्होंने रावण की भगिनी का अपमान किया है, इसका दण्ड उन्हें रावण स्वयं देगा।'' एक बार पुनः सबको अचंभित करते हुए रावण ने सहज स्वर में उत्तर दिया।

यह सुनते ही प्रहस्त और वज्रमुष्टि पर जैसे वज्राघात हुआ। यदि रावण स्वयं जायेगा उन्हें दण्ड देने, तब सीता से मुक्ति कैसे प्राप्त होगी! वह तो उसका अहित कदापि नहीं करेगा। किसी प्रकार स्वयं को नियंत्रित करते हुए प्रहस्त ने प्रयास किया - ''क्या यह सम्राट् को शोभा देगा कि ऐसे क्षुद्र कार्य हेतु वे स्वयं कष्ट करें? वे हममें से किसी को भी इस हेतु आदेशित कर सकते हैं।''

''नहीं, उन्होंने लंकेश की भगिनी का अपमान किया है, इसका दण्ड लंकेश उन्हें स्वयं ही देगा।

''परंतु कैसे?'' प्रहस्त फिर से साहस किया।

''शीघ्र ही ज्ञात हो जायेगा सबको।''

सब हतबुद्धि से रावण की ओर देखते रह गये।

इसके उपरांत मंत्रणा के लिये शेष ही क्या बचता था! सभा में पूरी तरह मौन पसरा हुआ था। नागरिक सम्राट् के इस निर्णय से संतुष्ट नहीं थे, तथापि इतना तो उन्हें स्पष्ट हो गया था कि सम्राट् ने कोई निर्णय ले लिया है परंतु अभी उसका

भेद किसी पर प्रकट नहीं करना चाहते। जनसमूह धीरे-धीरे छँटने लगा। मंत्रियों और सभासदों ने भी अब प्रस्थान की अनुमति चाही, परंतु हाथ के संकेत से रावण ने उन्हें बैठे रहने का निर्देश दिया।

'अब और क्या रह गया है कहने को!' यही सोचते हुए सब पुनः बैठ गये।

जब कक्ष में मात्र मंत्रिपरिषद और सभासद ही शेष रह गये तो वज्रमुष्टि को सम्बोधित कर रावण पुनः बोला - ''सेनापति, आप युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीजिए।''

उपस्थित सभी इस आदेश को सुनकर एक बार फिर चौंक पड़े। किसी को समझ ही नहीं आ रहा था कि आज क्या हो गया है सम्राट् को।

यह अप्रत्याशित आदेश सुनकर वज्रमुष्टि हकलाता हुआ बोला - ''प...प .. परंतु अभी तो आप आक्रमण के विरोध में थे?''

''मैं अब भी आक्रमण के विरोध में ही हूँ। नीति कहती है कि शत्रु पर आक्रमण करने से पूर्व उसकी सामर्थ्य को भलीभाँति परख लेना चाहिए, अन्यथा अतिआत्मविश्वास आत्मघाती सिद्ध हो सकता है।''

''तात्पर्य क्या है आपका?'' इस बार प्रहस्त ने प्रश्न किया।

''राम के साथ लंका का युद्ध तो अब अवश्यंभावी है; हम आक्रमण करें तब भी, और न करें तब भी। तपस्वियों की जो सेना खर-दूषण के विरुद्ध राम की सहायता हेतु आयी थी, उसके पीछे अवश्य ही कोई गूढ़ षड्यंत्र है। यह आपलोगों की विफलता है कि ऋषिगण राम के साथ मिलकर सैन्य एकत्र करते रहे और आप समय रहते इसे नहीं भाँप पाये। राम अत्यंत श्रेष्ठ योद्धा है यह उसने सिद्ध कर दिया है, इसके लिये मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ। वह व्यक्ति के रूप में भी सम्मान पाने योग्य है यह भी उसने सिद्ध कर दिया है। फिर भी यह असंभव है कि रावण किसी के मन में झाँकने का प्रयास करे और असफल हो जाये। राम के संदर्भ में यही हुआ है। ऐसा कैसे हुआ, यह एक रहस्य है, परंतु हुआ है।''

यह भी सबके लिये एक चकित कर देने वाला रहस्योद्घाटन था। कइयों के मुख से अविश्वास भरे स्वर प्रस्फुटित हुए - ''क्या यह सत्य है सम्राट्?''

''उतना ही सत्य जितना आप इस समय मेरे सम्मुख बैठे हैं। ऐसे में हम किष्किंधा में सुदीर्घकाल से देवों की उपस्थिति की उपेक्षा नहीं कर सकते। निश्चय ही उनकी उपस्थिति के नेपथ्य में कोई गूढ़ उद्देश्य है। देवों के अतिरिक्त महर्षि अगस्त्य भी जनस्थान में ही उपस्थित हैं। सारे तथ्यों के आलोक में यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं है कि इस सबके पीछे देवों और अगस्त्य की कोई दुरभिसंधि है, जिसमें राम और लक्ष्मण उनके सहयोगी हैं। अतः युद्ध के लिये सन्नद्ध रहें।''

सब ठगे से बैठे थे कि अचानक रावण फिर बोला - ''अब आप सबको अनुमति है, आप प्रस्थान कर सकते हैं।

सब एक-एक कर उठने लगे और सम्राट् को प्रणामकर कक्ष के द्वार की ओर बढ़ने लगे। इसी बीच रावण प्रहस्त से सम्बोधित हुआ - ''मातुल आप कुछ और समय दें, आपके क्रियात्मक परामर्श की आवश्यकता है।''

प्रहस्त वापस बैठ गया।

***

''मातुल, मारीच की आवश्यकता है मुझे।'' जब शेष सभी विदा हो गये तो रावण ने प्रहस्त से कहा।

''उपलब्ध हो जायेगा, किंतु उसकी क्या आवश्यकता आ पड़ी?'' प्रहस्त ने विस्मिय से जिज्ञासा की- ''वह तो अब पूर्ण रूप से निष्क्रिय है।''

''इससे आपको कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए।'' रावण ने रूखा सा उत्तर दिया।''

ऐसे उत्तर ने प्रहस्त को हतबुद्धि सा कर दिया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि आज रावण पल-पल में ऐसे रंग क्यों बदल रहा है! वह आज कितनी बार उसे ऐसे निर्मम आघात देगा!

वह यह सोच ही रहा था कि तभी उनके कानों को पुनः रावण का स्वर सुनाई दिया - ''इस समय मेरा मस्तिष्क मेरे नियंत्रण में नहीं है, अतः उचित यही होगा कि आप मुझे एकाकी छोड़ दें, अन्यथा कहीं मैं आवेश में आपके सम्मान के विपरीत कुछ कह गया तो आपको भी क्षोभ होगा और संभव है बाद में मुझे भी हो।''

यह स्पष्ट प्रहस्त के लिये कक्ष से बाहर निकल जाने का आदेश था। रावण के कहने के ढंग से उसे बुरा तो बहुत लगा, परंतु यह भी सत्य था कि इस समय इसी में उसका हित था। वह बिना किसी प्रतिवाद के उठ खड़ा हुआ।

''मेरा कार्य स्मरण रखियेगा मातुल'', द्वार की आर बढ़ते प्रहस्त के पीछे से रावण बोला - ''मारीच तक संदेश अवश्य भिजवा दीजिएगा कि यदि वह अपनी कुशलता का आकांक्षी हो तो कल अवश्य ही मुझसे भेंट करें आकर।''

''कल तक? यह कैसे संभव हो सकता है सम्राट्?'' हकबकाया सा प्रहस्त बोला- ''युग बीत गये मारीच से हमारा कोई सम्पर्क नहीं हुआ। न जाने कहाँ-कहाँ उसे खोजना पड़ेगा।''

''ठीक है, दो दिन का समय दिया आपको।'' रावण उपकार सा करता हुआ बोला।

''परंतु...''

''अब कोई परंतु नहीं मातुल। मुझे विश्वास है आपके गुप्त सम्पर्क सर्वत्र फैले हुए होंगे। आपके पास संदेशवाहक गरुड़ भी हैं और कपोत भी। मुझे दो दिनों की भीतर अपने सम्मुख मारीच की उपस्थिति चाहिए अन्यथा.....'' - रावण ने बात अधूरी छोड़ दी किंतु इस अन्यथा में छिपी धमकी प्रहस्त को साफ सुनाई दी। उसने रावण की इस मनोदशा में और प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। वह चुपचाप बाहर निकल गया।

***

प्रहस्त चला गया किंतु रावण के चित्त में चैन नहीं था। सबकी उपस्थिति में वह अपने ऊपर नियंत्रण बनाये रखने में सफल रहा था, परंतु एकांत होते ही उसका मन करने लगा कि अपना सिर दीवार पर पटक दे। कैसी दुस्सह परिस्थिति में डाल दिया था नियति ने उसको!

तभी एक सेवक द्वार पर उपस्थित हुआ।

देर तक रावण ने उसकी उपस्थिति का संज्ञान नहीं लिया।

रावण की मनोदशा देखकर उसका भी साहस नहीं हो रहा था द्वार थपथपाकर अथवा अन्य किसी प्रकार अपनी उपस्थिति का आभास सम्राट् को देने का। परंतु किसी भी भाँति उसे संदेश तो देना ही था... महारानी का संदेश था अतः वह प्रतीक्षा करता रहा कि कब सम्राट् को उसकी उपस्थिति का भान हो।

देर बाद रावण को उसकी उपस्थिति का आभास हुआ।

''क्या है?'' वह शुष्क स्वर में बोला।

''महारानी भेंट करना चाहती हैं।''

मंदोदरी का उल्लेख सुनकर रावण ने अपने स्वर को संयत करने का प्रयास किया। मंदोदरी का वह हृदय से सम्मान करता था। वह इस सम्मान के सर्वथा योग्य थी भी।

''उनसे कह दो कि कल ही भेंट हो सकेगी। आज सम्राट् के सम्मुख कुछ अपरिहार्य व्यस्ततायें हैं।''

सेवक चला गया। रावण फिर अपना सिर पकड़ कर बैठ गया। उसके मुख से अस्फुट से स्वर निकल रहे थे - ''मातामह! आपने मेरे साथ ऐसा क्यों किया! आपने मेरी पुत्री को मुझसे विलग इसलिये नहीं किया था ताकि वह विष्णु को प्राप्त कर सके, वरन इसलिये किया था क्योंकि आपको आशंका थी कि वह आपके कुल के लिये घातक हो सकती है। उस अबोध का क्या दोष था? आपने नियति के साथ खेलने का प्रयास किया, उसी का परिणाम अब आपकी संतति भोगेगी। वह यदि रावण के पास ही रही होती तो आज यह स्थिति कदापि उत्पन्न

नहीं हुई होती! आपको भय था कि पुत्री के मोह में पड़कर रावण कहीं आपकी महत्वाकांक्षाओं की उपेक्षा न करने लगे। सन्यासिनी वेदवती की स्मृतियों को वक्ष से लगाकर कहीं वह भी सन्यस्त न हो जाये! आप भी तो समझते ही होंगे कि पौलस्त्य की पुत्री का पाणिग्रहण करने में विष्णु को कोई संकोच नहीं होगा।

28.प्रस्थान का निर्णय

''अब?'' लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

यह खर-दूषण के आक्रमण के उपरांत एक सुहावनी सन्ध्या का समय था।

खर के अवसान के उपरान्त जब राम को अपना धनुष पुनः कंधे पर टाँगने का अवसर मिला तो चारों ओर मानवों और अश्वों के शवों के पर्वत दिखाई दे रहे थे। यह राम का सौभाग्य था कि महर्षि अगस्त्य अत्यंत दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने व्यक्तियों को पूरी तैयारी से, सभी आवश्यक संसाधनों के साथ वहाँ भेजा था। चिकित्सा क्षेत्र के विशेषज्ञ अवसर पाते ही चिकित्सा शिविरों की स्थापना करने में जुट गये थे। शेष व्यक्ति शवों के मध्य से घायलों को खोजने और उन्हें चिकित्सा शिविरों तक ले जाने में जुट गये।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में इस तथ्य पर कोई विचार नहीं किया गया कि मृतक अथवा आहत सैनिक अपने पक्ष का है अथवा विपक्षी। राम और उनके दल के इस सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से अनेक रक्ष सैनिकों का हृदय परिवर्तन भी हुआ था, वे अब हृदय से राम के सहयोगी बनना चाहते थे। शवों का संस्कार तो अगले दिन सम्पन्न हो गया परंतु आहतों का उपचार तो इतनी शीघ्र संभव नहीं था। उनमें बहुत से तो ऐसे थे जिनका उपचार महीनों चलने वाला था।

राम और लक्ष्मण दोनों एक सप्ताह तक निरंतर बिना खाये-पिये, बिना विश्राम किये सहायता कार्यों को निर्देशित ही नहीं करते रहे, स्वयं भी करते रहे। उन दोनों के लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं था। अगस्त्य के भेजे गये ऋषियों में भी अनेक ऐसे थे जिन्होंने साधना के द्वारा अपने शरीर को साध लिया था, वे भी राम और लक्ष्मण के साथ निरन्तर कार्यरत थे। अन्य साधारण कर्मियों को बारी-बारी से भोजन और विश्राम का अवसर दिया जा रहा था। इस विषय में सबसे बड़ी कठिनाई आयी सीता को समझाने में। राम और लक्ष्मण की देखा-देखी वे भी विश्राम करने को तैयार नहीं थीं। राम उन्हें कठिनाई से समझा पाये कि उनके

लिये यह घातक हो सकता है। अंततः राम को उन्हें बला-अतिबला के विषय में बताना ही पड़ा, साथ ही यह आश्वासन भी देना पड़ा कि वे उन्हें भी इन विद्याओं में पारंगत बनायेंगे, तब जाकर सीता विश्राम और भोजन को तैयार हुईं।

आहतों में अनेक तो ऐसे थे जिनके अंग क्षत-विक्षत हो चुके थे। राम को आशा नहीं थी कि वे पुनः सामान्य व्यक्ति के समान स्वस्थ हो सकेंगे, परंतु यह अगस्त्य आश्रम के ऋषि-वैद्यों की कुशलता और आयुर्वेद का चमत्कार था कि एक सप्ताह में ही अधिकांश आहत अपने पैरों पर चलने योग्य हो गये। अब वे ही व्यक्ति शेष रह गये थे जिनके अंग क्षत-विक्षत हो चुके थे, उनका लंबा उपचार चलना था।

अब स्थितियाँ नियन्त्रण में थी, ऋषियों के आग्रह पर दोनों ने थोड़ा सा अवकाश लेना स्वीकार कर लिया।

सुहानी संध्या-वेला थी। सीता भोजन व्यवस्था में सहयोग कर रही थीं। राम और लक्ष्मण शिविरों में स्थापित नगर से एक किनारे आकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। बैठते ही लक्ष्मण ने उपरोक्त प्रश्न कर दिया। उत्तर में राम बोले - ''अब रावण की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करनी होगी।''

''ओह!'' - लक्ष्मण ने उकताहट भरे स्वर में कहा - ''पुनः प्रतीक्षा! मैं तो भर पाया इस निरंतर की प्रतीक्षा से।''

''किंतु वह तो करनी ही पड़ेगी'', लक्ष्मण के मुख पर व्याप्त नाटकीय भाव पर हँसते हुए राम बोले - ''लंका पर आक्रमण कोई क्रीड़ा-विलास है क्या?''

''परंतु प्रतीक्षा क्यों? हमारे पंचवटी में रुकने का उद्देश्य पूरा हो चुका है, अब यहाँ और रुकने का कोई अर्थ नहीं।''

राम कुछ सोचने लगे, फिर बोले - ''परंतु महर्षि अगस्त्य का सैन्य अभी यहीं टिका है। उनमें अनेक गंभीर रूप से आहत और उपचार की अवस्था में हैं। उनके स्वस्थ होने से पूर्व हम कैसे आगे बढ़ सकते हैं। वे हमारी सहायता के अनुक्रम में ही आहत हुए हैं।''

''भइया, उनका श्रेष्ठतम उपचार यहाँ के इन अस्थाई चिकित्सा शिविरों में संभव है अथवा आश्रम के स्थाई चिकित्सालय में?'' लक्ष्मण ने उत्तर देने के स्थान पर प्रतिप्रश्न किया।

''निश्चित रूप से आश्रम के स्थाई चिकित्सालय में।''

''तब इनका यहाँ और रुके रहना अवांछनीय ही है। ...नहीं?''

''तुम्हारा आशय है कि मैं अब उन्हें आश्रमों में वापस लौटने का परामर्श दूँ, क्या यह उचित होगा? वे कहीं इसे अपना अपमान समझ बैठे तो?''

''भइया, सज्जनता जब लोकहित का मार्ग अवरुद्ध करने लगे तो उसका त्याग कर देना चाहिए। हमारे इन सहयोगियों को भलीभाँति ज्ञात है कि हमारा उद्देश्य रक्ष-संस्कृति को जड़ से उखाड़ना है और वह कार्य लंका पहुँचे बिना संभव नहीं है। यह भी सोचिए कि हम यह करने अपने स्वार्थवश नहीं आये हैं, देवों और ऋषियों की संयुक्त योजना के अनुसार हमें आने पर विवश किया गया है, अर्थात् ये ऋषिगण हमारे सहयोगी नहीं हम इनके सहयोगी हैं। ये हमारा कार्य नहीं, हम इनका कार्य कर रहे हैं।''

राम लक्ष्मण के तर्कों से सहमत प्रतीत हो रहे थे परंतु ऋषियों से जाने को कहने में अभी भी उनका संकोच आड़े आ रहा था।

लक्ष्मण ने कहना जारी रखा - ''इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है आहतों का समुचित उपचार जो कि आश्रम में सुविधाजनक भी होगा और उत्तम भी।''

''कहना तो तुम्हारा उचित ही है।'' राम भी सहमत हुए।

''तो फिर आइये, चलते हैं ऋषि पुण्डरीक के पास।'' लक्ष्मण उठते हुए बोले।

ऋषि पुण्डरीक अगस्त्य के दल का नेतृत्व कर रहे थे।

***

ऋषि पुण्डरीक भी अपने शिविर के बाहर अन्य कई ऋषियों के साथ विश्राम की मुद्रा में बैठे हुए थे। राम और लक्ष्मण ने वहाँ जाकर उचित रीति से प्रणाम किया। प्रणाम और आशीर्वाद की औपचारिकताओं के उपरांत लक्ष्मण के संकेत पर राम ने निवेदन प्रस्तुत किया - ''ऋषिवर! आपलोगों ने उचित समय पर आकर मेरी सहायता की, मैं हृदयतल से आप सबका आभारी हूँ।''

''क्यों निरर्थक शब्दों का अपव्यय कर रहे हैं रामभद्र! इतने काल से इसी हेतु तो प्रशिक्षित किये गये थे हम। कब से हम इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे।'' पुण्डरीक ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

''यह तो आपकी महानता है, जो अपने सहयोग को महत्व नहीं दे रहे।''

''छोड़िये इस विषय को राम, यह तो हमारा सौभाग्य है जो इस यज्ञ में हमें भी आहुति डालने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आप विषय पर आइये, हमारा आभार तो आप एक सप्ताह से निरन्तर प्रकट कर ही रहे हैं।'' पुण्डरीक उसी भाँति मुस्कुराते हुए बोले। उनके साथी ऋषि भी मुस्कुरा उठे।

राम भी मुस्कुराये। मन ही मन उन्होंने सोचा- 'ऋषि सचमुच मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर उठे हुए होते हैं।' प्रकट में वे बोले - ''ये जो लोग अभी स्वस्थ नहीं हो पाये हैं, इन्हें कितना समय और लगेगा पूर्ण स्वस्थ होने में?''

''अधिकांश तो आठ-दस दिन में पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगे परंतु कुछ ऐसे हैं जिन्हें अभी लम्बा समय लगेगा।''

''मेरा विचार है कि आश्रम में उनकी चिकित्सा यहाँ की अपेक्षा श्रेष्ठ और अधिक सुविधाजनक हो सकेगी!''

''बहुत अंतर तो नहीं पड़ेगा परंतु फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आपका विचार सत्य है।''

''तो क्यों न इन्हें आश्रम भिजवाने की व्यवस्था की जाये?''

पुण्डरीक कुछ क्षण सोचते रहे। वे कोई उत्तर देते उससे पूर्व ही ऋषि मनसिज हँसते हुए बोल पड़े - ''मुझे नहीं प्रतीत होता कि कोई भी आपको यहाँ छोड़कर जाना स्वीकार करेगा।''

''यह सबका स्नेह है हमारे प्रति, परंतु इस समय उचित यही होगा कि इन गंभीर आहतों को लेकर अब आप सब भी आश्रम की ओर प्रस्थान करें। इनकी समुचित चिकित्सा...''

''यह कैसे संभव है रामभद्र?'' पुण्डरीक राम की बात काटते हुए बोल पड़े - ''आपको अरक्षित छोड़कर हम कैसे जा सकते हैं?''

''ऋषिवर, संकटकाल व्यतीत हो चुका है। मुझे विश्वास है कि दशानन खर जैसा उद्धत आचरण नहीं करेगा।''

''फिर भी प्रतिक्रिया तो वह करेगा ही। चन्द्रनखा आहत हुई है, आहत से भी अधिक उसने स्वयं को अपमानित अनुभव किया होगा। वह हमें नहीं मिली इसका एक ही अर्थ है कि वह सुरक्षित रावण के पास पहुँच चुकी है। रावण कितना भी संयमी क्यों न हो, परंतु जब उसकी भगिनी रो-रोकर, यहाँ की घटनाओं का विकृत वर्णन उसके सम्मुख प्रस्तुत करेगी तो वह प्रतिक्रिया तो करेगा ही। निश्चय ही उसकी प्रतिक्रिया अत्यंत प्रबल होगी।''

''आप सत्य कह रहे हैं ऋषिवर'', लक्ष्मण ने हस्तक्षेप किया- ''परंतु यहाँ जो सैन्य और जो संसाधन हमारे पास हैं, वे खर-दूषण के प्रतिरोध हेतु तो पर्याप्त सिद्ध हुए, किंतु रावण के सम्मुख वे महत्वहीन ही सिद्ध होंगे। तब निरर्थक इतने सारे व्यक्तियों के प्राण संकट में डालना दूरदर्शिता नहीं कहलायेगी।''

''आपके लिये हमें मृत्यु का वरण करने में भी संकोच नहीं होगा।'' मनसिज ने प्रतिरोध किया।

''मित्र मनसिज, हमारे प्रति आपके अनुराग से हम कृत-कृत्य हैं परंतु लक्ष्मण सत्य कह रहा है।'' राम बोले - ''यह तो आपको भी ज्ञात है कि अब हमें किष्किंधा जाना होगा और वहाँ सुग्रीव व हनुमान से भेंटकर किष्किंधा को अपने

पक्ष में करना होगा। देवों ने ऋषियों के साथ एक युग तक जो श्रम किया है, तभी तो वह सार्थक होगा!''

''किष्किंधा जाने से हम कब रोकते हैं आपको, परंतु अब जहाँ भी आप जायेंगे, हम आपके साथ चलेंगे।''

''ताकि इतने सशस्त्र योद्धाओं को देखकर बालि शंकालु हो उठे।'' लक्ष्मण ने हँसते हुए उत्तर दिया- ''उचित होगा कि रावण के आक्रमण से पूर्व ही हम किष्किंधा पहुँच जायें। बालि रावण का मित्र है, वहाँ सीधे आक्रमण से पूर्व रावण को सोचना पड़ेगा।''

''परंतु...'' मनसिज ने कुछ कहना चाहा किंतु लक्ष्मण ने उसे अवसर ही नहीं दिया। वे बोले - ''नहीं मित्र, यही महर्षि अगस्त्य का हमें निर्देश था। हमें उनके निर्देशानुसार ही आचरण करना पड़ेगा... निश्चित ही आप नहीं चाहेंगे कि हम उनके निर्देश की अवहेलना करें।''

''यदि हमारे प्रस्थान करते ही रावण ने आक्रमण कर दिया अथवा यहाँ से किष्किंधा के मार्ग में उससे टकराव हो गया?'' मनसिज ने फिर तर्क किया।

''प्रथम तो इसकी संभावना नहीं है। लंका यहाँ से बहुत दूर है, समय लगेगा चंद्रनखा को वहाँ तक पहुँचते और तदुपरांत सैन्य को सज्जकर रावण को यहाँ तक आने में। तब तक तो हम किष्किंधा पहुँच चुके होंगे। भइया ने पहले भी कहा था कि रावण खर के समान उद्धत आक्रमण नहीं करेगा। फिर भी यदि हमारी गणना विफल रहती है और रावण से हमारा टकराव हो जाता है तो उस स्थिति में आप हमारी कितनी सहायता कर पायेंगे! यह तो आपने देख ही लिया कि शस्त्र रहते कोई हमें परास्त नहीं कर सकता। रावण के विरुद्ध तो हमारे लिये युद्ध और सुविधाजनक होगा, तब हम निःशंक होकर अपने दिव्यास्त्रों का उपयोग कर सकेंगे।''

विवाद अधिक लम्बा नहीं चला। ऋषि पुण्डरीक लक्ष्मण के तर्कों से सहमत थे और वही दल का नेतृत्व कर रहे थे अतः उन्होंने लक्ष्मण का परामर्श निस्संकोच

स्वीकार कर लिया। यह भी संभव था कि महर्षि अगस्त्य ने उन्हें पूर्व में ही ऐसा कोई निर्देश दे दिया हो। अगले दिन प्रातःकाल से आरम्भ हुआ व्यवस्थायें समेटने का कार्य अपराह्न तक सम्पूर्ण हो पाया।

***

विगत एक सप्ताह से तीनों अपने कुटीरों में नहीं गये थे। वट-वन के बाहर ही ऋषियों द्वारा स्थापित किये गये अस्थायी शिविरों में ही निवास कर रहे थे। अब अगस्त्य के दल के प्रस्थान के उपरांत, आगे बढ़ने से पूर्व इन्हें कुटिया लौटकर अपनी सम्पदा बटोरनी थी।

सम्पदा के नाम पर जब ये लोग अयोध्या से चले थे तब धनुष-बाण और कमर में लटक रही कटारों के अतिरिक्त एक कुठार और एक सीता के वस्त्रों की पोटली थी इनके पास। उस पोटली में कुछ आभूषण भी बाँध दिये थे सुमित्रा ने। मार्ग में अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया ने भी आभूषणों से भरी मंजूषा और कुछ वस्त्र सीता को उपहार में दिये थे। सुमित्रा द्वारा बाँधे गये सारे ही वस्त्र मूल्यवान और राजसी तो थे ही दीर्घजीवी भी थे। सीता इन्हें मात्र राम के विशेष आग्रह पर ही धारण करती थीं, प्रायः तो वे राम और लक्ष्मण के समान, आश्रमों से प्राप्त साधारण वस्त्र ही पहनती थीं। कम प्रयोग के बाद भी उनमें कई वस्त्र अब तक अपनी आयु पूरी कर चुकने के कारण फेंके जा चुके थे।

आभूषणों के साथ ऐसा नहीं था। अयोध्या जैसे महान साम्राज्य की कुलवधू के आभूषण अनेक पीढ़यों तक चलने वाले थे। इसे स्त्रीसुलभ व्यवहार कहें अथवा कुछ भी, सीता पर्याप्त आभूषण सदैव धारण किये रहती थीं। फिर भी अनुसूया द्वारा दी गयी वह काष्ठ-मंजूषा सदैव आभूषणों से भरी ही रहती थी।

वस्त्रों और आभूषणों के अतिरिक्त अनुसूया द्वारा दिया गया दिया गया विशिष्ट औषधीय पौधा भी था जिसे सीता जिस आश्रम में भी जाती थीं वहाँ रोप देती थीं। पौधा ऐसा था कि सहज ही मिट्टी में जड़ें जमा लेता था और बढ़ने लगता था। सीता जब भी अन्यत्र के लिये प्रस्थान करती थीं, तो उस पौधे से एक

टहनी तोड़कर किसी मिट्टी के पात्र में रोप लेती थीं, जैसा अनुसूया ने किया था, और अगले निवास पर उसे पुनः भूमि में रोप देती थीं।

तो सम्पदा के रूप में सीता को वह आभूषणों की मंजूषा लेनी थी, अनुसूया वाले पौधे की एक टहनी तोड़कर कुटिया में उपलब्ध एकमात्र मृदापात्र में रोपनी थी। लक्ष्मण को अपनी कुठार लेनी थी। तूणीरों में जितने समा पाते उतने बाण भरने थे। इस सब में संध्या निकट आ गयी। रात्रि के अंधकार में वन में मार्ग भटकने की सम्भावना थी अतः राम ने किष्किंधा के लिये प्रस्थान अगले दिन प्रातःकाल तक स्थगित कर दिया। इसमें लक्ष्मण को भी कोई आपत्ति नहीं थी।

परंतु...

29.सीताहरण

प्रहस्त की समझ में नहीं आ रहा था कि रावण मारीच से मिलने हेतु इतना व्यग्र क्यों है! जहाँ तक वह जानता था, मारीच के साथ कभी भी उसके कोई सम्बन्ध नहीं रहे थे, '...तो फिर, एकाएक... ?'

वह मारीच के विषय में विचार करने लगा - वह कभी श्रेष्ठ योद्धा नहीं रहा था। किसी समय उसकी देहयष्टि अवश्य सुगठित हुआ करती थी परंतु अब तो वह सूखकर काँटा रह गया था। अपनी लम्बाई के कारण वह बस ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई बाँस का पौधा जा रहा हो। गति अवश्य उसकी अत्यंत तीव्र थी, बिना रुके वह एक ही गति से सुदीर्घ काल तक भागता रह सकता था। इसी गति के कारण तो सुन्दरवन से जीवित बचकर आ सका था। वह वेश परिवर्तन में भी दक्ष था। वह किसी भी व्यक्ति के स्वर की इतनी सच्ची नकल कर सकता था कि वह व्यक्ति स्वयं भी धोखा खा जाये।

प्रहस्त ने बहुत सोचा किंतु उसे मारीच में एक भी ऐसी विशेषता समझ में नहीं आयी, जिसके कारण वह रावण के लिये उपयोगी हो सकता हो... 'तब... तब रावण क्यों उससे मिलने को मरा जा रहा है? वह रावण को राम और सीता

के विषय में कोई सूचना भी नहीं दे सकता, वह तो दशकों से दण्डक के आस-पास भी नहीं गया।' सोचते-सोचते जब उसके सिर में दर्द होने लगा तब वह सहायता की आश से वज्रमुष्टि के प्रासाद की ओर चल दिया। सुमाली के साथ वही अधिक रहा था इसलिये सुमाली के कूट सम्पर्कों से उसी का सर्वाधिक सम्पर्क था।

वज्रमुष्टि ने समय रहते ही मारीच को खोज निकाला। दोनों उसे लेकर रावण के सम्मुख उपस्थिति हुए। दोनों ही जानने को उत्सुक थे कि आखिर रावण की योजना क्या है परंतु रावण ने अवसर ही नहीं दिया। इन तीनों के पहुँचते ही उसने मारीच से एकान्त में वार्ता करने की इच्छा प्रकट कर दी। न तो प्रहस्त और न ही वज्रमुष्टि वहाँ से जाने के इच्छुक थे, परंतु इस समय जैसी रावण की मनःस्थिति थी, उसमें उन्होंने चले जाना ही श्रेयस्कर समझा।

***

''मातुल'', प्रहस्त और वज्रमुष्टि के कक्ष से बाहर जाते ही रावण मारीच से सम्बोधित हुआ- ''मातामह आपकी माता को अपनी भगिनी मानते थे, इस नाते आप मेरे मातुल ही हुए। आपको राम और लक्ष्मण का तो स्मरण होगा ही!''

जब से वज्रमुष्टि ने मारीच से सम्पर्क किया था, तभी से वह संसार भर के अनुमान लगा रहा था कि सम्राट् को भला उससे क्या प्रयोजन हो सकता है, परंतु उसने इस प्रश्न की तो स्वप्न में भी अपेक्षा नहीं की थी। वे दोनों भाई तो उसकी दुखती हुई रग थे, उन्हें भला वह कैसे विस्मृत कर सकता था।

''उत्तर नहीं दिया मातुल!'' मारीच को मौन देखकर रावण पुनः बोला।

''ज्... जी सम्राट्, स्मरण है!'' मारीच किसी प्रकार बोला।

''यह भी आपको ज्ञात होगा कि उन्होंने चन्द्र को अपमानित और आहत किया है। इतना ही नहीं, खर-दूषण समेत दण्डक में उपस्थित लंका के समस्त सैन्य का संहार भी किया है।''

"जी!" मारीच को अब भी समझ नहीं आ रहा था कि इस प्रकरण में भला उसकी क्या उपयोगिता हो सकती थी।

"उन्होंने लंकेश्वर की भगिनी का अपमान किया है, इसका प्रतिकार तो लेना ही होगा।"

"जी, परंतु इसमें मैं किस भाँति सहयोगी हो सकता हूँ? सम्राट् स्वयं समर्थ हैं उनसे प्रतिकार लेने में।"

"मैं युद्ध नहीं करना चाहता।"

"क्यों सम्राट्, उन्होंने खर-दूषण का वध कर लंका को चुनौती दी है। लंका को उन्हें इसका उत्तर तो देना ही होगा।"

"वह खर-दूषण की मूर्खता थी, उन्होंने बिना प्रतिपक्षी के बल का अनुमान किये आक्रमण कर दिया। मूर्खता का परिणाम उन्हें भुगतना पड़ा।"

"तो सम्राट् मुझसे क्या चाहते हैं?" मारीच ने उलझन भरे स्वर में पूछा।

"उन्होंने मेरी भगिनी का अपमान किया है, प्रतिकार में मैं उनका अपमान करूँगा।"

"मैं अब भी आपका मन्तव्य समझा नहीं सम्राट्!"

"मैं सीता का अपहरण करूँगा। सीता उनके कुल की मर्यादा है, उसके अपहरण से बड़ा उनका अन्य कोई अपमान नहीं हो सकता।"

"क्या?" मारीच जैसे उछल पड़ा - "सम्राट् कहीं उपहास तो नहीं कर रहे?"

"राम ने चन्द्र को आहत करने का प्रयास नहीं किया था, उसे जो आघात प्राप्त हुए, वह दुर्घटना मात्र थी। मैं भी उन्हें आहत नहीं करूँगा, बिना किसी रक्तपात की राम की पत्नी का अपहरण कर लूँगा और इस कार्य में आपको मेरा सहयोग करना होगा।"

रावण प्रस्ताव सुनते ही मारीच उछल पड़ा। हठात् उसके मुख से निकला - "क्षमा करें सम्राट, परंतु मैं पुनः उनके सम्मुख जाने का साहस नहीं कर सकता।

उस समय तो किसी भाँति भागकर प्राण बचा लिये थे, परंतु इस बार कदापि नहीं बचेंगे।''

रावण को संभवतः उससे ऐसे ही उत्तर की अपेक्षा थी। वह बिना विचलित हुए मुस्कुराया और अपने चंद्रहास की ओर संकेत कर बोला - ''यह चंद्रहास देख रहे हैं मातुल। मुझे, आपके मातुल पद की गरिमा का अतिक्रमण कर, इसका प्रयोग करने हेतु विवश न करें।''

''सम्राट्...'' मारीच की स्थिति वही थी - इधर कुआँ, उधर खाईं। उससे कोई उत्तर देते नहीं बन रहा था।

''विचार कर लीजिए, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'' रावण पुनः मुस्कुराया। उसकी मुस्कुराहट मारीच को विष से बुझी प्रतीत हो रही थी।

कुछ क्षण रावण मारीच के उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा, फिर वैसे ही मुस्कुराता हुआ, अतिशय विनम्र स्वर में बोला - ''समझा कीजिए मातुल, रावण अनन्तकाल तक आपके उत्तर की प्रतीक्षा नहीं कर सकता।''

''परन्तु सम्राट्, मैंने देखी है उनकी तेजस्विता, मैं सब जानते-समझते भी कैसे अपने प्राणों को बलिदान करने हेतु प्रस्तुत हो जाऊँ!'' भय से सिहरते हुए मारीच किसी प्रकार बोला।

''पुनः विचार कर लीजिये, उनके हाथों आपका वध नहीं होगा, यह त्रिलोकेश्वर रावण आपको आश्वासन देता है।'' कहकर रावण कुछ पल रुका, फिर आगे बोला- ''परंतु यदि आप सहमति नहीं देते हैं तो मेरा चंद्रहास क्षण भर का भी विलम्ब नहीं करेगा आपकी ग्रीवा का रक्तपान करने में।''

रावण ने कोरी धमकी ही नहीं दी, कहने के साथ ही उसने अपना चंद्रहास उठाया और मारीच की गर्दन पर रख दिया।

अब कोई उपाय नहीं था। मारीच ने सहमति दे दी। राम के हाथों से तो वह बच भी सकता था परंतु इस समय रावण से उसका बचना असंभव था।

उसके बाद देर तक दोनों मंत्रणा करते रहे। रावण मारीच को अपनी योजना समझाता रहा, मारीच बीच-बीच में शंका उपस्थित करता रहा और फिर दोनों मिलकर उन शंकाओं के समाधान खोजते रहे। जब उनकी मंत्रणा समाप्त हुई तो दोनों को ही विश्वास था कि योजना असफल नहीं हो सकती।

***

योजना के क्रियान्वयन हेतु प्रस्थान करने में अभी विलम्ब था। पंचवटी में अगस्त्य के व्यक्तियों के उपस्थिति में सीता का हरण नहीं किया जा सकता था, परंतु तब तक के लिये रावण मारीच को उन्मुक्त भी नहीं छोड़ सकता था। इस बात की पूरी आशंका थी कि मुक्त होते ही वह ऐसा लुप्त होगा कि खोजे नहीं मिलेगा। उसके विलुप्त होने की किसी भी संभावना को समाप्त करने हेतु रावण ने, सीता का हरण सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने तक की अवधि के लिये, उससे वहीं प्रासाद में ही निवास करने का आग्रह किया।

मारीच को इस आग्रह के पीछे छिपे मन्तव्य को समझते देर नहीं लगी। वह समझ गया कि जब तक सम्राट् का कार्य सिद्ध नहीं हो जाता उसे प्रासाद में बंदी रहना होगा, परंतु आदेश को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय भी तो नहीं था उसके समक्ष! उसे सम्पूर्ण सुविधाओं से भरे प्रासाद रूपी बंदीगृह में अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दूसरे दिन ही मध्याह्न के ठीक उपरांत उसे कूच का निर्देश मिल गया।

रावण जब तक ज्ञान और कला की साधना में लिप्त था, तब तक स्थिति भिन्न थी, परंतु अब वह सचेत था। स्थितियाँ पुनः उसके नियंत्रण में थीं। उसका सूचना तंत्र पुनः सक्रिय हो चुका था। जैसे ही अगस्त्य के व्यक्तियों के प्रस्थान का निर्णय हुआ, उसे सूचना प्राप्त हो गयी। सूचना मिलते ही वह मारीच को साथ ले पुष्पक पर सवार हुआ और पंचवटी की ओर उड़ चला।

***

राम और लक्ष्मण दोनों कुटिया में आकर विश्राम की मुद्रा में लेट गये। सूर्य बस अस्त होने को ही था। सूर्यास्त के उपरांत वृक्ष की टहनी तोड़ना उचित नहीं होगा यही सोचकर सीता आभूषण-मंजूषा सहेजने से पूर्व अनुसूया वाले वृक्ष की एक टहनी तोड़कर मृदा पात्र में रोपने लगीं।

एकाएक सीता की उत्साह और आश्चर्य से मिश्रित चीख सुनकर राम और लक्ष्मण सजग हुए। सीता चिल्लायी थीं - ''अरे आर्यपुत्र! देखिये आकर कितना सुन्दर मृग है।''

''आप ही देखिये।'' राम ने लेटे-लेटे ही अलसाये स्वर में उत्तर दिया।

''आइये तो, कैसा अद्भुत वर्ण है, मानो कोई स्वर्ग-मृग हो !''

सीता के विशेष आग्रह पर राम बाहर आये।

सचमुच एक अत्यंत सुन्दर, स्वर्णिम आभा वाला मृग बार-बार वट के तनों के पीछे से झाँककर किसी छलावे के समान ओझल हो जाता था।

राम भी उसे देखकर मोहित हुए बिना नहीं रह सके।

''मुझे यह मृग चाहिए। इसका चर्म कितना सुन्दर है, जब उसे मैं कुटिया में बिछाऊँगी तो कुटिया प्रासादों से भी अधिक गरिमामयी हो जायेगी।''

''क्या आवश्यकता है? मात्र अपने मन की प्रसन्नता के लिये किसी जीव की हत्या करना उचित नहीं होता?'' राम ने सीता को समझाने का प्रयास किया।

''नहीं, मुझे तो चाहिए!'' सीता ने दोहराया।

''समझा करो सीते! अकारण जीवहत्या पाप है।''

''अकारण कहाँ है'', सीता ने हठ पकड़ लिया- ''मैंने ऐसे चर्म वाला मृग अपने जीवन में इससे पूर्व न कभी देखा है, न सुना है। यह तो अद्भुत है। इसकी स्मृतियों को तो सँजोकर रखना पड़ेगा, अन्यथा कोई विश्वास कैसे करेगा कि ऐसे मृग का भी अस्तित्व है इस जगत में और हमने उसे देखा है।'' सीता ने राम की बाँह पकड़कर लगभग झकझोरते हुए आग्रह किया।

"देखा तो मैंने भी नहीं है, परंतु इसका यह अर्थ तो नहीं हुआ कि इसकी सुन्दरता को सराहने के स्थान पर हम इससे जीवन का अधिकार ही छीन लें?"

"सुन्दरता की सराहना तो कर ही रही हूँ, तभी तो मैं इसके चर्म की आकांक्षा कर रही हूँ।" सीता उस मृग के चर्म पर इतना मोहित हो चुकी थीं कि मानने को तैयार ही नहीं थीं।

"परंतु..." राम अभी भी अपने को तैयार नहीं कर पा रहे थे किंतु सीता ने उन्हें वाक्य सम्पूर्ण करने का अवसर ही नहीं दिया, बात काटती हुई बोल पड़ीं - "सारे ऋषि-मुनि मृगचर्म पर बैठकर साधना करते हैं, क्या वे सब अनैतिक हैं? स्वयं प्रभु शिव भी बाघम्बर लपेटते हैं, क्या वे भी अनैतिक हैं?"

"प्रभु शिव के अथवा ऋषियों के आचरण पर टीका करने का अधिकार नहीं है मुझे... परंतु..." राम अब भी संकोच में थे।

अब सीता ने उस अस्त्र का प्रयोग किया जो सारी पत्नियाँ करती हैं - "मैंने इतने वर्षों में कभी कोई अभिलाषा व्यक्त की है आपसे? आज प्रथम बार कुछ माँगा तो आप..." कहते-कहते वे रुआँसी हो आयीं।

अब विवशता थी। सीता के नेत्रों में अश्रु राम सहन नहीं कर सकते थे। वे झपटकर कुटिया के भीतर गये, धनुष-तूणीर धारण करते-करते लक्ष्मण से बोले - "सतर्क रहना लक्ष्मण और यहीं प्रतीक्षा करना। मैं स्वर्णमृग के पीछे जा रहा हूँ।"

"स्वर्णमृग?" लक्ष्मण आश्चर्य से बोले, परंतु राम के पास उन्हें उत्तर देने का समय नहीं था। वे तो कुटिया से बाहर जा चुके थे।

राम बाहर आये तो मृग कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। वे देख ही रहे थे कि पुनः उसकी झलक दिखाई दी। वे तत्काल उसके पीछे दौड़ गये। कुछ ही पलों में मृग और राम दोनों वन में विलुप्त हो गये।

राम के पीछे-पीछे ही लक्ष्मण भी कुटिया से बाहर आये थे। मृग की झलक उन्होंने भी देखी, वे भी विस्मित रह गये।

समय व्यतीत होता गया। सीता उत्साह से राम की प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हें तो कल्पना में कंधे पर स्वर्णमृग लादकर आते हुए राम स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

उत्साह धीरे-धीरे व्यग्रता में बदलने लगा किंतु न तो उस स्वर्णमृग की ही दुबारा कोई झलक दिखाई दी और न राम की। अब सीता की व्यग्रता व्याकुलता में बदल गयी। उन्हें पश्चाताप होने लगा कि क्यों उन्होंने हठ किया। 'ये भी तो, यदि नहीं मिला था तो छोड़ देते, स्वयं तो लौट आते। मैंने यह तो नहीं कहा था कि लेकर ही आना। हाय! अब तो अंधकार भी होने लगा है, ऐसे में ...'

लक्ष्मण शांत थे, उन्हें विश्वास था कि राम को परास्त करने की सामर्थ्य त्रिलोक में त्रिदेवों के अतिरिक्त किसी में नहीं है और वह भी जब धनुष उनके हाथ में हो तब... असंभव। यह जानती तो सीता भी थीं, परंतु पत्नी का हृदय तो तर्कों को नहीं समझता, वे व्याकुल हो रही थीं। अश्रु बस टपकना ही चाहते थे। व्याकुलता में जब उनसे नहीं रहा गया तो वे मैदान के छोर तक जाकर, इधर-उधर टहलने लगीं।

तभी दूर से आती क्षीण सी चीत्कार सुनाई पड़ी - ''हा, लक्ष्मण ऽ ऽ ऽ !''

स्वर बिलकुल राम के समान ही था। सीता और व्याकुल हो उठीं। उनका हृदय अब आशंका से छटपटाने लगा। स्वर लक्ष्मण ने भी सुना, उनके अनुमान के अनुसार स्वर दक्षिण-पश्चिम की ओर से आया था, जिधर से गोदावरी आकर वट-वन की दक्षिणी सीमा बना रही थी। लक्ष्मण को उस ओर देखता देख सीता भी उधर ही देखने लगीं। तभी, इस बार पहले से भी क्षीण, चीत्कार पुनः सुनाई दी। इस बार स्पष्टतः वह दक्षिण-पश्चिम की ओर से ही आयी थी। इस बार सीता संयम नहीं रख सकीं, वे बिलख उठीं। उनके पेट में मरोड़ सी होने लगी। वे पेट पकड़कर वहीं बैठ गयीं।

दोनों चीत्कारें लक्ष्मण ने भी सुनी थीं परंतु उन्हें राम पर विश्वास था। वे शांतचित्त दक्षिण की ओर देखते हुए, स्वर को पहचानने का प्रयास करते रहे। उन्हें उसके राम का होने में संदेह था। लक्ष्मण को अब भी शांत खड़ा देख सीता

से रहा नहीं गया, उनके मुख से निकला - ''प्रतीत होता है, तुम्हारे भइया संकट में हैं, जाकर देखो तनिक।''

''आप चिंता न करें भाभी, भइया प्रत्येक संकट से निपटने में सक्षम हैं।'' लक्ष्मण ने विश्वास के साथ उत्तर दिया।

''तो भी जाकर देखने में क्या कठिनाई है'', सीता कुछ खीज गयीं- ''क्या पता उनके साथ कोई छल हुआ हो!''

''मुझे भी यही प्रतीत होता है कि वह स्वर्णमृग कोई छल था, परंतु भइया छल-बल सबसे निपटने में सक्षम हैं। मुझे वे यहीं प्रतीक्षा करने का आदेश दे गये हैं। अतः मुझे यहीं उनकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।''

''वे मेरी सुरक्षा के उद्देश्य से तुम्हें रुकने को कह गये थे, परंतु मैं यहाँ पूर्ण सुरक्षित हूँ। तुम मेरी चिंता त्यागकर उनकी सहायता के लिये जाओ। उनके साथ वन तो तुम उनकी सहायता के उद्देश्य से ही आये हो।'' सीता ने तर्क किया।

''नहीं भाभी, आप समझने का प्रयास कीजिये। मैं उनके आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता। यह तो एक मृग ही था, संभव है उसके साथ कोई और भी हो, परंतु वह जो भी होगा खर-दूषण और उनके सैन्य से अधिक शक्तिशाली नहीं होगा। उनसे भी...''

लक्ष्मण अपनी बात पूरी कर पाते उससे पूर्व ही सीता तीव्र स्वर में बोलीं - ''मुझे उपदेश मत दो, तत्काल अपने भइया की सहायता हेतु प्रस्थान करो।''

लक्ष्मण अब भी जाने को तत्पर नहीं थे, वे अपनी बात कहते रहे - ''नहीं भाभी, खर-दूषण से युद्ध करने भी वे एकाकी ही गये थे और सबको परास्त किया था। मैं चाहकर भी न तब उनके आदेश का उल्लंघन कर सका था, न अब कर सकता हूँ। न तब उनकी सहायता हेतु जा सका था, न अब जा सकता हूँ।''

सीता आवेश में खड़ी हो गयीं। उनके पेट में मरोड़ें अब भी उठ रही थीं, परंतु आवेश में वे उन्हें भूल गयी थीं। इस बार वे प्रार्थना सी करती हुई बोलीं - ''मुझे यह सब कुछ नहीं ज्ञात, मुझे मात्र इतना ज्ञात है कि इस समय मेरा हृदय डूब रहा

है। मेरा मन कह रहा है कि कुछ अघटनीय घटा है अथवा घटने वाला है। तुम समय व्यर्थ मत करो, जाओ!''

''तब तो मेरा यहीं रुकना और भी आवश्यक है। भइया अपनी सुरक्षा स्वयं कर लेंगे, आपकी सुरक्षा इस समय मेरा प्रथम दायित्व है।''

''व्यर्थ तर्क मत करो, जाकर भइया को देखो।'' व्याकुल सीता आवेश में चीख पड़ीं।

''भाभी, अपने मन पर नियंत्रण कीजिए, उसे सान्त्वना दीजिए।''

''क्या नियंत्रण करूँ? क्या विश्वास करूँ? यही कि मेरा देवर संकट में पड़े मेरे पति की सहायता हेतु जाने में भयभीत हो रहा है।''

''कैसी बात करती हैं भाभी, भइया भूमण्डल पर सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हैं, उन्हें सहायता की आवश्यकता नहीं है।''

''है'', सीता चीख पड़ीं- ''मेरा मन कह रहा है कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है।''

भाभी, आप स्वयं भी विलक्षण योद्धा हैं यदि इस छोटे से संकट में आप विचलित होने लगीं तो आगे तो अभी लंकेश्वर से संग्राम शेष है। तब आपकी क्या अवस्था होगी?''

''मुझे तो अब संदेह हो रहा है तुम्हारी निष्ठा पर।'' सीता इस बार विक्षिप्तों की भाँति चीख पड़ीं।

सीता कितनी भी धीर-गंभीर और साहसी क्यों न हों, थीं तो पत्नी ही! या ऐसा कह लीजिये कि यह नियति का निर्णय था। सीता हठ पकड़े थीं कि लक्ष्मण अपने भइया की सहायता हेतु जायें और लक्ष्मण अपने आप में अडिग थे कि भइया का आदेश है कि मैं यहीं ठहरूँ।

बात बढ़ गयी।

आवेश में सीता कुछ ऐसी बातें बोल गयीं जो उन्हें नहीं कहनी चाहिए थीं। जिनकी उनके जैसी संस्कारशील और विदुषी स्त्री से अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। वे आवेश में राम के प्रति लक्ष्मण की निष्ठा पर संदेह व्यक्त कर बैठीं, वे अपने प्रति लक्ष्मण के भावों की पवित्रता पर संदेह व्यक्त कर बैठीं।

बात दिल पर लेने योग्य थी, लक्ष्मण ने ली। उन्होंने मन ही मन राम से आज्ञा का उल्लंघन करने के लिये क्षमाप्रार्थना की, सीता को प्रणाम किया, ईश्वर से भाभी की रक्षा करने की प्रार्थना की और अपना धनुष उठाकर बुझे मन से दक्षिण-पश्चिम की ओर, जिधर से चीत्कार का स्वर आया था दौड़ गये। परंतु प्रस्थान से पूर्व सीता से निवेदन करते गये - ''भाभी सतर्क रहिएगा और जब तक हमलोग लौट नहीं आते शस्त्र हाथ में ही रखिएगा।''

***

लक्ष्मण को वन में विलुप्त हुए बहुत समय नहीं बीता था कि पीछे के वन, अर्थात पश्चिम की ओर से एक यान निःशब्द कुटिया के आगे प्रांगण में उतरा। यान जब तक ठीक सीता के सिर के ऊपर नहीं आ गया, तब तक उन्हें उसका आभास तक नहीं हुआ। एक तो यान निःशब्द आया था, दूसरे उनका अपना पूरा ध्यान सामने वन में विलुप्त हुए पति और देवर की ओर था। वे उनकी कुशलता-प्रार्थना में लगी हुई थीं।

यान के उतरते ही सीता चौंक पड़ीं। सहसा ही उनका भय तिरोहित हो गया। अपने हाथ में थमी कटार उन्होंने आक्रमण की मुद्रा में उठा ली।

यान से एक सन्यासी वेशधारी व्यक्ति उतरा। परंतु उसकी वेशभूषा सीता को भ्रमित नहीं कर सकती थी। भूमण्डल पर देवों के अतिरिक्त मात्र रावण के पास ही यान था, इसे सीता भलीभाँति जानती थीं। वे फुफकारीं - ''सावधान रावण, तूने भारी भूल कर दी जो एकाकी यहाँ आ गया।'' कहने के साथ ही वे अपनी कटार को तानकर वार करने हेतु तत्पर हो गयीं।

''शांत पुत्री, शांत! मेरा उद्देश्य तुम्हारा अहित करना कदापि नहीं है।'' रावण सान्त्वना भरे स्वर में बोला।

''तेरा हो अथवा न हो, परंतु मेरा है। तूने यदि एक पग भी आगे बढ़ाया तो तेरे लिये हितकर नहीं होगा।''

''भ्रम है पुत्री तुम्हारा कि तुम मुझे रोक सकती हो।'' रावण मुस्कुराता हुआ बोला- ''मैं वृद्धावस्था की ओर अग्रसर अवश्य हूँ परंतु अब भी मेरी भुजाओं में उतनी ही सामर्थ्य है जितनी यौवनकाल में थी। अतः अपनी वाणी और शरीर को व्यर्थ कष्ट देने के स्थान पर शांतचित्त से मेरी बात सुनो और मानो।''

''मुझे नहीं सुननी तेरी बात... और यदि तुझे अपनी भुजाओं पर इतना ही गर्व है, तो छल से मेरे पति और देवर को दूर क्यों किया। उनके सामने आता तब देखती तेरी सामर्थ्य!'' सीता क्रोधावेश में चीखीं।

''तर्क-वितर्क का समय नहीं है मेरे पास। शांति से आकर यान में बैठ जाओ, वनवास का शेष समय अब तुम्हें लंका में ही व्यतीत करना है।''

''कदापि नहीं, सीता वहीं निवास करेगी जहाँ उसके पति होंगे। त्रिलोक में किसी की सामर्थ्य नहीं जो मुझे उनसे विलग कर सके।''

''कोई करना भी नहीं चाहता, परंतु अब वाद-विवाद नहीं'', रावण निर्णायक स्वर में बोला - ''मुझे बलप्रयोग पर विवश मत करो, आकर यान में स्थान ग्रहण करो।''

सीता की समझ में रावण की बात नहीं आ रही थी। वे उसके प्रत्येक शब्द में प्रपंच ही खोज रही थीं। वे पुनः कोई कठोर बात कहने ही जा रही थीं कि अचानक उनके पीछे से गरजदार स्वर गूँजा - ''ठहर जा अधर्मी। सीता को एकाकी देखकर तू अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, परंतु जटायु के रहते तू अपना मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकता।''

***

अगस्त्य के दल के प्रस्थान के उपरांत जटायु उस वन के बाहर पूर्वी छोर पर विचर रहा था, तभी उसने राम को वन से निकलकर इधर-उधर कुछ खोजते देखा। कुछ ही देर में राम पुनः वन में लुप्त हो गये। उसे ऐसा आभास हुआ कि वे उत्तर की ओर गये हैं। वह अभी राम के एकाकी विचरने के विषय में सोच ही रहा था कि उसने अत्यंत क्षीण सी राम के स्वर जैसी ही 'हा लक्ष्मण' की पुकार सुनी, फिर वैसी ही दूसरी पुकार भी सुनी। जटायु को प्रकृति ने अद्भुत दृष्टि और श्रवण-शक्ति प्रदान की थी, अन्यथा किसी अन्य मानव के कानों में उन पुकारों को सुनने की सामर्थ्य नहीं थी। वह विस्मय से भर गया, क्योंकि राम को तो उसने उत्तर की ओर जाते देखा था, किंतु पुकारें दक्षिण की ओर से आयी थीं। एकाएक उसे समझ नहीं आया कि उत्तर की ओर जाये, जिधर उसने राम को जाते देखा था अथवा दक्षिण की ओर- जिधर से 'हा लक्ष्मण' का स्वर आया था। फिर कुछ सोच कर वह दौड़कर वन में आया और अद्भुत गति से उछलकर एक डाल पर चढ़ गया। ऊपर जाकर अपनी अद्भुत दृष्टि की सहायता से वह उत्तर और दक्षिण दोनों ओर राम को खोजने का प्रयास करने लगा। परंतु वह राम को खोज नहीं पा रहा था। राम की अत्यंत क्षीण पदचाप अभी भी उसे उत्तर की ओर से ही आती प्रतीत हो रही थी। वह डाल-डाल ही उत्तर की ओर बढ़ा। तभी वह फिर चौंक पड़ा। इस बार दक्षिण की ओर से लक्ष्मण का 'भइया-भइया' पुकारता स्वर आ रहा था।

'यह क्या, ये दोनों ही इस रात्रि की वेला में सीता को एकाकी छोड़कर वन में विचर रहे हैं?' उसके मन ने प्रश्न किया - 'और यह लक्ष्मण के स्वर में इतनी व्यग्रता क्यों है?'

अब उसने लक्ष्मण के स्वर का अनुसरण करने का निश्चय किया। उसे विश्वास था कि वन के भीतर भागते लक्ष्मण से अधिक तीव्रता से वह डाल-डाल दौड़ सकता था। सुगमता की दृष्टि से वह और ऊपर चढ़ा। और ऊपर चढ़ते ही वह फिर चौंक पड़ा। उसे पश्चिमी छोर से ऊपर उठता पुष्पक दिखाई पड़ गया था।

'ओह तो यह लंकेश का छल है। अवश्य ही उसने किसी छल से दोनों भाइयों को वन में भटका दिया है और अब एकाकी सीता पर आघात करना

चाहता है।' यह विचार मन में आते ही वह क्रोध में भर उठा और सीता की रक्षार्थ कुटीर की ओर दौड़ पड़ा। उसके पास शस्त्र के नाम पर मात्र उसके लम्बे-लम्बे नख थे और एक छोटा सा चाकू। परंतु उसका मानना था कि युद्ध में शस्त्र से अधिक साहस महत्वपूर्ण होता है, उसकी उसमें कमी नहीं थी।

वह आकर सीधा रावण से भिड़ गया।

वह बहुत वृद्ध था, तो भी उसने रावण की अपेक्षा से बहुत अधिक शौर्य का प्रदर्शन किया। रावण के शरीर पर कई आघात पहुँचाने में वह सफल रहा। सीता के हाथ में भी कटारी ही सही, शस्त्र था। वे चपल भी थीं और युद्धनिपुण भी। उन्होंने भी दायें-बायें से कुछ आघात रावण को दिये। फिर भी यह युद्ध बराबरी का तो नहीं था। रावण, रावण था। त्रिलोक विजयी रावण। शिव का विशालकाय चंद्रहास उसके हाथ में था। जटायु को धराशायी होने में अधिक समय नहीं लगा।

जटायु का प्रतिरोध समाप्त होते ही रावण ने सीता की ओर ध्यान दिया। अब उसने न तो सीता से कोई वार्ता करने का प्रयास किया, न ही उनके प्रलाप पर कोई ध्यान दिया। बस, झपटकर कटार थामे उनके हाथ की कलाई अपनी मुट्ठी में जकड़ ली। एक झटके में ही कटार उनके हाथ से छूटकर गिर पड़ी। फिर उसने किसी गुड़िया के समान उन्हें कमर से पकड़कर उठाया और लाकर यान में रख दिया। सीता ने छूटने का बहुत प्रयास किया परंतु सफल नहीं हो सकीं। कुछ ही पलों में पुष्पक पुनः आकाश में उठ चुका था।

***

राम को पुकारते हुए लक्ष्मण पूरा वन पारकर गोदावरी के तट तक पहुँच गये, परंतु न तो राम की ओर से कोई उत्तर मिला और न ही राम अथवा उस कथित स्वर्ण-मृग की कोई झलक ही दिखी। अब उनका संदेह विश्वास में परिवर्तित हो गया था कि निश्चित ही छल किया गया है। छल रावण के अतिरिक्त किसी अन्य

की ओर से होने का कोई प्रश्न ही नहीं था। उनके सामने अब प्रश्न यह था कि क्या किया जाये?

सामने दूर तक गोदावरी का विस्तार था, यदि मृग इधर आया होता तो ऐसे खुले में तो भइया के बाण से उसका बचना असंभव ही था। निस्संदेह वे दोनों वन में ही हैं। लक्ष्मण वापस लौट पड़ें। आते समय वे चीत्कार की दिशा का अनुसरण करते हुए भागते चले आये थे किंतु वापसी में वे चारों ओर देखते हुए, वट-वन के भीतरी और बाहरी दोनों भागों में दायें-बायें बढ़ते हुए चल रहे थे। राम को पुकारना उन्होंने बंद नहीं किया था, परंतु उनका सारा प्रयास अभी तक निष्फल ही जा रहा था।

***

सीता के अपहरण के लिये रावण कृतसंकल्प था। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उसने मारीच के साथ अनेक संभावनाओं पर विचार किया था। उसे विश्वास था कि ऐसे स्वर्णिम चर्म वाले मृग के आखेट का प्रलोभन कोई राजपुरुष नहीं रोक पायेगा। फिर भी यदि राम-लक्ष्मण प्रलोभन में नहीं फँसते तो दूसरी और फिर तीसरी योजना की रूपरेखा भी उसके मस्तिष्क में लगभग निश्चित थी। यह उनका भाग्य था कि दूसरी योजना पर कार्य करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। राम और लक्ष्मण तो प्रलोभन में नहीं फँसे किंतु सीता फँस गयीं।

***

योजना की सफलता के लिये मारीच के साथ रावण ने अनेक संभावनाओं पर विचार किया था। उसी का परिणाम था कि इस समय मारीच सभी स्थितियों के लिये मानसिक रूप से तैयार था।

सन्यासी का वेश धरे रावण के साथ, पुष्पक पर ही वह लंका से यहाँ तक आया था। पुष्पक में ही उसने स्वर्णमृग का रूप धरा था। इस कार्य हेतु आवश्यक समस्त सामग्री पहले ही पुष्पक में रखवा दी गयी थी। वह सामग्री उपलब्ध कराना रावण के लिये चुटकी बजाने जैसा ही था।

रावण ने पुष्पक को कुटिया के पीछे, पश्चिम की ओर, ठीक वन से सटाकर उतारा था। वहाँ से दोनों ने वन में प्रवेश किया था और मध्य के प्रांगण, जिसमें कुटिया स्थित थी, की सीमा तक आ गये थे। वहीं छिपे वे दोनों राम, लक्ष्मण और सीता के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे।

जैसे ही उन तीनों ने कुटिया में प्रवेश किया, रावण मारीच से बोला - ''जाओ।''

आदेश होते ही मारीच पुनः वन में प्रविष्ट हुआ और वन की भीतरी परिधि के सहारे-सहारे अर्द्धवृत्ताकार चक्कर लगाता हुआ सामने पूर्वी भाग में, कुटीरों के द्वार के बिलकुल सामने, पहुँच गया।

जब तक राम उसके पीछे आने के लिये नहीं बढ़े, वह बार-बार उन्हें वृक्षों के तनों के पीछे से अपनी झलक दिखलाता रहा परंतु जैसे ही उसने लक्ष्य किया कि राम उसकी ओर बढ़ रहे हैं, वह एक वृक्ष की ओट में होकर सीधा हुआ और ऊपर चढ़ता चला गया। पत्तों में अपने को छिपाये वह एक डाल से चिपका रहा।

कुछ ही पलों के उपरांत राम दौड़ते हुए उस तने के निकट से निकल गये। वे जब पर्याप्त आगे पहुँच गये तो मारीच ने अपने शरीर पर ओढ़ा हुआ, रावण द्वारा प्रदत्त वह स्वर्णिम आभा वाला मृगचर्म उतारा और उलटकर लपेट लिया। उसे उसने वहीं पत्तों के बीच एक जटा की सहायता से डाल से बाँध दिया। फिर उसने वेश परिवर्तन के लिये पहना हुआ अन्य सब कुछ भी उतारकर एक डाल पर लटका दिया। रात के अँधेरे में वह सब देखा नहीं जा सकता था और प्रातःकाल उन सबको देख भी लिये जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला था। वह तो लक्ष्मण के वन में प्रवेश करते हीं विलुप्त होने का संकल्प कर चुका था। ऐसा विलुप्त कि बाद में खोजने पर भी राम को ही नहीं, रावण को भी उसकी परछाई तक न देखने को मिले। वस्त्र के नाम पर इस समय उसके शरीर पर मात्र एक लँगोटी थी।

जब राम पर्याप्त आगे निकल गये तो वह डाल-डाल ही दक्षिण की ओर बढ़ा। पर्याप्त आगे जाकर उसने 'हा-लक्ष्मण!' की पुकारें लगायीं और एक डाल से चिपक गया और पत्तों में छिपकर लक्ष्मण के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। जब लक्ष्मण भी पर्याप्त आगे निकल गये तो वह डाल-डाल ही वापस उत्तर की ओर बढ़ चला।

उसका उद्देश्य राम और लक्ष्मण को भटकाना था, वह पूरा हो चुका था। अब उसे स्वयं को विलुप्त होना था। वह न तो राम की दृष्टि में दुबारा पड़ना चाहता था और न ही रावण की।

मारीच को भेजने के उपरांत रावण स्वयं वहीं छिपा मारीच और राम आदि की गतिविधियों पर दृष्टि रखे रहा। जब सीता लक्ष्मण से राम की सहायता हेतु जाने का हठ करने लगीं, तब वह वापस पुष्पक की ओर लौटा... तदुपरांत जो कुछ घटा वह आपको पता ही है।

***

देर तक भटकने के उपरांत दोनों भाई अंततः वापस लौट आये।

पहले राम लौटें। यह तो अब उन्हें पूर्णतः स्पष्ट हो गया था कि वह स्वर्णमृग नहीं कोई मायाजाल था, जो उन्हें ही छलने के लिये रचा गया था। उन्हें यह भी स्पष्ट हो गया था कि इस मायाजाल का रचयिता लंकेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि इस मायाजाल की रचना के पीछे रावण का उद्देश्य क्या हो सकता है, इसी कारण वे व्यग्र हो रहे थे। उन्हें सीता की चिन्ता हो रही थी। मन में एक आश्वासन भी था कि लक्ष्मण सीता के पास है, उनके होते कोई सीता का कुछ भी अहित नहीं कर सकता। फिर भी उनकी व्यग्रता उनके नियंत्रण में नहीं आ रही थी और वे तीव्र गति से अपने कुटीर की ओर दौड़े जा रहे थे।

अब तक प्रकाश बहुत कम हो गया था। जैसे ही राम ने वन पार किया, उन्हें कुटीरों से थोड़ा आगे एक मानवाकृति भूमि पर पड़ी दिखाई दी। एक बार तो वे हतप्रभ रह गये- 'क्या लक्ष्मण.... ?'

''लक्ष्मऽऽण'' अपनी गति और बढ़ाते हुए उन्होंने लगभग चीखते हुए पुकारा, परंतु उन्हें उनकी पुकार का कोई उत्तर नहीं मिला।

थोड़ा आगे बढ़ते ही उन्हें यह तो स्पष्ट हो गया कि आकृति लक्ष्मण की नहीं है, परंतु अब नये प्रश्न उन्हें मथने लगे- 'तो फिर कौन है यह? और लक्ष्मण व सीता कहाँ हैं? कोई दुर्घटना घट गयी क्या उनके साथ? ...परंतु लक्ष्मण को परास्त करना तो सहज नहीं है... तो क्या रावण स्वयं आया था? उन्हें इस सोच में तथ्य प्रतीत हुआ, लंकेश ही लक्ष्मण को विवश कर सकता था। परंतु यह जो कोई भी अचेत सा पड़ा है वह लक्ष्मण तो नहीं है...'

राम की पुकारें निष्प्राण से पड़े जटायु की चेतना से भी टकरायीं। अपनी सम्पूर्ण शक्ति को सँजोकर भी वह बस फुसफुसा ही पाया - ''राऽऽम!''

स्वर राम ने सुना भी और पहचाना भी। दौड़ते-दौड़ते ही वे बोले - ''तात जटायु! क्या हुआ आपको?''

जटायु ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह राम के और निकट आने तक पुनः शक्ति संचित करने लगा।

दो ही पल में जटायु के निकट पहुँच गये। वहाँ की स्थिति स्तब्ध करने वाली थी, जटायु जैसे रक्त के सरोवर में पड़े थे।

पहुँचते ही, झटके से राम घुटनों के ऐसे बैठे मानो गिर ही पड़े हों। उन्होंने तत्काल जटायु का सिर अपनी गोद में खींचा और व्यग्र स्वर में पूछा - ''क्या हुआ है यहाँ तात? किसने दिये आपको ये आघात?''

''दुष्ट लंकेश'', जटायु ने सम्पूर्ण शक्ति एकत्र कर अपना हाथ थोड़ा सा उठाकर दक्षिण की ओर संकेत करते हुए कहा - ''वह सीता को...'' कहते-कहते ही जटायु रक्तवमन करने लगा।

इतना सुनते ही राम और व्यग्र हो उठे। उनकी आशंका सत्य थी, लंकेश आया था यहाँ। सीता के साथ कुछ अघटनीय घटित हुआ है, इसका विचार करते ही उनका हृदय काँप उठा। जटायु की पीठ सहलाते हुए उन्होंने काँपते स्वर से प्रश्न किया - ''क्या किया सीता के साथ उसने?''

''ले गया।'' हाँफते हुए जटायु ने उत्तर दिया।

राम पर जैसे वज्रपात हुआ हो। एक पल को तो उन्हें जटायु के कथन पर विश्वास ही नहीं हुआ या जैसे उन्हें समझ ही नहीं आया कि जटायु ने कहा क्या है। वे लगभग चीखते हुए बोले - ''क्या? क्या कहा आपने?''

जटायु को अपनी चेतना लुप्त होती प्रतीत हो रही थी। उसमें बोलने की शक्ति भी नहीं बची थी। अपनी सम्पूर्ण इच्छाशक्ति को एकत्र कर वह धीरे से फुसफुसाया- ''रावण... सीता को... ले गया?'' कहने के साथ ही वह हाँफता हुआ एक बार फिर रक्तवमन करने लगा।

इधर राम जैसे अपनी सुध खो चुके थे। हठात् ही उनके मुख से एक 'आह!' निकली और कुछ पल के लिये वे भी चेतनाशून्य से हो गये।

कुछ पल बाद उन्होंने स्वयं को सँभाला और विकलता से पूछा - ''और लक्ष्मण... लक्ष्मण कहाँ है?''

परंतु जटायु अब और कोई उत्तर देने की स्थिति में ही नहीं था। उसकी गर्दन एक ओर लुढ़क गयी। उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

राम को स्थिति समझते देर नहीं लगी। समझते ही वे हताशा में चीख पड़े-''ताऽऽत!!''

अगले ही क्षण उन्हें लक्ष्मण की कुशलता की चिंता हुई। बेसुध से होकर वे पुनः चीखे - ''लक्ष्मऽऽण!''

***

लक्ष्मण भी अब तक इस भीतर वाले मैदान के निकट तक आ चुके थे। राम की चीख सुनते ही उनका हृदय भी तीव्र गति से धड़क उठा - 'भइया तो कभी इस

प्रकार अधीर नहीं होते... और वे इस प्रकार किसे पुकार रहे हैं... तात से उनका आशय कहीं जटायु से तो नहीं है... तो क्या हुआ है तात जटायु को।' जब तक वे कोई निष्कर्ष निकाल पाते, उन्होंने राम की दूसरी चीख सुनी। इस बार वे उन्हें ही पुकार रहे थे।

अब तक वन को पार कर मैदान के छोर तक आ चुके थे। भइया के मुख से अपने लिये पुकार सुनते ही वे वहीं से चिल्लाये - ''मैं इधर हूँ भइया!!''

वे तीव्र गति से कुटीर के पास बैठे राम की ओर दौड़े।

उन्हें दक्षिणी छोर से प्रकट होते देख राम यही समझे कि वे रावण के पीछे गये होंगे। उन्होंने प्रश्न किया - ''मिला क्या?''

परंतु लक्ष्मण समझे कि राम स्वर्ण-मृग के विषय में पूछ रहे हैं, रावण के आगमन के विषय में तो उन्हें ज्ञात ही नहीं था।

''नहीं भइया! छल हुआ है हमारे साथ।''

''वह तो हुआ ही है, परंतु तुम्हारे होते दशानन तात जटायु की हत्या कर सीता को कैसे ले जा पाया?''

''क्या?'' लक्ष्मण चौंके - ''क्या रावण स्वयं आया था यहाँ?''

''तुम्हें ज्ञात नहीं?'' लक्ष्मण के उत्तर से राम उलझ गये- ''तो फिर तुम किसके पीछे गये थे?''

''मैं तो भाभी के आदेश से आपकी सहायता हेतु गया था।''

राम को लक्ष्मण पर कभी क्रोध नहीं आता था, लक्ष्मण उन्हें इसका अवसर ही नहीं देते थे। परंतु इस समय लक्ष्मण का यह उत्तर सुनते ही विकल राम क्रोध से चीख पड़े - ''क्याऽऽऽ? तुम सीता को यहाँ अरक्षित छोड़कर मेरी सहायता हेतु गये थे? तुम्हें मेरे धनुष और मेरी भुजाओं की सामर्थ्य पर अविश्वास कैसे हो गया? तुम मेरे आदेश की अवहेलना करने का साहस कैसे कर बैठे?''

''मैं विवश था भइया।'' अब तक लक्ष्मण भी निकट आ चुके थे। वे भी भूमि पर जटायु के शव के निकट घुटने टेककर बैठते हुए बोले- ''मैं नहीं करना चाहता था परंतु भाभी का आदेश था।''

''परन्तु तुम्हें तो मैं सीता की सुरक्षा का दायित्व सौंपकर गया था!''

''भइया, मैंने बहुत प्रतिरोध किया किंतु भाभी कैसे भी नहीं मानीं, क्या करता मैं?'' लक्ष्मण ने धीमे से उत्तर दिया।

''अब देखो, तुम्हारी तनिक सी असावधानी का कितना भयंकर परिणाम हुआ है!''

लक्ष्मण ने अपराधी की भाँति सिर झुका लिया।

कुछ पल मौन रहा। जटायु का शव अपने वक्ष से भींचे राम के सुबकने का स्वर ही मौन को भंग कर रहा था। वहाँ निरंतर कलरव करते रहने वाले पक्षी भी मानो उस अनर्थ को अनुभव करते हुए मौन हो गये थे।

कुछ समय बाद लक्ष्मण ने साहसकर प्रश्न किया - ''परंतु हुआ क्या है भइया? भाभी कहाँ हैं? तात जटायु मृत्यु से पूर्व कुछ बता पाये आपको?''

''मात्र इतना कि दशानन सीता को ले गया है।''

''क्या ऽ ऽ ऽ ?'' लक्ष्मण के मुख से हठात् आर्तनाद निकला। कुछ पल रुककर उन्होंने कहा- ''तात जटायु संभवतः भाभी को बचाने के प्रयास में ही...''

''यही प्रतीत होता है।''

''तो अब तो यहाँ और रुकने का कोई कारण ही शेष नहीं रहा!''

''तात की अंतिम क्रिया तो करनी ही होगी।''

''मैं लकड़ियाँ एकत्र करता हूँ उस हेतु।'' कहते हुए लक्ष्मण उठ खड़े हुए।

वन था, वहाँ लकड़ियों की क्या कमी थी। थोड़ी ही देर में लक्ष्मण ने ढेर सारी लकड़ियाँ एकत्र कर दीं, परंतु चिता को अग्नि तो सूर्योदय से पूर्व नहीं दी जा सकती थी! दोनों विकलता से सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगे।

सूर्योदय से पूर्व ही दोनों भाई नित्य क्रियाओं से निवृत्त हो लिये। जैसे ही सूर्य की प्रथम किरण वृक्षों की फुनगियों पर चमकी, राम ने अपने हाथ में थमी जलती हुई टहनी, जटायु की चिता में स्पर्श करा दी।

अंतिम-संस्कार सम्पन्न होते-होते सूर्य पर्याप्त ऊपर चढ़ आया था। अब विलम्ब का कोई कारण नहीं था, दोनों अपने गन्तव्य की ओर बढ़ चले।

30.अशोक-वाटिका में

रावण के लिये सीता के अपहरण से भी अधिक दुष्कर सिद्ध हुआ उन्हें लंका तक लाना।

उसने बलात् उन्हें उठाकर पुष्पक में डाल अवश्य दिया, परंतु उन्होंने छूटने के प्रयास में कोई कसर नहीं उठा रखी। यदि पुष्पक से कूद पड़ने का कोई मार्ग होता तो वे निश्चय ही कूद पड़तीं, इसकी चिंता किये बिना कि आकाश से कूदने के उपरांत मृत्यु निश्चित थी। आरम्भ में उन्होंने बार-बार पुष्पक की दीवारों पर भी अपनी मुट्ठी से वार किया परंतु कोई लाभ होता न देखकर अन्त में उन्होंने प्रयास छोड़ दिया। न जाने किस धातु की बनी थीं दीवारें जो पारदर्शी तो थी परंतु अत्यंत सुदृढ़ थी।

अब उन्होंने अपना पूरा ध्यान पुष्पक को संचालित करते रावण की पीठ पर आघात करने में लगाया। उनकी कटारी वहीं पंचवटी में गिर गयी थी, अन्यथा उन्होंने रावण के प्राण ही ले लिये होते। परंतु इससे भी कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ। रावण उनके वारों से अविचलित पुष्पक का संचालन करता रहा।

रावण बारम्बार उनसे शान्त बैठने का निवेदन कर रहा था। उन्हें दिलासा दे रहा था कि उन्हें न तो भयभीत होने की आवश्यकता है, न ही किसी भी विषय में चिंता करने की। लंका में उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा जायेगा। परन्तु सीता कैसे विश्वास कर लेती उसकी बात पर! रावण उनके पति का प्रतिद्वन्द्वी था। उसने छल से उनका अपहरण किया था।

तभी उन्हें नीचे कुछ कोलाहल सा सुनाई दिया। पुष्पक की दीवारों में ऊपर की ओर कुछ छिद्र थे, संभवतः बंद विमान में शुद्ध वायु के आवागमन के लिये। वे छिद्र यद्यपि छोटे-छोटे ही थे, तथा इतने बड़े थे कि सीता सहजता से उनमें से अपनी कलाई बाहर निकाल सकती थीं। इन छिद्रों के कारण ही नीचे का कोलाहल उन तक पहुँच भी पा रहा था।

अब उन्होंने नीचे ध्यान दिया।

ध्यान देते ही उन्हें आभास हो गया कि पुष्पक बहुत अधिक ऊँचाई पर नहीं उड़ रहा है। इससे पूर्व उन्होंने कोई विमान नहीं देखा था इसलिये उनके विषय में उन्हें कुछ भी ज्ञात नहीं था। परंतु इस समय इस विषय में सोचने का अवसर नहीं था। उन्होंने कोलाहल पर ध्यान देते हुए उसके कारण को समझने का प्रयास किया। यद्यपि चाँदनी में दृश्य बहुत स्पष्ट तो नहीं था, फिर भी उन्हें इतना तो समझ आ ही गया कि आगे की ओर, वन के मध्य स्थित एक छोटी सी पहाड़ी पर, पुष्पक को देखकर कुछ व्यक्ति कोलाहल कर रहे हैं। भले ही वे व्यक्ति खिलौनों से कुछ ही बड़े दिख रहे थे परंतु फिर भी प्रयास करने पर उनकी गतिविधियों को पहचाना जा सकता था। तत्काल उनके मस्तिष्क में विचार कौंधा - 'यदि मैं इन्हें देख पा रही हूँ तो ये भी मुझे देख पा रहे होंगे।' विचार आते ही जैसे उनके हाथों ने स्वयं अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया उन्होंने अपनी कलाइयों से कंगन खींचे और उचक कर छिद्र से नीचे फेंक दिये।

अब तक पुष्पक ठीक उन व्यक्तियों के ऊपर आ गया था।

उन्होंने इतने पर ही बस नहीं किया, अपने गले का हार भी एक झटके से खींचा और फेंक दिया।

अब तक पुष्पक उन व्यक्तियों को पार कर आगे बढ़ गया था, परंतु वे निराश नहीं हुईं, एक झटके से अपने दोनों कानों से कुंडल खींचे और उचककर पीछे के छिद्र से जितनी जोर से फेंक सकती थीं बाहर फेंक दिये।

उन्हें कुछ संतोष हुआ यह करके - 'यदि सौभाग्य से राम इन व्यक्तियों से मिले तो ये अवश्य उन्हें सूचित कर देंगे कि रावण मेरा अपहरण कर ले गया है। इस पुष्पक को ये अवश्य ही पहचानते होंगे।' वे हाथ जोड़कर मन ही मन प्रार्थना करने लगीं - 'हे ईश्वर! राम और लक्ष्मण की शीघ्र ही इनसे भेंट करा देना ताकि उन्हें मेरे विषय में ज्ञात हो सके। ...तात जटायु तो पता नहीं उन्हें सूचना देने हेतु जीवित बचे भी होंगे अथवा नहीं।'

इस सफलता से उनके चित्त का उद्वेग कुछ शांत हुआ। चित्त कुछ शांत हुआ तो उन्हें यह आभास भी हुआ कि रावण अथवा पुष्पक से जूझना अपनी ऊर्जा व्यर्थ नष्ट करना ही था।

वे शांत होकर बैठ गयीं और चिंतन करने लगीं।

शांत होते ही उन्हें अपनी नादानी का आभास होने लगा। उन्हें ग्लानि होने लगी कि अकारण ही उन्होंने लक्ष्मण की निष्ठा पर संदेह कर उन्हें अपशब्द कहे। 'विधाता! तुम साक्षी हो, जैसे ही आर्यपुत्र इस आततायी का वधकर मुझे मुक्त करायेंगे, मैं सर्वप्रथम लक्ष्मण से अपनी धृष्टता हेतु क्षमायाचना करूँगी।'

***

पुष्पक जब अपने निर्धारित प्रांगण में उतरा तो अर्द्धरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। रावण पुष्पक से उतरा और सीता की ओर हाथ बढ़ाते हुए सहज स्वर में बोला-''आओ।''

''मुझे नहीं आना।'' सीता ने अपने हाथ पीछे खींचते हुए मुँह घुमाकर उत्तर दिया।

''हर समय हठ अच्छा नहीं होता, मुझे बलप्रयोग पर विवश मत करो।''

सीता ने क्रोध से उसकी ओर पलट कर देखा। दो पल को दोनों की दृष्टि परस्पर उलझी। रावण की इस दृष्टि ने अचानक सीता को मिथिला में शिव-धनुष के सामने हाथ जोड़े खड़ा रावण स्मरण हो आया। धनुष को प्रणाम करने के उपरांत घूमते समय अपनी ओर एकटक देखता हुआ रावण स्मरण हो आया। इन स्मृतियों ने उनके मस्तिष्क को उलझा दिया। भयभीत वे एक क्षण को भी नहीं हुई थीं, वस्तुतः भय से तो उनका परिचय ही नहीं था। वे कदाचित सम्मोहित भी नहीं थीं, अथवा यह सम्मोहन का ही कोई प्रकार था, कुछ भी हो परंतु जो भयंकर आक्रोश था उनके मन में, वह आक्रोश इन स्मृतियों के कारण शिथिल पड़ गया। पंचवटी से यहाँ आने तक रावण द्वारा दिखाई गयी सहनशीलता ने, इस शिथिलता का मार्ग प्रशस्त किया। उसी से उपजी दुविधा में, वे अनजाने ही

पुष्पक से उतर आयीं। फिर भी उन्होंने रावण का हाथ नहीं थामा, अपने हाथ से उसका हाथ एक ओर झटकते हुए वे स्वयं ही उतरीं।

''आओ।'' रावण पुनः बोला और कुछ ही पगों की दूरी पर प्रतीक्षा कर रहे रथ की ओर बढ़ चला।

सीता भी उसके पीछे बढ़ चलीं।

रावण रथासीन होकर, सीता के लिये स्थान बनाता हुआ, रथ के दूसरे कोने में सरक गया। इस बार उसने सीता को सहारा देने के लिये हाथ भी नहीं बढ़ाया न बैठने का आग्रह ही किया। बिना कहे ही सीता समझ गयीं कि उन्हें रथ पर बैठना है। ऊर्जा को व्यर्थ नष्ट करने से कोई लाभ नहीं होगा, यही सोचकर वे निरासक्त भाव से रथ पर उसकी बगल में बैठ गयीं, फिर भी दोनों के मध्य पर्याप्त स्थान रिक्त था।

''महारानी के प्रासाद।'' रावण सारथी से सम्बोधित हुआ।

'क्या इसने मुझे महारानी की दासी बनाने का निर्णय किया है?' एकाएक सीता के मन में विचार आया, परंतु वे बिना कोई प्रतिक्रिया दिये बैठी रहीं।

रथ एक भव्य प्रासाद के द्वार पर पहुँच गया। प्रासाद का मुख्य द्वार खुला ही हुआ था।

''शयनकक्ष।'' कमर से दोहरे होते हुए प्रतिहारियों के प्रणाम का थोड़ा सा सिर झुकाकर उत्तर देते हुए, रावण ने सारथी को आदेश दिया। रथ मंदोदरी के शयनकक्ष की ओर बढ़ चला।

जब रावण ने सीता के साथ मंदोदरी के शयनकक्ष में प्रवेश किया तो वह उनके स्वागत हेतु कक्ष के द्वार की ओर बढ़ती हुई मिली। स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि वह अभी-अभी अभी नींद से जागी थी, अथवा जगायी गयी थी। था भी यही, रावण को दूर से आते देखकर दासियों ने आकर उसे जगाया था।

''महारानी सँभालिये इसे। यह आपके संरक्षण में है, इसे कोई असुविधा नहीं होनी चाहिए।''

''कदापि नहीं होगी...'' कहकर मंदोदरी एक क्षण को अटकी, फिर उसने प्रश्न किया- ''किंतु, इसका परिचय तो दीजिए।''

रावण कोई उत्तर देता उससे पूर्व ही सीता विरोध में बोल पड़ीं - ''मैं प्रासाद में नहीं रह सकती।''

सीता के इस वाक्य से मंदोदरी और रावण दोनों ही चौंक पड़े। मंदोदरी ने प्रश्नवाचक दृष्टि से रावण की ओर देखा परंतु रावण बस मुस्कुराकर रह गया।

''मैं प्रासाद में निवास नहीं कर सकती।'' सीता दृढ़ स्वर में पुनः बोलीं।

''अभी सो जाओ, प्रातःकाल वार्ता करेंगे इस संबंध में।'' रावण ने उत्तर दिया और कक्ष के द्वार की ओर बढ़ चला।

''आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया!'' पीछे से मंदोदरी का स्वर आया।

''अपना परिचय यह स्वयं दे देगी, शेष कल ही मैं भी आपसे वार्ता करूँगा'', रावण पलटकर बोला - ''तब तक इसकी सुविधा और सुरक्षा आपका उत्तरदायित्व है।''

मंदोदरी कुछ और पूछती अथवा सीता कोई और प्रतिरोध कर पातीं उससे पूर्व ही रावण कक्ष से बाहर जा चुका था।

***

रावण द्वारा सीता को अपहृत कर लंका लाये जाने का समाचार लगभग तत्काल ही प्रहस्त को प्राप्त हो गया। सुनते ही उसने अपना सिर पीट लिया - 'सत्य ही कहा था पिता ने, यह स्त्री कुल के विनाश का कारण बनने वाली है।' रात्रि का तीसरा प्रहर चल रहा था, परंतु उसी समय वह भागा-भागा वज्रमुष्टि के पास पहुँचा।

वज्रमुष्टि की नींद भी समाचार सुनते ही उड़ गयी। वह बोल पड़ा - ''एक विक्षिप्त ने तो पहले ही जीवन नरक कर रखा था, अब प्रतीत होता है यह रावण भी विक्षिप्त हो गया है।''

''ऐसा ही प्रतीत होता है'', प्रहस्त ने उत्तर दिया- ''विगत दिनों के उसके व्यवहार से स्पष्ट है कि वह हमारी भूमिकाओं को लेकर संदिग्ध है। ऐसे में निश्चय ही उसने हमारे विषय में गहन अध्ययन किया होगा और तब उससे यह भी छिपा नहीं होगा कि यह स्त्री लंका के लिये कितनी अशुभ है, फिर भी उसे यहीं उठा लाया।''

''सत्य है, फिर यदि लाना ही था तो अपने बाहुबल से लाता, उन दोनों भाइयों का वध करके लाता। छल से चोरों के समान एक स्त्री को उठा लाया है... त्रिलोकविजयी रावण। जैसे बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त होगी उसे इस कृत्य से!'' वज्रमुष्टि ने खीजते हुए व्यंग्य किया।

''कैसे कर देता उनका वध'', प्रहस्त भी व्यंग्य भरे स्वर में बोला - ''राम तो जामाता है, उसका वधकर अपनी पुत्री को विधवा कैसे बना सकता था। सारा कुल भले ही मिट जाये, इसे अपनी पुत्री का मोह सता रहा है।''

''इतना ही मोह था पुत्री से तो डंके की चोट पर पुत्री स्वीकार कर सम्मान से बुलाता।''

''क्या पता, उसका भी प्रयास किया हो परंतु उन लोगों ने ही स्वीकार न किया हो!''

''ओह! ...समझ नहीं आता क्या कहूँ इसकी बुद्धि को!''

प्रहस्त ने अनुभव किया कि उनकी वार्ता विषय से भटक रही है। वह उसे पुनः विषय पर लाने का प्रयास करता हुआ बोला - ''भ्राता! उचित होगा कि हम अब इस पर विवाद न कर, यह विचार करें कि भविष्य में क्या करणीय है।''

''तुम्हें कोई मार्ग दिखता है क्या?'' - वज्रमुष्टि ने पूछा।

''दिखता होता तो इस अर्द्धरात्रि में आपकी निद्रा में व्यवधान भला क्यों डालता!''

वज्रमुष्टि चिंता में सिर हिलाने लगा, फिर एकाएक बोला - ''क्यों न हम गुप्त रूप से प्रजा को इसके विरुद्ध विद्रोह के लिये प्रेरित करें!''

''शयन से पूर्व क्या मदिरा की मात्रा कुछ अधिक हो गयी थी?'' प्रहस्त ने विद्रूप भरे स्वर में व्यंग्य किया- ''प्रजा उसके विरुद्ध हमारी बात सुनेगी भला। वह तो उसी की भक्त है, जो वह पढ़ा देगा शुक की भाँति वही रटने लगेगी।''

''तब?''

उत्तर में प्रहस्त ने निराशा से सिर हिलाया। कुछ पल मौन रहा फिर दूसरा प्रस्ताव किया - ''क्यों न विभीषण का उपयोग किया जाये?''

''उस दिन देखा नहीं था, वही सबसे अधिक उन ढोंगी तपस्वियों के पक्ष में बोल रहा था!''

''वही तो मैं भी कह रहा हूँ। विभीषण राम का पक्षधर है, छल से उसकी स्त्री का अपहरण करने के रावण के कृत्य का वह अवश्य विरोध करेगा। आप जानते ही हैं कि वह नैतिकता का कितना बड़ा पक्षधर है अतः वह तो इसे अनीति की ही संज्ञा देगा! क्या पता उसके प्रबल विरोध के सम्मुख रावण मान ही जाये!''

''मान लिया। परंतु रावण के इस कृत्य को अनुचित ठहराकर भी क्या कर लेगा वह? वह क्या राम पर आक्रमण अथवा उसके वध का परामर्श दे देगा?''

''उसका राम पर आक्रमण का परामर्श देना तो जगत में सर्वाधिक असंभव संभावना होगी'', प्रहस्त इस हताशा में भी हँस पड़ा - ''परंतु वह सीता को वापस करने का परामर्श अवश्य देगा।''

''उससे क्या होगा?''

''भ्राता! समझा कीजिये। यदि विभीषण सफल हुआ तो यह अशुभ स्त्री कम से कम लंका से दूर तो चली जायेगी। लंका में वह रावण के संरक्षण में है। यहाँ हम उसका वध तो दूर, उसका तिलमात्र अहित करने का भी नहीं सोच सकते।''

''हूँ ऽ ऽ!'' वज्रमुष्टि ने इस तरह हुँकारी भरी, जैसे उसकी समझ में बात आ गयी हो। प्रहस्त ने अपनी बात आगे बढ़ायी - ''हम उस पर वन में ही आघात करने का साहस कर सकते हैं। यदि रावण इसे लौटा देता है तो लंका का राम

से विवाद भी समाप्त हो जायेगा और तब हम उसके साथ मित्रता का ढोंग भी कर सकते हैं। रावण भी इससे प्रसन्न ही होगा। उस छद्म-मित्रता के आवरण में छिपकर हम कोई उपाय खोज सकते हैं।''

वज्रमुष्टि कुछ पल सोचता रहा फिर आशंकित भाव से बोला - ''असंभव, तुमने कैसे सोच लिया कि रावण सीता को वापस करना स्वीकार कर लेगा!''

''भ्राता, हमारे पास अन्य कोई विकल्प भी तो नहीं है। इस संभावना को डूबते को तिनके का सहारा ही समझ लीजिये और शिव से प्रार्थना कीजिये कि रावण विभीषण का प्रस्ताव स्वीकार कर ले। यदि नहीं करता, तो निश्चय ही लंका को दुर्दिन देखने के लिये तैयार रहना होगा।''

वज्रमुष्टि ने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए होंठ बिचका दिये। कुछ पल सोचता रहा, फिर बोला - ''मुझे तो रंचमात्र संभावना प्रतीत नहीं होती। तुम्हें क्या स्मरण नहीं है कि उस दिन सभा ने स्पष्ट रूप से कहा था कि राम के साथ युद्ध अवश्यंभावी है। फिर भी प्रयास कर देखो, क्या पता सफल हो ही जाये विभीषण।''

''तो प्रातः मिला जाये उससे! किसी न किसी सूत्र से तब तक सूचना तो उसे भी मिल ही जायेगी। हमें उसकी असहमति को क्रोध में बदलने का प्रयास करना होगा।'' उठने को उद्यत होते हुए प्रहस्त बोला।

''और बैठो कुछ देर'', वज्रमुष्टि उसका हाथ पकड़कर वापस बैठाता हुआ बोला- ''अब सूर्योदय में देर ही कितनी बची है और नींद आने की तो दूर-दूर तक कोई संभावना है नहीं।''

प्रहस्त बैठ गया।

प्रहस्त के बैठते ही वज्रमुष्टि ने फिर से बात छेड़ दी - ''सदैव मूर्खता करता रहता है यह रावण भी। खर-दूषण की मृत्यु की सूचना मिलते ही आक्रमण कर इन तीनों को समाप्त कर देना ही एकमात्र समाधान था। अब तो, सभा में जो तर्क उनके पक्ष में वह दे रहा था, वही तर्क ये दोनों देते फिरेंगे ...ऊपर से यह कहेंगे

कि रावण ने छल से उनकी पत्नी का हरण कर लिया है। सहज ही उन्हें सबकी सहानुभूति प्राप्त हो जायेगी।''

फिर दोनों ने इसी प्रकार विभिन्न सम्भावनाओं पर विचार करते हुए शेष रात्रि व्यतीत कर दी। अन्त में निष्कर्ष यही निकला कि उन्हें भय किसी का नहीं है, यदि है तो मात्र उस अशुभ-लक्षिणी सीता का।

***

रात्रि में रावण सीता को मंदोदरी की संरक्षण में छोड़कर, उन्हें उनके प्रश्नों के उत्तर प्रातःकाल देने का आश्वासन दे आया था। ऐसा करने के पीछे उसकी सोच यह थी कि सीता थोड़ा सा विश्राम कर ले। वह तो योद्धा था, योगी था... रात्रि जागरण अथवा थोड़े से अतिरिक्त श्रम से उसे कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला; परंतु सीता कोमलांगी है, उसके लिये यह सब कष्टप्रद हो गया होगा, अतः वह थोड़ा सा विश्राम कर ले।

परंतु ऐसा हो नहीं पाया। न तो वह प्रातःकाल आ ही पाया और न ही सीता ने विश्राम किया। उसे सान्त्वना देने के चक्कर में मन्दोदरी भी पलक नहीं झपका पायी।

हुआ कुछ यों कि प्रातः नित्यकर्मों से निवृत होकर जैसे ही रावण मंदोदरी के कक्ष में जाने को उद्यत हुआ, माता कैकसी का संदेश लेकर एक दासी आ गयी। माता ने उसे तत्काल बुलाया था।

उहापोह में पड़ा वह माता के पास गया।

वहाँ पहुँचते ही देखा कि माता अत्यंत आवेश में थीं। वह तो विस्मित था कि माता को रात्रि में ही सूचना किसने दे दी सीता के विषय में। बड़ी कठिनाई से वह माता को समझा पाया। समझा क्या पाया, मात्र इतना ही कह पाया कि वह उचित ही करेगा।

वहाँ से जैसे ही वह अपने कक्ष में वापस आया, देखा कि विभीषण प्रतीक्षारत है। उसके साथ प्रहस्त और वज्रमुष्टि भी है। इन दोनों को देखते ही

उसे क्रोध आ गया। निश्चित ही प्रहस्त के पास इतने संसाधन थे कि वह सीता के अपहरण के विषय में जान सकता था। निश्चित ही उसी ने रात्रि में ही उसके इस कृत्य के विरोध में सबके कान भर दिये थे।

माता की बातों से आहत तो वह पहले से ही था, एक बार तो उसका मन किया कि तीनों से जाने को कह दे परंतु फिर उसने अपने आवेश को बलात नियंत्रित कर लिया। विभीषण के साथ उसका अन्तर्विरोध बहुत पुराना था, उसे कक्ष से निष्कासित कर वह उस विरोध को बढ़ाना नहीं चाहता था।

परंतु ऐसा हो नहीं सका।

जैसा कि उसे आशा थी, विभीषण भी इसी विषय में... उसके कथनानुसार... उसे समझाने आया था।

कैसे समझ जाता वह! कैसे समझाता वह सबको कि उसने ऐसा क्यों किया है!

वार्ता का अंत निश्चय ही दुखद हुआ। विभीषण उसे नीति-अनीति के तमाम उपदेश देने के उपरांत अंत में अत्यंत क्रोध में ही वापस गया। क्रोधित तो प्रहस्त और वज्रमुष्टि भी थे, परंतु उनकी उसे विशेष चिंता नहीं थी। वे भी खुलकर उससे अधिक कुछ कह नहीं पाये।

इन तीनों के विदा होते-होते मध्याह्न हो गया।

जब वे तीनों विदा हुए तब वह स्वयं भी आवेश में था। कुछ देर उसने स्वयं को शांत किया फिर मंदोदरी के कक्ष की ओर बढ़ चला।

***

मन्दोदरी के कक्ष में प्रवेश करते ही, वहाँ की स्थिति देख रावण चौंक पड़ा।

सीता एक कोने में भूमि पर बैठी हुई थीं। आँखें रक्तवर्ण हो रही थीं। रावण को समझाने की आवश्यकता नहीं थी कि उन्होंने रात्रि में शयन नहीं किया था। मन्दोदरी भी चिंतित सी भूमि पर ही उसके पास बैठी थी। उसके मुख पर व्याप्त

भाव स्पष्ट द्रष्टा थे कि वह सीता को समझाने का प्रयास करते-करते हताश हो चुकी थी।

रावण ने चिंतित और प्रश्नवाचक दृष्टि से मंदोदरी की ओर देखा परंतु वह कोई उत्तर देती उससे पूर्व ही सीता बोल पड़ीं - ''आप मुझे यहाँ बलात् रोककर नहीं रख सकते, शीघ्र ही मेरे स्वामी आकर मुझे लिवा ले जायेंगे।''

''सुनता हूँ तुम्हारी भी, किंतु पहले महारानी से वार्ता कर लूँ।'' कहकर रावण पुनः मंदोदरी की ओर उन्मुख हुआ - ''क्या यह सम्पूर्ण रात्रि ऐसे ही बैठी रही है?''

''हाँ, न स्वयं सोई है और न मुझे सोने दिया है।''

रावण ने एक बार निराश दृष्टि से सीता की ओर देखा, तत्पश्चात पुनः मंदोदरी से प्रश्न किया - ''भोजन, जलपान?''

''भोजन-जलपान तो दूर की बात है, इसने एक बूँद जल तक ग्रहण नहीं किया है।''

''स्नानादि भी नहीं किया होगा?''

''नहीं, मात्र प्रातः शौचादि से निवृत हुई थी, अन्यथा जब से आयी है यहीं बैठी है, ऐसे ही!''

''ओह!'' एक दीर्घ निःश्वास के साथ हठात् रावण के मुख से निकला। उसने पुनः मंदोदरी से प्रश्न किया - ''आपने समझाने का प्रयास नहीं किया?''

''सामर्थ्य भर तो किया, परंतु यह बड़ी हठी है। अपना परिचय तो निस्संकोच दे दिया परंतु तदुपरांत प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में वही कह रही है जो अभी इसने आपसे कहा।

''हूँ ऽ ऽ ऽ!'' रावण के मुख से निकला।

''एक प्रश्न पूछूँ?'' मंदोदरी ने पूछा।

''पूछिये।''

''आवश्यकता क्या थी इसे यहाँ लेकर आने की? यह कृत्य आपकी ख्याति के अनुकूल तो नहीं है।''

''आवश्यकता थी महारानी। राम और लंका के मध्य विवाद की नींव तो पड़ ही गयी है, ऐसे में मैं इसकी सुरक्षा के प्रति चिंतित था।''

''यह आपका विषय तो नहीं है?''

''है! आपको वेदवती का स्मरण है?''

''है! परंतु...''

''समझा कीजिए महारानी!''

''ओह!'' मंदोदरी अचंभित सी बोल पड़ी- ''कहीं...''

''हाँ, परंतु अब इस विषय में कोई प्रश्नोत्तर नहीं। इस विषय को यहीं विराम दीजिए।''

अब रावण सीता की ओर आकर्षित हुआ।

रावण-मंदोदरी के मध्य हुआ संवाद सीता ने भी सुना था। उस संवाद ने उन्हें उलझन में ही डाला था। रावण उनका अहित नहीं करना चाहता, इसका आभास तो उन्हें पहले ही होने लगा था, किंतु क्यों? ...यह उन्हें समझ नहीं आ रहा था। तभी उनके कानों में रावण के शब्द पड़े - ''अब बोलो, जो कुछ बोलना हो।''

एकाएक सीता को समझ ही नहीं आया कि रावण उनसे सम्बोधित है। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

''किस चिंतन में निमग्न हो?'' रावण ने पुनः प्रश्न किया।

''क् .... क्या?'' चौंकते हुए सीता के मुख से निकला।

''जो भी पूछना हो, जो भी बोलना हो!'' रावण ने मुस्कुराते हुए अपनी बात स्पष्ट की।

''मुझे बलात् यहाँ लेकर क्यों आये हैं?'' सीता ने लक्ष्य नहीं किया, किंतु जब से रावण से उनका सामना हुआ था, पहली बार उनके मुख से उसके लिये सम्मानजनक सम्बोधन निकला था।

''चन्द्रनखा के साथ जो कुछ किया राम ने उसके प्रतिकार स्वरूप।''

''वह तो एक दुर्घटना थी। यदि मेरे पति ने उसे रोक न लिया होता तो या तो मैं उसकी कटार से मृत्यु को प्राप्त हो चुकी होती अथवा वह मेरी कटारी से।''

''अधिक संभावना तो यह है कि दोनों ने ही मृत्यु का वरण कर लिया होता। मैं राम का आभारी हूँ इस हेतु।''

''तो भी चोरों के समान उनकी पत्नी का हरण कर लाये!'' सीता ने व्यंग्य किया।

''मैंने पहले ही कहा आवश्यक था।''

''क्यों आवश्यक था?''

''तुम नहीं समझोगी।''

सीता को समझ नहीं आया उसका उत्तर। 'ये सारे ब्राह्मण पहेलियाँ क्यों बुझाते हैं?' उन्होंने सोचा - 'लक्ष्मण सत्य ही कहता था - नारद, अगस्त्य, अन्य ऋषिगण क्या कम थे जो अब यह भी पहेलियों में बात कर रहा है। सीधा उत्तर ही नहीं देता।'

''अन्य कोई दुविधा?'' सीता को सोचते देख रावण ने पुनः प्रश्न किया।

''दुविधा ही दुविधा है। परंतु जब आप उत्तर देना ही नहीं चाहते तो प्रश्न करने का औचित्य ही क्या बचा! वैसे भी बंदी को प्रश्न करने का अधिकार कहाँ होता है!'' सीता व्यंग्यात्मक स्वर में बोलीं।

''किसने कहा तुम बंदी हो, क्या महारानी ने?''

''महारानी तो जबसे आप मुझे यहाँ छोड़कर गये हैं, मातावत ही मेरा ध्यान रख रही हैं।''

''फिर?''

''फिर क्या, मेरी स्थिति तो बन्दिनी के समान ही है।''

''किसने कहा? तुम लंका में पूर्ण स्वतंत्र हो, मात्र एक बंधन है कि तुम इस प्रासाद से बाहर नहीं जा सकतीं।''

''और किसे कहते हैं बंदी होना।''

''यह प्रतिबन्ध तुम्हारी सुरक्षा के कारण ही है। यह तो समझाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि जो कुछ चन्द्रनखा और खर-दूषण के साथ हुआ उसके उपरांत तुम तीनों लंकावासियों की दृष्टि में खलनायक बन चुके हो।''

''स्वाभाविक है।''

''इस प्रासाद में तुम्हें सम्पूर्ण सुख-सुविधा उपलब्ध होगी। महारानी सदैव मातावत ही तुम्हारा ध्यान रखेंगी।''

''क्या अन्तर पड़ता है। बंदी तो बंदी ही होता है, काँटों भरी कोठरी में हो अथवा कनक-पिंजर में! पिंजरे में डालकर पक्षी को कितना भी सुस्वादु भोजन दें, उसकी स्वतंत्र उड़ान तो उससे छीन ही लेते हैं आप।'' सीता ने पुनः व्यंग्य किया।

रावण ने कोई उत्तर नहीं दिया, बस मुस्कुराता हुआ सीता को देखता रहा।

''किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहते आप और कहते हैं कि पूछो जो पूछना हो।''

''जब बाज और विडाल पक्षी की ताक में बैठे हों तो उसकी सुरक्षा हेतु उसे पिंजरे में रखना आवश्यक हो जाता है।''

''यदि लंका में मैं सुरक्षित नहीं हूँ तो आपने मेरा अपहरण किया ही क्यों? वहाँ मेरे पति मेरी सुरक्षा में पूर्ण समर्थ थे।''

''वे समर्थ हैं'', रावण हँसता हुआ बोला - ''तभी तो मैं इतनी सहजता से तुम्हें यहाँ लाने में सफल हुआ।''

''छल से!'' सीता ने उत्तर दिया - ''छल से किसी स्त्री का अपहरण कापुरुष ही करते हैं। वह भी मेरी ही मूर्खता थी, दोनों ने मुझे समझाया था कि यह स्वर्णमृग छलना है परंतु मेरी समझ में नहीं आया। मैंने ही विवश किया था दोनों को वहाँ से जाने हेतु।''

''जो भी हुआ सो हुआ'', रावण विषय का पटाक्षेप करने के उद्देश्य से बोला- ''अब बताओ तुम्हें क्या समस्या है? तुमने भोजन नहीं किया, स्नानादि भी नहीं किया!''

''मैं प्रासाद में नहीं रह सकती।'' सीता ने रट फिर से दोहरा दी।

''क्यों? क्या कष्ट है यहाँ तुम्हें?''

''हमें वनवास का आदेश हुआ है, प्रासाद वन नहीं होता।''

''वह तो राम को हुआ है।''

''मैं उनकी अर्द्धांगिनी हूँ।''

''ओह!''

सीता के उत्तर से रावण व्यथित भी हुआ और प्रसन्न भी। व्यथित इसलिये कि उसके चाहने पर भी सीता को प्रासाद की सुविधायें स्वीकार्य नहीं थीं। प्रसन्न इसलिये कि उसकी पुत्री इस अवस्था में भी अपने पत्नी धर्म पर अटल थी। यह निश्चय ही उसके लिये गर्व का विषय था।

वह सोचने लगा कि क्या किया जाये।

सीता और मन्दोदरी मौन उसके बोलने की प्रतीक्षा करती रहीं।

''नगर के बाहर'', कुछ क्षण उपरांत रावण पुनः बोला- ''एक छोटा सा वन है, अशोक वाटिका कहते हैं हम उसे। वहाँ निवास करोगी?''

''बन्दिनी की अभिलाषा का भी कोई अर्थ होता है, जहाँ आप डाल देंगे मुझे वहाँ जीवन काटना ही पड़ेगा।''

''व्यर्थ का प्रलाप मत करो।'' रावण बोला और ताली बजाकर द्वार की ओर देखता हुआ बोला- ''कोई है।''

तत्काल एक दासी द्वार पर प्रकट हुई।

''किसी को भेजो, जाकर तत्काल त्रिजटा को बुला लाये।'' सिर हिलाकर दासी के प्रणाम का उत्तर देते हुए रावण ने आदेश दिया।

दासी चली गयी।

''त्रिजटा को क्यों बुलवाया है?'' दासी चली गयी तो मन्दोदरी ने प्रश्न किया।

''इसके साथ आपको तो अशोक वाटिका भेजा नहीं जा सकता। दासियों पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। लंका में सारे मातुल इसके विरोधी हैं।''

''होना ही चाहिए।'' मन्दोदरी मुस्कुरायी।

''इसके संबंध में मैं आपके और मेघनाद के अतिरिक्त मात्र विभीषण के परिवार पर विश्वास कर सकता हूँ।''

''तात्पर्य आप त्रिजटा को इसके साथ अशोक वाटिका में रखेंगे।''

''अन्य कोई उपाय नहीं है।''

''अन्य कोई आदेश!'' मंदोदरी को उत्तर देने के साथ ही वह पुनः सीता की ओर घूमकर मुस्कुराता हुआ बोला।

''अपने राज्य से निष्कासित और विरोधी राज्य में बंदी व्यक्ति आदेश देने की स्थिति में नहीं होता।''

''मुझे नहीं प्रतीत होता कि वाग्विलास में प्रतिस्पर्द्धा से कोई लाभ होगा'', रावण मुस्कुराता हुआ बोला- ''अतः स्पष्ट कहो कि अशोक वाटिका में तुम्हें क्या-क्या सुविधायें चाहिए?''

''कुछ नहीं'', अब सीता भी गंभीर हो गयीं - ''जितनी सुविधाओं का उपभोग मेरे पति कर रहे हैं, मैं उनसे अधिक का उपभोग कैसे कर सकती हूँ!''

''ठीक है!'' - रावण ने उत्तर दिया और पुनः दासी को आकर्षित करने के उद्देश्य से ताली बजायी।

''युवराज तक संदेश भिजवाओ कि मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।''

''जो आज्ञा!'' दासी ने सिर झुकाकर उत्तर दिया और जाने को मुड़ने लगी।

''पूर्ण आदेश सुना करो।''

दासी पुनः उसकी ओर घूमकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

''किसी चर को भेज दो भीतर।''

थोड़ी ही देर में एक चर आ गया।

रावण ने उसे अशोक वाटिका के बिलकुल मध्य में एक पर्णकुटी और उसे घेरे हुए वैसी ही पाँच अन्य कुटिया निर्मित करने का आदेश दे दिया।

चर चला गया तो रावण मेघनाद और त्रिजटा के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

त्रिजटा पहले आ गयी।

''यह सीता है त्रिजटा, राम की पत्नी; और सीता, यह त्रिजटा है, मेरे छोटे भाई विभीषण की पुत्री। लंका में यही परिवार तुम्हारा हितैषी है।'' प्रणाम आदि की औपचारिकताओं के उपरांत रावण ने सीता और त्रिजटा का परिचय करवाया।

अब तक सीता को भी रावण पर विश्वास होने लगा था, उन्होंने उसकी बात पर सहजता से विश्वास कर लिया।

''त्रिजटा!'' परिचय के उपरांत रावण त्रिजटा से सम्बोधित हुआ - ''जब तक सीता लंका में है, तुम्हें अपनी कुछ विश्वस्त सखियों के साथ अशोक वाटिका में इसके साथ निवास करना है।''

''मुझे प्रसन्नता होगी इनके साथ निवास करने में, किंतु एक प्रश्न है।''

''पूछो।'' रावण ने मुस्कुराते हुए अनुमति दी, उसे पता था कि वह क्या पूछेगी।

"अशोक वाटिका में क्यों? ये यहाँ रह सकती हैं, हमारे प्रासाद में रह सकती हैं।"

"इसका हठ है कि यह प्रासाद में निवास नहीं करेगी।"

"क्यों?" त्रिजटा ने सीता की ओर घूमते हुए प्रश्न किया।

"इसका मत है कि", उत्तर रावण ने ही दिया- "क्योंकि इसके पति को वनवास का आदेश हुआ है अतः उसकी अर्द्धांगिनी होने के नाते इसे भी वन में ही रहना है।"

"ओह!" त्रिजटा के मुख से निकला- "तो कब से निवास करना है हमें अशोक वाटिका में?"

"सम्भवतः आज ही सायंकाल से। बस मेघ की प्रतीक्षा है, उसे वहाँ की सुरक्षा का दायित्व सौंप दूँ। जैसे ही वह सुरक्षा प्रबन्ध कर लेगा, वैसे ही तुमलोगों को वहाँ प्रस्थान करना होगा। अपनी कुछ विश्वस्त सखियों से वार्ता कर लो और संध्या से पूर्व ही समस्त आवश्यक सामग्री सहित यहाँ आ जाओ। इससे भी पूछ लो कि इसे किस-किस वस्तु की आवश्यकता होगी। मुझे यदि कुछ व्यवस्था करनी हो तो बताओ।"

"आपको उस विषय में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है पितृव्य, मैं सारी व्यवस्था सँभाल लूँगी।"

"ठीक है, किंतु कोई भी समस्या हो तो निस्संकोच बताना।"

"अवश्य! परंतु अब मुझे आज्ञा दीजिए, एक प्रहर से भी कम समय है मेरे पास।"

"निस्संदेह!... जाओ, स्मरण रखना तुम्हारी यह नवीन सखी मेरी धरोहर रहेगी तुम्हारे पास। इसकी प्रसन्नता का ध्यान रखना तुम्हारा दायित्व है।"

"आपको अपनी त्रिजटा पर भरोसा नहीं है क्या पितृव्य?" त्रिजटा ने मुस्कुराते हुए उल्टा प्रश्न किया।

"है, तभी तो तुम्हारा चयन किया है।" रावण ने प्यार से त्रिजटा के सिर पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया।

उसी दिन संध्या के समय सीता अशोक वाटिका स्थित पर्णकुटी में स्थानांतरित हो गयी।

31. किष्किंधा

एक बार पुनः ऋष्यमूक के शिखर पर छोटी सी सभा लगी थी।

पूर्व में हुए निर्णय के अनुसार, एक दिन पूर्व जाम्बवान और हनुमान सुग्रीव का प्रस्ताव लेकर बालि से भेंट करने गये थे, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ था। सुग्रीव का नाम सुनते ही बालि उखड़ गया था-

''जाम्बवान! आप वृद्ध हैं, अनुभवी हैं, अपने समय में महान योद्धा भी रहे हैं, आपका मैं अत्यंत सम्मान करता था, परंतु आज ज्ञात हुआ कि आप मेरे हितैषी नहीं हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि सुग्रीव ने जो कुछ किया वह सब, आपके ही षड़यन्त्र का अंग हो। यह वज्रांग जो मुझे आज भी अत्यंत प्रिय है इसे भी आपने अपने षड़यंत्र में सम्मिलित कर लिया और अब मेरे अबोध पुत्र अंगद को भी करना चाहते हैं।''

''ऐसा कुछ नहीं है सम्राट्। मैंने कभी आपका बुरा नहीं चाहा, परंतु मैं सुग्रीव का भी बुरा नहीं चाहता इसीलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि एक बार तो उसे अपनी बात कहने का अवसर दीजिए।''

''जो कुछ मैंने स्वयं भोगा है, स्वयं देखा है उसके लिये मुझे किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं है। मैं आपका सम्मान करता हूँ इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं आपके तर्कहीन आग्रहों को भी स्वीकार कर लूँगा।''

''सम्राट्... '' जाम्बवान ने फिर कुछ कहना चाहा परन्तु बालि ने बीच में ही उसकी बात काट दी। वह अपनी गदा को लहराता हुआ फुफकार उठा - ''बस जाम्बवान! बहुत सुन चुका मैं तुम्हारा अनर्गल प्रलाप। अब यदि एक शब्द भी निकला तुम्हारे मुख से तो उत्तर मेरी गदा देगी।'' क्रोधावेश में वह शब्दों की मर्यादा भी भूल गया था।

जाम्बवान आया तो था बालि को समझाने का प्रयास करने परंतु उसके मुख से इस प्रकार असम्मानजनक सम्बोधन सुनकर वह भी अपने क्रोध पर नियन्त्रण नहीं रख सका। क्रोध तो उसे बालि पर पहले से ही था, बालि के शब्दों ने उसकी क्रोधाग्नि में घी का काम किया, वह भी गरज उठा - ''मूर्ख बालि!'' सत्य ही कहा गया है- 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।' ''

जाम्बवान आगे कुछ बोलता उससे पूर्व ही बालि तिलमिलाकर, गदा लेकर उस पर झपट पड़ा - ''इतना दुस्साहस! मूर्ख कहता है मुझे।''

उत्तर में जाम्बवान ने भी गदा उठा ली और चिल्लाया - ''मूर्ख ही है तू, जो सोचता है कि जाम्बवान ने अपनी गदा विसर्जित कर दी है।''

हनुमान निश्चय करके आये थे कि दोनों के मध्य हस्तक्षेप नहीं करेंगे, इसीलिये अब तक मौन एक ओर खड़े थे, परंतु अब मूक दर्शक बने रहना संभव नहीं था। उन्होंने झपटकर जाम्बवान को अपनी भुजाओं में लपेट लिया और कक्ष की द्वार की ओर खींचने लगे।

बल जाम्बवान में इस आयु में भी कम नहीं था, परंतु यह हनुमान थे जिनके बल की कोई थाह ही नहीं थी। जाम्बवान प्रतिरोध करता हुआ चीखता रहा - ''छोड़ दो मुझे हनुमान, मैं इस मूर्ख के दंभ को चूर कर ही दूँ आज।''

परंतु हनुमान ने उन्हें नहीं छोड़ा। उन्होंने बालि के स्वर को भी अनसुना कर दिया जो पीछे चीख रहा था - ''ले जा इसे वज्रांग इसी में इसका और तेरा दोनों का हित है। ...और ध्यान रखना, आज के उपरांत कभी मेरे दृष्टिपथ में मत आ जाना अन्यथा मैं भूल जाऊँगा कि तू मेरा भागिनेय है।''

***

इस भेंट के उपरांत उपस्थित परिस्थितियों पर विचार कर, आगे की कार्य-योजना का निर्णय लेने हेतु ही यह सभा जुटी थी।

जाम्बवान ने अब तक अपने क्रोध को तो नियंत्रित कर लिया था किंतु बालि द्वारा किये गये अपमान को वह भूला नहीं था। वह बोला - ''अब अन्य कोई उपाय नहीं है। इस अनाचारी के अंत की व्यवस्था करनी ही होगी।''

''परंतु तात्!'' सुग्रीव ने कुछ कहना चाहा परंतु जाम्बवान ने उसकी बात काट दी - ''अब सोच-विचार का समय व्यतीत हो चुका है। अब किष्किंधा की और साथ ही तुम्हारी पत्नी की मर्यादा की रक्षा का समय है और वह बालि के अंत के बिना संभव नहीं है।''

''परंतु यह सम्भव कैसे होगा?'' हिचकिचाते हुए सुग्रीव ने प्रश्न किया।

''होगा, अवश्य होगा'', जाम्बवान ने विश्वासपूर्वक उत्तर दिया - ''रणनीति बनाओ। बालि बलवान है परंतु मूर्ख है और मूर्ख कितना भी बलशाली क्यों न हो, उसे परास्त करना असंभव नहीं होता।''

''तो आप ही बनाइये रणनीति, मुझे तो कुछ समझ नहीं आता।''

''जानता हूँ, तुम भी हो तो उसी मूर्ख के अनुज, कम मूर्ख तुम भी नहीं हो।''

जाम्बवान का उत्तर सुग्रीव को चुभा अवश्य परंतु जाम्बवान का वह हृदय से सम्मान करता था, उनकी वरिष्ठता और उनकी नीतिज्ञता को प्रणाम करता था। साथ ही वह यह भी जानता था कि जाम्बवान सदैव ही उसके हितैषी हैं; इसलिये वह उनके कठोर वाक्य को पचा गया।

''हनुमान'', जाम्बवान हनुमान से सम्बोधित हुआ- ''तुम क्या सोचते हो इस विषय में।''

''मैं कुछ नहीं सोचता तात! मेरे लिये दोनों ही सम्माननीय हैं।'' हनुमान ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

''तुम इस प्रकार निर्लिप्त नहीं रह सकते वत्स। एक तुम्हीं हो यहाँ जो बालि का दम्भ चूर कर सकते हो। साथ ही तुम्हारा धैर्य और बुद्धि भी अपरिमित है।''

***

ये लोग इस प्रकार योजना बना ही रहे थे कि सुदूर उत्तर से किसी स्त्री के विलाप का स्वर सुनाई दिया। सब चौंककर उधर ही देखने लगे परंतु दिखाई कुछ नहीं दिया।

कुछ पल बाद ही प्रतीत हुआ कि वह स्वर नीचे से नहीं, आकाश की ओर से आ रहा है। यह तो और आश्चर्य की बात थी।

''ऐसा कैसे हो सकता है...'' सुग्रीव के मुख से निकला।

परंतु वह अपना वाक्य पूरा करता उससे पूर्व ही उत्तर आकाश में एक विमान दृष्टिगोचर होने लगा।

कुछ ही पल में उन्होंने उस विमान को पहचान लिया। रावण अनेक बार पुष्पक से किष्किंधा आ चुका था।

''यह तो निश्चय ही रावण है'', जाम्बवान अचंभे से बोला- ''परंतु यह स्त्री कौन है? रावण किसी स्त्री के साथ ऐसा आचरण करेगा इसकी तो मुझे स्वप्न में भी आशंका नहीं थी।''

''आशा तो तात् किसी को भी नहीं रही होगी... परंतु मूल प्रश्न तो यह है कि यह स्त्री है कौन!'' हनुमान बोले।

''असंभव भी नहीं है। रम्भा के साथ उसने क्या किया था यह तो सभी को ज्ञात है... क्या पता अन्य कितनी स्त्रियों के साथ उसने बलात्कार किया हो।'' सुग्रीव ने पुरानी घटना याद दिलाई।

अब तक पुष्पक इन लोगों के सिर के लगभग ऊपर आ चुका था। स्त्री का विलाप स्पष्ट सुनाई दे रहा था अब इन्हें।

तभी आकाश से कुछ गिरता हुआ दिखाई दिया। सब एकाएक कुछ सहमकर पीछे हट गये - 'क्या पता रावण ने कोई आयुध-प्रहार किया हो इन लोगों पर! उसके पास तो अनोखे दिव्यास्त्र हैं।'

परंतु अगले ही पल इन लोगों की आशंका निर्मूल सिद्ध हो गयी। गिरने वाली वस्तु किसी स्त्री का आभूषण थी।

एक वानर दौड़ गया वह आभूषण उठाने।

तभी एक और आभूषण ठीक इन लोगों के मध्य आ गिरा।

''क्या रावण यान में ही स्त्री के साथ बलप्रयोग कर रहा है?'' एक वानर बोला- ''यह तो नीचता की पराकाष्ठा है।''

''संभव है वह स्त्री स्वयं ही हमें कुछ संकेत देने के उद्देश्य से अपने आभूषण फेंक रही हो।'' जाम्बवान ने संभावना प्रकट की।

''संभव है तात्!'' हनुमान बोले- ''...देखिये एक और गिरा।'' अपने थोड़ा आगे दक्षिण की ओर संकेत करते हुए उन्होंने जोड़ा।

एक अन्य वानर वह आभूषण उठाने उधर ही दौड़ गया।

''ये आभूषण असाधारण हैं। निश्चय ही स्त्री कोई राजकन्या है।'' आभूषणों का एक दृष्टि में ही निरीक्षण करने के उपरांत जाम्बवान बोले।

''राजकन्या नहीं, किसी अत्यंत विशिष्ट कुल की राजकन्या है। इतने बहुमूल्य आभूषण तो भाभी और रूमा के पास भी संभवतः नहीं होंगे।'' सुग्रीव ने सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए टिप्पणी की।

''तो क्या रावण किसी महान आर्य राजवंश की कन्या का अपहरण करके लाया है! धिक्कार है इसकी धूर्तता को।'' जाम्बवान किंचित क्रोध से बोल पड़े- ''प्रतीत होता है अकारण ही नारद ने इसे दशानन की उपाधि से विभूषित कर दिया है।''

''तात्!'' एकाएक हनुमान चौकन्ने होते हुए बोले - ''एक श्रेष्ठ आर्य राजवंश की कन्या और श्रेष्ठ आर्य राजवंश की वधू तो यहीं उपस्थित है, कहीं...'' उन्होंने वाक्य पूरा नहीं किया, चिंता की रेखायें उनके मुख पर स्पष्ट झलकने लगी थीं।

''क्या तात्पर्य है तुम्हारा? क्या तुम्हारा आशय प्रभु राम की पत्नी जानकी सीता से है?'' जाम्बवान ने अविश्वास भरे स्वर में प्रश्न किया।

''हाँ तात्, मेरा आशय उन्हीं से है, कहीं....''

''रुको एक पल.... सोचने दो मुझे... ।'' जाम्बवान बोला और आँखें बन्द कर लीं।

एक पल बाद ही उसने आँखें खोलीं और बोला - ''तुम्हारी आशंका सत्य हो सकती है। कल मैं क्रोध में था, तुम भी मुझे सँभालने में व्यस्त थे अन्यथा हमने अवश्य ध्यान दिया होता। कल किष्किंधा में कुछ इस प्रकार की चर्चा थी तो कि राम और चन्द्रनखा में कुछ विवाद हुआ है और उसके उपरांत राम ने सम्पूर्ण सैन्य सहित खर-दूषण का वध कर दिया है।''

''मैंने ध्यान दिया था तात्, परंतु उस पर किसी से चर्चा करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ अभी तक।''

''इसका अर्थ समझते हो?'' जाम्बवान ने अचानक पूछा।

''हाँ तात्... कल जो चर्चा सुनी थी वह सत्य थी। प्रभु ने दण्डक में चन्द्रनखा के साम्राज्य का अंत कर दिया है... और उसके प्रतिकार में रावण ने माता जानकी का हरण कर लिया है। ये निश्चित ही माता जानकी हैं।''

इतना कहते-कहते जैसे हनुमान में विद्युत प्रवाह हुआ हो, वे एकाएक उछलकर खड़े हो गये। अपनी गदा उठाई और दौड़ चले - ''मैं जाता हूँ तात्! मेरे प्रभु को मेरी आवश्यकता है।''

सुग्रीव, जाम्बवान इत्यादि अवाक उन्हें देखते रह गये।

''परन्तु तुम्हारी मातामही ने कहा था कि प्रभु तुम्हें स्वयं खोज लेंगे।'' पीछे से जाम्बवान चिल्लाया।

''परन्तु मुझे ऐसे स्थान पर तो उपस्थित होना होगा जहाँ वे मुझे खोज पायें।'' हनुमान ने दौड़ते हुए ही उत्तर दिया।

कुछ ही पलों में वे सबकी दृष्टि से ओझल हो चुके थे।

हनुमान दौड़े चले जा रहे थे। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र किष्किंधा के प्रवेश मार्ग पर पहुँचना होगा।

एकाएक वे ठिठक गये - 'अरे! मैं नगर की ओर क्यों जा रहा हूँ' उन्होंने सोचा- 'उत्साह के अतिरेक में मार्ग का ध्यान ही नहीं दिया, बस अभ्यासवश दौड़ता चला आया।'

विचार आते ही उन्होंने अपने दौड़ने की दिशा में आवश्यक परिवर्तन कर दिया।

वस्तुतः किष्किंधा नगर ऋष्यमूक पर्वत से उत्तर-पूर्व की दिशा में स्थित था जबकि जनस्थान से आने वाला मार्ग उत्तर-पश्चिम की ओर से आता था।

शीघ्र ही हनुमान जनस्थान से आने वाले मार्ग पर पहुँच गये।

वहाँ पहुँचकर, कुछ देर वे उत्तर से आने वाले मार्ग की ओर टकटकी लगाये देखते रहे, फिर लगा कि ऐसे कब तक खड़े रहेंगे। एक पल उन्होंने सोचा और फिर उछलकर एक वृक्ष की शाखा थाम ली। अगले ही पल वे वृक्ष के ऊपर थे।

अब प्रभु के आगमन तक उन्हें वहीं बैठना था।

इसमें कितना भी समय व्यतीत हो जाये, इसकी उन्हें चिंता नहीं थी।

प्रभु के दर्शन, प्रभु से मिलन और सबसे बड़ा प्रभु की सेवा का अवसर... उनकी उत्कंठा और उत्साह का पारावार न था। ऐसे में सुविधा-असुविधा का ध्यान ही कैसे होता, और ऋष्यमूक पर ही कौन सी इससे अधिक सुविधा उपलब्ध थी। इस उत्कंठित अवस्था में भी बरबस ही उनके मुख पर एक संतोष की मुस्कान तैर गयी। जब मन कुछ व्यवस्थित हुआ तो उन्होंने जिस वृक्ष पर बैठे थे उस पर ध्यान दिया-''आहा!'' अपने आप उनके मुख से निकल पड़ा। वे सोच रहे थे- 'अनजाने ही मैंने सही वृक्ष का चयन किया। अब प्रभु की प्रतीक्षा करते-करते फलों का आस्वादन भी करता रहूँगा।'

वे प्रतीक्षा करने लगे।

32.पंचवटी से प्रस्थान

राम शांत अवश्य थे किंतु उनकी व्यथा तिलमात्र कम नहीं हुई थी। यह व्यथा उनके सदैव स्थिर रहने वाले चित्त में कभी व्याकुलता का ज्वार उभार रही थी, तो कभी आक्रोश का। व्यग्रता के कारण उनकी गति असामान्य रूप से तीव्र हो गयी थी। लक्ष्मण किसी अपराधी की भाँति मौन उनका अनुसरण किये जा रहे थे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि भइया की व्यथा का उपचार किस भाँति करें।

चलते-चलते अचानक राम जैसे अपने-आप में ही बड़बड़ाने लगे - ''न जाने क्या किया होगा उस अधम ने सीता के साथ! वह तो वीर कहा जाता है, हमसे युद्ध करता आकर। इस प्रकार छल से सीता का अपहरण करने में कौन सी वीरता दिखाई उसने!''

लक्ष्मण ने कोई उत्तर नहीं दिया। राम ने किसी उत्तर की अपेक्षा भी नहीं की थी।

''छल से किसी की स्त्री का अपहरण करना वीरता नहीं होती। क्या मैं जो अभी तक उसे पुरुषार्थी और योग्य मानता था वह मिथ्या था? क्या आर्यजगत में जो उसे अत्याचारी और अन्यायी कहा जाता है, वही सत्य है?''

''भइया! आप ही कहते हैं कि आवेश में निर्णय नहीं लेना चाहिए।'' इस बार लक्ष्मण धीरे से बोले।

''सत्य कहता हूँ'', राम ने कुछ तीव्र स्वर में उत्तर दिया- ''परंतु यह जो मैं कह रहा हूँ, आवेश में नहीं कह रहा। आवेश होता तो संशय नहीं होता, मैं निर्णयात्मक रूप से कहता कि वह अत्याचारी और अन्यायी है।''

''संभव है कि जो हमें दिख रहा है, सत्य उसके विपरीत हो!'' लक्ष्मण जो सदैव रावण का विरोध करते थे, जो सदैव लंका पर आक्रमण के लिये लालायित से रहते थे, इस समय अचानक उसके पक्ष में बोले। लक्ष्मण के कथन से राम भी चकित हुए बिना न रहे, वे एकाएक रुक गये और पीछे घूमकर लक्ष्मण

की आँखों में झाँकते हुए पूछ बैठे - ''तात्पर्य क्या है तुम्हारा? क्या तुम लक्ष्मण ही हो अथवा तुम भी उस मायावी स्वर्ण-मृग के समान दशानन की कोई माया हो?''

''भइया ऽ ऽ!!'' लक्ष्मण ने आहतभाव से आर्तनाद किया।

''उत्तर दो!'' राम पूर्ववत तीव्र स्वर में पुनः बोले।

''आप अपने लक्ष्मण पर शंका कैसे कर सकते हैं?''

''लक्ष्मण तो सदैव से रावण का विरोधी था, मैं ही उसे शांत करता रहता था'', कहकर राम एक पल के लिये रुके, फिर आगे बोले - ''परंतु तुम तो उसके पक्षधर प्रतीत हो रहे हो।''

''ऐसा कुछ नहीं है भइया! निस्संदेह उसका यह आचरण सर्वथा तिरस्कार योग्य है। परंतु ऐसा करके उसने हमें वह दे दिया है जिसकी हमें आवश्यकता थी।''

''क्या तात्पर्य है तुम्हारा?'' राम ने भौहें सिकोड़कर प्रश्न किया।

''हम यहाँ रावण के साम्राज्य का विध्वंस करने आये हैं, रक्ष-संस्कृति को समूल नष्ट करने आये हैं। मैंने कितनी बार आपसे आक्रमण करने का आग्रह किया परंतु सदैव आपने रोक दिया कि अकारण किसी ऐसे राज्य पर आक्रमण कैसे किया जा सकता है जिससे हमारा कोई विरोध नहीं है। रावण ने इस कृत्य से हमें वह कारण प्रदान कर दिया है जिसकी हमें प्रतीक्षा थी।''

''परंतु सीता? न जाने वह आततायी उनके साथ कैसा व्यवहार कर रहा होगा?''

''निश्चय ही बहुत बुरा तो नहीं कर रहा होगा। यदि ऋषियों के कथनों पर ध्यान दें तो वह उनका अहित नहीं करेगा।''

''तुम ऐसा सोच सकते हो, परंतु मैं अपने हृदय को कैसे समझाऊँ? विवाह के समय उसकी सुरक्षा करने का वचन दिया था मैंने, मैं अपने वचन का निर्वाह नहीं कर सका। धिक्कार है मेरे पौरुष पर।''

राम को इस प्रकार विह्वल होता देख लक्ष्मण भी विचलित हो उठे। उन्हें प्रतीत हुआ कि यदि भइया इस प्रकार हताश हो जायेंगे तो वे अपने दायित्व का निर्वहन किस प्रकार कर पायेंगे। उन्हें ही इस समय भइया को सँभालना होगा। वे राम को सान्त्वना देते हुए धीरे से बोले - ''भइया, परिस्थितियों से विचलित तो मैं होता हूँ, आपने तो प्रत्येक परिस्थिति में, सदैव स्वयं स्थिरचित्त रहते हुए मुझे सँभाला है। ऐसे में यदि आप ही विचलित होंगे तो हम भाभी को सुरक्षित लंका से कैसे वापस ला पायेंगे! अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने का प्रयास कीजिये भइया!''

''कैसे करूँ लक्ष्मण'', राम बोले तो उनके स्वर में आर्द्रता थी- ''सीता मेरी शक्ति थी। उसकी अनुपस्थिति में मैं स्वयं को शक्तिहीन अनुभव कर रहा हूँ। मेरी चेतना जैसे मेरा साथ छोड़ रही है, मेरा विवेक जैसे मुझसे रूठ गया है... वैसे ही जैसे मेरी सीता मुझसे रूठ गयी है।''

''भइया, न तो भाभी आपसे रूठी हैं और न ही आपके विवेक ने आपका साथ छोड़ा है। यह सब मात्र कुछ पल का विचलन है। भाभी के लिये आपको इस विचलन से उबरना ही होगा। तनिक विचार कीजिये - भाभी यदि यह जानेंगी कि ऐसे कठिन समय में आप अपने पौरुष को विस्मृत कर किसी सामान्य मनुष्य की भाँति विचलित हो उठे हैं तो उन्हें कितना कष्ट होगा! क्या आप यह सहन कर सकते हैं कि आपके व्यवहार से भाभी को कष्ट हो?''

राम जैसे कुछ पल के लिये कहीं खो गये। फिर धीरे से बोले - ''कदापि नहीं, परंतु...''

लक्ष्मण ने राम की बात बीच में ही काट दी - ''यह समय शोक करने का नहीं है भइया। यह समय अपनी प्रचण्ड क्रोधाग्नि को प्रज्ज्वलित कर उसमें रावण को भस्म कर देने का है। उसने जो अपराध किया है, उसे उसका दण्ड देने का है।''

''तो क्या करूँ मैं?

''सर्वप्रथम अपने चित्त को स्वस्थ कीजिये। स्वस्थ चित्त से ही स्वस्थ चिंतन संभव हो सकता है।''

''हूँऽऽऽ!'' राम ने हताशा से अपने सिर को हिलाया, फिर आँखें बन्द कर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे।''

''न हो तो कुछ काल के लिये समाधिस्थ होने का प्रयास कीजिये।'' लक्ष्मण ने प्रस्ताव रखा - ''महर्षि सुतीक्ष्ण ने किसी भी दुविधा की स्थिति में श्रीविष्णु के चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करने का परामर्श दिया था, समाधिस्थ हो आप कीजिये।''

राम ने एक बार फिर कुछ पल सोचा, फिर सहमति में सिर हिला दिया। उन्हें लक्ष्मण का प्रस्ताव समयानुकूल प्रतीत हुआ था। वे मार्ग से वन की ओर बढ़ गये। थोड़ी ही दूर जाकर वे एक वृक्ष के तने से अपना धनुष टिकाकर, उसी वृक्ष के नीचे पालथी मारकर बैठ गये और अपने नेत्र मूँद लिये।

लक्ष्मण अपनी सतर्क दृष्टि चारों ओर घुमाते हुए, उनके पास में ही, किसी भी अपेक्षित आक्रमण का उत्तर देने हेतु सन्नद्ध खड़े हो गये।

एक प्रहर की समाधि ने राम के चित्त को पूर्णतः स्वस्थ कर दिया।

''अब क्या करणीय है?'' समाधि से बाहर आते ही राम ने मंद स्मित के साथ प्रश्न किया।

''यह तो पूर्व निर्धारित है कि अब हमें किष्किंधा की ओर प्रस्थान करना है।''

''तो चलो!'' अपना धनुष उठाकर फिर से कंधे पर टाँगते हुए राम बोले।

दोनों भाई ने पुनः यात्रा आरम्भ कर दी। आगे-आगे राम, पीछे-पीछे लक्ष्मण।

''लक्ष्मण'', चलते-चलते, बिना पीछे मुड़े, राम बोले- ''महर्षि अगस्त्य का आश्रम मार्ग में ही पड़ेगा। क्यों न हम एक बार पुनः उनसे परामर्श करते चलें।''

''जैसा आप उचित समझें।'' लक्ष्मण ने सहजता से उत्तर दिया। यद्यपि वे इसे अनावश्यक व्यवधान ही मान रहे थे, परंतु उन्होंने भाई का विरोध नहीं किया।

''तो फिर ऐसा ही करते हैं। वे इस अभियान के प्रमुख रणनीतिकार हैं, आगे बढ़ने के उपरांत तो उनसे भेंट का अवसर कदाचित प्राप्त ही न हो, अतः अभी उनका मार्गदर्शन प्राप्त कर लेना उचित रहेगा। हमारे लिये खर-दूषण से युद्ध करते हुए जो आहत हुए थे, उनकी कुशल भी पूछ लेंगे वहाँ।''

''ठीक है भइया।'' लक्ष्मण ने पुनः संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

***

अगस्त्य आश्रम पहुँचने तक संध्या का आगमन हो चुका था। राम और लक्ष्मण के आगमन का समाचार फैलते ही सारे आश्रमवासी उनसे मिलने के लिये अगस्त्य की कुटिया के बाहर उमड़ पड़े। खर-दूषण की सेना के विरुद्ध युद्ध में राम ने एकाकी जो पराक्रम दिखाया था, उसकी गाथा अब यहाँ सभी को ज्ञात थी, इसलिये उनकी एक झलक पाने का सभी में अपूर्व उत्साह था। साथ ही लोग विस्मित भी थे कि सीता कहाँ हैं? सीताहरण का समाचार अगस्त्य को तो ज्ञात हो गया था परंतु शेष आश्रमवासी अभी उससे अनभिज्ञ ही थे।

''उत्तम'', राम जब सब बता चुके तो अगस्त्य मुस्कुराते हुए बोले।

राम का चित्त शांत हो चुका था, परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं था कि उन्हें अब सीता की चिंता नहीं थी। अगस्त्य के उत्तर से वे विस्मय से भर गये। हठात् उनके मुख से निकला - ''महर्षि! मेरी पत्नी का अपहरण हुआ है और आप....''

''इसी से तो हमारे अभियान का मार्ग प्रशस्त हुआ है।''

''आपका कथन सत्य है महर्षि, परंतु सीता किस संकट में फँसी है इसे भी तो देखिए!''

''राम! तुम मानवता के इतिहास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभियान पर निकले हो। अभियान पर निकलते ही तुमने अपने पिता को खो दिया था, तब तो

तुम इस प्रकार विचलित नहीं हुए थे। विश्वास रखो सीता सकुशल हैं और अन्त तक कुशल से ही रहेगी। जिसका रक्षक विधाता स्वयं हो, कोई भी संकट उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता। इसके साथ ही मैं तुम्हें इस विषय में भी आश्वस्त कर सकता हूँ कि शीघ्र ही सीता से तुम्हारा मिलन होगा।''

''आप त्रिकालज्ञ हैं मुनि-श्रेष्ठ... आप यदि कह रहे हैं कि सीता सकुशल है तो निस्संदेह यह सत्य ही होगा, परंतु क्या करूँ मन तो नहीं मानता।''

''तो मत मानने दो।'' कहकर अगस्त्य मुस्कुराये - ''उसे मनाने की आवश्यकता भी नहीं है। परंतु तुम बुद्धि का साथ मत त्यागना, कर्तव्य से विचलित मत होना, उद्योग करना मत छोड़ना। विधाता ने जिसे भी जीवन दिया है उसके लिये भोजन का भी प्रबन्ध किया है परंतु बिना उद्योग के तो सिंह को भी भोजन नहीं प्राप्त होता।''

''तो अब आगे हमारा मार्गदर्शन कीजिये।''

''किष्किंधा के लिये प्रस्थान करो। सुग्रीव और हनुमान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

''और बालि?''

''प्रतीक्षा तो उसे भी है किंतु सर्वाधिक व्यग्र तो हनुमान ही है।

''महर्षि शभंग ने कहा था कि वानरों का सहयोग लेने के लिये मुझे बालि का वध करना पड़ेगा?'' राम ने प्रश्न किया।

''हाँ, करना तो पड़ेगा। मित्र और शरणागत की रक्षा करना वीरोचित धर्म है।''

''वह तो है महर्षि किन्तु इसका बालि के वध से क्या संबंध?''

''बालि भले ही सुग्रीव का अग्रज है किंतु इस समय वह उसका सबसे बड़ा शत्रु है। उसी से प्राणरक्षा हेतु सुग्रीव मतंग वन में छुपा हुआ है।''

'महर्षि एक शंका है'', राम हिचकते हुए बोले - ''जब बालि भी हमारी प्रतीक्षा कर रहा है तो हमें उसका वध करने की क्या आवश्यकता है? उसकी सहायता लेने में हमें संकोच क्यों है? उन दोनों के मध्य परस्पर विवाद है, हमें उसमें पड़ने की क्या आवश्यकता है?''

''यह क्यों भूल रहे हो कि बालि रावण का परम मित्र है। वह उसके विरुद्ध तुम्हारा सहयोगी क्यों होगा? यह तो हो सकता है कि वह तटस्थ हो जाये। अहिल्या प्रकरण के उपरांत वह तुम्हारा प्रशंसक है परंतु हनुमान के समान भक्त नहीं है। वह तुम्हें सप्तम विष्णु के रूप में स्वीकार अवश्य करता है परंतु तुम्हारी इस उपाधि से प्रभावित नहीं है। आर्यावर्त का आमजन विष्णु को ब्रह्म का प्रतिरूप मानता है परंतु विन्ध्य के दक्षिण में ऐसा प्रायः नहीं है। यहाँ विष्णु का भी इंद्र और अन्य देवों के समान सम्मान तो है किंतु वे ब्रह्म के प्रतिरूप नहीं माने जाते। बालि भी नहीं मानता। वैसे भी बालि स्वयं इतना समर्थ योद्धा है कि विष्णु अथवा इंद्र अथवा अन्य देव उसके लिये विशेष नहीं हैं, वह उनके साथ समानता का सम्बन्ध रखता है। वह इंद्र को पराजित करने वाले रावण को भी पराजित कर चुका है। इन सब कारणों से तुम्हारा सप्तम विष्णु होना उसके लिये कोई अर्थ नहीं रखता।

''बालि के विपरीत, सुग्रीव हनुमान के निरंतर संग रहने के कारण भी और स्वयं अपनी प्रकृति के कारण भी, तुम में आस्था रखता है। रावण उसके भाई का मित्र है, उसका नहीं। भले ही रावण के कूटचर किष्किंधा के विरुद्ध कोई कूट अभियान नहीं चलाते, किंतु सुमाली के काल में तो वे चलाते ही थे। सुग्रीव के निष्कासन के कुछ ही उपरांत अंगद और हनुमान ने सुमाली द्वारा स्थापित ऐसी ही एक कूट चौकी पकड़ी भी थी। तभी से सुग्रीव और हनुमान लंका और रावण के प्रति कुछ सीमा तक सशंकित भी हैं। वे बालि की भाँति रावण पर सहज विश्वास नहीं करते।

''इस स्थिति में यदि तुम सुग्रीव की बालि से रक्षा करोगे तो वह सहज ही समस्त वानरों के साथ तुम्हारा सहयोगी हो जायेगा। उसका परम सहयोगी

हनुमान तो तुम्हारा भक्त है ही। अंगद भी अपने काका के निष्कासन के लिये अपने पिता को दोषी मानता है। आज भी वह नित्य ही सुग्रीव से भेंट करने मतंग वन जाता है।''

''क्या कोई मार्ग ऐसा नहीं हो सकता कि बालि का वध न करना पड़े। अकारण किसी का वध करना...'' राम ने विनम्र स्वर में ही अपनी शंका प्रकट की।

अगस्त्य को पहले से ही आभास था कि राम के लिये सहज नहीं होगा अकारण बालि के वध के लिये तैयार होना, वे बोले - ''कदापि अकारण नहीं होगा यह। मैंने पहले ही कहा कि शरणागत की रक्षा वीरोचित धर्म है। इसके साथ ही राजा का कर्तव्य है दोषी को दण्डित करना। बालि को उसके अपराधों के लिये दण्डित करना भी तुम्हारा कर्तव्य है।''

''महर्षि! किस अपराध के लिये दंडित करूँगा बालि को मैं?'' राम ने विस्मय के साथ प्रश्न किया - ''फिर वह अपने राज्य का सार्वभौम सम्राट है, वह कोशल की सीमा में नहीं आता। उसे दंडित करने का अधिकार हमें नहीं है।''

''सुग्रीव को अकारण इतना बड़ा दंड देना अपराध नहीं है? उसकी पत्नी को बलात किष्किंधा में रोक कर रखना अपराध नहीं है? रहा प्रश्न किष्किंधा की सार्वभौम सत्ता का तो तुम्हारे पिता चक्रवर्ती सम्राट् थे। किष्किंधा कोशल के आधीन हो अथवा न हो, अन्यायी राजा को दण्डित करना चक्रवर्ती सम्राट् का दायित्व होता है।''

''महर्षि! मेरे पिता थे चक्रवर्ती सम्राट्, मैं नहीं हूँ। मैं तो मात्र एक वनवासी हूँ इस समय।''

''भरतभूमि पर कौन नहीं जानता कि राम कोशल-साम्राज्य का सम्राट् है!'' कहकर अगस्त्य मुस्कुराये - ''तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी पादुकायें अयोध्या के राजसिंहासन पर विराजमान है... भरत कोशल पर शासन मात्र तुम्हारे प्रतिनिधि के रूप में ही कर रहा है।''

अगस्त्य को थोड़ा सा प्रयास करना पड़ा राम को संतुष्ट करने के लिये किंतु अंतत राम सहमत हो ही गये। राम के सहमत होने में उनकी ऋषियों, ब्राह्मणों और गुरुजनों के आदेश के प्रति ससम्मान नतमस्तक होने की चारित्रिक विशेषता की निस्संदेह बड़ी भूमिका रही होगी।

फिर देर तक अगस्त्य राम और लक्ष्मण के साथ योजना पर विमर्श करते रहे, उसकी धार-कोर सुधारते रहे।

अन्त में अगस्त्य बोले-

''अब विलम्ब नहीं, प्रस्थान का समय आ गया है।''

महर्षि का मन्तव्य स्पष्ट था, राम और लक्ष्मण ने उठते हुए उन्हें दण्डवत प्रणाम किया।

''विजयी भवः! यशस्वी भवः!'' अगस्त्य ने आशीर्वाद दिया- ''जाओ, और आर्य-संस्कृति पर आये संकट का मूलोच्छेद करो।''

अब विलम्ब का कोई कारण ही नहीं था।

राम और लक्ष्मण के प्रस्थान करते ही अगस्त्य ने एक व्यक्ति को बुलवाया। उसे क्या करना है, यह संभवतः उसे पहले से ही ज्ञात था। उसने आकर जैसे ही महर्षि को प्रणाम किया, उन्होंने सिर हिलाकर उसे कुछ संकेत कर दिया। संकेत पाते ही वह व्यक्ति वहाँ से निकल गया।

33. अयोमुखी और कबंध

अगस्त्य के आश्रम से दोनों भाई कठिनता से दो योजन ही आगे बढ़े होंगे कि एक व्यवधान आ गया।

मार्ग गहन वन के मध्य से होकर था। भय का कोई प्रश्न नहीं था, दोनों भाई मन ही मन भविष्य की रणनीति बनाते, अपने में ही खोये हुए, क्षिप्र गति से आगे बढ़े जा रहे थे। दोनों में से कोई नहीं समझ पाया वन के न जाने कब और वन के किस कोने से निकलकर, एक कोयले के समान कृष्णवर्णी, अति पुष्ट और दीर्घ काया वाली युवती लक्ष्मण के साथ-साथ चलने लगी। चन्द्रनखा तो फिर भी सुन्दरी थी, परंतु इस युवती की मुखाकृति मन में जुगुप्सा उत्पन्न कर रही थी।

उसे अपने साथ चलता देखकर घृणा और क्रोध से लक्ष्मण की भृकुटी में बल पड़ गये। वे उससे कुछ बोल पाते, उससे पूर्व ही वह भयानक युवती उन्हें देखकर मुस्कुरा दी।

कोई युवती ऐसी भी निर्लज्ज हो सकती है, ऐसा लक्ष्मण सोच भी नहीं सकते थे। उन्होंने झेंपकर अपनी दृष्टि दूसरी ओर फिरा ली।

पर इससे क्या छुटकारा मिलने वाला था। उनके दृष्टि फिराते ही वह युवती उनके कंधे को थपथपाकर बोली - ''अरे! लज्जित क्यों होते हो? इससे पूर्व क्या कभी किसी सुन्दर युवती को देखा ही नहीं है?''

लक्ष्मण सिहर उठे, काटो तो खून नहीं वाली स्थिति थी... भइया ठीक आगे चल रहे थे और यह स्त्री ऐसी कुत्सित चेष्टा कर रही थी। उन्होंने उस युवती की ओर देखे बिना हाथ बढ़ाकर, अपने कंधे पर रखा उसका हाथ झटक दिया।

युवती ने फिर भी पिण्ड नहीं छोड़ा। पूर्ववत निर्लज्जता से बोली - ''मेरा नाम अयोमुखी है, तुम्हारा नाम क्या है सुदर्शन युवक?''

लक्ष्मण ने एक बार क्रोध से उसकी ओर देखा और फिर दृष्टि फिरा ली। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। यदि भइया नहीं होते तो अब तक उन्होंने उसे पाठ पढ़ा दिया होता, परंतु....''

राम ने अब तक पीछे मुड़कर नहीं देखा था किंतु पीछे चल रहे प्रहसन का उन्हें भलीभाँति आभास हो गया था। वे एक बार मुस्कुराये और लक्ष्मण को उस आपदा से निस्संकोच निपटने का अवसर देने के लिये अपनी गति कुछ और तीव्र कर दी। लक्ष्मण ने भी भइया की बढ़ी गति को अनुभव किया, उन्होंने अवसर का लाभ उठाते हुए अपनी गति कुछ धीमी कर दी।

वह युवती अपनी वाणी में अपनी सारी उत्तेजना घोलकर फिर बोली - ''उत्तर नहीं दिया, क्या मैं सुन्दर नहीं हूँ?''

लक्ष्मण ने एक बार फिर उसकी ओर घूरकर देखा और फिर तत्काल घृणा से दृष्टि फिरा ली।

अब युवती ने धृष्टता की सीमा पार कर दी। उसने लक्ष्मण की कलाई थाम ली और खींचती हुई बोली - ''नहीं बताना नाम तो मत बताओ, किंतु मैं तो तुम पर आसक्त हो गयी हूँ। आओ, हम उन्मुक्त रमण करें चलकर।''

यह लक्ष्मण को असह्य था। वे वहीं थम गये। उन्होंने घूरकर उसे देखा और एक झटके से अपना हाथ मुक्त कराना चाहा, किंतु स्त्री की पकड़ मजबूत थी। वह अपने कुत्सित मुस्कान बिखेरती हुई बोली - ''भागना क्यों चाहते हो, सच जानो, आनन्द आ जायेगा। देखो मेरे ये उत्तुंग कामशिखर, ऐसे शिखर सृष्टि में कहीं खोजे नहीं मिलेंगे।''

राम अब तक पर्याप्त आगे बढ़ गये थे। लक्ष्मण ने क्रोध से स्त्री को धक्का दे दिया। वह लड़खड़ाकर पीछे जा गिरी। परंतु उसके मुख पर अब भी मुस्कान थी। कदाचित लक्ष्मण के इस धक्के ने उसका काम-ज्वर और बढ़ा दिया था। वह अत्यंत कामुक भाव से होंठ दबाकर बोली - ''आह! बलिष्ठ हो'', भूमि पर

पड़े-पड़े ही उसने अपनी दोनों बाहें फैला दीं- ''आओ, विपुल धन है मेरे पास। हम दोनों मिलकर सृष्टि के अन्यतम रस का पान करेंगे।''

लक्ष्मण क्रोध से फुफकारते हुए उसकी ओर बढ़ गये। वह फिर कामासक्त स्वर में सिसकारी सी भरती हुई बोली - ''आओ प्रियतम! आओ! भर लो मुझे अपने भुजदण्डों में। पीस दो मुझे।''

लक्ष्मण ने एक बार आगे मार्ग की ओर देखा। जहाँ पर वे दोनों थे, वहाँ से भइया दिखाई नहीं दे रहे थे। उन्होंने झटके से कमर में खुँसी अपनी कटार निकाली और... और फिर अगले ही क्षण उस युवती के दोनों उत्तुंग काम-शिखर हवा में उड़ते दिखाई पड़ रहे थी।

क्षणमात्र में ही उसकी वासना तिरोहित हो गयी। वह जोर से चीख उठी। अब उसके नेत्रों में असीम भय व्याप्त था। लक्ष्मण के हाथ में अब भी कटार थमी थी और वे क्रोध से उसे घूर रहे थे।

उस दृष्टि का और सामना कर पाना उस राक्षसी के लिये सम्भव नहीं था। उसका सम्पूर्ण शरीर उसके वक्ष से बहती लहू की धार से नहा गया था। वह जितनी शीघ्रता से उठ सकती थी उठी और फिर से वन में विलुप्त हो गयी।

लक्ष्मण राम का साथ पकड़ने के लिये तीव्र गति से आगे बढ़ गये।

***

कुछ योजन और निर्विघ्न कट गये। अब वे अगस्त्य आश्रम और किष्किंधा के लगभग मध्य बिन्दु पर थे। अचानक कुछ घर-घर सा शब्द सुनकर दोनों रुक गये। लक्ष्मण ने आश्चर्य से प्रश्न किया - ''यह कैसा शब्द है भइया?''

''निश्चयपूर्वक तो नहीं कह सकता, परंतु ऐसा प्रतीत होता है मानो कई लौह-घिरनियाँ एक साथ चल रही हों।''

रोमांचप्रिय लक्ष्मण की उत्सुकता उस शब्द को सुनकर उनके नियंत्रण से बाहर हो गयी थी। वे आग्रह भरे स्वर में राम से बोले - ''चलिये, चलकर देखते हैं।''

"चलो!"

दोनों उस शब्द की दिशा में बढ़ गये।

वे थोड़ा ही बढ़े थे कि सामने का दृश्य देखकर ठिठक कर रुक जाना पड़ा। उनसे लगभग सौ पग की दूरी पर एक विशालकाय किसी धातु का पिंड खड़ा हुआ था। पिण्ड को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे जीव-जन्तुओं को भयभीत करने के लिये बेडौल सी मानवीय आकृति बनाई गयी हो। कम से कम बीस हाथ ऊँचा वह गोलाकार पिण्ड दो ऐसे आधारों पर खड़ा था जो किसी मनुष्य के पैर के पंजों जैसे प्रतीत होते थे। पूरे पिण्ड में स्थान-स्थान पर कीलें सी निकली हुई थीं। उसके बीचो-बीच एक बड़ी सी, लगभग दो हाथ के व्यास की, किसी तुरही के मुख जैसी आकृति निकली हुई थी। उस तुरही के मुख में से आग की लपटें निकल रही थी। उस आकृति के ठीक ऊपर एक लाल रंग की विशाल आँख जैसी आकृति थी।

दोनों भाई अचंभित होकर उस आश्चर्यजनक पिण्ड का निरीक्षण करने लगे। उन्हें समझ नहीं आया कि यहाँ यह ढाँचा किसने और क्यों बनाकर खड़ा किया होगा, परंतु इतना निश्चित था कि वह घिरनियों के घूर्णन का शब्द उसी पिण्ड के भीतर से आ रहा था।

तभी लक्ष्मण ने एक ओर संकेत करते हुए कहा - "भइया, वह देखिये, इस पिण्ड के तो विशाल बाहें भी हैं।"

लक्ष्मण के कहने पर राम ने भी ध्यान दिया, उस पिण्ड के मुख के कुछ नीचे से दो सुदीर्घ, कम से कम पैंतीस-चालीस हाथ लम्बी धातु की गोल-गोल बाहें सी निकली हुई थी। वे बाहें घनी झाड़ियों से ढकी हुई थी, इसीलिये पहले उन पर उनकी दृष्टि नहीं पड़ पायी थी।

उन दोनों ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, किन्तु आस-पास कोई भी दिखाई नहीं पड़ा।

उस पिण्ड के उस स्थान पर खड़े किये जाने का कोई प्रयोजन समझ न आने पर राम ने समय नष्ट करना व्यर्थ समझा। वे लक्ष्मण से बोले - ''चलो चलें अपने मार्ग पर।''

परंतु लक्ष्मण के मन में तो इस पिण्ड का रहस्य जानने की उत्सुकता जोर मार रही थी। उन्होंने अनुनय सी की - ''निकट चलकर देखते हैं भइया। इसे इस निर्जन स्थान पर किसी ने न जाने क्यों खड़ा किया है।''

तभी दोनों को एक बार फिर चौंक जाना पड़ा। जैसे कोई भारी से स्वर में कह रहा था - ''तुम्हें काल ने मेरा ग्रास बनने के लिये ही यहाँ भेजा है। प्रतीक्षा क्या कर रहे हो, चले आओ मेरे मुख में।''

''कौन है?'' वह स्वर सुनते ही लक्ष्मण जोर से चिल्लाये।

उत्तर में एक अट्टहास गूँजा - ''मैं कबंध हूँ, आओ मेरा आहार बनो।''

इस बार हठात् लक्ष्मण के मुख से निकला - ''यह... यह स्वर तो इसी पिण्ड में से आ रहा है।''

इसके बाद दोनों कुछ समझ पाते उससे पूर्व ही उस पिण्ड की उन विशाल बाहों में से एक अत्यंत तीव्र गति से उनकी ओर घूमी। क्षणांश में ही राम की छठी इन्द्रिय ने संकट का संकेत दिया और तत्काल उन्होंने लक्ष्मण का हाथ थामकर एक ओर गोता लगा दिया। वह बाँह 'शूँ' सा शब्द करती हुई अविश्वसनीय गति से दोनों के ऊपर से निकल गयी।

यदि सौभाग्य से राम की छठी इन्द्रिय समय पर जाग्रत न हो गयी होती तो इस समय दोनों या तो काल का ग्रास बन गये होते अथवा अधमरी दशा में पड़े होते। फिर भी लक्ष्मण के कंधे में तीव्र झटका तो लग ही गया था।

तभी राम फिर चीखे - ''बचो लक्ष्मण!''

इस बार दूसरी बाँह उन्हें अपनी लपेट में लेने के लिये आ रही थी, परंतु इस बार वे सतर्क थे, ठीक समय पर दोनों ने उछाल भरी और बाहें उनके नीचे से निकल गयी।

"इस बार लटक जाना।" लक्ष्मण को राम की फुसफुसाहट सुनाई दी।

अगले ही पल, वापस फैलती दोनों बाहें फिर उनके सिर पर थी। दोनों ने समय पर उछाल भरी और एक-एक बाँह पर लटक गये और विद्युत गति से बाहों के पिण्ड से जुड़ने वाले हिस्से की ओर सरकते चले गये। अब वापस भीतर की ओर आती बाहें उन्हें आपस में लड़ा नहीं सकती थी।

वे विशालकाय बाहें दायें-बायें गति करती रही और उनके सिरों के निकट उनसे लिपटे दोनों भाई उनकी कार्यप्रणाली को समझने का प्रयास करते रहे। दो चक्करों में ही उन्हें समझ आ गया कि पिण्ड के भीतर किसी कीली से जुड़ी हैं और घिरनियों के सहारे गति कर रही हैं। समझ आते ही लक्ष्मण चिल्लाये - "उखाड़ दें भइया?"

"हाँ!" राम ने सहमति दी।

इस बार जब बाहें भीतर की ओर आयीं तो दोनों ने अपने पैर सीधे करके पिण्ड में अड़ा दिये। कुछ पल तो दोनों ओर से शक्ति-परीक्षण होता रहा, फिर अंततः इन भाइयों की शक्ति के सम्मुख उन धात्विक बाहों को गति देने वाली घिरनियों को नतमस्तक होना ही पड़ा। भयंकर कड़कड़ाहट की ध्वनि हुई और दोनों बाहें झूल गयी। तत्काल लक्ष्मण का उत्साहित स्वर गूँजा - "हमने कर दिया भइया!"

राम के मुख पर भी सन्तोष भरी स्मित फैल गयी।

संकट अभी समाप्त नहीं हुआ था। इससे पूर्व कि दोनों भाई उन बाहों से उतरकर खड़े भी हो पाते, उस पिण्ड के तुरही जैसे मुख से तलवार लिये एक विशालकाय व्यक्ति कूदा और उसने राम पर आक्रमण कर दिया। कितनी बड़ी मूर्खता की थी उसने! ये राम थे, जब उस विशालकाय पिण्ड की कई अजगरों जैसी लम्बी बाहें राम का कोई अहित नहीं कर पायी थी, तो यह भला क्या कर सकता था।

राम ने झटके से उसके तलवार थामे हाथ की कलाई अपने एक हाथ में जकड़ ली और दूसरे हाथ से अपनी वज्र-मुष्टिका का प्रहार उसके मुख पर कर दिया।

एक ही प्रहार में वह व्यक्ति रक्तवमन करने लगा। राम ने उसकी कलाई छोड़ दी। कलाई छूटते ही वह वहीं भूमि पर लोट गया, उसकी कलाई भी चटक गयी थी।

अब तक लक्ष्मण भी निकट आ गये थे। आते ही उन्होंने भी एक लात भूमि पर पड़े उस व्यक्ति की छाती में जड़ दी। वह एक बार फिर से रक्तवमन करने लगा।

''बस लक्ष्मण, तुमने एक प्रहार और किया तो इसकी मृत्यु हो जायेगी।'' राम ने लक्ष्मण को रोकते हुए कहा - ''अभी हमें इसका परिचय जानना है, साथ ही यह भी जानना है कि इसने यह खिलौना यहाँ क्यों स्थापित कर रखा है।''

लक्ष्मण ने राम के आदेश का पालन किया। वे रुक गये, परंतु उनकी भंगिमा अभी भी नहीं बदली थी। उन्होंने चिल्लाते हुए उसे आदेश दिया - ''बता सब जल्दी से।''

उधर राम की तीक्ष्ण दृष्टि उस व्यक्ति पर टिकी हुई थी। वह कम से कम सात हाथ लम्बा, अत्यंत बलिष्ठ शरीर वाला, उनके ही जैसे श्यामल वर्ण का व्यक्ति था। उसकी केशराशि श्वेत होने लगी थी। उसकी आयु राम के अनुमान के अनुसार नब्बे वर्ष से कम की नहीं थी।

उस व्यक्ति में अब प्रतिरोध करने की क्षमता शेष नहीं बची थी। वह कराहते हुए अपनी गाथा सुनाने लगा - ''वीरों, मेरा नाम कबंध ही है। मैं एक दानव हूँ। अपनी युवावस्था में मैंने पितामह ब्रह्मा को अपनी तपस्या से प्रसन्न कर उनसे दीर्घायु प्रदान करने की प्रार्थना की। पहले तो उन्होंने मुझे समझाया कि अधिक आयु श्रेयस्कर नहीं होती किंतु मेरे हठ पर उन्होंने मुझे जरा और मृत्यु को सुदीर्घ

काल तक दूर रखने वाले कई उपाय बता दिये। इनमें ऐसे भी उपाय थे, जिनसे शरीर के रोग और व्रण चमत्कारी ढंग से अतिशीघ्र उपचारित हो जाते थे।

"अपनी शक्ति पर तो मुझे पहले से ही दंभ था। अब जब मुझे पितामह से मुझे ये चमत्कारी औषधियाँ और उपचार प्राप्त हो गये तो मैं स्वयं को इतना शक्तिशाली समझने लगा कि जिससे मन होता, उससे भिड़ जाता और उसे काल को समर्पित कर देता। एक दिन मेरे मन में विचार आया कि मैं अपनी शक्ति इन निरीह मानवों पर क्यों व्यय कर रहा हूँ, मुझे तो सीधे इन्द्र से युद्ध करना चाहिए। बस फिर क्या था मैं स्वर्ग पहुँचा और इन्द्र का युद्ध के लिये आवाह्न करने लगा।

"यह मेरी बहुत बड़ी भूल थी। इन्द्र ने अपने वज्र से कुछ ही देर में मेरी दुर्दशा कर डाली। अन्त में वे बोले - 'भाग जा दुष्ट! तुझे पितामह ने दीर्घायु का वर दिया है। मैं उनका कथन मिथ्या नहीं होने दूँगा अतः अभी तेरा वध नहीं करूँगा, परंतु यदि तू दुबारा मुझे कहीं दिखाई पड़ गया तो मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा।'

"पितामह द्वारा बताये गये उपचारों से मेरा शरीर तो शीघ्र ही स्वस्थ हो गया, परंतु इन्द्र का भय मेरे मन में घर कर गया। मुझे प्रति पल यही आभास होता रहता था कि इन्द्र आकर मुझे मार देगा। इस भय के कारण पितामह के उपचार भी मुझे वैसा फल नहीं दे पा रहे थे जैसा वे पहले देते थे।

"अन्ततः मैं यहाँ आ गया। मुझे ज्ञात था कि रावण के भय से इन्द्र दण्डकारण्य से दूर ही रहता है। मैंने बहुत काल तक यहाँ आनन्दपूर्वक निवास किया। पितामह द्वारा बताई गयी औषधियों और उपचारों से सुदीर्घ काल तक मेरा यौवन जैसे का तैसा बना रहा, परंतु कभी न कभी तो जरा को मुझ पर आक्रमण करना ही था। जब मेरी आयु अस्सी वर्ष से भी अधिक हो गयी तो धीरे-धीरे जरा मेरे शरीर पर अपना प्रभाव दिखाने लगी। सवा सौ वर्ष का होते-होते मेरी शक्ति और चपलता दोनों मेरा साथ छोड़ने लगे। इस गहन वन में मेरे चारों ओर शक्तिशाली हिंसक पशु ही निवास करते हैं। उन्हीं का आखेट कर अब तक मैं जीवन-यापन करता आया था। अब आखेट मेरे लिये दुष्कर होने लगा था,

अतः मैंने इस यंत्र का निर्माण किया और इसकी सहायता से पशुओं का आखेट करने लगा।''

राम इस पिण्ड जैसे यन्त्र को अब तक काफी कुछ समझ चुके थे, फिर भी उन्होंने प्रश्न किया - ''यह यन्त्र वस्तुतः है क्या? बनाया कैसे तुमने इसे?''

उत्तर में अपनी निरह अवस्था में भी कबन्ध हँसकर बोला-

''इसमें कुछ विशेष नहीं है। यह पिण्ड भीतर से खोखला है। यही मेरा आवास भी है। इसमें यान्त्रिकता जो कुछ भी है, इसकी दोनों धात्विक भुजाओं में ही है, जिन्हें अब आपने अपनी असीमित शक्ति से बेकार कर दिया है। आप भीतर जाकर देखेंगे तो सहजता से सब समझ जायेंगे।''

''चलो दिखाओ चलकर भीतर।'' राम ने आदेश दिया।

कबंध को उठने में कठिनाई हो रही थी, लक्ष्मण ने उसे सहारा देकर उठाया।

तीनों उस पिण्ड के पीछे की ओर पहुँचे। वहाँ एक स्थान पर एक खटका लगा हुआ था। कबंध ने उसे विशेष विधि से घुमाया तो पिण्ड में एक द्वार खुल गया। तीनों भीतर प्रविष्ट हुए।

भीतर जाकर राम और लक्ष्मण दोनों एक बार फिर अचंभित रह गये। वह एक तीन खण्ड का छोटा सा सुसज्जित आवास था। उसमें जीवन-यापन की सभी सुविधायें उपलब्ध थीं।

कबन्ध उन्हें मध्य के खंड में ले गया। वहाँ पिण्ड के दोनों सिरों से एक-एक धात्विक भुजा निकली हुई थी। राम के अनुमान के अनुरूप ही वे भुजायें एक हाथ के व्यास वाली ठोस धात्विक कीलियों से जुड़ी हुई थी। दोनों भुजाओं के साथ कई सारी घिरनियाँ लगी थीं। बाहरी घिरनियों में एक-एक हत्था लगा था जिसके द्वारा कबंध उन भुजाओं को संचालित करता था। पिण्ड के मध्य भाग में वही छिद्र था जिससे तुरही जैसा मुँह बाहर निकला था। उस छिद्र के पीछे एक विशाल पात्र में अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी। इसी अग्नि की ज्वालायें उस तुरही जैसे मुख से बाहर निकल रही थीं।

उसी मुख के पीछे वह आँख दी जो बाहर से लाल-लाल दिखाई देती थी। यह वास्तव में किसी पारदर्शी पत्थर से निर्मित थी। यह किसी भुजा के समान मोटाई वाली छोटी सी नलिका से सम्बद्ध थी। नलिका दूसरे छोर पर भी वैसा ही पारदर्शी पत्थर लगा था।

''यहाँ बैठकर मैं इसी नेत्र द्वारा बाहर चारों ओर देख सकता हूँ।''

राम ने नलिका के इस छोर पर नेत्र टिकाकर देखा, सच ही सामने का सारा दृश्य वे पूर्णतः स्पष्ट देख पा रहे थे। आवश्यकतानुसार वे उस नलिका को घुमाकर अन्य दिशाओं में भी देख सकते थे।

एकाएक जैसे उन्हें अपना उद्देश्य ध्यान आया हो, वे लक्ष्मण से सम्बोधित हुए-

''चलो लक्ष्मण, अब यहाँ समय नष्ट करना व्यर्थ है।''

''ऐसे ही नहीं जा सकते आपलोग'', राम के शब्द सुनकर कबन्ध शीघ्रता से बोला- ''मुझे अब समझ आ गया है कि पितामह ने मुझे जो परामर्श दिया था वह सर्वथा उचित था। अधिक आयु सुख का नहीं, दुःख का ही कारण होती है। अब मैं अशक्त हो चुका हूँ, इस भयानक वन में अपना निर्वाह कर पाना मेरे लिये संभव नहीं है। मेरे पास आखेट करने के लिये जो एकमात्र यंत्र था उसे भी आपने नष्ट कर दिया है, इसे पुनः कार्यसक्षम बना पाना भी मेरे लिये अब संभव नहीं है। जीवन भर मैंने इतना पोषण ग्रहण किया है कि मेरे प्राण सहजता से मेरा साथ नहीं त्यागेंगे। मैं वर्षों तक आहार के लिये तड़पकर प्राण त्यागना नहीं चाहता, अतः आप मुझे इस जीवन से मुक्ति प्रदान किये बिना यहाँ से नहीं जा सकते। परंतु उससे भी पूर्व आप अपना परिचय तो दीजिए। मुझे अपने मुक्तिदाताओं का परिचय जानने का अधिकार है।''

उसकी आकांक्षा सुनकर दोनों भाई मुस्कुरा उठे। लक्ष्मण ने उसकी जिज्ञासा शांत की - ''ये अयोध्या के युवराज श्री राम हैं। मैं इनका अनुज लक्ष्मण हूँ।''

''ओह प्रभु!'' कबंध की आँखें उत्साह से चमक उठीं - ''मैं भी कितना मूर्ख हूँ जो समझ ही नहीं पाया कि मेरे इस यंत्र को इतनी सहजता से नष्ट कर देने वाला प्रभु के सिवा और कौन हो सकता है! मेरे तो भाग्य उदय हो गये... किसी का इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है कि उसे स्वयं प्रभु के हाथों मुक्ति प्राप्त हो! मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।'' कहने के साथ ही कबंध के नेत्रों से प्रसन्नता के अश्रु भी प्रवाहित होने लगे थे। वह भाव-विह्वल होकर राम के चरणों में गिर गया था।

34.भेंट

हनुमान को चार दिन व्यतीत हो गये थे, उस वृक्ष पर प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा करते। अधीरता हो रही थी उन्हें, किंतु चित्त में प्रसन्नता की कमी नहीं थी, इसलिये उत्साह में कोई न्यूनता भी नहीं थी। होती भी क्यों, इतने वर्षों की प्रतीक्षा का फल जो मिलने वाला था! अंततः फल प्राप्ति की वेला आ ही गयी।

संध्या हो गयी थी। प्रकाश कम हो गया था। तो भी अपने प्रभु को उन्होंने दूर से ही पहचान लिया। उत्तर दिशा से वे अपने छोटे भाई के साथ चले आ रहे थे। 'माता जानकी साथ में नहीं हैं, इसका अर्थ है कि मैंने जो अनुमान लगाया था वही बात है।'

वे उनके और आगे आने की प्रतीक्षा करने लगे।

जैसे ही प्रभु थोड़ा और आगे आये, हनुमान धीरे से वृक्ष से नीचे उतरे और हाथ जोड़कर प्रभु की ओर दौड़ पड़े।

लक्ष्मण आगे-आगे चल रहे थे। हनुमान को इस भाँति दौड़ते आते देख उनकी हथेली अपने धनुष पर कस गयी।

''शांत लक्ष्मण, शांत!'' लक्ष्मण को आक्रमण की मुद्रा में आते देख राम ने शांत स्वर में पीछे से टोका - ''निश्चय ही ये हनुमान हैं। महर्षि ने जैसा बताया था ठीक वैसे ही तो दिख रहे हैं।''

''आप सत्य कह रहे हैं भइया! परंतु उस मायामृग से भेंट के उपरांत एकाएक किसी पर विश्वास करना कठिन है। आप भी तो महर्षि से भेंट से पूर्व मुझ पर ही अविश्वास कर बैठे थे।''

''तुम्हारे पास मुझे उलाहना देने का कारण है।'' राम धीरे से बोले - ''मुझे भी पीड़ा है कि मैंने अकारण तुम पर शंका की...''

''छोड़िये न भइया, मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं था।'' राम को दुःखी होता देख लक्ष्मण खेदपूर्वक जल्दी से बोले।

''कोई बात नहीं... महर्षि के उद्बोधन ने मेरे चित्त को धैर्य प्रदान किया है, अब मैं पुनः अपने भीतर व्यक्तियों और स्थितियों का सत्य परीक्षण करने की सामर्थ्य अनुभव कर रहा हूँ। ये हनुमान ही हैं... मुझे आगे आकर इनसे वार्ता करने दो।'' कहते हुए राम ने अपनी गति कुछ तीव्र कर दी। लक्ष्मण ने भी ठहरते हुए राम को आगे आने का मार्ग दे दिया।

अब तक हनुमान उन दोनों के निकट आ चुके थे। निकट आते ही, हाथ जोड़े-जोड़े ही वे प्रभु के चरणों में दण्डवत लेट गये। प्रसन्नता के अतिरेक से उनकी आँखों से अश्रु बह चले थे। उन्हीं से राम के चरण पखारते हुए वे बोले - ''प्रभु कितनी प्रतीक्षा करवाई आपने!''

''उठो वत्स!'' हनुमान के कंधे थामकर उन्हें उठाने का प्रयास करते हुए राम बोले- ''आप निश्चय ही केसरीनंदन हनुमान हैं।''

''हाँ प्रभु! आपका सेवक हनुमान ही है।'' उठते हुए हनुमान ने उत्तर दिया। उनके उठते ही राम ने उन्हें अपने प्रगाढ़ आलिंगन में समेट लिया।

राम से मुक्त होकर हनुमान लक्ष्मण को भी दण्डवत प्रणाम करने के लिये झुके किंतु लक्ष्मण ने उन्हें बीच में ही थाम लिया और अपने आलिंगन में समेट लिया।

''चलिये प्रभु!'' लक्ष्मण से मुक्त होते ही हनुमान बोले- ''ऋष्यमूक पर सब उत्कंठापूर्वक आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

''चलो! इस संकट की घड़ी में अब तुम्हारा ही अवलंब है हमें, तुम्हीं हमारे मार्गदर्शक बनो। परंतु एक बात कहनी है...'' राम बोले।

''आदेश कीजिए प्रभु!'' हनुमान ने तत्परता से उत्तर दिया।

''मैं कोई प्रभु नहीं हूँ मित्र, मैं भी तुम्हारे समान साधारण मानव हूँ।'' हनुमान द्वारा बारम्बार 'प्रभु' कहकर सम्बोधित किये जाने से राम असहजता अनुभव कर रहे थे।

''यह आपकी महानता है प्रभु जो सेवक को मित्र कहकर सम्बोधित कर रहे हैं, कृपापूर्वक उसे सीने से लगा रहे हैं।'' हनुमान भी अपने विश्वास पर अडिग थे।

''मैं सत्य कह रहा हूँ मित्र, मैं भी एक साधारण मनुष्य हूँ।'' राम ने पुनः समझाना चाहा।

''यही तो प्रभु की प्रभुताई है।'' समझ तो वह सकता है जो समझना चाहता हो। हनुमान तो एक युग से राम को प्रभु माने बैठे थे, वे भला कैसे समझते।

''तुम समझ क्यों नहीं रहे!'' राम बोले।

''वानरों को बुद्धि कुछ कम दी है आपने प्रभु।''

हनुमान के इस उत्तर पर लक्ष्मण हँस पड़े। राम विवश से मुस्कुराकर रह गये। उन्होंने आगे बहस नहीं की। उन्हें अचानक ही गौतम आश्रम की ऋषिका सुचेता का कथन पुनः स्मरण हो आया था - 'यही नियति है। यही उस परमप्रभु का खेल है। उससे लड़कर आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर पायेंगे। उसकी इच्छा के समक्ष पूर्ण समर्पण ही एकमात्र उपाय है, उसी का अनुसरण कीजिए। आप भी लोगों की आस्था को स्वीकार कीजिए।'

उन्होंने बात बदलकर पुनः मूल विषय पर आना ही श्रेयस्कर समझा, बोले- ''महर्षि का आदेश है, अतः ऋष्यमूक से पूर्व मुझे महर्षि मतंग के आश्रम में शबरी से भेंट करनी होगी।''

''कोई समस्या नहीं है, महर्षि का आश्रम मार्ग में ही पड़ेगा।'' हनुमान ने सहज भाव से उत्तर दिया।

आगे-आगे हनुमान, पीछे-पीछे राम-लक्ष्मण मतंग वन की ओर बढ़ चले।

***

''प्रभु आप दोनों दूर से आ रहे हैं, थकित होंगे। दोनों लोग मेरे कंधों पर बैठ जायें।'' थोड़ी दूर चलते ही हनुमान ने प्रस्ताव रखा।

हनुमान के प्रस्ताव पर राम और लक्ष्मण दोनों मुस्कुरा उठे।

''मैंने कुछ अनुचित कह दिया प्रभु? मैं वानर हूँ, और पहले ही बता चुका हूँ कि वानरों में बुद्धि भी कम होती है और व्यावहारिकता भी। यदि उत्साह में कभी मैं कुछ अनुचित कह जाऊँ तो कृपापूर्वक क्षमा कर दीजिएगा।''

''ऐसी कोई बात नहीं है मित्र हनुमान।'' राम ने मुस्कुराकर कहा।

''तो आइये बैठिये।'' कहते हुए हनुमान एक घुटना भूमि पर टेककर बैठ गये ताकि वे दोनों उनके कंधों पर आसीन हो सकें।

पर राम ऐसा कैसे कर सकते थे! वे तो मानवमात्र की समानता का संदेश लेकर निकले थे। फिर वे कोई अशक्त भी नहीं थे, बला-अतिबला के निरन्तर अभ्यास से थकन तो उन्हें स्पर्श करने का साहस तक नहीं कर सकती थी।

राम को हिचकता देख हनुमान ने पुनः निवेदन किया - ''अंधकार हो गया है प्रभु, आप इस मार्ग के अभ्यस्त भी नहीं हैं अतः आपको कठिनाई होगी।''

अपनी भक्ति में भावातुर हनुमान भला कैसे समझ सकते थे कि राम ऐसे किसी आग्रह को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। हनुमान ने कई बार निवेदन किया, हठ भी किया किंतु राम ने विनम्र किंतु दृढ़ स्वर में हर बार मना कर दिया। अंततः हनुमान को हठ त्यागना ही पड़ा।

यात्रा पुनः आरम्भ हो गयी।

***

पम्पा सरोवर मतंगवन की पश्चिमी सीमा बनाता था।

सरोवर के दक्षिण छोर पर मतंग ऋषि का आश्रम स्थित था। मतंग ऋषि का स्मरण होगा पाठकों को, इन्हीं के शाप के भय से बालि इस वन की सीमा में प्रवेश नहीं करता था।

मतंग हाथी को भी कहते हैं।

मतंगवन का नामकरण पता नहीं उस क्षेत्र में मदमत्त हाथियों की बहुलता के कारण पड़ा था अथवा मतंग ऋषि के कारण। संभव है मतंग ऋषि का वास्तविक नाम कुछ और ही रहा हो परंतु क्योंकि वन के विकराल हाथियों के मध्य वे निर्द्वन्द्व रहते थे, हाथियों को जैसे उन्होंने वश में कर लिया था, इसी कारण से उनका नाम मतंग ऋषि पड़ गया हो।

यह सत्य था कि प्रत्येक व्यक्ति को भयभीत कर देने वाले ये हाथी मतंग ऋषि के मानो पालतू थे। उन हाथियों के मध्य आश्रम पूर्णतः सुरक्षित था। किसी का साहस नहीं होता था उस ओर आने का। विशिष्टता यह थी कि हाथियों की यह बहुलता मतंग वन के पश्चिमी हिस्से में, विशेषकर पम्पा सरोवर के चारों ओर, दूसरे शब्दों में आश्रम के चारों ओर, कुछ अधिक ही थी। वन के उत्तरी और पूर्वी हिस्से में ये हाथी अपेक्षाकृत कम पाये जाते थे।

ऋष्यमूक पर्वत इसी मतंगवन के मध्य भाग में स्थित था।

किष्किंधा के वानरों को हाथियों का भय वैसे ही नहीं था। उनमें बल और चपलता का अद्भुत संगम था जिसके आगे हाथियों का बल नतमस्तक हो जाता था। फिर भी पम्पा सरोवर की ओर उनका आवागमन अत्यल्प ही होता था।

सुग्रीव, हनुमान आदि जल ग्रहण करने पम्पा के उत्तर-पूर्वी छोर पर तो आते थे परंतु उन्हें भी पम्पा को पार कर मतंग आश्रम तक आने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। सुग्रीव तो ऋष्यमूक से उतरता ही बहुत कम था। सामान्यतः तो वह पर्वत के शिखर पर ही रहता था, यदि कभी आवश्यकता पड़ती थी तो शिखर से थोड़ा सा ही नीचे, पर्वत के पूर्वी छोर पर एक गुफा थी, उसमें आश्रय ले लेता था।

अन्य किसी को भी इधर आने की आवश्यकता कम ही पड़ती थी। पहला कारण तो यही था कि उनका आवागमन किष्किंधा और ऋष्यमूक के मध्य ही रहता था और मतंग आश्रम उस मार्ग से बहुत दूर था। दूसरा कारण यह था कि

न तो कभी मतंग ऋषि ने किसी को आश्रम की ओर आने को प्रोत्साहित किया था और न ही उनकी मृत्यु के बाद अब वहाँ रह रही उनकी सेविका और शिष्या शबरी ने।

मतंग ऋषि भी नारद की योजना का एक अंग थे।

वस्तुतः वे ऋषि निपुण आयुध विज्ञानी भी थे। उन्होंने भी कुछ विशिष्ट आयुधों का विकास कियाा था। इनमें एक दिव्यास्त्र भी था। किसी को स्वप्न में भी संभावना नहीं हो सकती थी कि मतंगों से भरे इस दुर्गम आश्रम में कोई विलक्षण आयुध विज्ञानी निवास करता हो सकता है। लोग तो उन्हें नकचढ़ा, एकान्तवासी ऋषि ही मानते थे। यह क्षेत्र किष्किंधा की सीमा में था अतः रक्षों का भी इधर आवागमन नहीं होता था।

मतंग ऋषि की मृत्यु हुए दो दशक के लगभग व्यतीत हो चुके थे।

उन्होंने बहुत अधिक शिष्य नहीं बनाये थे। जो बनाये भी थे, वे भी उनकी मृत्यु के उपरांत अन्य आश्रमों में चले गये थे। यहाँ शबरी के साथ मात्र एक ही ऋषि रह गये थे परंतु उनका देहान्त हुए भी लम्बी अवधि व्यतीत हो चुकी थी।

शबरी जन्मना शूद्र वर्ण की थी। मतंग ने उसे दयावश ही आश्रम में स्थान दिया था परंतु उसकी सेवा भावना से प्रभावित होकर बाद में उन्होंने उसे दीक्षा भी दे दी थी। वह तीक्ष्ण बुद्धि की स्वामिनी और परम उद्योगी थी, इसी कारण धीरे-धीरे वह मतंग ऋषि की विशिष्ट सहयोगिनी बन गयी। आयुधों के विकास में भी उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। अपनी प्रतिभा के कारण आज वह क्षेत्र के समस्त ऋषियों के सम्मान का पात्र थी।

अपनी मृत्यु के समय मतंग शबरी को ही यह दायित्व सौंप गये थे कि वह राम की धरोहर, मतंग ऋषि द्वारा विकसित आयुध, उन्हें सौंपने के बाद ही देहत्याग करे। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है, उस काल में अनेक ऋषि अपनी साधना से इच्छा-मृत्यु की शक्ति अर्जित कर लेते थे। परंतु ऐसे सभी ऋषि आसक्ति पर विजय प्राप्त कर चुके होते थे अतः अपने दायित्वों के निर्वहन के

उपरांत स्वेच्छा से मृत्यु का आवाहन कर लेते थे, अनावश्यक दीर्घजीवन उन्हें काम्य नहीं होता था।

शबरी भी अब अत्यंत वृद्ध हो चुकी थी और एकमात्र राम की प्रतीक्षा में ही आश्रम में एकाकी निवास करती हुई, अपनी नश्वर देह को सँजोये थी।

***

महर्षि अगस्त्य ने, राम के प्रस्थान के पश्चात् जिस व्यक्ति को अज्ञात कार्य के लिये भेजा था, उसे वस्तुतः शबरी और सुग्रीव से भेंट कर, राम के वहाँ पहुँचने से पूर्व ही, उन तक महर्षि के संदेश पहुँचाने थे।

शबरी को उसे मात्र यह सूचना देनी थी कि राम अब बस आने वाले ही हैं, वह उनसे भेंट और उनकी धरोहर उन्हें सौंपने को तत्पर रहे।

उस दूत के मार्ग में वे कोई व्यवधान नहीं आने वाले थे जो राम के मार्ग में आये। वह सीधा मतंग आश्रम पहुँचा। शांति से आश्रम आने वालों को हाथियों से कोई भय नहीं रहता था। शबरी तक निर्दिष्ट सूचना पहुँचाकर वह पम्पा में उतर गया और तैरता हुआ ऋष्यमूक पर्वत की तलहटी तक आ गया।

जब वह दूत ऋष्यमूक पर पहुँचा, उसे देखते ही सुग्रीव आशंकित हो उठा- 'कहीं यह बालि का कोई गुप्तचर तो नहीं है!' उसे देखते ही वह ऋष्यमूक के शिखर से ही चिल्लाया - ''कौन हो तुम? यहाँ क्या करने आये हो?''

''आशंकित न हों वानर राज! मैं आपका मित्र ही हूँ। महर्षि अगस्त्य का आवश्यक संदेश लाया हूँ।'' उस व्यक्ति ने शांतभाव से उत्तर दिया।

''कैसे विश्वास करूँ कि तुम महर्षि का संदेश लाये हो? उनका तो मुझसे कोई सम्पर्क ही नहीं है, उन्हें मुझसे क्या काम आ पड़ा? और मैं तो स्वयं ही प्राण बचाये यहाँ पड़ा हूँ, मैं किसी की भला क्या सहायता कर सकता हूँ!''

''उन्हें आपसे कोई कार्य नहीं है, परंतु तो भी संदेश अत्यावश्यक है और समय अधिक है नहीं। आप कृपया संदेश सुन लीजिए तो मैं वापस जाऊँ।''

''परंतु मैं कैसे विश्वास करूँ कि तुम भइया के गुप्तचर नहीं हो?''

''यह आपकी इच्छा है कि आप मुझ पर विश्वास करें अथवा न करें। यहीं से मेरा संदेश सुन लें, आपके ही हित का संदेश है।''

''परंतु...''

''उसे संदेश सुनाने दो वत्स। वह एकाकी है अतः यदि बालि का कूटचर होगा भी तो हमें कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।'' अचानक जाम्बवान ने हस्तक्षेप किया- ''तुम अपनी बात कहो दूत।''

''महर्षि ने सूचना भिजवाई है कि दशरथनन्दन श्री राम अपने अनुज सहित किसी भी क्षण किष्किंधा पहुँच सकते हैं।''

''ऊपर आओ वत्स।'' जाम्बवान बोला।

''परंतु तात ..'' सुग्रीव ने हिचकिचाते हुए हस्तक्षेप किया।

''आने दो उसे, बालि को कदापि यह सूचना नहीं हो सकती कि राम आने वाले हैं।''

उपस्थित सभी जन दूत के ऊपर आने की प्रतीक्षा करने लगे। इस बीच जाम्बवान ने एक वानर से कुछ फल तोड़ लाने को कह दिया।

''अब बैठकर विस्तार से कहो अपनी बात।'' जब दूत ऊपर तक आ गया तो स्वयं भी एक शिला पर बैठते हुए जाम्बवान बोला।

''विस्तार से कहने को कुछ नहीं है मेरे पास। मात्र इतनी सूचना है कि श्रीराम आने वाले हैं। आप दोनों ही समान व्याधि से पीड़ित हैं अतः दोनों एक-दूसरे के सहायक हो सकते हैं।''

''तात्पर्य क्या है तुम्हारा?'' सुग्रीव ने पूछा।

''आप भी पत्नी के वियोग से पीड़ित हैं और श्रीराम भी।''

''ओह!'' सुग्रीव के मुख से निकला - ''इसका अर्थ है हनुमान का निष्कर्ष यथार्थ था। रावण देवी जानकी का ही अपहरण कर ले गया है।''

''हाँ!'' दूत बोला - ''श्रीराम को माता जानकी को वापस लाने हेतु आपकी सहायता की आवश्यकता होगी और आपको भी अपनी पत्नी से भेंट हेतु उनकी सहायता की आवश्यकता है।''

दूत के वचन सुनकर सुग्रीव की भौहें सिकुड़ गयीं। जाम्बवान भी कुछ सोचने लगा।

''क्या सोच रहे हैं?'' सभी को मौन देख दूत पुनः बोला।

''हम दोनों किस भाँति एक दूसरे के सहायक हो सकते हैं? मैं भइया के भय से इस वन की सीमा में बंदी हूँ। मेरे ये मुट्ठी भर साथी, कितने भी सामर्थ्यवान क्यों न हों, रावण को पराजित नहीं कर सकते।''

''ऋष्यमूक निवासी सुग्रीव लाचार हो सकता है, परंतु...'' दूत मुस्कुरा उठा- ''किष्किंधापति सुग्रीव तो लाचार नहीं होगा!''

उसकी बात सुनते ही वहाँ उपस्थित सभी एकाएक चौंक उठे। महर्षि अगस्त्य की ओर से इस प्रकार के प्रस्ताव की आशा किसी ने नहीं की थी।

''क्या कहना चाहते हो तुम?'' जाम्बवान एकाएक तनकर बैठता हुआ बोला।

''यही कि बालि अब किष्किंधा पर शासन करने योग्य नहीं रहा है। श्रीराम की सहायता से उसका वध कर महाराज सुग्रीव सिंहासनारूढ़ हों।''

भले ही ये लोग भी यही निश्चय कर चुके थे कि अब बालि के वध का कोई न कोई मार्ग खोजना ही पड़ेगा परंतु इस हेतु उन्हें राम से सहायता प्राप्त हो सकती है ऐसा किसी ने नहीं सोचा था। ये सब तो अभी तक उपाय खोज ही रहे थे। ऐसे में अगस्त्य के दूत द्वारा स्पष्ट रूप से यह प्रस्ताव रखे जाने से वे सब हतप्रभ रह गये। जिस कार्य को सम्पादित करना उन्हें असंभव जैसा ही प्रतीत हो रहा था वह एकाएक इतना सहज हो जायेगा, एक पल को तो उन्हें अपने सौभाग्य पर विश्वास ही नहीं हुआ।

फिर जाम्बवान ही पुनः बोला - ''परंतु इससे महर्षि को क्या लाभ होगा? कहीं ऐसा तो नहीं कि सुग्रीव की ही आशंका सत्य हो... तुम बालि के ही कूट चर हो? उस दिन मेरा और उसका जो विवाद हुआ था, उसी के संदर्भ में उसने हमें परखने के लिये तुम्हें यहाँ भेजा हो?''

दूत जाम्बवान के इस आरोप से रत्तीभर भी विचलित नहीं हुआ। वह पूर्ववत मुस्कुराता हुआ बोला - ''मैंने पूर्व में ही कहा था कि मुझ पर विश्वास करो अथवा मत करो, मैं कौन हूँ इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। आने वाला समय इसे स्वयं सिद्ध करता रहेगा, परंतु यह आवश्यक है कि आप मुझे पूरी बात कहने का अवसर दें।''

''बोलो।'' सुग्रीव बोला।

''बालि के वध के उपरांत जब आप किष्किंधा के अधिपति बन जायेंगे तो आपको जानकी को रावण से वापस लाने में श्रीराम की तन-मन-धन से सहायता करने की शपथ लेनी होगी।''

''उसमें मुझे भला क्या आपत्ति हो सकती है!''

''अब मैं सबसे मुख्य विषय पर आता हूँ। श्रीराम सम्पूर्ण मानवमात्र से प्रेम करने वाले व्यक्ति हैं। सभी का हित ही चाहते हैं। रावण के विरुद्ध युद्ध उनकी विवशता है। चन्द्रनखा के साथ जो कुछ हुआ वह एक दुर्घटना थी। उसने माता जानकी पर आक्रमण किया, प्राण रक्षा हेतु उन्होंने उस पर आक्रमण कर दिया। श्रीराम ने तो मात्र उसे रोकने का ही प्रयास किया था। परंतु अब रावण से युद्ध उनकी विवशता बन गयी है। खर-दूषण ने सम्पूर्ण सैन्य के साथ उन पर आक्रमण कर दिया तो भी वे युद्ध हेतु प्रस्तुत नहीं थे परंतु अब जब रावण ने माता जानकी का अपहरण कर लिया है, तो युद्ध के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय भी नहीं है उनके सम्मुख।''

दूत अपनी बात कहकर एक पल रुका और इन सबके मुखों का निरीक्षण करने लगा। शायद अपने कथन का प्रभाव देख रहा था।

सब सहमति में सिर हिला रहे थे।

"बालि से श्रीराम का कोई विरोध नहीं है। ऐसे में पूरी सम्भावना है कि बालि के वध हेतु उनकी अंतरात्मा अनुमति न दे। वे हिचकिचायें।"

"तब क्या लाभ हुआ?" सुग्रीव एकाएक हताश स्वर में बोल पड़ा। दूत के इस एक वाक्य ने उसके सारे उत्साह पर पानी फेर दिया था।

"कुछ प्राप्त करने हेतु कुछ उद्योग भी करना पड़ता है। महर्षि ने प्रकारान्तर से उन्हें आदेशित किया है बालि-वध के लिये, परंतु फिर भी आपको शरणागत मित्र बनकर, उनके सम्मुख पत्नी के वियोग का नाटकीय प्रदर्शन करते हुए उन्हें वचन के बंधन में बाँधना होगा। उनसे त्रिवाचा करवाना होगा कि वे पत्नी को प्राप्त करने में आपका पूर्ण सहयोग करेंगे।"

"कुछ और स्पष्ट कहो।" सुग्रीव बोला।

"मैं राजनीति का पंडित नहीं हूँ, संन्यासी ब्राह्मण हूँ। इस विषय में क्या और कैसे करना होगा, तात जाम्बवान आपका मुझसे श्रेष्ठ मार्गदर्शन कर सकते हैं।"

"फिर भी..."

"मेरे पास बताने हेतु इतना भर ही है। महर्षि जितना उद्योग कर सकते थे, कर चुके हैं। श्रीराम स्वयं समर्थ हैं लंका पर विजय प्राप्त करने में। स्वयं श्रीविष्णु का आशीर्वाद प्राप्त है उन्हें। श्रीविष्णु अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदान कर चुके हैं उन्हें। समस्त दिव्यास्त्र प्रदान कर चुके हैं उन्हें। उनके अतिरिक्त, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और स्वयं महर्षि अगस्त्य सहित अनेक ऋषियों ने जो भी विशिष्ट आयुध विकसित किये थे वे सभी वे लोग श्रीराम को प्रदान कर चुके हैं। कुछ विशिष्ट आयुध जो महर्षि मतंग ने विकसित किये थे, शबरी आज तक उन आयुधों के संरक्षण हेतु ही शरीर धारण किये हुए है, श्रीराम के इस वन में प्रवेश करते ही वह भी वे सारे आयुध श्रीराम को समर्पित कर अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगी।

''इस प्रकार रावण को परास्त करने हेतु श्रीराम पूर्ण समर्थ हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि देवों का पूर्ण समर्थन है उनके साथ। यदि कोई कमी शेष है तो एक ही...'' कहकर दूत अचानक चुप हो गया।

सुग्रीव सहित सारे उपस्थित वानर मंत्रमुग्ध से उसकी बातें सुन रहे थे। उसके एकाएक मौन हो जाने से जैसे वे सम्मोहन से जग गये।

वे अचंभित थे इस जानकारी से। कुछ पल लगे उन्हें इस सम्मोहन से बाहर आने में। सबसे पहले जाम्बवान ही बाहर आया, उसने पूछा - ''वह क्या?''

''श्रीविष्णु अपनी कूटनीति रोपित नहीं कर पाये उनमें। किसी व्यक्ति में विद्या रोपी जा सकती है, सिद्धांत बताये जा सकते हैं उसे, किंतु उसके अपने मूल चरित्र के विपरीत सिद्धांत उसका अवचेतन स्वीकार नहीं करता। यही श्रीराम के साथ हुआ। कूटनीति के समस्त सिद्धांत तो श्रीविष्णु ने रोपित कर दिये उनमें, परंतु उनका जो मूल चरित्र है, वह समय पर उन सिद्धांतों का अनुसरण कर पायेगा इसमें संदेह है।''

''तब क्या लाभ होगा?'' सुग्रीव हताश से स्वर में बोला- ''भइया से उनका कोई विरोध नहीं है, ऐसे में जब वे उचित-अनुचित का विचार करेंगे तो उनका अवचेतन भइया का वध करने से उन्हें रोक देगा। मेरी स्थिति तो जहाँ की तहाँ ही रह जायेगी।''

''तभी तो आपसे निवेदन है कि पहले उन्हें वचन में बाँधना होगा। वे अपने वचन से कभी नहीं फिर सकते। आपकी सुविधा हेतु महर्षि सब प्रकार से समझाकर, उन्हें पूर्व में ही इस हेतु आदेशित कर चुके हैं। वे ब्राह्मणों और ऋषियों की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करते।''

''तब फिर शंका क्यों है?''

''शंका कोई नहीं है, तो भी सफलता हेतु प्रत्येक छिद्र को भर देना आवश्यक होता है। महर्षि अपना कार्य कर चुके हैं, अब आपको अपना कार्य करना है। कूटनीति के पंडित तात जाम्बवान आपके सहयोग और मार्गदर्शन हेतु हैं ही।''

"हनुमान भी तो हैं।"

"मुझे नहीं प्रतीत होता कि इसमें हनुमान आपकी कोई सहायता कर पायेंगे। वे तो अपने प्रभु राम की इच्छा का अनुसरण करेंगे। यदि उनकी इच्छा नहीं होगी तो हनुमान का अपना भी कोई विरोध नहीं है बालि के साथ।"

"उचित कहा आपने", जाम्बवान बोले- "आप निश्चिंत रहें। यह मैं देख लूँगा। परंतु एक प्रश्न और करना चाहता हूँ ...।"

"अवश्य पूछिये, परंतु मात्र एक प्रश्न, तदुपरान्त मुझे प्रस्थान करना ही होगा। श्रीराम के आगमन से पूर्व ही मेरा यहाँ से प्रस्थान कर जाना आवश्यक है।"

"आपने श्रीविष्णु द्वारा अपनी शक्तियाँ श्रीराम को दिये जाने का उल्लेख किया। अन्य महर्षियों का भी उल्लेख किया, यहाँ तक कि महर्षि मतंग का भी उल्लेख किया। श्रीराम का रावण से विरोध तो अभी हुआ है जबकि महर्षि मतंग को देहत्याग किये दीर्घ अवधि व्यतीत हो चुकी है।"

"बहुत लम्बी कथा है। संक्षेप में इतना ही समझ लीजिए कि श्रीराम के जन्म से पूर्व ही, उनके दण्डक आगमन और उनके द्वारा बालि और रावण के वध की पटकथा लिखी जा चुकी थी। इस पटकथा में अब आपको अपनी भूमिका का निर्वाह करना शेष है।"

"इस भूमिका हेतु सुग्रीव का ही चयन क्यों किया महर्षि ने, बालि का भी तो चयन कर सकते थे?" जाम्बवान ने शंका रखी।

"एक ही प्रश्न की बात हुई थी", दूत उठता हुआ बोला- "फिर भी उत्तर दिये देता हूँ... किष्किंधा को अपकीर्ति से उबारने हेतु। महाराज सुग्रीव और महारानी पर हुए अन्याय के प्रतिकार हेतु।"

कहने के साथ ही दूत ने हाथ जोड़कर सबसे विदा ली और मुड़कर वापस पम्पासर के स्थान पर इस बार किष्किंधा की ओर जाने वाले मार्ग की ओर बढ़ चला।

सब हतबुद्धि से उसे जाते देखते रहे।

***

रात धीरे-धीरे उतरने लगी थी, फिर भी महर्षि मतंग के आश्रम में, आश्रम के द्वार पर ही खड़ी, शबरी अभ्यागतों की प्रतीक्षा कर रही थी। ये अभ्यागत राम और लक्ष्मण ही थे। उनके आते ही शबरी ने पूरे मन से अभ्यर्थना की और पम्पा सरोवर में अवगाहन कर श्रममुक्त हो लेने का आग्रह किया - ''वत्स राम! सम्यक् होगा यदि आप दोनों पम्पा के दिव्य जल में अवगाहन कर श्रममुक्त हो लें।''

राम समझ रहे थे कि दिव्यास्त्रों को ग्रहण करने के पूर्व यह आवश्यक है। सभी ऋषियों ने उनसे ऐसा ही कराया था। अपवाद स्वरूप श्रीविष्णु ने स्नान की आवश्यकता नहीं समझी थी परंतु श्रीविष्णु की तुलना किसी अन्य से नहीं हो सकती।

स्नान से निवृत्त होते ही शबरी, राम की धरोहर उन्हें सौंपने के कार्य में संलग्न हुई। सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न होते-होते रात्रि के दो पहर व्यतीत हो चुके थे। जैसे ही वे उस सब से निवृत्त हुए, शबरी ने एक लम्बी साँस खींची जैसे किसी बोझ से मुक्त हुई हो और बोली-

''मेरा दायित्व सम्पूर्ण हुआ, अब मुझे अनुमति प्रदान करें।''

राम चकित थे, अनुमति तो उन्हें माँगनी थी ऋष्यमूक की ओर प्रस्थान करने हेतु। शबरी को राम का विस्मय समझते एक पल भी नहीं लगा। वह बोली - ''मैं मात्र इसी कार्य हेतु इस नश्वर देह को धारण किये हुए थी। अब मैं दायित्वमुक्त हुई अब इस देह की कोई आवश्यकता नहीं। इसका अंतिम संस्कार विधानपूर्वक आपके हाथों से हो, इससे श्रेयस्कर और क्या हो सकता है।''

कहने के साथ ही, राम को अन्य कोई प्रश्न करने का अवसर दिये बिना, वह भूमि पर समाधि की अवस्था में बैठ गयी। राम चकित से प्रतीक्षा करने लगे कि अब क्या होता है!

कुछ ही पलों में शबरी की समाधि चिर समाधि में परिवर्तित हो गयी।

35. ऋष्यमूक पर

अंतिम संस्कार के लिये सूर्योदय की प्रतीक्षा करनी थी। वन में लकड़ियों की कोई कमी नहीं थी। राम ने लक्ष्मण को संकेत किया कि चिता के लिये लकड़ी एकत्र करें, परंतु हनुमान ने उन्हें रोक दिया - ''सेवक के होते आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता है।''

बात की बात में हनुमान ने विशाल चिता का निर्माण कर दिया।

सूर्योदय होते ही शबरी का विधिपूर्वक दाह-संस्कार कर, तदुपरांत स्नानकर, राम ने पुनः आगे बढ़ने का प्रस्ताव किया - ''मित्र हनुमान! अब प्रस्थान किया जाये!''

''जैसी आज्ञा प्रभु!'' हनुमान शीश झुकाकर, हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए- ''चलिये।''

हनुमान के पुनः प्रभु सम्बोधन पर लक्ष्मण ने चुटकी ली - ''भइया! अब तो आप अभ्यास डाल ही लीजिए। इस प्रकार कब तक असहज होते रहेंगे!''

राम ने कोई उत्तर नहीं दिया।

''प्रभु दो मार्ग हैं'', एक तो पम्पा सरोवर में उतरकर इसे तैरते हुए पार किया जा सकता है। उस पार निकलने पर हम ठीक ऋष्यमूक की तलहटी में होंगे। यदि सरोवर में न उतरना चाहें तो सरोवर का चक्कर काटकर निकल सकते हैं।''

''तैरकर ही पार करते हैं पम्पा को, आनंद भी आयेगा।'' राम से पहले ही लक्ष्मण ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

तीनों यात्री पम्पासर में उतर पड़े।

''प्रभु!'' सरोवर पार करने के उपरांत हनुमान एक बार पुनः अपना एक घुटना धरती पर टेकते हुए बोले- ''आइये, सेवक के कंधों पर विराजमान हो

जाइये। ऋष्यमूक की चढ़ाई बड़ी बेढब है। हम वानरों को तो अभ्यास है परंतु आप दोनों को कष्ट होगा।''

''नहीं मित्र, हम दोनों न तो अपंग हैं और न ही शक्तिहीन। कोई यदि आपका सम्मान करता है तो अकारण उसके सेवाभाव का दोहन करना क्रूरता कहलाता है। सूर्यवंशी मात्र अपने शत्रुओं के प्रति क्रूर होते हैं।'' राम ने मंद स्मित के साथ पुनः हनुमान का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

ऋष्यमूक पर सभी को हनुमान के राम और लक्ष्मण सहित वापस लौटने की प्रतीक्षा थी। अगस्त्य के दूत के आगमन के उपरांत तो यह प्रतीक्षा व्यग्रता में परिवर्तित हो गयी थी। आगत भविष्य में रुमा से मिलन व किष्किंधापति बनने के सुखद स्वप्नों और 'यदि राम ने भइया के वध से मना कर दिया तो ...' इस आशंका ने सुग्रीव की व्यग्रता को और भी बढ़ा दिया था। दूत के जाने के बाद से ही उसे चैन नहीं था। फिर बैठ जाता, फिर अचानक उठकर टहलने लगता, फिर पश्चिम की ओर थोड़ा सा उतरकर राम-लक्ष्मण की राह ताकने लगता। परंतु ऋष्यमूक का ढलान सभी ओर तीव्र था, साथ ही ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्षों से आच्छादित भी था। पश्चिम की ओर का ढलान तो कुछ अधिक ही खड़ा था। वृक्षों की सघनता भी उधर अधिक थी। इस कारण व्यग्र सुग्रीव बहुत प्रयास के बाद भी कुछ देख पाने में असमर्थ था।

उसकी व्यग्रता देख वृद्ध जाम्बवान एक ओर बैठे मुस्कुरा रहे थे।

अंततः सुग्रीव की व्यग्र प्रतीक्षा सफल हुई।

वृक्षों के मध्य से हनुमान ऊपर की ओर चढ़ते दिखाई दिये। उनके पीछे कंधों पर धनुष धारण किये दो अत्यंत सुंदर युवक भी थे। 'निश्चय ही यही राम और लक्ष्मण होंगे।' सुग्रीव ने सोचा। इसके साथ ही उसके मुख पर मुस्कान पसर गयी। दो पल तो उसने प्रतीक्षा की किंतु उसके बाद रहा नहीं गया, वह स्वयं भी नीचे की ओर उतरने लगा। उसके साथ अन्य वानरों ने भी उसका अनुसरण किया, मात्र जाम्बवान अपने स्थान पर बैठे रहे।

''प्रणाम प्रभु!'' सुग्रीव ने हाथ जोड़कर पहले राम फिर लक्ष्मण को प्रणाम किया। उस लगभग खड़ी चढ़ाई पर दण्डवत प्रणाम कर पाना संभव ही नहीं था।

राम और उनके बाद लक्ष्मण ने भी, छाती से लगाकर उसके प्रणाम का उत्तर दिया। फिर सुग्रीव की अगुआयी में सब लोग शिखर की ओर बढ़ चले।

''क्या गुफा में चलें?'' मार्ग में सुग्रीव ने जाम्बवान की ओर देखते हुए प्रश्न किया।

''क्या आवश्यकता है!'' जाम्बवान ने असहमति व्यक्त की - ''गुफा में ऐसा उन्मुक्त वातावरण कहाँ प्राप्त होगा।'' कहकर वह एक पल को ठहरा फिर मुस्कुराते हुए आगे जोड़ा - ''सूर्यवंशी राजकुमारों के साथ भावी किष्किंधापति की मित्रता का उद्घोष आकाश में दैदीप्यमान सूर्य की साक्षी में ही होना चाहिए।''

जाम्बवान की वाक्पटुता पर राम मुस्कुरा उठे।

''तो बैठिये श्रीराम! यहाँ हमारे पास आपके योग्य आसन नहीं है, आपको भूमि पर बैठकर ही हमारा आतिथ्य स्वीकार करना होगा।'' सुग्रीव कुछ संकोच के साथ बोला।

''उसकी आवश्यकता भी नहीं है।'' राम मुस्कुराकर भूमि पर बैठते हुए बोले- ''हम भी इस समय अयोध्या के राजकुमार नहीं, आपके समान सामान्य वनवासी ही हैं।''

सब बैठ गये तो सुग्रीव को अतिथि सत्कार का ध्यान आया। साथियों की ओर देखते हुए बोला - ''कोई स्वादिष्ट फलों की तो व्यवस्था करो अतिथियों हेतु।''

''आवश्यकता नहीं'', जाम्बवान हँसते हुए बोला - ''हनुमान नहीं दिख रहे यहाँ, इसका एक ही अर्थ है कि वे व्यवस्था में लग चुके हैं।''

सभी हँस पड़े। हँसी के मध्य ही सुग्रीव ने जाम्बवान की ओर देखा। जैसे ही दोनों की दृष्टि मिली सुग्रीव ने आँखों-आँखों में ही चर्चा आरम्भ करने का संकेत किया।

उत्तर में जाम्बवान ने भी आँखों से ही प्रतीक्षा करने का संकेत किया और चारों ओर दृष्टि फिराने लगे... संभवतः हनुमान को खोजने के लिये। संकेत सुग्रीव ने समझ लिया। वे भी सामान्य बातें करते हुए हनुमान के फल लेकर आने की प्रतीक्षा करने लगे।

***

फलों का आहार करने के उपरांत जब सब लोग बैठे तो जाम्बवान ने चर्चा का सूत्रपात किया - ''श्री राम! आपको ज्ञात ही है कि सुग्रीव अपने अग्रज, किष्किंधापति बालि से प्रताड़ित होकर यहाँ ऋष्यमूक पर निवास कर रहा है। आपके भाई तो आपको वापस अयोध्या लौटाने हेतु प्रयासरत हैं किंतु बालि इन्हें देखते ही इनका वध करने की प्रतिज्ञा किये बैठा है। इन्होंने कई बार उसे संदेश भेजा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए, मात्र मेरी पत्नी को भी यहाँ मेरे साथ निवास करने की अनुमति प्रदान कर दें, परंतु वह उसकी अनुमति भी नहीं दे रहा।''

''निश्चय ही किष्किंधापति का यह आचरण निंदनीय है।'' राम ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

''मुझे नहीं ज्ञात कि चर्चा में कितनी सत्यता है किंतु विगत कई वर्षों से किष्किंधा के जनमानस में यह चर्चा है कि बालि अपनी अनुजवधू के साथ बलात अनाचार में रत है, जिसके कारण उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी है।''

''यह तो अत्यंत ही निंदनीय है।'' लक्ष्मण बोल पड़े।

''निंदनीय ही नहीं, दण्डनीय है युवराज लक्ष्मण।'' जाम्बवान बोला।

''आपने कोई प्रयास नहीं किया उसे दण्ड देने का?'' लक्ष्मण ने पुनः प्रश्न किया।

''दण्ड देना तो बहुत दूर की बात है युवराज, हम तो उसका विरोध करने की स्थिति में भी नहीं है। वह सम्राट् है, समस्त सैन्य उसके नियंत्रण में है, जबकि हम, आप देख ही रहे हैं कि मुट्ठी भर लोग ही हैं। इतना ही नहीं, बालि स्वयं में कितना बलशाली है यह बताने की आवश्यकता नहीं। वह द्वन्द्व में स्वयं लंकापति रावण को परास्त कर चुका है। उसे वर प्राप्त है कि द्वन्द्व में वह विपक्षी की भी आधी शक्ति हर लेता है।''

''भीत व्यक्ति की आधी शक्ति तो उसका भय वैसे ही हर लेता है।'' लक्ष्मण ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

''आप सत्य कह रहे हैं युवराज, परंतु हम भयवश शांत नहीं हैं। सुग्रीव बड़े भाई के पद की मर्यादा के कारण मौन रहे हैं। उन्हें आशा थी कि समय के साथ भाई का क्रोध शांत हो जायेगा और वे उनका निष्कासन वापस ले लेंगे। उन्हें पुनः किष्किंधा में अपनी पत्नी के साथ निवास करने का अवसर मिलेगा।''

''अभी तक प्रतीक्षा ही कर रहे हैं।''

''मैंने कहा न, ये बड़े भाई के पद की मर्यादा का सम्मान कर रहे हैं। इनका कहना है कि ये बड़े भाई पर प्रहार नहीं करेंगे, हनुमान का कहना है कि वे मातुल पर प्रहार नहीं करेंगे।''

''तब इनकी ओर से कोई दूसरा भला क्यों प्रतिरोध करेगा। कुछ प्राप्त करने हेतु पहले स्वयं उद्यम करना होता है, तभी कोई अन्य सहयोगी होता है।''

''सत्य कहा युवराज! जब लंकेश ने देवी जानकी का अपहरण किया, तब हम यही विचार कर रहे थे...''

''क्या कहा आपने'', अब तक शांत भाव से लक्ष्मण और जाम्बवान का वार्तालाप सुन रहे राम, सीता की चर्चा आते ही सजग हो गये। वे तत्काल बोल उठे - ''आपने रावण को सीता का अपहरण करते देखा है?''

''अपहरण करते नहीं देखा, किंतु अपहृत कर ले जाते अवश्य देखा। उस समय हम यहीं बैठे यही विचार कर रहे थे कि बालि के विरुद्ध अब अस्त्र उठाने

ही होंगे, कि तभी किसी स्त्री के विलाप का स्वर सुनकर हमारा वार्तालाप बीच में ही थम गया। पहले तो हमें समझ ही नहीं आया कि रुदन का स्वर आ कहाँ से रहा है, किंतु फिर देखा कि आकाशमार्ग से लंकेश पुष्पक में किसी स्त्री को ले जा रहा है। पुष्पक को तो हम पहचानते थे किंतु उस विलाप करती स्त्री को नहीं पहचान पाये। वह तो उसके द्वारा सम्भवतः हमें बैठे देखकर फेंके गये आभूषणों से हनुमान ने अनुमान लगाया कि वे देवी जानकी हो सकती हैं....''

''कहाँ हैं वे आभूषण?'' राम व्यग्रता से बोल उठे। परंतु सुग्रीव उनके बोलने से पूर्व ही आभूषण लेने गुफा की ओर प्रस्थान कर चुका था।

''आभूषण देखकर ही हमें लगा कि ये तो किसी अत्यंत उच्च कुल की, किसी राजकन्या के आभूषण हैं। तभी हमें ध्यान आया कि इस क्षेत्र में ऐसी स्त्री एकमात्र देवी जानकी ही हो सकती हैं। यह विचार आते ही हनुमान जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर आपको लिवाने के लिये भाग गये।''

''तात्पर्य ये उसी समय से वहाँ हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।''

''हाँ प्रभु, सेवक का धर्म है प्रभु की सेवा में तत्पर रहना। मैं तो बहुत पहले ही आपकी सेवा में उपस्थित हो चुका होता परंतु मातामही ने वर्जित कर दिया था कि प्रभु स्वयं तुम्हें खोजेंगे।'' इतनी देर में पहली बार हनुमान बोले।

इसी बीच सुग्रीव सीता के आभूषण लेकर आ गया और सारे के सारे राम के हाथों में पकड़ा दिये।

''निस्संदेह ये सीता के ही हैं। यह चूड़ामणि, यह कंठहार... ये सीता के ही हैं'', आभूषण देखते ही राम व्यथित होकर बोल पड़े, फिर आभूषण लक्ष्मण की ओर बढ़ाते हुए बोले - ''देखो लक्ष्मण।''

''भइया, शेष आभूषण तो आप जानें, परंतु ये पायलें निस्संदेह भाभी की ही हैं। इन्हें मैं भलीभाँति पहचानता हूँ।''

''निस्संदेह, ये समस्त आभूषण सीता के ही हैं। रावण को इस दुस्साहस का दंड भोगना ही पड़ेगा।'' अब तक शांत प्रतीत हो रहे राम एकाएक आक्रोशित हो उठे।

''राघव!'' जाम्बवान पुनः बोला - ''जो परिस्थिति सम्मुख है उसमें आप दोनों को ही परस्पर एक-दूसरे के सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी।''

''इसी हेतु तो हम उपस्थित हुए हैं यहाँ। बतायें हम क्या सहयोग कर सकते हैं?'' राम से पूर्व ही लक्ष्मण बोल पड़े।

''ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम तो आवश्यक यह है कि आप दोनों गले मिलकर परस्पर मित्रता का सूत्रपात करें, फिर प्रत्येक परिस्थिति में एक-दूसरे का सहयोग करने हेतु वचनबद्ध हों।'' कहकर जाम्बवान ने आशाभरी दृष्टि से राम की ओर देखा।

राम अविलम्ब उठ खड़े हुए।

सुग्रीव भी उठ खड़ा हुआ।

जाम्बवान के आग्रह के अनुसार दोनों ने आलिंगनबद्ध हो मित्रता की घोषणा की और त्रिवाचा कर प्रत्येक परिस्थिति में एक-दूसरे का सहयोग करने का संकल्प लिया।

एक बार पुनः जब सब बैठ गये तो जाम्बवान पुनः बोला - ''सुग्रीव को उसकी पत्नी तब तक नहीं प्राप्त हो सकती जब तक बालि जीवित है। इसके साथ ही यह आपका समुचित सहयोग भी तभी कर पायेगा जब बालि के स्थान पर यह किष्किंधा का अधिपति होगा।''

''यह तो निश्चित है कि बालि इनकी ओर से किसी सन्धि प्रस्ताव को नहीं मानेगा।'' लक्ष्मण ने विचार व्यक्त किया।

''कोई सम्भावना नहीं है युवराज, देवी जानकी के अपहरण से एक दिन पूर्व ही मैं स्वयं गया था संधि प्रस्ताव लेकर। मैंने उससे कहा था कि मात्र इनकी पत्नी को इन्हें सौंप दे, इसके अतिरिक्त हम कुछ भी नहीं माँगते, परन्तु वह तो मुझे ही

मारने को तत्पर हो उठा। संयोगवश हनुमान भी मेरे साथ थे वहाँ, अन्यथा उसने उसी समय मेरा वध कर दिया होता।''

जाम्बवान की बात सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों ने पुष्टि के लिये हनुमान की ओर देखा।

''तात् जाम्बवान सत्य कह रहे हैं।'' हनुमान ने सहमति में सिर हिलाते हुए संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

''तब क्या विलम्ब है, सुग्रीव को चाहिए कि अविलम्ब अपने अग्रज के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दें। हम तो इनके सहयोग हेतु उपस्थित हैं ही।''

''युवराज! अकारण सैनिकों के हत्या का आयोजन करने की क्या आवश्यकता है'', जाम्बवान ने संशोधन प्रस्तुत किया- ''वे सैनिक ही आगत युद्ध में लंकेश के विरुद्ध हमारे सहयोगी होंगे।''

''मैं आपसे सहमत हूँ, इसलिये नहीं कि वे युद्ध में हमारे सहायक होंगे, सीता को वापस लाने के लिये जितने यहाँ बैठे हैं उतने ही सहयोगी पर्याप्त हैं, फिर महर्षि आगस्त्य ने भी ऊपर के गुरुकुलों में बहुत सारे सहयोगी एकत्र कर रखे हैं; सहमत इसलिये हूँ कि अनावश्यक किसी के भी प्राण संकट में डालना कदापि उचित नहीं होता।'' राम ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया।

''तो क्या हमलोग ही आक्रमण कर दें चलकर किष्किंधा पर?''

''हमलोग चलेंगे अवश्य, परंतु पहले युवराज सुग्रीव को ही जाकर अपने अग्रज से वार्ता करना उचित होगा। इनके कहने से यदि बालि मान जाता है तो अकारण रक्तपात का अवसर ही नहीं आयेगा।'' राम बोले।

''बालि वहीं इनका वध कर डालेगा।'' राम का प्रस्ताव सुनते ही भयभीत दिखने लगे सुग्रीव पर एक दृष्टि डालते हुए जाम्बवान बोला।

''प्रयास करना मनुष्य का कर्तव्य है। ये भी योद्धा हैं, एक प्रयास तो इन्हें करना ही होगा। इनकी ओर से अन्य कोई हस्तक्षेप करे यह तो अनीति होगी, तब जगत इन्हें कापुरुष ही कहेगा।'' राम ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

कुछ पल मौन रहा। सुग्रीव दुविधा में था। उसे यही प्रतीत हो रहा था कि बालि के सम्मुख जाने का सीधा सा अर्थ है मृत्यु का आलिंगन कर लेना। उसे देखते ही बालि उसे जीवित नहीं छोड़ेगा। परंतु राम ने कोई मार्ग भी तो नहीं छोड़ा था, स्पष्ट कह दिया था कि प्रथम प्रयास तो उसे ही करना होगा।

वार्ता की डोर फिर जाम्बवान से थामी, बोला - ''यदि बालि इनकी बात नहीं माने, वह इन पर आक्रमण कर दे?''

''तो ये वीर पुरुष की भाँति उसका सामना करें। यदि परास्त होते हैं तो हम तो होंगे ही इनकी सहायता हेतु।''

यही निर्णय अंतिम रहा।

36. बालि का अंत

योजनानुसार, अगले दिन प्रातःकाल सुग्रीव, राम-लक्ष्मण और अन्य सभी के साथ किष्किंधा के लिये निकल लिया।

नगर की प्राचीर के बाहर विशाल मैदान में सभी वृक्षों की ओट में इस प्रकार खड़े हो गये कि भीतर राजप्रासाद पर उपस्थित रक्षकों की दृष्टि उन पर न पड़ सके। राम सुग्रीव से बोले - ''मित्र! आगे आपको एकाकी ही जाना होगा।''

''परंतु....'' सुग्रीव ने कहना चाहा।

''नहीं, अभी तक यह आप दोनों भाइयों का आपसी विवाद है। अभी अन्य किसी का बीच में पड़ना उचित नहीं होगा। यदि आपके प्राणों पर कोई संकट उपस्थित होगा, तो रक्षा हेतु हम यहीं खड़े तो हैं।

नगर-प्राचीर के विशाल प्रवेश द्वार पर कोई रक्षक नहीं था। वहाँ रक्षक रहते भी नहीं थे। बस रात्रि के समय द्वार बन्द कर दिया जाता था। नगर-प्राचीर के बाद एक मैदान था और उसके बाद राजप्रासाद। राजप्रासाद के द्वार पर खड़े रक्षक ही प्राचीर के द्वार पर भी दृष्टि रख सकते थे। वैसे भी किष्किंधा को किसी बाहरी आक्रमण का भय नहीं था।

राम के नगर में प्रवेश से मना कर देने पर अंततः झिझकता हुआ, अपना समूचा साहस सँजोता हुआ, सुग्रीव एकाकी ही आगे बढ़ा। उसके चलते ही लक्ष्मण फुसफुसाकर बोले - ''प्रासाद के भीतर प्रविष्ट मत होना, बालि को बाहर बुलाकर ही वार्ता करना।''

सुग्रीव ने सिर हिलाकर सहमति दे दी। लक्ष्मण न कहते तो भी वह प्रासाद के भीतर जाने का साहस नहीं करता।

प्रासाद के द्वार पर उसे एकाकी देखकर द्वार रक्षक अचंभित रह गये। भले ही एक युग व्यतीत हो गया था उसे देखे, तो भी उसे पहचानने में उन्हें कोई दुविधा नहीं हुई। असमंजस में स्वतः ही उनके हाथ प्रणाम की मुद्रा में जुड़ गये।

''भइया से कहो जाकर कि मैं उनसे वार्ता करना चाहता हूँ।'' सुग्रीव ने द्वारपालों को आदेश दिया।

द्वारपाल किंकर्तव्यविमूढ़ से उसे ताकते रह गये। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि यह जानते हुए भी कि बालि उसके प्राणों का प्यासा है, सुग्रीव का वहाँ आने का साहस कैसे हो गया।

''जाते क्यों नहीं?'' इस बार सुग्रीव जोर से बोला।

भले ही निष्कासित था, फिर भी वह था तो सम्राट् का भाई ही। द्वारपाल पूर्व में सदैव, सहज भाव से उसके आदेशों का पालन करते आये थे। सबने एक-दूसरे की ओर देखा, आँखों में ही कुछ निर्णय हुआ और फिर उनमें से एक बालि को सूचना देने भीतर चला गया।

सुग्रीव प्रतीक्षा करता रहा।

कुछ ही देर में भीतर गया द्वारपाल वापस लौट आया। बालि ने उससे कहा तो यह था कि धक्के मार कर भगा दो उस द्रोही को, किंतु इस भाषा में सुग्रीव से बात करने का उसका साहस नहीं हुआ। वह बोला - ''युवराज! सम्राट इस समय आपसे नहीं मिलना चाहते, उन्होंने आपसे वापस चले जाने को कहा है।''

कदाचित इसलिये कि बालि सामने नहीं था, न जाने सुग्रीव में कहाँ से इतना साहस आ गया कि वह बोला - ''कह दो जाकर उनसे कि मैं जाने के लिये नहीं आया, मैं अपना अधिकार प्राप्त करने आया हूँ। कापुरुषों की भाँति छिपने के स्थान पर आकर मेरा सामना करें।''

देर तक द्वारपाल पुनः भीतर जाने में हिचकिचाता रहा। उसे तो बालि ने धक्का देकर सुग्रीव को भगा देने का आदेश दिया था, परंतु वह ऐसा करने का

साहस भी नहीं कर पा रहा था, न ही सुग्रीव को उक्त आदेश सुनाने का साहस कर पा रहा था।

विलम्ब होते देख सुग्रीव को क्रोध आ गया। सामने बालि होता तो बात और होती परंतु इन द्वारपालों द्वारा उसके आदेश की अवहेलना उसे क्रोध दिलाने के लिये पर्याप्त थी। क्रोधावेश में वह गरजा - ''जाते हो अथवा अपनी गदा से यहीं तुम्हारी लोथें गिराऊँ!''

विवश द्वारपाल ईश्वर से अपने प्राणों की भिक्षा माँगता पुनः भीतर गया।

थोड़ी ही देर में क्रोध से चिंघाड़ता हुआ, गदा लिये बालि द्वार पर प्रकट हुआ। वह द्वार से ही चीखा - ''आज विवाद को सदैव के लिये मिटा ही देता हूँ।''

तभी पीछे से तारा भी प्रकट हुई। वह चीखती हुई बालि से रुक जाने की प्रार्थना कर रही थी। अंगद प्रातः ही कहीं निकल गया था।

बालि जैसे योद्धा को रोक पाना तारा के लिये नितांत असंभव था, फिर भी दौड़ते हुए उसने पीछे से अपनी दोनों बाहों से बालि की एक बाँह थाम ली और एक बार पुनः प्रार्थना की - ''मेरी बात मानिये, रुक जाइये। सुग्रीव ने यदि यहाँ तक आने का साहस किया है तो निश्चय ही उसके पीछे कोई बहुत बड़ा कारण है।''

परंतु क्रोध में उन्मत्त बालि को उसकी बात पर कान देने का अवकाश ही कहाँ था! जब तारा ने उसे नहीं छोड़ा तो उसने उसे धक्का दे दिया। क्रोधित बालि का धक्का खाकर तारा कई पग पीछे जा गिरी।

बालि हाथी सा चिंघाड़ता सुग्रीव की ओर बढ़ा।

उसे अपनी ओर बढ़ते देख सुग्रीव भी गदा उठाकर आत्मरक्षा हेतु सन्नद्ध हो गया। मन ही मन वह प्रार्थना करता जा रहा था कि राम शीघ्र ही उसकी सहायता हेतु प्रकट हो जायें।

परंतु राम के प्रकट होने का अवसर ही नहीं आ पाया।

बालि के दो-चार प्रहारों में ही सुग्रीव को प्राण बचाकर भागना पड़ गया। सत्य है, पराजित मनस्थिति से युद्ध नहीं लड़े जाते। सुग्रीव यदि बालि से इतना भयभीत न होता, तो वह भी पराक्रमी योद्धा था। वह भले ही बालि को पराजित न कर पाता, तो भी कुछ देर उसका सामना तो कर ही सकता था।... परंतु वह वार कर ही नहीं पा रहा था, वह तो मात्र आत्मरक्षा कर रहा था।

अब तक वहाँ किष्किंधावासियों की भीड़ जुटने लगी थी। कोलाहल तो था परंतु कोई पक्ष-विपक्ष में कोई जयकारे नहीं थे। किष्किंधावासियों के लिये सुग्रीव अभी भी अपना ही था, उनमें से अधिकांश की सहानुभूति उसके साथ थी। दूसरी ओर खुलकर बालि का विरोध करने का साहस भी किसी को नहीं था।

सुग्रीव भागकर सीधा नगर-द्वार पार करता हुआ उसी वृक्ष की ओर आया जिसकी ओट में राम और लक्ष्मण खड़े थे। उसे आते देखकर दोनों भाई भी ओट से बाहर आ गये। उनके आते ही बाकी सब भी निकल आये।

राम को देखकर दूर से ही लगभग बिलखता हुआ सुग्रीव चिल्लाया - ''क्या मेरे प्राणों की अभिलाषा लेकर ही आप यहाँ आये थे?''

''तुमने हमें हस्तक्षेप का अवसर ही कब दिया?'' उत्तर लक्ष्मण ने दिया। वे सुग्रीव के इस प्रकार समर्पण से कुपित हो उठे थे।

''तो क्या जब मेरा वध कर देता वह तब हस्तक्षेप करते आप?''

लक्ष्मण पुनः कोई तीखा उत्तर देने जा रहे थे परंतु राम ने पीछे, उनकी ओर घूमते हुए उन्हें रोक दिया। उन्होंने सुग्रीव के निकट आने की प्रतीक्षा की। वह आ गया तो वे शांति से बोले - ''आओ चलें।''

सुग्रीव बस उनके मुख की ओर देखता रह गया।

परंतु इन लोगों को कहीं जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जैसे ही ये सब ओट से बाहर निकले, बालि की दृष्टि भी इन पर पड़ी। वह सुग्रीव के दुस्साहस के कारण पहले से ही कुपित था, सुग्रीव के सहयोगियों को देखकर और कुपित हो उठा। राम और लक्ष्मण को तो वह नहीं पहचान पाया था किंतु बाकी सबको

तो भलीभाँति जानता ही था। उन्हें पहचानने में कोई भूल होने का प्रश्न ही नहीं था। वह भी अपनी गदा उठाकर नगर-द्वार की ओर भागा। द्वार के निकट आते ही वह चिल्लाया - ''तो इन लोगों के बल पर उछलता हुआ आया था तू यहाँ, परंतु इनमें वज्रांग के अतिरिक्त किसमें इतना बल है कि मेरी गदा का एक प्रहार भी सहन कर पाये!'' फिर वह हनुमान की ओर उन्मुख हुआ - ''क्या तू मुझ पर प्रहार कर पायेगा रे वज्रांग?''

''नहीं मातुल!'' हनुमान ने संक्षिप्त किंतु स्पष्ट उत्तर दिया।

''फिर क्या इन दोनों नवागंतुकों में बल है? परंतु ये हैं कौन?''

''यही प्रभु श्रीराम हैं और दूसरे इनके अनुज श्री लक्ष्मण हैं।''

''ओऽऽऽह!'' बालि के मुख से निकला।

राम का परिचय सुनते ही, उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई आयी तारा, झपट कर फिर बालि के आगे आ गयी और उसे पीछे धकियाने का प्रयास करने लगी। परंतु बालि को धकिया पाना क्या उसके लिये संभव था!

तारा के पीछे-पीछे शेष किष्किंधावासी भी दौड़ते चले आ रहे थे। वहाँ फिर से भीड़ लगने लगी थी।

तारा के प्रयासों से अविचलित बालि राम से सम्बोधित हुआ। उसका स्वर अवश्य कुछ शांत हो गया था परंतु उत्तेजना अभी भी थी - ''राम! आपकी बहुत ख्याति सुनी है मैंने परंतु मेरा तो आपसे कोई विरोध नहीं फिर हम भाइयों के विवाद में आपका क्या प्रयोजन?''

''मित्र की सहायता करना मित्र का कर्तव्य होता है किष्किंधापति।'' राम ने शांति से उत्तर दिया।

''यह सुग्रीव आपका मित्र कब बन गया? बन भी गया तो मैं भी आपका शत्रु नहीं हूँ, मैं भी आपकी ओर मित्रता का हाथ बढ़ाता हूँ और निवेदन करता हूँ कि आप हमारे मध्य न ही आयें।''

"मैं सहर्ष आपका हाथ थाम लेता किष्किंधापति, यदि आप सुग्रीव के शत्रु न होते।"

"मैं और इसका शत्रु..." तारा को फिर खींचकर पीछे धकियाते हुए बालि जोर से हँसा- "इस प्रकार उपहास करना आपको शोभा नहीं देता। यह इस योग्य ही कहाँ है कि मैं इसे शत्रु मानूँ... अभी देखी नहीं इसकी वीरता आपने!"

"देखी, इसीलिये मुझे बीच में आना पड़ा।"

"परंतु इससे आपको क्या प्रयोजन, मैं अभी भी आपकी मित्रता का आकांक्षी हूँ।"

"मित्र पर घात करने वाले का मित्रता का प्रस्ताव मैं भला कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। यदि आपने पूर्व में यह प्रस्ताव किया होता तो मैं अवश्य विचार करता।"

"पूर्व में आपने मुझे अवसर ही कहाँ दिया, आप तो एकाएक शत्रु की भाँति मेरे सम्मुख उपस्थित हो गये हैं।"

"यह तो नियति का निर्णय है किष्किंधापति, जो ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण अवसर उपस्थित किया है उसने। इसमें न मैं कुछ कर सकता हूँ न आप... नियति परमप्रभु का ही दूसरा नाम है। उसकी इच्छा के आगे सभी विवश हैं।"

"तो आप मुझसे युद्ध करेंगे?"

"यदि ऐसा आवश्यक हुआ तो अवश्य करूँगा।"

"यह जानते हुए भी कि मैं आपकी पत्नी आपको वापस दिलाने में इसकी अपेक्षा आपकी बहुत अधिक सहायता कर सकता हूँ।"

"विवशता है किष्किंधापति, मित्र की सहायता के लिये वचनबद्ध हूँ मैं।" राम अभी तक शांत ही थे।

"क्या चाहते हैं आप?" बालि पुनः बोला।

"जो मेरे मित्र चाहते हैं।"

"अर्थात्?"

"आप इनकी पत्नी इन्हें सौंप दें।"

"यदि आप मित्र बनकर आये होते तो अवश्य मैं आपके प्रस्ताव पर विचार करता, परंतु आप तो शत्रु बनकर आये हैं।"

"मैं शत्रु बनकर नहीं आया, मात्र मित्र की सहायता हेतु आया हूँ। आप मेरे मित्र की पत्नी उसे वापस कर दीजिए। उसे राज्य में उसका अधिकार दे दीजिए, उसके प्राणों की अभिलाषा त्याग दीजिए, तब मेरे आपके मध्य विवाद का कारण ही समाप्त हो जायेगा।"

"यह मेरा अपराधी है। इसे दण्ड देना मेरा अधिकार है, इसे मैं क्षमा नहीं कर सकता।"

"इसके और आपके मध्य जो भी विवाद है, उसका निर्णय करने का अधिकार मुझे नहीं है, परंतु इसके प्राण लेने की चेष्टा करने से पूर्व आपको राम से युद्ध करना पड़ेगा, यह अटल है।"

"इसने मेरे प्राण लेने का षड़यंत्र रचा था राम! इसके प्राण लेना मेरा अधिकार है।"

"मैंने कहा न... पूर्व के किसी विवाद में निर्णय देना मेरे अधिकार क्षेत्र से बाहर है।"

"तो युद्ध हेतु प्रस्तुत हो जायें... परंतु स्मरण रखियेगा कि त्रिलोकजयी रावण भी बालि से परास्त हो चुका है।"

"मैं अन्य किसी की बात नहीं करता, मैं मात्र अपनी जानता हूँ... और मैं युद्ध हेतु तत्पर हूँ।"

"वार कीजिए।"

"आप भी धनुष ग्रहण करें अथवा मुझे गदा लेने दें।"

''बालि की गदा प्रत्येक वार का उत्तर देने में समर्थ है। वार चाहे किसी भी अस्त्र अथवा शस्त्र से किया गया हो, मेरी गदा को अन्तर नहीं पड़ता। आप धनुर्धारी हैं, धनुष से ही युद्ध करें।''

''प्रथम वार आप करें।''

''नहीं, युद्ध हेतु आप ही आये हैं, प्रथम वार आप ही करें।''

''मत कहियेगा कि राम ने अवसर नहीं दिया।''

''निश्चिंत रहें, आज राम का भी अपने धनुर्धारी होने का भ्रम टूट जायेगा।'' अब बालि को क्रोध आने लगा था। उसका स्वर तीव्र होने लगा था।

''यह तो नियंता ही जानता है।''

''अब बातें नहीं, वार करें। यदि आपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं किया तो आपकी पत्नी अब सदैव आपकी प्रतीक्षा ही करती रह जायेगी रावण के प्रासाद में।''

इस एक वाक्य ने राम को तिलमिला दिया परंतु फिर भी उन्होंने संयम नहीं खोया। भरसक शांत स्वर में उत्तर दिया - ''दिव्यास्त्रों की मर्यादा का ज्ञान है राम को, और राम कभी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता।''

''तो वार करें।'' इस बार बालि पूरे बल से चीखा।

''सम्हालिये'', राम बोले और बाण छोड़ दिया।

कितना भ्रम था बालि को अपनी शक्ति पर! अपने शौर्य पर उसे कितना मिथ्याभिमान था! वह अपने शारीरिक बल के सहारे गदायुद्ध में तो कुछ पल ठहर सकता था राम के सम्मुख... परंतु उनके बाण के सम्मुख, कोई अवसर ही नहीं मिला उसे। राम का पहला ही बाण उसकी गदा को विदीर्ण करता हुआ उसकी छाती में समा गया।

सुग्रीव के साथी राम की जयकार करने लगे।

तारा क्रन्दन करने लगी।

राम ने हाथ उठाकर अपने साथियों को जयकारे लगाने से रोक दिया और बालि की ओर बढ़ चले।

''आपने यह उचित नहीं किया राम।'' तारा के विलाप के मध्य, अपने वक्ष में पूरी गहराई तक धँसे बाण को थामे हुए बालि ने उलाहना दिया।''

''आपने अन्य कोई मार्ग ही रिक्त नहीं छोड़ा था। मैं मित्र के प्रति वचनबद्ध था।''

बालि ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े अपने सैन्यकर्मियों से उन्मुख हुआ - ''अंगद कहाँ है?'' उसके मुख पर पीड़ा की रेखायें खिंचने लगी थी, परंतु अब वह शांत था।

वहाँ उपस्थित सभी की आँखें अंगद को खोजने लगी।

''कोई खोजकर लाओ उसे, मेरे पास समय नहीं है।'' बालि पुनः बोला, उसका स्वर क्षीण पड़ने लगा था।

अंगद को खोजने जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसे पिता और काका के मध्य द्वन्द्व की सूचना मिल गयी थी और वह भागा चला आया था। उसे अपने काका से सहानुभूति थी, परंतु पिता का विरोध करने का भी साहस नहीं था। वह तो भीड़ के मध्य छिपकर ही काका की दुर्गति देखने की अपेक्षा से आया था। परंतु यहाँ तो स्थिति उलटी हुई थी। उसके काका राम के पीछे सुरक्षित थे।

'तो क्या पिता?' आशंकित सा वह भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़ने लगा।

तभी भीड़ के बीच से किसी ने एक जयकारा उछाल दिया - ''प्रभु श्रीराम की...''

''जय!!!'' सैकड़ों कंठों ने जयकारे को पूरा किया- अधिकांश ने पूरे उत्साह से तो कुछ ने प्राणहीन से स्वर में भी।

इस नारे ने अंगद को और बेचैन कर दिया। वह तीव्रता से आगे बढ़ा, सामने मृत्यु का आलिंगन करते उसके पिता पड़े थे। वह बिलखता हुआ उनके चरणों में गिर पड़ा।

बालि ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसे अपनी ओर खींचा और उसका हाथ थाम कर राम की ओर बढ़ाया - ''मैं अपना एकमात्र पुत्र आपको सौंपता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं कि अब सुग्रीव ही किष्किंधा का अधिपति होगा, यह दायित्व अब आपका है कि तारा और अंगद के प्रति कोई अन्याय न हो।''

राम ने सिर हिला कर सहमति व्यक्त की।

''कैसी बात करते हैं भइया!'' तभी बिलखता हुआ सुग्रीव भी आकर बालि के चरणों में गिर पड़ा- ''अब तो मुझे क्षमा कर दें, आपकी शपथ लेकर कहता हूँ, मैंने तब भी आपके प्रति द्रोह नहीं किया था, अब भी मेरे मन में कोई विकार नहीं है। भाभी ने सदैव मुझे माता का स्नेह दिया है, वे सदैव मेरे लिये मातावत ही रहेंगी और अंगद तो मेरा पुत्र है ही।''

बालि ने साथ छोड़ती अपनी चेतना को रोकने का अंतिम प्रयास किया। उसका हाथ, अंगद का हाथ छोड़ धीरे से सरका और सुग्रीव के बालों में फिरने लगा। फिर अगले ही क्षण बालि की आँखें मूँद गयी। उसका सिर एक ओर लुढ़क गया।

चीत्कारों ने आकाश को सिर पर उठा लिया।

***

परम्परा थी, राज्य का सिंहासन रिक्त नहीं रखा जा सकता था।

वह दिन तो बालि के क्रियाकर्म में व्यतीत हो गया। क्रियाकर्म के पश्चात् राम ने सुग्रीव और उसके अन्य सहयोगियों से किष्किंधा जाने का निवेदन किया और स्वयं वापस ऋष्यमूक की ओर जाने के लिये तत्पर हो गये।

''प्रभु आप हमारे साथ नहीं चलेंगे?'' सुग्रीव ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

''नहीं मित्र! आप तो जानते ही हैं कि मैं नगर सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता। मुझे पिता से वनवास की ही आज्ञा मिली है।''

सबने समझाया, प्रासाद के अतिरिक्त किसी उपवन में रुकने का प्रस्ताव भी रखा, परंतु राम को स्वीकार नहीं हुआ। अंततः सबको वापस जाना ही पड़ा।

हनुमान ने राम के साथ चलने का बहुत हठ किया किंतु राम ने उसे भी स्वीकार नहीं किया। वे बोले - ''इसके बाद तो तुम्हें हमारे साथ लंकाधीश से युद्ध के अभियान पर चलना ही होगा, कुछ दिन अपने माता-पिता के साथ भी रह लो। उनका भी अधिकार है तुम्हारे ऊपर।

अंततः मन मारकर हनुमान को भी लौटना ही पड़ा।

''प्रभु राज्याभिषेक का तिलक तो आपको ही करना पड़ेगा। उसके लिये तो आपको आना ही होगा।'' चलते-चलते भी सुग्रीव ने आग्रह किया।

''नहीं मित्र!'' राम हाथ जोड़कर उसका आग्रह अस्वीकार करते हुए बोले- ''आपको न कहने में मुझे पीड़ा अनुभव होती है, किंतु मेरी विवशता को समझने का प्रयास करें। मैं नगर की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता।''

सुग्रीव ने बहस नहीं की परंतु वह कातर दृष्टि से जाम्बवान की ओर देखने लगा- शायद वयोवृद्ध मन्त्री कोई मार्ग सुझा सकें।

जाम्बवान ने मार्ग सुझाया भी, वह बोला - ''ऐसा क्यों नहीं करते महाराज, राज्याभिषेक का आयोजन वहीं कर लें जहाँ प्रभु हों।''

''कैसी बात कर रहे हैं आप भी'', राम ने तत्काल प्रतिवाद किया, राज्यारोहण वहीं हो सकता है जहाँ राजसिंहासन हो। वह अन्यत्र आयोजित नहीं किया जा सकता।''

''प्रभु, राज्यारोहण का प्रथम चरण राजतिलक होता है। वह तो कहीं पर भी हो सकता है। सिंहासन की आवश्यकता मात्र सिंहासनारूढ़ होने के लिये होती है। वह कार्य आपका आशीर्वाद प्राप्त करने के उपरांत राजसभा में आकर सम्पन्न हो जायेगा।''

''वह तो मैं ऋष्यमूक पर पहले ही कर चुका हूँ।''

''एक बार पुनः कर दीजिएगा।''

अंततः जम्बवान का प्रस्ताव ही सबको मान्य हुआ। राम का विरोध सबके सम्मिलित आग्रह के सामने टिक नहीं पाया। अगले दिन प्रातःकाल ही संक्षिप्त

से सादे कार्यक्रम में राम ने विधिवत सुग्रीव का राजतिलक किया; साथ ही साथ अंगद का युवराज के रूप में अभिषेक किया। तदुपरांत राजसभा में जाकर सुग्रीव सिंहासनारूढ़ हुआ। अंगद को दुःख तो अवश्य था किंतु उसने बिना किसी विरोध के नियति के निर्णय को स्वीकार कर लिया।

प्रजा तो पूर्व में ही सुग्रीव के समर्थन में आ चुकी थी।

***

दिन व्यतीत होने लगे। राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक से माल्यवान पर्वत आ गये और माल्यवान पर्वत के ही पृष्ठभाग में स्थित प्रश्रवण गिरि पर एक गुफा में निवास करने लगे। वहीं पड़ोस में प्रश्रवण नदी बहती थी, अतः जल की भी असुविधा नहीं थी।

वर्षाकाल आरम्भ हो गया था, अतः दोनों ही भाइयों ने आगे का अभियान शरद ऋतु के आगमन तक स्थगित कर दिया। इसकी सूचना उन्होंने सुग्रीव को भी दे दी। सुग्रीव के लिये तो यह अच्छा ही था। उसके पास अब समय था कुछ दिन राज्य का भोग करने के लिये, राज्य के सुखों का उपभोग करने के लिये।

37. विलासी सुग्रीव

''पिता जी, मैं महाराज से भेंट के लिये जा रहा हूँ।'' एक दिन सुबह उठते ही हनुमान अपने पिता केसरी से बोले। सुग्रीव के राज्याभिषेक के पश्चात अपने प्रभु राम के आदेशानुसार हनुमान प्रायः घर पर ही माता-पिता और मौसी मंगला के साथ दिन व्यतीत कर रहे थे।

इतने दिन उन्होंने बड़ी व्यग्रता से काटे थे। हर तीसरे-चौथे दिन वे प्रश्रवण गिरि पर राम से भेंट करने जाते थे। हर बार वे वहीं रुकने का हठ करते थे किंतु हर बार राम उन्हें एक प्रकार से बलात् वापस भेज देते थे। जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे, हनुमान की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी। माता सीता के विरह में प्रभु की व्याकुलता उन्हें भी व्याकुल कर देती थी। जीवन में पहली बार वर्षा ऋतु उन्हें शत्रु की भाँति प्रतीत हो रही थी। फिर बरसात भी समाप्त हो गयी, लेकिन सुग्रीव की ओर से लंका प्रस्थान पर विचार करने का कोई बुलावा नहीं आया। राज्याभिषेक के उपरांत कुछ दिन तो वह राजसभा में ठीक से आया, तब वह भी वर्षा समाप्त होते ही लंका की ओर प्रस्थान की बातें करता था। किंतु धीरे-धीरे उसका राजसभा में आगमन और लंका अभियान की बातें दोनों ही विस्मृति के गर्त में डूबने लगी। पिछले पन्द्रह दिन से तो हनुमान से उसकी भेंट ही नहीं हुई थी।

शरद के आरम्भ के उपरांत तीन-चार दिन तो हनुमान ने किसी प्रकार काटे, किंतु उसके बाद और धैर्य रख पाना उनके लिये संभव नहीं रहा। उन्होंने अंतःपुर में जाकर ही महाराज से भेंट करने का निर्णय कर लिया। अंतःपुर में वे बचपन से ही जाते रहे थे। तारा और रूमा दोनों से ही उन्हें मातृवत् स्नेह भी मिलता रहा था, अतः उनके पास जाने में संकोच जैसा कोई भाव था ही नहीं। इसके अतिरिक्त उनके राजमहल में कहीं भी, कभी भी जाने में कभी भी कोई बाधा नहीं रही थी।

''उचित है'', केसरी भी हनुमान का समर्थन करते हुए बोले- ''वर्षाकाल व्यतीत हो चुका है और महाराज संभवतः अपना प्रण भूल चुके हैं।''

''हाँ, मैं उन्हें वही स्मरण दिलाने जाना चाहता हूँ। वे इस प्रकार प्रभु के उपकार को कैसे भूल सकते हैं!'' हनुमान कुछ रोष से बोले।

''मानव प्रकृति है वत्स! यदि तत्काल अभियान का आरम्भ हो गया होता तो किसी के मन में कोई दुविधा नहीं थी। उस समय सुग्रीव के अन्तःकरण में तुम्हारे प्रभु के प्रति भक्ति की सरिता प्रवाहित हो रही थी। उनके उपकार के भार से दबा वह उस समय किसी भी सीमा तक जा सकता था, परंतु तब तुम्हारे प्रभु ने वर्षाकाल के लिये अभियान को स्थगित कर दिया। नदी के प्रवाह को रोक दोगे तो वह उसी स्थान पर ठहरकर प्रतीक्षा नहीं करेगा, वह तो जिधर मार्ग मिलेगा उधर मुड़ जायेगा। सुग्रीव को काम का मार्ग दिख गया। युगों से वह तरस रहा था अपनी पत्नी के सान्निध्य के लिये, वह मिला तो वह उसी में बहने लगा। फिर उसे अपनी गुणवती और अतीव सुन्दरी भाभी का साथ भी मिल गया। ऐसे में उसे कैसे स्मरण रहता कि उसने अपने मित्र को क्या वचन दिया था!''

''आप भी उनके इस आचरण का समर्थन कर रहे हैं?'' हनुमान ने विस्मय और रोष से प्रश्न किया।

''नहीं पुत्र, मैं उसका समर्थन नहीं कर रहा, मैं तो मात्र मानव-मन की विवशता बता रहा हूँ। मुझे विश्वास है, जैसे ही तुम उसे उसका कर्तव्य स्मरण दिलाओगे, वह सजग हो जायेगा।''

''उसी हेतु तो जा रहा हूँ'', हनुमान आवेश में बोले - ''परंतु आप ने यह जो अपनी भाभी के साथ उनके संबंधों को इतनी सहजता से मान्यता प्रदान कर दी इसे ....''

''इसमें मेरे मान्यता प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं है पुत्र'', हनुमान की बात बीच में ही काटकर केसरी बोले - ''इसे तो हमारे समाज की मान्यता प्राप्त है, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। फिर तुम सुग्रीव को अपने आदर्शों की तुला में तौलने का प्रयास क्यों कर रहे हो? तुम ब्रह्मचारी हो, काम तुम्हें प्रताड़ित नहीं करता, परंतु सुग्रीव से ऐसी अपेक्षा क्यों करते हो? आर्यावर्त के राजपरिवारों

में एकाधिक पत्नियाँ होना सामान्य बात है। अतः हमारा इस पर विवाद करना व्यर्थ है। इसके साथ ही सुग्रीव अब तुम्हारा कनिष्ठ मातुल नहीं, किष्किंधा का अधिपति है। उसके व्यक्तिगत आचरण की मीमांसा तुम्हें शोभा नहीं देती। तुम्हारा कर्तव्य मात्र उसे उसका कर्तव्य स्मरण करा, उसे लंका-अभियान के लिये प्रेरित करना है। बाकी सारी बातों को अपने मस्तिष्क से निकाल दो, एकमात्र अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करो।''

हनुमान एक पल के लिये आँखें सिकोड़े, माथे पर सिलवटें डाले सोचते रहे, फिर सामान्य हो गये। मुस्कुराकर पिता के चरणों में झुकते हुए बोले - ''तो मुझे अनुमति दीजिए।''

केसरी मुस्कुरा दिये, बोले - ''वर्षाकाल व्यतीत हो चुका है। शरद के स्वच्छ वातावरण ने मार्ग की बाधायें दूर कर दी हैं। जाओ, यशस्वी भवः! प्रभु शिव तुम्हारी सहायता करें।''

हनुमान घूम गये, परंतु वे एक पग भी आगे बढ़ा पाते कि अचानक मंगला ने पुकारा - ''एक बात मेरी भी सुनते जाओ बजरंग!''

''कहिए मौसी!'' हनुमान वापस मुड़ते हुए सहज भाव से बोले।

''अपने अभियान में मुझे विस्मरण मत कर देना।''

मंगला की बात सुनकर हनुमान चौंक पड़े, बोले - ''यह कैसे संभव है, ऐसे अभियान में स्त्रियों का क्या काम?''

''भूल रहे हो तुम, यह तुम्हारी मातामही का आदेश है।'' मंगला मुस्कुराती हुई बोली।

''परंतु मौसी...''

''परंतु के लिये स्थान ही नहीं है इसमें। मेरे तो जीवन का अब एकमात्र ध्येय ही यह है। फिर यह क्यों भूल जाते हो कि मैं महान अहिल्या की शिष्या हूँ। उन्होंने मेरी झोली अपने आशीषों से लबालब भर दी है।''

''मौसी, हम विहार पर नहीं जायेंगे, त्रिलोक विजेता रावण के साथ समर पर जायेंगे। वहाँ हम उससे युद्ध करेंगे अथवा साथ की स्त्रियों की सुरक्षा की चिंता करेंगे?'' हनुमान उकताहट भरे स्वर में बोले।

उनकी बात पर मंगला हँस पड़ी, बोली- ''उसकी चिंता करने की तुम्हें अथवा तुम्हारे प्रभु को आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अपनी सुरक्षा में मैं स्वयं सक्षम हूँ। क्या मुझे यह स्मरण दिलाना पड़ेगा कि देवी अहिल्या महर्षि गौतम जैसे आयुध-विज्ञानी की पत्नी हैं। अपने पति के सान्निध्य में रहकर उन्होंने भी शस्त्रास्त्रों का भरपूर ज्ञान प्राप्त किया है और अपना वह सारा का सारा ज्ञान उन्होंने सहर्ष मुझे भी सौंप दिया है। फिर एक बात और सोचो, युद्ध में नित्य ही अनेक सैनिक आहत होंगे। उनकी सुश्रूषा के लिये भी बहुत सारे लोगों की आवश्यकता होगी। हमलोगों से अधिक कुशलता से वह दायित्व अन्य कोई नहीं सँभाल पायेगा।''

शायद इस विषय में दोनों के मध्य अभी और तर्क-वितर्क होता किंतु अचानक केसरी ने हँसते हुए हस्तक्षेप किया - ''अभी इस विषय पर तर्क की आवश्यकता नहीं है। इस विषय में तो जो भी निर्णय करना होगा स्वयं महर्षि अगस्त्य ही करेंगे। और मुझे विश्वास है कि वे मंगला से सहमत होंगे। वज्रांग, तुम अभी जिस उद्देश्य से जा रहे थे, पहले उसे पूरा करो जाकर।''

हनुमान चले गये।

***

सुग्रीव अभी भी अंतःपुर में ही था। हनुमान को क्रोध आ रहा था किंतु सुग्रीव अब महाराज था, अतः उन्हें अपने क्रोध पर नियंत्रण रखना ही था।

वे सीधे अंतःपुर की ओर चल दिये। अंतःपुर की सीमा में प्रवेश करते ही एक दासी को रोककर उन्होंने पूछा - ''महाराज कहाँ हैं?''

''महारानी के कक्ष में।'' दासी ने उत्तर दिया।

''कौन सी, बड़ी अथवा छोटी?'' हनुमान ने अपने आवेश पर नियंत्रण करते हुए रूखे स्वर में अगला प्रश्न किया।

उनके स्वर की रुक्षता से दासी सहम गयी। धीरे से बोली- ''बड़ी।''

''उन्हें मेरे आगमन की सूचना करो, अविलम्ब!'' हनुमान ने तीखे स्वर में आदेश दिया।

दासी बिना कोई प्रश्न किये, आदेश का पालन करने चली गयी।

अधिक देर नहीं लगी उसे वापस आने में। आते ही उसने विनय से कहा - ''वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

हनुमान तारा के कक्ष की ओर बढ़ गये।

सुग्रीव, तारा और रुमा तीनों ही वहीं उपलब्ध थे। तीनों के ही नेत्र मद्यपान के कारण रक्तिम हो रहे थे। मद्यपान से उनका काम और वेगवान हो गया था जिसके कारण उन्हें अपने वस्त्रों का भी उचित प्रकार ध्यान नहीं था।

सुग्रीव की यह स्थिति देख हनुमान वितृष्णा से भर उठे। द्वार से ही व्यंग्य भरे स्वर में वे बोले - ''महाराज की जय हो!''

लाख प्रयास के बाद भी उनके स्वर की रुक्षता छिपी नहीं रह पायी थी। सुग्रीव को तो एकाएक समझ ही नहीं आया कि क्या बोले। बात तारा ने ही सँभाली। अपने वस्त्रों को ठीक करती हुई वह कोमल स्वर में बोली - ''वज्रांग, रुष्ट हो क्या?''

''नहीं, रोष का तो कोई कारण नहीं है।'' हनुमान अपने स्वर की रुक्षता को अनुभव कर इस बार कुछ संयत स्वर में बोले।

''है तो अवश्य, अन्यथा तुम अपने मातुल को इस प्रकार महाराज कहकर सम्बोधित नहीं करते।''

हनुमान ने कोई उत्तर नहीं दिया। बस सुग्रीव की ओर घूरते हुए खड़े रहे। तारा ही पुनः बोली - ''किंतु वहाँ द्वार पर क्यों खड़े हो, भीतर तो आओ।''

हनुमान आगे बढ़े।

''बैठो पहले, फिर बात करते हैं।'' तारा सामने पड़ी पीठिका की ओर संकेत करती हुई मधुर स्वर में बोली।

हनुमान बैठ गये।

''अब बताओ।'' तारा ही बोली।

''मातुल ने प्रभु को कुछ वचन दिया था, प्रतीत होता है कि वह इन्हें विस्मृत हे गया है। जिनकी कृपा से इन्हें यह राज्य प्राप्त हुआ, जिनकी कृपा से आज ये भोग-विलास में डूबे हुए हैं, उन्हीं का उपकार भूल गये। इसे कृतघ्नता कहते हैं मामी।''

सुग्रीव आँखें मिचमिचाते हुए हनुमान की बात समझने का प्रयत्न कर रहा था। तारा ने ही पुनः उत्तर दिया - ''भूल नहीं गये हैं, किंतु वर्षों से संचित इनकी प्यास को जब तृप्त होने का अवसर मिला, तो इन्हें समय का ध्यान नहीं रहा।''

''परंतु इससे तो काम नहीं चलेगा, मामी। इन्हें स्मरण करना होगा कि प्रभु ने ही कृपापूर्वक इन्हें वर्षा के चार माह का अवकाश दे दिया था। वे चार माह व्यतीत हो गये हैं और कार्तिक का पदार्पण हो चुका है। अभियान के समापन के बाद इनके पास बहुत समय होगा रास-रंग में डूबने का परंतु अभी तो...''

इतनी देर में सुग्रीव भी अपनी बुद्धि स्थिर कर चुका था। वह उछलकर खड़ा होता हुआ हनुमान की बात बीच में ही काटकर बोला - ''मैं समझ रहा हूँ हनुमान, मुझसे यह भारी अनर्थ हो गया। मैं सच में अत्यंत लज्जित हूँ।''

''तो अब क्या प्रतीक्षा है?''

''कोई प्रतीक्षा नहीं, आओ मेरे साथ।'' कहता हुआ सुग्रीव द्वार की ओर बढ़ चला। हनुमान ने उसका अनुसरण किया। तारा और रुमा भी बिना स्पष्ट कहे ही सारी बात समझ गयी थीं। दोनों ने ही बीच में कुछ भी बोलने का प्रयास नहीं किया।

हनुमान के साथ सुग्रीव सीधा सभाभवन में आया। अंतःपुर से बाहर आते ही उसने सैनिकों को सारे सभासदों और सेनापति को तत्काल सभाभवन में उपस्थित होने का आदेश देकर भेज दिया था।

सभाभवन में सबसे पहले हनुमान के पिता अर्थात् सेनापति केसरी ही उपस्थित हुए। उनके आते ही सुग्रीव ने उन्हें प्रणाम किया और आसन पर बैठने का संकेत किया। वे बैठ भी नहीं पाये थे कि सुग्रीव ने कहना आरम्भ कर दिया - ''सेनापति जी, हमसे बहुत बड़ी धृष्टता हो गयी है। परंतु अब और विलंब सहन नहीं हो सकता।''

''समझ रहा हूँ, आदेश करें।'' केसरी ने मुस्कुराते हुए विनम्र स्वर में कहा।

किष्किंधा की सेना के सारे वीरों को सज्ज होने का आदेश दे दीजिए। राज्य के विभिनन क्षेत्रों में फैले गुरुकुलों को भी संदेश भिजवा दीजिए कि तत्काल वहाँ प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे समस्त योद्धा नगर में एकत्र हों। पूर्व में प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके योद्धाओं तक भी सेना में सम्मिलित होने के लिये नगर में एकत्र होने का संदेश भिजवा दीजिए। विन्ध्य से लेकर सागर तट तक फैले सारे वानर और ऋक्ष सेनापतियों को सूचना भिजवा दीजिए कि पन्द्रह दिन के भीतर समस्त सैन्य शक्ति को किष्किंधा में एकत्र होना है। जिसे भी इससे अधिक विलम्ब होगा, उसे मृत्युदंड का वरण करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त महर्षि अगस्त्य के निर्देशन में दण्डक में संचालित ऋषियों के सारे गुरुकुलों और सारे आश्रमों में भी लंका के लिये कूच करने हेतु किष्किंधा में एकत्र होने का निवेदन भिजवा दीजिए।

''जैसी आज्ञा!'' केसरी बोले और आदेश को क्रियान्वित करने के लिये प्रस्थान कर गये।

थोड़ी देर में सारे मंत्रिगण और सभासद भी आ गये। सबको यथोचित आदेश देकर सुग्रीव पुनः अंतःपुर की ओर चला गया। मदिरा के प्रभाव से वह अभी मुक्त नहीं हो पाया था। उसने सबको एकत्र होने के लिये पन्द्रह दिन का समय दिया था, इस प्रकार उसके पास भी अभी पन्द्रह दिनों का समय था। अभियान आरम्भ

होने से पूर्व के इस समय का वह सम्पूर्ण उपयोग करना चाहता था। भोग चीज ही ऐसी है जो विवेक को सम्मोहित कर लेती है। भोग के पाश में आबद्ध व्यक्ति बारम्बार उसी की ओर दौड़ता है। छूटना चाहे तो भी छूट नहीं पाता। यही स्थिति इस समय सुग्रीव की थी।

परंतु सुग्रीव के भाग्य में अब और भोग-विलास नहीं बदा था। थोड़ी ही देर बाद, रोष से भरे हुए लक्ष्मण किष्किंधा के द्वार पर प्रकट हो गये। जब यहाँ हनुमान विलम्ब से व्यग्र हो रहे थे, तब वहाँ प्रश्रवण गिरि पर बैठे राम और लक्ष्मण का व्यग्र होना तो स्वाभाविक ही था। इसी व्यग्रता के वशीभूत राम ने सुग्रीव को चेतावनी देने के लिये लक्ष्मण को भेजा था।

दूत चारों ओर भेजे ही जा चुके थे। अंगद अपने कुछ साथियों के साथ उन दूतों से बतियाता नगर के बाहर तक चला आया था। दूत चले गये तो भी वह देर तक बाहर विचरता रहा। सुग्रीव के न सही, परंतु उसके मस्तिष्क में अभियान और उसकी रूपरेखा घूमने लगी थी।

अचानक एक वानर ने उसका कंधा झिंझोड़कर उसे सतर्क किया और एक ओर संकेत किया।

अंगद ने उधर घूमकर देखा, सामने से साक्षात् क्रोध की प्रतिमूर्ति बने लक्ष्मण चले आ रहे थे। आवेश के मारे उनके नथुने फड़क रहे थे, जैसे कोई उन्मत्त वृषभ फुफकार छोड़ रहा हो। वेग ऐसा था कि प्रतीत होता था जैसे उड़ते हुए चले आ रहे हों।

लक्ष्मण का यह रूप देखकर अंगद भयभीत हो गया। वह बालि का पुत्र था, हनुमान का अभिन्न सखा था, भीत होना उसने नहीं सीखा था परंतु लक्ष्मण की इस मूर्ति ने पहली बार उसे यह अनुभव कराया कि भय क्या होता है। हनुमान की संगत में रहकर उसे भी राम और लक्ष्मण के ईश्वर का अंश होने पर पूर्ण विश्वास था।

प्रभु श्रीराम को दिये गये वचन को भूलकर उसके काका सुग्रीव ने जो अपराध किया था, उसकी ग्लानि और अपराध-बोध उसके भय को और बढ़ा रहे थे। तो भी वह साहसकर सहमता हुआ लक्ष्मण की ओर बढ़ा। आखिर किसी को तो उनके क्रोध का सामना करना ही होता। हनुमान वहाँ थे नहीं, तो यह कष्टकर उत्तरदायित्व उसे ही निभाना था।

लक्ष्मण ने भी उसे आते देख लिया। उसे सम्मुख देखकर लक्ष्मण का आवेग थोड़ा सा ठंडा पड़ा। तारा और अंगद नहीं जानते थे, किंतु यह सत्य था कि राम और लक्ष्मण दोनों के ही मन में उनके लिये एक नरम कोना था। सुग्रीव ने ही उन्हें बताया था कि तारा और अंगद दोनों का ही उसके प्रति सहज अनुराग था। बालि के इतने क्रोध के बावजूद भी अंगद ने उससे मिलना नहीं छोड़ा था। जब राम ने तारा के पति और अंगद के पिता का वध किया था, तो भी उन्होंने विद्रोह करने के स्थान पर विनीत भाव से उसे स्वीकार किया था। अंगद के निकट आते ही लक्ष्मण ने अपने स्वर को यथासंभव शांत करते हुए प्रश्न किया - ''कुमार अंगद, तुम्हारे काका कहाँ हैं? उन्हें शीघ्र बुलाओ।''

''काका संभवतः अंतःपुर में है आर्य।'' अंगद ने सूचना दी - ''आप मेरे साथ आइये।''

''नहीं, मैं यहीं प्रतीक्षा कर रहा हूँ, तुम उन्हें बुलाकर लाओ।''

''ऐसा कैसे हो सकता है प्रभु! आप काका का राज्याभिषेक होने के उपरांत पहली बार किष्किंधा आये हैं, आपको कृपापूर्वक हमारा आतिथ्य स्वीकार करना ही होगा।'' लक्ष्मण के रोष को किंचित विगलित होते देख अंगद ने और साहस किया।

''मैं यहाँ आतिथ्य ग्रहण करने नहीं आया कुमार। मैं तुम्हारे काका को उनका वचन स्मरण कराने आया हूँ। मैं उन्हें स्मरण दिलाने आया हूँ कि वे किष्किंधापति, श्रीराम की कृपा से ही बने हैं।'' लक्ष्मण का स्वर फिर कुछ तीव्र हो गया।

''काका को अपना वचन स्मरण है और उन्होंने तदनुरूप कार्य करना आरम्भ भी कर दिया है आर्य। परंतु यह क्या हमारे लिये शोभनीय होगा कि हम आपको इस प्रकार मार्ग में खड़ा रखें?''

''संकटकाल में शोभन-अशोभन का नहीं मात्र कर्तव्य का विचार किया जाता है कुमार। तुम उन्हें सूचना दो जाकर।''

''मैं स्वयं जाता हूँ आर्य, किंतु आप रोष त्यागकर भीतर तो आयें। प्रभु श्रीराम को नगर में प्रवेश करना वर्जित है, परंतु आपको नहीं। हमारी अनुनय स्वीकार कर हमें अनुग्रहीत करें आर्य।''

''चलो अच्छा।'' लक्ष्मण तेवर कुछ और ढीले करते हुए बोले।

अंगद ने लक्ष्मण को सम्मानसहित लेकर आने का दायित्व अपने साथियों को सौंपा और स्वयं काका को सूचना देने जाने के लिये चला गया। उसके साथियों ने संकेत से पूछा कि कहाँ लेकर आना है, अंगद ने संकेत से ही बताया कि अंतःपुर में, उसकी माता के कक्ष में।

अगले ही पल अंगद तीव्रता से अपने गंतव्य की ओर बढ़ गया। वह चाहता था कि जब तक लक्ष्मण वहाँ पहुँचें, तब तक वह काका को इतना सचेत अवश्य कर दे कि वे लक्ष्मण का सामना कर सकें। लक्ष्मण को वह सभाकक्ष में नहीं ले जाना चाहता था। उसे नहीं पता था कि काका को वहाँ तक आने योग्य होने में कितना समय लग जायेगा। इस क्रोधित अवस्था में यदि लक्ष्मण को प्रतीक्षा करनी पड़ गयी तो पता नहीं क्या हो! एक बात और थी, उसे विश्वास था कि काका माता के कक्ष में ही होंगे, साथ ही उसे यह भी विश्वास था कि उसकी विदुषी माता स्थिति को सँभाल लेंगी और संभवतः लक्ष्मण भी उनके स्त्री होने के कारण उतना क्रोध नहीं कर पायेंगे जितना काका के अकेले होने पर करेंगे।

तारा के कक्ष के द्वार पर पहुँचकर अंगद एक पल के लिये झिझका। पता नहीं भीतर ये तीनों किस अवस्था में हों! उसने द्वार के कपाटों पर हल्के से स्पर्श

किया, बन्द नहीं था। उसने एक पल और वहीं रुककर भीतर की आहट ली। कोई अस्वाभाविक स्वर सुनाई नहीं पड़ा तो उसने द्वार में धक्का दे दिया।

भीतर से तारा का स्वाभाविक स्वर आया - ''कौन है?''

अब अंगद बेझिझक भीतर प्रवेश कर गया। उसके चेहरे पर पसरी हड़बड़ाहट देखकर तारा ने भी चिंतित होते हुए पूछा - ''क्या हुआ अंगद?''

''माता, आर्य लक्ष्मण आ रहे हैं। काका के वचनभंग के कारण अत्यंत क्रोध में हैं। काका को शीघ्र ही उठाइये।''

''ओह!'' तारा के मुँह से निकला और तत्काल रुमा और अंगद से सम्बोधित हुई- ''तुम दोनों इन्हें उठाकर सामान्य अवस्था में लाओ, तब तक मैं आर्य लक्ष्मण को देखती हूँ।'' कहने के साथ ही वह अपने वस्त्रादि व्यवस्थित करने लगी। रुमा ने भी उसका अनुसरण किया। अंगद जाकर सुग्रीव को उठाने का प्रयास करने लगा, जो दूतों को चारों ओर भेजने के उपरांत भरपूर मदिरापान कर, निश्चिंत सोया हुआ था।

अंगद के झकझोरने से सुग्रीव उठ तो गया परंतु अभी वह कुछ भी समझने की अवस्था में नहीं था। आँखें खोलते ही वह अलसाये से स्वर में बोला - ''कौन है? कौन यह हमारे शयन में व्यवधान डालने का दुस्साहस कर रहा है?''

''काका शीघ्र उठिये। आर्य लक्ष्मण आये हैं और वे अत्यंत क्रोध में हैं!'' अंगद झपटकर पास में एक पीठिका पर रखा जलपात्र उठाकर उसे देता हुआ बोला- ''शीघ्र स्वस्थ होने का प्रयास कीजिए, वे यहीं आ रहे हैं।''

लक्ष्मण का नाम सुनकर सुग्रीव के मस्तिष्क में तीव्र झटका लगा। उसने तत्काल जल का पात्र ले लिया और एक ही घूँट भरने के बाद अचंभित स्वर में बोला - ''किंतु वे कुपित क्यों हैं? मैंने तो ऐसा कोई कार्य नहीं किया जो उन्हें अप्रिय हो!''

''वह सब बाद में सोचिएगा, अभी स्वस्थ होकर उनका स्वागत करने योग्य बनिए पहले।''

जल पीकर सुग्रीव कुछ सहज हुआ, परंतु लक्ष्मण के इस प्रकार बिना पूर्व सूचना दिये, अकस्मात आने का कारण अभी भी उसके तन्द्रा से बोझिल मस्तिष्क में घुमड़ रहा था। उसने फिर अलसाये स्वर में पूछा - ''किन्तु वे ऐसे अकस्मात कैसे आ गये?''

तभी लक्ष्मण के धनुष की भीषण टंकार वहाँ गूँज उठी। उस टंकार को सुनकर सुग्रीव का शरीर भय से काँप उठा। वह हड़बड़ाकर खड़ा हो गया, परंतु फिर भी लक्ष्मण का सामना करने का उसका साहस नहीं हो रहा था। भयभीत स्वर में वह बोला-

''भाभी आप ही देखिये न, लक्ष्मण क्यों कुपित हैं।''

तारा उसके कहने से पूर्व ही द्वार से बाहर जा चुकी थी, जबकि रुमा उसके पास आकर उसे सँभालने लगी थी।

***

लक्ष्मण अंतःपुर के क्षेत्र में प्रवेश करते ही स्वाभाविक संकोच से भर गये। सामने अनजानी युवा स्त्रियों को देखकर वे हिचक कर एक ओर हो गये। उनके साथ आ रहे अंगद के साथी वानरों ने विनयपूर्वक उनसे आगे बढ़ने का आग्रह किया, परंतु लक्ष्मण के संस्कार उन्हें इस प्रकार अंतःपुर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दे रहे थे। उन्होंने सुग्रीव को सचेत करने के लिये वहीं से अपने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर भीषण टंकार उत्पन्न की। यही टंकार भीतर सुग्रीव ने सुनी थी।

लक्ष्मण दुबारा टंकार करने की सोच ही रहे थे कि सामने के सबसे भव्य कक्ष के द्वार पर तारा प्रकट हुई। वहीं से मुस्कुराकर वह बोली - ''अरे आप हैं आर्य लक्ष्मण?'' कहते-कहते उसकी मुस्कुराहट हल्की सी हँसी में परिवर्तित हो गयी, बोली - ''सेवक के घर में इस प्रकार रोषपूर्ण धनुष्टंकार के माध्यम से अपने आगमन की सूचना देना कुछ अप्रासंगिक सा नहीं प्रतीत होता?''

स्त्रियों के सम्मुख अकारण उग्रता दिखाना लक्ष्मण का स्वभाव नहीं था। इस अपूर्व सौन्दर्यमयी रमणी के सम्मुख वे अपनी उग्रता पर कुछ लज्जित से हो उठे, एकाएक उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

''परंतु वहाँ क्यों खड़े हैं आप? आइये, हमें अपने सत्कार का अवसर प्रदान कीजिए।'' तारा ने पुनः मधुर हँसी के साथ आग्रह किया।

तारा जन्मना अप्सरा थी। त्रिलोक की पंचकन्याओं में एक थी। इस आयु में भी उसके यौवन में रंचमात्र शिथिलता नहीं आयी थी। उसकी यह मधुर खिलखिलाहट बड़े-बड़े ऋषियों को भी सम्मोहित करने में समर्थ थी। लक्ष्मण उससे सम्मोहित हुए, परंतु उसके माधुर्य से। तारा ने उस हँसी के माधुर्य में कामुकता का पुट देने का प्रयास किया भी नहीं था, वह जानती थी कि इस समय वह प्रयास परिस्थिति को जटिल ही बनायेगा।

लक्ष्मण ने बस एक क्षण के लिये अपनी दृष्टि उठाई और फिर नीची कर ली, अपने को संयत कर कहा - ''नहीं मैं यहीं ठीक हूँ, महाराज क्या भीतर हैं, उन्हें बाहर भेज दीजिए।''

तारा के भव्य व्यक्तित्व और स्त्रियों के प्रति अपनी संस्कारगत, सम्मानमिश्रित लज्जा ने उन्हें विवश कर दिया था। सीता के साथ छुटपुट परिहास वे अवश्य कर लेते थे, किंतु कभी भी सीधे उनके चेहरे पर दृष्टि टिकाकर बात वे नहीं कर पाये थे।

तारा को लक्ष्मण का संकोच पढ़ने में क्षण मात्र का भी विलम्ब नहीं हुआ। उसे ऐसी ही आशा भी थी। उसने आत्मविश्वास से भरी हल्की सी खिलखिलाहट के साथ पुनः आग्रह किया - ''आर्य, मुझे आपसे दो निवेदन करने हैं। प्रथम तो यही कि आपके लिये वे महाराज नहीं हैं। आपके भाई श्रीराम की कृपा से ही वे किष्किंधा के सम्राट् बने हैं। आपके लिये वे सदैव आपके भक्त सुग्रीव ही रहेंगे। दूसरा निवेदन यह है कि मैं और रुमा दोनों ही आपसे वय में बड़ी हैं, अतः आपको

हमसे संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप निस्संकोच हमारे कक्ष में अपनी चरणधूलि देकर हमें कृतार्थ करें।''

अब तक लक्ष्मण ने अपने को व्यवस्थित कर दिया था। धीरे से बोले- ''नहीं, यह उचित नहीं होगा। मुझे भइया ने महाराज सुग्रीव से अत्यावश्यक परामर्श हेतु भेजा है, उन्हें शीघ्र ही बाहर भेज दें।''

''आपका वह अत्यावश्यक परामर्श मुझसे अथवा रूमा से गोपन नहीं है। अतः आपके भीतर आने में हमारी उपस्थिति बाधक नहीं बनेगी।''

लक्ष्मण अब भी हिचकिचा रहे थे। उन्हें लग रहा था कि इस मधुरभाषिणी और चतुर स्त्री के सम्मुख वे सुग्रीव पर भी अपना आक्रोश व्यक्त नहीं कर पायेंगे। तारा को इससे पूर्व उन्होंने मात्र बालि के वध के समय देखा था, परंतु तब वह पूर्णतः अस्तव्यस्त अवस्था में थी, साथ ही, उस समय उनका पूरा ध्यान बालि पर ही था इसलिये उन्होंने तारा पर दृष्टि भी नहीं डाली थी। वे बोले - ''आप संभवतः महारानी तारा हैं...''

''महारानी तारा नहीं'', तारा उन्हें बीच में ही टोकती हुई बोल पड़ी- ''मात्र तारा। आप स्वयं प्रभु श्रीराम के भाई हैं। सम्पूर्ण वानर समाज आप दोनों की भक्ति करता है। मैं और रूमा भी शेष वानर समाज से अलग नहीं हैं, हम भी आपकी भक्ति करती हैं। मेरे साथ महारानी का सम्बोधन जोड़कर मुझे लज्जित न करें।''

''आपने अभी स्वयं स्वीकार किया कि आप वयस में मुझसे बड़ी हैं, अतः आपकी वयस की मर्यादा करना मेरा धर्म है महारानी।'' लक्ष्मण के मुख से निकला।

''जब आपने इस तथ्य को स्वीकार कर ही लिया तो फिर भीतर आने में संकोच क्यों कर रहे हैं? आप हमारे प्रभु ही नहीं, सुग्रीव के मित्र भी हैं। मित्रों में भ्रातृ-स्नेह सहज स्वाभाविक है। इस नाते मैं आपकी भाभी भी हुई। आप तो

मानते ही होंगे कि भाभी मातावत् होती है और माता के सम्मुख संकोच का कोई स्थान नहीं होता। आइये, कुटिया को अपनी पगधूलि दीजिए।''

''परंतु ..'' लक्ष्मण ने पुनः कुछ कहना चाहा किंतु तारा फिर उनकी बात काटकर बोल पड़ी - ''आर्य, मैं मानती हूँ कि युगों से स्त्री के संग को तरस रहे सुग्रीव आपके भाई की कृपा से उसका अवसर मिलते ही पुष्पशर के बाणों से आहत हो, अपनी सुध-बुध भुला बैठे थे। परंतु इसे उनकी बड़ी भूल की संज्ञा नहीं दी जा सकती, स्थितियाँ ही ऐसी थीं। फिर आप तो विज्ञ पुरुष है, वानरों के स्वभाव से तो आप परिचित ही होंगे, आर्यावर्त के कुलीनों जैसे सुसंस्कार उन्हें कहाँ प्राप्त होते हैं। अतः उनकी थोड़ी सी शिथिलता पर इस प्रकार कुपित होकर, मेरे आग्रह और इस कुटिया की आपका स्वागत करने की आतुरता की उपेक्षा करना आपको शोभा नहीं देता।''

एकाएक लक्ष्मण के मन में एक संदेह उत्पन्न हुआ। उन्होंने भौहें सिकोड़ते हुए प्रश्न किया - ''परंतु वे स्वयं क्यों नहीं आये?''

''वे तो स्वयं ही आ रहे थे'', तारा ने बिना झिझके उत्तर दिया- ''परंतु मैंने ही नहीं आने दिया। भूल की क्या मैंने?''

अजीब प्रश्न था, लक्ष्मण को त्रियाचरित्र का अभी अनुभव ही कहाँ था, वे अचकचा गये। अटपटे स्वर में बोले - ''नहीं, भूल नहीं... परंतु वे स्वयं...''

तारा फिर वैसी ही मोहिनी हँसी हँस पड़ी, फिर हँसी रोककर बोली - ''यदि वे आये होते तो हमारी कुटिया को आपकी पगधूलि कैसे प्राप्त होती? आप उन्हें लेकर बाहर से ही राजसभा की ओर नहीं चले गये होते?''

''परंतु...''

''अब परंतु के लिये स्थान कहाँ बचा आर्य! आप निस्संकोच भीतर आइये। विश्वास कीजिए, पुष्पशर से आहत अवस्था में भी उन्हें श्रीराम का कार्य विस्मृत नहीं हुआ था। वर्षाकाल समाप्त होते ही वे दूर-दूर अपने दूतों को भेज चुके हैं।

अतिशीघ्र ही समस्त वानर योद्धा लंका पर आक्रमण हेतु कूच करने को यहाँ उपस्थित होंगे।''

विवश लक्ष्मण ने, सम्मोहित हो उसके पीछे उसके कक्ष की ओर पग बढ़ा दिये। उनका आक्रोश उस सम्मोहन के नीचे जाने कहाँ दब गया था।

द्वार से ही उन्होंने देखा कि भीतर एक ओर एक विशाल पर्यंक है और दूसरी ओर किसी सिंहासन के समान भव्य पीठिका। उसी पीठिका पर रुमा सहित सुग्रीव बैठा हुआ था। वहीं एक ओर अंगद खड़ा हुआ था।

लक्ष्मण को देखते ही सुग्रीव पीठिका से एकदम कूदकर नीचे उतर पड़ा और हाथ जोड़कर उनकी ओर बढ़ा। वह अब तक बहुत संयत हो गया था तो भी उसकी चाल में हल्का सा कंपन और उसकी आँखों के लाल डोरे लक्ष्मण से छिपे नहीं रहे। तारा के मुख की ओर निहारने में उन्हें संकोच था, सुग्रीव को एकटक देखने में नहीं। उसकी स्थिति देखते ही उनका रोष पुनः उभर आया, कुछ तीव्र स्वर में बोले-''वानरराज, आपको इस प्रकार का आचरण शोभा नहीं देता। क्या श्रीराम के बाणों को आप भूल गये जो अपने वचनों से विमुख होकर इस प्रकार रास-रंग में डूब गये?''

सुग्रीव के मुख से एकाएक कोई बात नहीं निकली। उसके पीछे-पीछे आ रही रुमा भी सहम कर ठिठक गयी। एक बार पुनः तारा ने ही बात सँभाली। वह भी स्वर में तनिक रोष का भाव लाती हुई बोली - ''आर्य लक्ष्मण, सुग्रीव से इस प्रकार बातें आप जैसे सुहृद के मुख से शोभा नहीं देती। मैं आपको पहले ही बता चुकी हूँ कि ये अपने वचन से विमुख नहीं हुए हैं, चारों ओर दूत पहले ही भेजे जा चुके हैं। बस एक-दो दिन में ही यहाँ श्रीराम का कार्य करने हेतु हुँकार भरते वानरों का सागर लहरा रहा होगा।''

तारा की वाक्पटुता से सुग्रीव में भी साहस का संचार हुआ। लक्ष्मण ने उसकी चाल में जो कंपन था देखा था, वह मदिरा के कारण कम था, लक्ष्मण के भय के कारण अधिक था। साहस का संचार होते ही, लक्ष्मण के कोप से बचने

के लिये उसने तत्काल थोड़े से झूठ का आश्रय लिया - ''भाभी ठीक कह रही हैं आर्य! प्रभु का कार्य मुझे विस्मरण नहीं हुआ है। विभिन्न स्थानों में जो दूत भेजे हैं मैंने उन्हें आज-कल में ही लौट आना चाहिए और उनके आगे-पीछे समस्त सेनापतियों को भी अपनी सेना के साथ आ जाना चाहिए। फिर भी यदि आपको प्रतीत होता है कि मुझसे कुछ भूल हुई है तो मैं उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। अपने कुल की महिमा को स्मरण रखते हुए उदारतापूर्वक मुझे क्षमा कर दीजिए।''

पहले अंगद, फिर तारा और अब सुग्रीव की बातों से लक्ष्मण का क्रोध पिघलने लगा। तभी लक्ष्मण के आगमन की सूचना पाकर हनुमान भी दौड़ते हुए वहाँ आ गये। लक्ष्मण को देखते ही वे हाथ जोड़कर उनके पैरों में झुकने लगे, परंतु लक्ष्मण ने बीच में ही उन्हें थामकर अपने सीने से लगा लिया।

तारा के लिये यह उचित अवसर था। वह अपने मोहिनी हँसी हँसकर, झट से बोली - ''और आर्य लक्ष्मण, आप वीर शिरोमणि वज्रांग को कैसे विस्मृत कर सके? आपने कैसे यह अनुमान लगा लिया कि इनके किष्किंधा में उपस्थित रहते, सुग्रीव आपके कार्य के प्रति उदासीन रह सकते हैं।''

हनुमान ने यह तो मार्ग में ही सुन लिया था कि लक्ष्मण क्रोधित हैं, परंतु अब तक यहाँ क्या-क्या हुआ है इस विषय में उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। अतः उन्होंने तारा के कथन पर कोई टिप्पणी भी नहीं की, उन्होंने तो वह सूचना प्रस्तुत की जो वे लाए थे - ''हाँ प्रभु, महर्षि अगस्त्य का दूत संदेश लाया है कि दण्डक के आश्रमों के वीर किष्किंधा के लिये प्रस्थान कर चुके हैं। त्रिविध और और दोनों मामियों के पिताओं की ओर से भी ऐसा ही संदेश अभी-अभी प्राप्त हुआ है।''

इस सूचना से, इतनी देर में पहली बार लक्ष्मण के मुख पर मुस्कान दिखाई पड़ी। उनके मुस्कुराते ही सुग्रीव के हृदय पर से बोझ हल्का हो गया। वह भी मुस्कुराकर बोला - ''अब तो आसन ग्रहण कीजिए आर्य!''

"नहीं मित्र, उसका समय नहीं है। भइया अत्यंत व्यथित हो रहे हैं। उनकी व्यथा देखकर ही मैं भी क्रोधित हो उठा था। इस क्रोध में मैंने जो कटु वचन कह डाले, उन्हें मेरा क्षणिक प्रमाद समझकर क्षमा कर देना।"

"ऐसा क्यों कह रहे हैं आर्य! हम सब तो आपके सेवक हैं...." सुग्रीव ने आगे कुछ कहना चाहा परंतु लक्ष्मण ने उसकी बात बीच में ही काट दी - "मित्रों में कोई सेवक या प्रभु नहीं होता, सब समान होते हैं। किंतु इस समय अब इस पर विवाद न करके आप मेरे साथ चलिये ताकि हम भइया को यह सूचना देकर आगे की योजना पर विचार कर सकें।"

"परंतु..."

"परंतु नहीं, अब चलिये। भइया सच में अत्यंत व्यथित हो रहे थे। चलकर उन्हें सान्त्वना देना इस समय सबसे आवश्यक है। बाहर से आने वाले योद्धाओं को टिकाने की व्यवस्था तो आपके सेनापति और मंत्रीगण सँभाल ही लेंगे।"

सुग्रीव ने एक पल सोचा और फिर बोला - "जैसा आप चाहें।" कहकर वह चलने को तत्पर हो गया। तभी उसने धीरे से अंगद के कान में कुछ कहा। उसकी बात सुनते ही अंगद ने सिर हिलाया और बाहर चला गया।

सुग्रीव और लक्ष्मण को चलने को तत्पर देख तारा ने सहज भाव से गृहस्वामिनी की भूमिका का निर्वहन करते हुए बाधा दी - "आर्य लक्ष्मण! आज प्रथम बार तो आप हमारे प्रासाद में पधारे हैं और आपने अभी जल तक ग्रहण नहीं किया। मात्र कुछ पल लगेंगे फल-पुष्प ग्रहण करने में।"

"नहीं महारानी! जब लंका विजय कर हमलोग वापस लौटेंगे तब विधिवत् आपका आतिथ्य ग्रहण करेंगे। अभी तो जाने दीजिए, मुझे भइया की व्यथा और क्रोध का भय हो रहा है।" कहकर उन्होंने तारा और रूमा दोनों की ओर हाथ जोड़ दिये और द्वार की ओर घूम गये। लेकिन फिर भी महारानियों से विदा लेने की औपचारिकताओं में कुछ पल तो व्यतीत हो ही गये।

अंगद को सुग्रीव ने उसके कान में फुसफुसाकर जो दायित्व सौंपा था, उसने उसका निर्वाह कर दिया था। ये लोग जब नगर के द्वार पर पहुँचे तो वहाँ शताधिक प्रमुख वानर योद्धाओं के साथ अंगद, सेनापति केसरी, जाम्बवान और हनुमान उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

इन लोगों को देखते ही केसरी ने लक्ष्मण और सुग्रीव को प्रणाम किया। अभिवादन की औपचारिकता के बाद सुग्रीव ने अंगद, हनुमान, जाम्बवान के अतिरिक्त पन्द्रह अन्य योद्धाओं को अपने साथ आने का संकेत किया और तत्पश्चात केसरी से बोला - ''इन लोगों को मैं अपने साथ लिये जा रहा हूँ सेनापति जी। आप यहाँ देख लीजियेगा। पूर्व में गये किसी दूत के आने में यदि विलम्ब प्रतीत हो रहा हो तो पुनः दूसरा तीव्रगामी दूत भेज दीजिएगा।''

''आप निःशंक होकर जायें और प्रभु राम को आश्वस्त करें। हम सब लोग यहाँ की सारी व्यवस्था सँभाल लेंगे।'' केसरी ने पूरे विश्वास से उसे आश्वासन दिया।

***

ये लोग जब प्रश्रवण गिरि पहुँचे तो राम व्यथा की व्यग्रता में गुफा के बाहर इसी ओर टकटकी लगाये खड़े थे। सुग्रीव को दूर से देखते ही बोले - ''वानरराज! यह तो मित्रता का लक्षण नहीं है। आप का कार्य सिद्ध हो गया तो आप मेरा कार्य भूल ही गये। वहाँ किष्किंधा के राजप्रासाद में विलास में डूबकर....''

अब तक सुग्रीव सामान्य हो चुका था। वह यह भी जानता था कि राम लक्ष्मण के समान क्रोधी नहीं हैं। यदि लक्ष्मण उससे संतुष्ट हो चुके हैं तो राम भी शीघ्र ही हो जायेंगे। वह राम का वाक्य पूरा होने से पूर्व ही हाथ जोड़कर बोल पड़ा - ''प्रभु, सेवक का अपराध क्षमा करें, परंतु मैं अपने वचन को भूला नहीं हूँ। वर्षाकाल समाप्त होते ही मैं सैन्य को एकत्र होने के लिये सर्वत्र अपने दूत भेज चुका हूँ।''

सुग्रीव के विनीत वचन सुनकर राम कुछ प्रकृतिस्थ हुए। उन्होंने अपनी बाहें फैला दी। सुग्रीव आकर उन फैली हुई बाहों में समा गया। अनायास ही राम की आँखें गीली हो उठीं। कदाचित सीता को स्मरण कर।

''तो अब विलम्ब क्या है, कब प्रस्थान का निर्णय लिया है?'' अपने आँसुओं को वापस नेत्रों के आश्रय में धकेलते हुए राम ने प्रश्न किया।

''कोई विलम्ब नहीं है प्रभु। सेनाओं का आगमन आरम्भ हो गया है। जैसे ही सब एकत्र हो जाते हैं हम प्रस्थान कर देंगे।''

''परंतु यह तो सोचिये किष्किंधापति, सीता वहाँ कितना कष्ट भोग रही होंगी? वह अहंकारी लंकापति न जाने उनके साथ क्या व्यवहार कर रहा होगा?''

इस प्रश्न का सुग्रीव के पास कोई उत्तर नहीं था, किंतु अचानक ही जैसे दैव प्रेरणा से उसके मस्तिष्क में कोई विचार कौंधा हो, उसके व्याकुल मुख पर संतोष की रेखायें तैर गयीं, उसने प्रस्ताव किया - ''सेनाओं को एकत्र होकर चलने में समय तो लगेगा ही प्रभु, फिर इस करोड़ों के सैन्य को समुद्र तट तक का मार्ग तय करने में भी पर्याप्त समय लगेगा...''

''आप तो और भी हताश करने वाली बात कर रहे हैं।'' उसकी बात काटते हुए, बीच में ही राम बोल पड़े।

''मेरी बात पूरी तो सुनिये प्रभु...'' सुग्रीव जल्दी से बोला - ''सम्पूर्ण सैन्य को समय लगेगा किंतु मेरे साथ ये जो योद्धा यहाँ आये हैं, ये किष्किंधा के सबसे कुशल योद्धा हैं। इन्हें हम अभी लंका की ओर प्रस्थान की आज्ञा दे सकते हैं। जब तक सम्पूर्ण सैन्य सहित हमलोग सागर तट तक पहुँचेंगे, तब तक ये लंका में प्रवेशकर वहाँ माता जानकी को खोजकर उन्हें सान्त्वना प्रदान करने का कार्य कर सकते हैं।''

''उचित विचार है।'' राम ने सहमति व्यक्त की।

''माता जानकी को खोजने के साथ-साथ ये लंका के सम्बन्ध में अन्य जानकारियाँ भी जुटा सकते हैं। आक्रमण करने से पूर्व हमारे पास वहाँ की सामरिक स्थितियों का जितना अधिक ज्ञान होगा, उतना ही श्रेयस्कर होगा।''

सुग्रीव का पूरा प्रस्ताव राम और लक्ष्मण को भी परिस्थिति के अनुकूल प्रतीत हुआ। हनुमान तो इस प्रस्ताव से हर्षित ही हो उठे। वे तो प्रभु का कार्य करने के लिये सदैव व्यग्र ही रहते थे।

राम कुछ पल विचारपूर्ण मुद्रा में उन सब वानरों की ओर देखते रहे, फिर एकाएक उन्होंने अपने दाहिने हाथ की उँगली से अँगूठी उतारकर हनुमान की ओर बढ़ा दी - ''हनुमान, यह अँगूठी रख लो। इसे देखकर सीता को विश्वास हो जायेगा कि तुम हमारे ही सहयोगी हो, लंकापति का रचा हुआ कोई प्रपंच नहीं हो।''

हनुमान ने लपककर अँगूठी ले ली।

वे चलने के लिये प्रस्थान करते, उससे पहले ही लक्ष्मण ने एक शंका प्रकट कर दी, बोले - ''हम यह मानकर चल रहे हैं कि रावण ने भाभी को ले जाकर लंका में ही रखा होगा, परंतु यह भी तो हो सकता है कि उसने उन्हें कहीं अन्यत्र रखा हो?''

''लंका के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं सीता को रखने का मुझे तो कोई औचित्य दिखाई नहीं देता।'' राम भौहों पर थोड़ा सा बल डालकर सोचने वाली मुद्रा में बोले।

''वह कैसे जान सकता है कि हम यह जानते हैं कि भाभी का अपहरण उसी ने किया है? हमें भ्रमित करने के लिये वह ऐसा कर सकता है।'' लक्ष्मण ने तर्क दिया।

''कैसा बचकाना तर्क है यह... विश्वास नहीं होता कि यह तुम्हारे मुँह से निकला है।'' राम अचम्भित से स्वर में बोले।

''हमें सारी सम्भावनाओं पर विचार करना चाहिए भइया।''

''तो पहले इन लोगों को प्रस्थान करने दो, फिर हमलोग सम्भावनाओं पर विचार करते रहेंगे।'' राम पहली बार किंचित हास्य के साथ बोले। फिर वे व्यग्र भाव से हनुमान की ओर मुड़े और बोले - ''तुमलोग अपने मार्ग पर प्रस्थान करो। मुझे पूरा विश्वास है कि सीता तुम्हें लंका में ही मिलेंगी।''

''जैसी आज्ञा!'' हनुमान ने हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर आज्ञा शिरोधार्य की।

''जाने से पूर्व मेरी एक बात सुनते जाओ।''

एकाएक सुग्रीव का स्वर सुनकर जाने को उद्यत हनुमान सहित सारे वानर पुनः उसकी ओर घूम पड़े।

''अंगद! तुम युवराज हो। तुम इस अभियान का नेतृत्व करोगे। हमारे पास समय नहीं है इसलिये मैं तुम्हें एक मास का समय देता हूँ जानकी का समाचार लाने हेतु। खूब समझ लो, यदि इस अवधि में तुम कार्य सिद्ध करके नहीं लौटे, तो मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं स्वयं अपने हाथों से तुम सबका वध कर दूँगा।''

''आप चिंता न करें महाराज!'' सुग्रीव की शपथ से विचलित हुए बिना अंगद हाथ जोड़कर बोला और फिर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव से अनुमति लेकर यह दल तत्काल अपने अभियान पर प्रस्थान कर गया।

38. खोज हेतु प्रस्थान

सीता का पता लगाने के लिये लंका की ओर प्रस्थान करने वाले इस दल का नेतृत्व कुमार अंगद के हाथ में था। उसके साथ स्वयं हनुमान, तारा का भाई अर्थात् उसका मातुल तार, अग्निपुत्र नील, जाम्बवान, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, वृषभ, मैन्द, द्विविध, सुषेण (द्वितीय), गन्धमादन, उल्कामुख और अनंग जैसे किष्किंधा की सेना के सर्वप्रमुख 17 अन्य योद्धा थे।

वानर प्रकृति से ही चंचल होते हैं, ये सारे भी थे, परंतु अपनी चंचलता में भी कभी उन्हें इतनी दूरस्थ यात्रा करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था। किष्किंधा राज्य की सीमा से बाहर जाने का उनका यह प्रथम अवसर था। उनके लिये सुविधाजनक एकमात्र यही था कि वे जन्म से ही वनचारी थे अन्यथा आगे का दुष्कर मार्ग तय करना उनके लिये संभवतः असंभव हो जाता।

वन्य प्रदेश में यात्रा करना इन वनचारियों के लिये अत्यंत सहज था, परंतु सम्पूर्ण पथ वन प्रदेश ही तो नहीं था। बीच-बीच में ऐसे दुर्गम पठारी क्षेत्र भी आ जाते थे जहाँ योजनों तक चट्टानों के अतिरिक्त कुछ दिखता ही नहीं था। न वनस्पति और न ही कोई जलस्रोत! तब, एक-दो बार तो ऐसा भी हुआ कि सारा-सारा दिन इन्हें न तो भोजन प्राप्त हुआ और न ही जल। यात्रा के ये पड़ाव निस्संदेह उत्साह को तोड़ देने वाले थे। फिर भी ये लोग बढ़ते ही रहे, ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं, किष्किंधा के सर्वश्रेष्ठ योद्धा थे। इस समय भी वे एक ऐसे ही पर्वतीय क्षेत्र से गुज़र रहे थे। बरसात बाद की धूप वैसे भी ग्रीष्म की धूप से अधिक व्यथित करने वाली होती है... चमकीली-तीखी, साथ में उमस... जो अति शीघ्र शरीर की सारी ऊर्जा सोख लेती है। सारा संकल्प पसीने के साथ बह जाता है।

एकाएक मैन्द एक ओर देखता हुआ ठिठक गया। अनायास ही सबकी प्रश्नवाचक दृष्टि उस पर केन्द्रित हो गयी। अपना हाथ उठाकर एक ओर संकेत करता हुआ वह बोला - ''युवराज, वो उधर देख रहे हैं... वह क्या है?''

सबकी दृष्टि उसी ओर उठ गयी जिधर मैन्द संकेत कर रहा था।

''कोई गुफा प्रतीत होती है।'' अंगद के स्थान पर जाम्बवान ने उत्तर दिया।

''क्यों न हमलोग चलकर कुछ देर वहाँ विश्राम कर लें? मैं तो बहुत थक गया हूँ... ऊपर से यह तीखी धूप...'' उसने अपना वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

थक तो सभी गये थे अतः यही निश्चय हुआ कि उस गुफा में चलकर दोपहर के थोड़ा ढल जाने तक प्रतीक्षा की जाये। क्या पता गुफा में कोई जलस्रोत भी मिल जाये तो प्यास भी शांत की जा सके।

गुफा पर्याप्त ऊँची थी। वहाँ पहुँचते ही सभी को राहत मिली। तपते सूरज की सीधी किरणों से वहाँ रक्षा तो हो रही थी। थोड़ा सा भीतर जाकर ही सब सुस्ताने के लिये बैठ गये और अपना पसीना सुखाने लगे। जब शरीर की जलन से राहत मिली तो सारे ही किसी जलस्रोत की खोज में गुफा के भीतर चल दिये। ये लोग जैसे-जैसे भीतर जा रहे थे, अँधेरा होता जा रहा था, साथ ही अद्भुत प्रकार के जंतुओं से भी सामना हो रहा था।

भय से तो इनमें से किसी का परिचय ही नहीं था अतः अंधकार और उन विचित्र-विचत्र प्राणियों से भेंट के बावजूद उन्होंने सारी गुफा छान मारी और थक-हार कर वापस वहीं आकर बैठ गये जहाँ पहले बैठे थे। पूरी गुफा में पानी के कहीं दर्शन नहीं हुए थे। अब धूप के कम होने की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था।

''तात् जाम्बवान'', अचानक कुछ सोचते हुए उल्कामुख बोला- ''छिपने के लिये ये गुफायें भी अत्यंत उपयुक्त स्थान हो सकती हैं।''

''तात्पर्य क्या है तुम्हारा?'' जाम्बवान ने प्रश्न किया।

''यही कि ऐसा भी तो संभव है कि दशानन ने माता सीता को लंका ले जाने के स्थान पर ऐसी ही किसी गुफा में छिपा दिया हो?''

''परंतु ऐसी बीहड़ अँधियारी गुफा में वह क्यों छिपायेगा माता को?'' गन्धमादन ने प्रश्न किया।

''क्यों? माता का अपहरण उसने अपनी भगिनी के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये किया है। वह उन्हें ले जाकर किसी प्रसाद में भला क्यों रखेगा?''

उसकी बात के उत्तर में जाम्बवान हँस पड़ा - ''लंका में क्या कारागार नहीं होते होंगे?''

''अवश्य होते होंगे, परंतु ऐसी निर्जन गुफा में बंदी व्यक्ति को कारागार से भी अधिक मानसिक प्रताड़ना सहनी पड़ती होगी।''

''और गुफा में उन्हें रखकर वह यूँ ही अरक्षित छोड़ देगा, ताकि वे सहजता से भाग सकें?''

''उन्हें बाँधकर भी तो डाल सकता है।'' उल्कामुख ने तर्क किया।

''नहीं, मुझे यह संभव प्रतीत नहीं होता'', जाम्बवान कुछ उपेक्षित भाव से बोला- ''वह माता को अपनी दृष्टि से दूर नहीं छोड़ सकता।''

हनुमान अभी तक मौन बैठे यह सारा वार्तालाप सुन रहे थे। एकाएक वे बोले-''तात्, मैंने आपको बताया था कि मैंने और महाराज सुग्रीव ने एक बार किष्किंधा के पास के वन में ही एक लंका की चौकी पकड़ी थी और उस चौकी में उपस्थित लंका के सैनिकों को बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया था। दुर्भाग्य से तभी मायावी वाला वह काण्ड हो गया और बालि ने महाराज सुग्रीव को निष्कासित कर दिया। बालि ने कभी भी उन बंदी सैनिकों पर ध्यान ही नहीं दिया, उसने उस सूत्र को पकड़कर आगे कुछ पता करने का प्रयास ही नहीं किया...''

''वह तो तुमने मुझे बताया था किंतु इस समय उस घटना का सन्दर्भ देने की क्या आवश्यकता आ पड़ी?'' जाम्बवान ने उन्हें बीच में ही रोकते हुए पूछा।

''यही कि जब किष्किंधा तक लंका के गुप्त सूत्र फैले हुए थे तो इस क्षेत्र में भी वैसे सूत्र उपस्थित हो सकते हैं। यहाँ भी लंका की वैसी ही गुप्तचर चौकियाँ हो सकती हैं।''

''हमें मिली तो एक भी नहीं अभी तक।'' अंगद बोला।

''मिली नहीं का तात्पर्य यह तो नहीं कि हो ही नहीं! होने की संभावना तो बराबर है। तुमसे तो मैंने स्वयं कई बार कहा था उस विषय में आगे कुछ पता करने के लिये।''

''किया था परंतु पिता ने उस पर कभी ध्यान ही नहीं दिया और तब उनके विरुद्ध जा पाना मेरे लिये संभव नहीं था।''

''खैर छोड़ो उस विषय को, इस समय उसका उल्लेख करने के पीछे मेरा प्रयोजन मात्र इतना ही है कि यदि इस क्षेत्र में वैसी कोई चौकी होगी तो उसके लिये ऐसी गुफायें ही सर्वाधिक उपयुक्त हैं।'' हनुमान ने संभावना व्यक्त की।

''यह तो है।'' अंगद ने भी सहमति व्यक्त की।

परंतु जाम्बवान अब भी इस विचार से सहमत नहीं थे, वे बोले - ''यदि ऐसी कोई बात होती तो लंकेश्वर ने गुफा को यों अरक्षित नहीं छोड़ रखा होता। दूसरी बात यदि लंका की चौकियाँ इस क्षेत्र में होती तो अभी तक कहीं न कहीं तो हमें लंका के सैनिक दिखाई पड़ते? कहीं न कहीं तो हमें उनकी कोई हलचल दिखाई पड़ती?''

''वे छिपकर बैठे होंगे।''

''क्यों? यदि ऐसी कोई चौकियाँ यथार्थ में उपस्थित हैं तो आखिर उनकी स्थापना का उद्देश्य क्या हो सकता है? क्षेत्र की निगरानी और क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बढ़ाने के प्रयासों के अतिरिक्त भी कोई कारण समझ आता है तुम्हें?'' जाम्बवान ने प्रश्न किया।

उत्तर में सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। जाम्बवान फिर बोले - ''हनुमान, तुमने महाराज सुग्रीव के साथ जब ऐसी किसी चौकी को देखा था तब रावण

त्रिलोकेश्वर नहीं था। तब इसे क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित करने का उसका प्रयास समझा जा सकता था, परंतु अब तो वह त्रिलोकेश्वर है... उसे छिपकर कोई कार्य करने की आवश्यकता नहीं है अब। यदि ऐसी चौकियाँ अभी भी अस्तित्व में हैं, तो उनमें कार्यरत कर्मियों को छिपकर रहने की आवश्यकता मुझे समझ में नहीं आती।''

''संभव है कोई कारण हो।'' अंगद धीरे से बोला।

''तब तो युवराज मुझे यह कहना पड़ेगा कि महाराज ने व्यर्थ ही हमें इस अभियान पर भेजा है। हम किष्किंधा के सर्वश्रेष्ठ योद्धा माने जाते हैं, हम माता सीता की खोज के अत्यंत महत्वपूण अभियान पर आये हैं, हम सभी सतत सतर्क हैं... इस पर भी यदि हमें अपने आस-पास उपस्थित, रावण के छिपे हुए सैनिकों का अभी तक आभास तक नहीं मिला, तो हमारी सतर्कता व्यर्थ है, तो हमारा स्वयं को समर्थ योद्धा कहना मिथ्याभिमान के अतिरिक्त कुछ नहीं है।''

जाम्बवान के तर्क सुनकर कुछ देर के लिये वहाँ मौन छा गया। किसी के पास कहने के लिये कुछ नहीं था। कुछ काल पश्चात् हनुमान ने ही मौन तोड़ा - ''तात्! मैं आपसे सर्वथा सहमत हूँ, तथापि यदि हम कुछ अतिरिक्त सतर्कता बरतते हुए यदि मार्ग में पड़ने वाली गुफाओं पर भी दृष्टि डालते चलेंगे तो मुझे नहीं प्रतीत होता कि कुछ हानि होगी।''

''हाँ, परंतु तब हमें समय का भी ध्यान रखना होगा। महाराज ने हमें एक माह का ही समय दिया है और उसमें से एक सप्ताह से अधिक तो व्यतीत भी हो गया है।''

''तो फिर उठिये, अब बैठे क्यों हैं? अब तो दिवाकर भगवान की किरणें भी उतनी तीखी नहीं रहीं।''

हनुमान के इतना कहते ही सारे उठ खड़े हुए और आगे बढ़ चले।

***

कई दिन और निकल गये। यह दल सतत् अपनी यात्रा करता रहा। शीघ्र ही वे पुनः वनप्रदेश में पहुँच गये जहाँ जल और भोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। उनकी यात्रा पुनः सुगम हो गयी। मार्ग में उन्हें दो-तीन और ऐसी ही गुफायें दिखाई दी थी जिनमें उन्हें शंका हुई थी कि कुछ हो सकता है, परंतु उन गुफाओं की छानबीन से भी कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं हुई।

आगे पुनः विशाल पर्वतीय प्रदेश था। इस पर्वतीय प्रदेश में तो कन्दरायें ही कन्दरायें थी। प्रत्येक कन्दरा के मुख पर यह प्रतीत होता था कि इसके भीतर कुछ हो सकता है। उस प्रदेश की कन्दराओं को छानने में बहुत सा समय व्यर्थ व्यतीत हो गया। इसके साथ में दुर्भाग्य यह भी था कि इस क्षेत्र में वृक्ष तो बहुत थे किंतु फलदार वृक्षों का नितान्त अभाव था। बड़ी कठिनाई से कोई फलदार वृक्ष मिलता था तो सारे उस पर टूट पड़ते थे। क्षुधा तो उन फलों से शान्त हो जाती थी किंतु तृषा का क्या हो... जलाशय तो कोई मिल ही नहीं रहा था।

बारम्बार शिखरों पर चढ़ते-उतरते, उनमें बिखरी असंख्य अंधकारमय कन्दराओं में अंधकार में निवास करने वाले जीवों के साथ-साथ हिंस्र सिंह-व्याघ्र आदि पशुओं से जूझते हुए, वे सभी भूख-प्यास और थकान से व्याकुल हो उठे।

''अब मुझसे और आगे नहीं चला जाता।'' एकाएक कोई एक वानर व्याकुलता से बोल पड़ा।

अधिकांश ने उसकी बात से सहमति जताई और व्यथित भाव से सभी एक पेड़ के नीचे बैठ गये। सब बैठे तो हनुमान भी बैठ गये, किंतु उनकी दृष्टि अब भी चारों ओर घूम रही थी, अपने चतुर्दिक् निरीक्षण कर रही थी।

39. स्वयंप्रभा

एकाएक उत्साहित होते हुए हनुमान एक ओर संकेत कर, जाम्बवान की बाँह हिलाते हुए बोले - ''तात् उधर देखिये!''

जाम्बवान ने एक प्रश्नवाचक दृष्टि हनुमान के मुख की ओर डाली और फिर उधर देखने लगे जिधर हनुमान संकेत कर रहे थे। देखते ही वे भी उत्साहित होकर उठ खड़े हुए। इन दोनों की देखा-देखी बाकी सबकी दृष्टि भी उसी ओर घूम गयी। वह लतागुल्मों से घिरा हुआ एक कन्दरा का द्वार सा प्रतीत होता था।

इसके बाद अगले ही पल जो हुआ, उसने सभी में उतीव उत्साह का संचार कर दिया। उस कन्दरा के द्वार से उन्हें हंस, क्रौंच, सारस, चक्रवाक आदि जलीय पक्षी निकलते हुए दिखाई पड़े।

''निस्संदेह उस कंदरा में कोई जलस्रोत है।'' अंगद के मुख से उत्साह से भरा स्वर निकला।

उसके बाद और प्रतीक्षा करने का कोई कारण ही नहीं था। प्यास से वे वैसे ही अत्यधिक व्याकुल थे। सब उसी ओर दौड़ पड़े। तभी उन्होंने देखा कि उस गुफा-द्वार से सिंहों का एक जोड़ा निकल रहा है। इससे उन्हें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उनके हाथों में थमी गदायें किसी भी सिंह, व्याघ्र अथवा स्वयं गजराज का भी मद चूर करने में समर्थ थी।

गुफा-द्वार के पास पहुँचते ही उन्हें गुफा के भीतर की हलचल का आभास होने लगा। अनेक पक्षियों का कलरव स्पष्ट घोषित कर रहा था कि भीतर अवश्य ही कोई जल का स्रोत उपस्थित है। इसने उनके उत्साह को और बढ़ा दिया। गुफा से निकलने वाले हिंस्र पशुओं से जूझते हुए वे भीतर प्रवेश कर गये।

भीतर प्रवेश करते ही स्वाभाविक रूप से क्रमशः घने होते अंधकार का सामना करना पड़ा, परंतु फिर जो हुआ वह उन्हें अचंभित करने वाला था। अब वे जैसे-जैसे आगे बढ़ रहे थे प्रकाश तीव्र होता जा रहा था। सामने ही एक अत्यंत

सुन्दर उद्यान था। वे सारे विस्मित थे, उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि वहाँ प्रकाश कहाँ से आ रहा है! किंतु विस्मय उन्हें अधिक समय तक रोक नहीं पाया, उनके हर्ष ने विस्मय पर विजय प्राप्त कर ली।

सामने जहाँ तक दृष्टि जा रही थी, वहाँ तक विस्तृत रसीले फलदार वृक्षों से परिपूर्ण उद्यान और वृक्षों के मध्य स्वच्छ जल का सुन्दर सरोवर। वे सब अपना विस्मय भूलकर अपनी क्षुधा और अपनी तृषा को शांत करने के उद्योग में निरत हो गये।

अब वहाँ मात्र हनुमान और जाम्बवान ही शेष रह गये थे। दोनों ही उस गुफा के भीतर ऐसे अलौकिक उद्यान और सरोवर को देखकर सहज अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे, उन्हें किसी मायाजाल का आभास हो रहा था। सरोवर और वृक्षों की ओर भागते शेष वानर योद्धाओं को जाम्बवान ने पुकारकर एक बार रोकना भी चाहा कि अनजाने ही कहीं किसी विपत्ति में न पड़ जायें, परंतु जब किसी ने उसकी बात सुनी ही नहीं तो उसने भी अधिक प्रयास नहीं किया।

''तात्'', अचानक खड़े-खड़े हनुमान ने जाम्बवान से प्रश्न किया - ''यह सब कहीं लंकेश की माया तो नहीं है? कहीं उसने हमें फँसाने के लिये कोई जाल तो नहीं फैला रखा है?''

''कुछ पल प्रतीक्षा करो, सब अभी स्पष्ट हो जायेगा। यदि यह लंकेश की माया भी होगी तो तुम्हारे जैसे वीर के साथ होते हमें कोई भय नहीं है।'' जाम्बवान ने स्नेह से हनुमान की ओर देखते हुए मुस्कुराकर उत्तर दिया।

''यदि यह लंकेश की माया है तो उसने माता सीता को यहाँ भी छिपाया हो सकता है।'' हनुमान ने पुनः संभावना प्रकट की।

''प्रतीक्षा करो वत्स! जो भी होगा स्वतः सम्मुख आयेगा... और तदनुसार ही हम अपना कर्तव्य निर्धारित करेंगे।''

कुछ काल उपरांत जब दोनों ने पाया कि वे वृक्ष और सरोवर मायावी नहीं वास्तविक हैं, तो अंततः वे दोनों भी उसी ओर बढ़ गये।

***

भूख और प्यास दोनों के शमन के उपरांत यह वानर दल कुछ काल के लिये वहीं विश्राम करने लगा। हनुमान के मन में अभी भी इस स्थल के प्रति आशंका व्याप्त थी। शीघ्र ही वे उठ खड़े हुए और बाकियों को भी उठाते हुए बोले - ''अच्छा, अब बहुत विश्राम हो चुका। महाराज ने कार्य सम्पूर्ण करने हेतु हमारे लिये जो समय-सीमा निर्धारित की थी, वह समाप्त प्राय है। अब हम विश्राम में समय व्यर्थ नहीं कर सकते।'' कहने के साथ ही वे गुफा में आगे बढ़ने लगे। शेष सब भी उनका अनुसरण करने लगे।

आगे और भी बड़ा आश्चर्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ा सा आगे बढ़ते ही उन्हें प्रतीत होने लगा जैसे वे किसी अत्यंत भव्य नगर में आ गये हों। चारों ओर भव्य प्रासाद, भव्य वीथियाँ... परंतु सारे जन शून्य। यह दृश्य हनुमान की आशंका को और बल देने लगा। गुफा मानो कोई सुरंग बन गयी थी, वे बढ़ते जा रहे थे परंतु गुफा के समाप्त होने के कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ रहे थे। सर्वत्र प्रकाश था, परंतु उस प्रकाश का कोई स्रोत नहीं दिखाई पड़ रहा था। वे न जाने कितनी दूरी तय कर चुके थे किंतु वातावरण अभी भी पूर्णतः निर्मल था, एक बार भी ऐसा प्रतीत नहीं हुआ था कि वहाँ के वातावरण में घुटन हो। जबकि ऐसा होना नहीं चाहिए था, किसी कन्दरा में इतने भीतर आने के बाद भी सामान्य स्वच्छ वातावरण की उपस्थिति निस्संदेह रहस्यमयी थी।

साँसें रोके, सभी सतर्कता से आगे बढ़ते जा रहे थे, हर पल सतर्क! किसी भी अप्रत्याशित आक्रमण का प्रत्युत्तर देने के लिये सबके हाथ अपनी गदाओं पर कसे हुए थे। आगे बढ़ता हुआ प्रत्येक पग उनके मन की जिज्ञासा और आशंका दोनों को ही बढ़ाता जा रहा था।

तभी अचानक उनकी दृष्टि एक भवन के बाहर के उद्यान में वल्कल धारण किये काले मृगचर्म पर बैठी एक वृद्ध तपस्विनी पर पड़ी।

कुछ पल सब शांत एक-दूसरे को देखते रहे। सबकी आँखों में प्रश्न था कि क्या किया जाये... यदि कोई योद्धा होता तो उन्हें उसे ललकारने में कोई संशय नहीं होता, परंतु किसी वृद्धा तपस्विनी से किस भाँति बात की जाये इसका उन्हें अभ्यास ही नहीं था। उसे ऐसे ही छोड़कर आगे भी नहीं बढ़ा जा सकता था। इतनी देर बाद तो उन्हें किसी मानवीय उपस्थिति के चिह्न मिले थे, अपनी जिज्ञासाओं के उत्तर लिये बिना वे आगे भी नहीं बढ़ सकते थे। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सम्मुख यह भी तो था कि इस कन्दरा में और आगे जाकर कहीं वे अपना अमूल्य समय नष्ट तो नहीं कर रहे? यदि कन्दरा आगे से बन्द हुई तो उन्हें पुनः वापस आना पड़ेगा।

अंततः हनुमान ही आगे बढ़े।

उन्होंने उद्यान में प्रवेश किया और हाथ जोड़कर निःशब्द उस तपस्विनी के सामने जा खड़े हुए। तपस्विनी ने जैसे बंद आँखों से ही उनके आगमन को जान लिया। उनके सामने पहुँचते ही उसने अपनी आँखें खोल दीं और अपनी मुस्कुराती हुई दृष्टि उनके मुख पर केन्द्रित कर दी।

''माते, हम किष्किंधापति सुग्रीव के अनुचर हैं। हम महाराज के कार्यवश लंका की ओर जा रहे थे, अकस्मात इस कन्दरा में आ गये। परंतु अब यह कन्दरा हमें किसी मायाजाल सी प्रतीत हो रही है। क्या आप इस विषय में हमारी जिज्ञासाओं का शमन करने की कृपा करेंगी?''

हनुमान की बात सुनकर वह वृद्धा तापसी मंद-मंद मुस्कुरा उठी। कुछ पल वह अपलक हनुमान को निहारती रही फिर मधुर स्वर में बोली - ''मैं तुम्हें पहचान रही हूँ वज्रांग। जहाँ तक तुम्हारी जिज्ञासा का प्रश्न है, तो तुमने पितामह ब्रह्मा के महान शिष्य, त्रिलोक के महान अभियंता दानवराज मय का नाम अवश्य सुना होगा!''

उसकी बात सुनते ही हनुमान चौंक गये। तत्काल उन्हें दुन्दुभि और मायावी का ध्यान आया। वही मायावी जिसके कारण बालि और सुग्रीव के मध्य इतना

बड़ा वैमनस्य उत्पन्न हुआ था। वे दोनों इसी मय दानव के पुत्र थे। उनकी भौहें एक बार थोड़ी सी सिकुड़ीं परंतु तत्काल उन्होंने स्वयं को शांत कर लिया।

वृद्धा तापसी की दृष्टि अभी भी उनके मुख पर ही टिकी हुई थी। हनुमान के माथे पर क्षणांश के लिये उभरी वह सिकुड़न भी उसकी दृष्टि से छिपी नहीं रही थी। वह धीरे से हँस पड़ी। उसी मन्द हास्य के साथ बोली - ''दानवों के विश्वकर्मा के व्यक्तित्व का आकलन उनके पुत्रों की दुष्टता के आधार पर करना उचित नहीं है वज्रांग।''

उसके इतना कहते ही हनुमान विस्मित रह गये। वह तापसी कितनी सरलता से उनके मन को पढ़ रही थी! उनके मन में एक बार सन्देह उपजा - 'वह तापसी ही है अथवा रावण की कोई माया?' उन्होंने संकल्प किया कि अब वे अपने मन को बिलकुल शांत रखेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया।

वृद्धा तापसी उनकी ओर देखकर एक बार फिर मुस्कुराई और स्नेहिल स्वर में आगे बोली - ''इस स्थान से मायावी और दुन्दुभी का कोई सम्बन्ध कभी नहीं रहा, वे दोनों तो अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में इस स्थान के विषय में जान भी नहीं पाये। वस्तुतः वे दोनों दानवराज की पहली पत्नी की संतान थे। उसकी मृत्यु के उपरांत उन्हें अप्सरा हेमा से प्रेम हो गया। तब उन्होंने अपने और हेमा के लिये इस नगरी का निर्माण किया था। दोनों ने सुदीर्घ काल तक यहाँ निवास किया। यहीं हेमा ने मंदोदरी को जन्म दिया।''

मन्दोदरी का उल्लेख सुनते ही हनुमान के कान सतर्क हो गये, परंतु उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, चुपचाप वृद्धा की बात सुनते रहे। वह कह रही थी - ''जैसे ही देवेन्द्र को दानवराज और हेमा के संबंध के विषय में ज्ञात हुआ उसने यहाँ आक्रमण कर दिया और हेमा को अपने साथ ले गया। दानवराज तो अभियंता थे, विद्या-व्यसनी थे, उन्हें युद्ध में देवेन्द्र से पराजित और अपमानित होकर भागना पड़ा। उसके बाद उन्होंने अभियंत्रण कर्म भी त्याग दिया। दानवराज के विरक्त होकर यहाँ से चले जाने के उपरांत पितामह ब्रह्मा ने यह नगरी हेमा

को सौंप दी, परंतु वह तो देवेन्द्र के साथ थी अतः उसकी अनुपस्थिति में मैं यहाँ रहकर इस नगरी की देखभाल कर रही हूँ।''

''परंतु आपने अपना परिचय नहीं दिया माता?'' हनुमान ने नम्रता से प्रश्न किया।

वृद्धा पूर्ववत मंद हास्य के साथ बोली - ''मैं स्वयंप्रभा हूँ, हेमा की सखी।''

''परंतु यह स्थान जन-शून्य क्यों है माता?''

''यहाँ दानवराज और हेमा के अतिरिक्त उनके कुछ भृत्य ही रहते थे। उनके यहाँ से जाने के उपरांत समय के साथ में उन सब की मृत्यु हो गयी। मुझ एकाकी तपस्विनी को अन्य किसी की आवश्यकता ही नहीं थी, अतः अब मैं एकाकी ही इस सम्पूर्ण परिसर में निवास करती हूँ।''

''परंतु माता'', इस बार हनुमान अपने विस्मय को मुख पर प्रकट होने से नहीं रोक पाये- ''इतने विशाल क्षेत्र का प्रबन्धन एकाकी आप... यह कैसे संभव है? और इस विशाल कन्दरा के भीतर यह प्रकाश और यह सुखद समीरण ...?''

वृद्धा पुनः हँसकर बोली - ''सम्भवतः तुम अब भी दानवराज के व्यक्तित्व का आकलन उनके पुत्रों से संदर्भित करके ही कर रहे हो, अन्यथा ऐसा प्रश्न नहीं करते। दानवराज विश्वकर्मा के समकक्ष स्थान रखते थे अभियांत्रिकी में। ये जितने भी रहस्य तुम देख रहे हो, सब उनके कौशल का ही परिणाम हैं। इससे अधिक न मैं तुम्हें समझा पाऊँगी और न तुम समझ पाओगे। तुम स्वयं को इस रहस्य को सुलझाने के स्थान पर उस कार्य पर ही ध्यान दो जिसके लिये सुग्रीव ने तुम्हें भेजा है।''

''क्या आप उस विषय में जानती हैं माता?'' हनुमान ने विस्मय से पूछा।

''तुम स्वयं अपने मुख से ही क्यों नहीं बता देते!'' वृद्धा पुनः मंद स्मित के साथ बोली।

हनुमान एक बार उलझन में पड़े, परंतु फिर उन्होंने सब कुछ उसे बता देना ही उचित समझा। उनके मौन होते ही वृद्ध पूर्ववत स्मित के साथ बोली - ''तुमलोगों

को सागर तट तक तो मैं सहज ही पहुँचा सकती हूँ परंतु तदुपरांत सागर संतरण कर लंका तक तुम्हें अपने पराक्रम से ही पहुँचना होगा।''

उसकी बात सुनकर एक बार फिर सारे अचंभित रह गये। सभी उसके व्यक्तित्व से सम्मोहित से खड़े थे। हनुमान ही पुनः बोले - ''तो पहुँचाइये न माते!''

''यह कन्दरा पर्वत-श्रृंखला के नीचे-नीचे ही उस द्वार... जहाँ से तुमलोगों ने प्रवेश किया है... से लेकर सागर तट तक विस्तृत है। सीधे चलते चले जाओ, तुम सहज ही तट तक पहुँच जाओगे।''

कहकर वह एक बार पुनः हल्के से हँसी और बोली - ''किसी संदेह को मन में स्थान मत दो। मार्ग में कोई विघ्न नहीं आयेगा और अधिक समय भी नहीं लगेगा।''

''परंतु माता...'' हनुमान ने कुछ और पूछना चाहा किंतु वृद्धा उनके शब्दों की ओर ध्यान दिये बिना बस शुभकामना का एक वाक्य बोली - ''शुभास्ते पंथानः सन्तु ...!'' और अपनी पलकें पुनः मूँद लीं।

अब इन सबके सम्मुख वहाँ से प्रस्थान करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। वे आगे बढ़ चले।

वहाँ से थोड़ा आगे बढ़ते ही जाम्बवान ने पूछा - ''हनुमान! क्या तुम्हें इसकी बातों पर विश्वास है?''

''तात्! मैं तो स्वयं इसी उहापोह में हूँ। बुद्धि कहती है कि यह विश्वासयोग्य नहीं हो सकती, परंतु मन कहता है कि नहीं, हमें इस पर विश्वास करना चाहिए, हम हमारी शुभचिंतक ही है।''

जाम्बवान के होठों पर एक गहरी मुस्कान छा गयी, उन्होंने पूछा - ''और बुद्धि अविश्वास करने के क्या कारण बताती है?''

''तात्! इसने स्वयं को हेमा की सखी बताया है, अर्थात् यह लंका की साम्राज्ञी की माता की सखी है। इन्द्र पर विजय प्राप्त करने के उपरांत स्वयं

लंकेश ने ही हेमा को मुक्त कराकर पुनः मय को सौंपा था। इस प्रकार इसके सूत्र तो सीधे-सीधे लंकेश से जुड़ जाते हैं। फिर यहाँ सब कुछ इतना रहस्यमय है कि यहाँ की किसी भी चीज पर विश्वास कर पाना कठिन प्रतीत होता है।'' कहकर वे कुछ क्षण सोचते रहे तत्पश्चात् आगे जोड़ा - ''किंतु न जाने क्यों, इतने पर भी मन इसकी बातों पर अविश्वास नहीं कर पा रहा। मन कह रहा है कि वह राग-द्वेष से ऊपर उठ चुकी हैं, उसके मन में हमारे प्रति कोई छल नहीं है। उसने यदि कहा है कि इसी मार्ग पर सीधे चलकर हम अतिशीघ्र सागर तट पर पहुँच जायेंगे, तो अवश्य ही ऐसा ही होगा।''

''तो फिर तुम्हारे मन की बात ही मानते हैं। उसी का अनुसरण करते हैं। आगे जो होगा देखा जायेगा, हम सभी किसी भी आकस्मिक संकट का सामना करने में समर्थ हैं।''

एकाएक अंगद ने इन दोनों की वार्ता में हस्तक्षेप किया - ''हनुमान भैया, मैं तो विस्मित रह गया जब उसने तुम्हें सीधे तुम्हारे नाम से ही पुकारा।''

हनुमान मुस्कुराकर बोले - ''वह हम सब को पहचान ही नहीं रही थी, वह तो पूरी कुशलता से मेरे मन में उठ रहे प्रश्नों को, मेरी शंकाओं को पढ़ भी पा रही थी।''

जैसे अपने आप में ही खोया हो, कुछ इस भाव से अंगद पुनः बोला - ''हाँ, और वह उतना ही उत्तर दे रहे थी जितना वह चाह रही थी... और अन्त में कैसे उसने एकाएक पुनः समाधि में जाकर सारी चर्चा को विराम दे दिया। उसके सम्मुख हम सारे किस तरह से सम्मोहित से हो गये थे। मुझे तो स्वयं उसका व्यक्तित्व ही रहस्यमय सा प्रतीत होता है।''

''सो तो है ही। हम सब ही नहीं, पशु-पक्षी भी तो उसके आगे अवश से प्रतीत हो रहे हैं। देखा नहीं सिंह-व्याघ्र तक उस आरम्भिक सरोवर तक तो आ रहे है, किंतु उससे आगे कोई नहीं बढ़ रहा।''

हनुमान के मन की बात मानने का निर्णय तो हो ही चुका था, अतः इसी प्रकार की चर्चाओं के साथ सब आगे बढ़ते रहे। सबके मन में शंका सिर उठा रही थी, किंतु फिर भी चलते जा रहे थे। एक ही आशा उनका अवलंब थी - 'क्या पता हनुमान के मन की बात ही सही निकले और हमलोग सहज ही सागर तट पर पहुँच जायें।'

उस रहस्यमयी तापसी के कहे अनुसार, मार्ग में कहीं कोई विघ्न-बाधा नहीं आयी। कोई थकन अनुभव नहीं हुई। वहाँ का वातावरण ही ऐसा था कि शरीर को थकन स्पर्श भी नहीं पा रही थी। उन्हें यह पता ही नहीं चल रहा था कि समय व्यतीत भी हो रहा है अथवा नहीं। निरंतर एक सा प्रकाश, एक सा आनन्ददायक शीतल समीरण। न धूप न अंधकार... बस नेत्रों को शीतलता देने वाला उज्ज्वल प्रकाश और मंद-मंद सुखद वायु। कुछ घंटों की यात्रा के उपरांत अचानक प्रकाश घटने लगा। थोड़ा आगे चलते ही घने अंधकार ने उन्हें घेर लिया। ये लोग चकित हो गये, कुछ लोग तो ठिठक भी गये। जाम्बवान ने उनका ठिठकना अनुभव किया, वह बोला - ''निःशंक चलते रहो। मुझे प्रतीत होता है कि हमलोग गुफा के मुख पर हैं। यह अंधकार भी वैसा ही है जैसा हमें गुफा में प्रवेश करते समय मिला था।''

उसका निष्कर्ष एक बार फिर सत्य सिद्ध हुआ। कुछ ही देर में वे उस सुरंग जैसी कन्दरा से बाहर थे और दूर सामने उत्ताल तरंगों के साथ सागर ठाठें मार रहा था। देखते ही सबके मुख आश्चर्य और प्रसन्नता से खिल उठे। हनुमान के मन की बात सत्य सिद्ध हुई थी।

40. सन्देह

महेन्द्र गिरि के पाद प्रदेश में दूर तक फैला बालु का विस्तार और उसके बाद अनंत सागर उन्हें अपनी ओर खींच रहा था। आश्चर्य इस बात का नहीं था कि वे इतनी सहजता से सागर तट पर आ गये थे, आश्चर्य तो इस बात का था कि बाहर भोर का उजाला फैल रहा था, इसका तात्पर्य था कि वे रात्रि में यात्रा करते रहे थे और उस रहस्यमयी कन्दरा-सुरंग में उन्हें रात्रि का आभास तक नहीं हुआ था। वहाँ तो सदैव वही मनभावन प्रकाश फैला रहा था।

कुछ ही देर में उन्होंने अपने आश्चर्य पर विजय प्राप्त कर ली और सागर तट पर पहुँचने के लिये शीघ्रता से पर्वत से नीचे उतरने लगे। अंगद भी उन सभी के समान अत्यंत प्रसन्न था किंतु अचानक ही वह ठिठक गया और अपने चारों ओर खिले पुष्पों और वनस्पतियों को निहारने लगा।

हनुमान और जाम्बवान उसके पीछे ही थे। हनुमान तो उतरते हुए भी पीछे घूमकर विशाल महेन्द्र गिरि को देखते हुए सोच रहे थे कि इस कन्दरा-सुरंग ने उनका मार्ग कितना सहज कर दिया, अन्यथा यदि इस विशाल पर्वत-श्रंखला तो पार करते हुए आना पड़ता तब तो बहुत ही कठिनाई होती और समय भी बहुत लगता।

अंगद को ठिठकते देखकर जाम्बवान भी ठिठक गये। जाम्बवान ठिठके तो हनुमान का ध्यान भी उधर गया, वे भी ठिठक गये।

''युवराज क्या विचार कर रहे हो?'' जाम्बवान ने पूछा।

''तात् मुझे तो भय हो रहा है।'' अंगद ने सिहरते हुए उत्तर दिया।

''सागर संतरण का?''

"नहीं तात्, तनिक अपने चतुर्दिक दृष्टि निक्षेप कीजिये, तनिक वनस्पतियों को देखिये, आकाश को निहारिये... सभी चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं कि वसंत का आगमन हो चुका है।"

एकाएक जाम्बवान और हनुमान की समझ में नहीं आया कि वसंत का आगमन अंगद के भय का कारण कैसे बन सकता है। जाम्बवान ने भौहें सिकोड़ते हुए प्रश्न किया - "तात्पर्य क्या है तुम्हारा?"

"तात्", अंगद बोला - "वसंत का आगमन हो गया है का अर्थ है कि हमें महाराज ने जो एक माह का समय प्रदान किया था वह कब का व्यतीत हो चुका है। आपको स्मरण ही होगा कि महाराज ने हमें प्रस्थान से पूर्व रोककर चेतावनी दी थी कि यदि हम एक माह के भीतर माता सीता का पता लगाकर नहीं लौटे तो...." भयभीत और हताश अंगद ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

अंगद के इस एक वाक्य से कुछ पल के लिये जाम्बवान और हनुमान दोनों ही स्तब्ध रह गये।

अपने दल के तीनों प्रमुख सदस्यों को पीछे ही रुका देखकर आगे निकल गये वानर भी धीरे-धीरे पीछे लौटने लगे। अंगद के मुख पर पसरा विषाद देखकर सभी अचंभित थे और प्रश्नवाचक दृष्टि से एक-दूसरे से इसका कारण जानने का प्रयास कर रहे थे।

"उसका भय मत करो। हम यदि माता का पता लेकर लौटेंगे, तो वह विलम्ब महाराज सहर्ष क्षमा कर देंगे। इस समय तो सागर पार करने पर ही विचार करो।"

"नहीं तात्, मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता।" कहकर अंगद हठात् चुप हो गया परंतु अन्य वानरों में आपस में खुसुर-पुसुर होने लगी। उस खुसुर-पुसुर के बीच में से तार आगे बढ़ा और अंगद से पूछा - "अंगद क्या बात है? अभी कुछ पल पूर्व तक तो तुम भी हमारे समान ही प्रसन्न थे किन्तु अकस्मात् ऐसा क्या हो गया?"

''मातुल!'' अंगद वैसे ही विषादपूर्ण स्वर में बोला - ''जरा चारों और ध्यान दीजिए, वसंत का आगमन हो गया है। इसका तात्पर्य समझते हैं आप?''

एक बार तो तार के चेहरे पर न समझने वाली रेखायें उभरीं परंतु तत्क्षण ऐसा लगा जैसे वह सब कुछ समझ गया हो। उसके मुँह से निकला - ''तुम कहना चाहते हो कि महाराज के द्वारा हमें दी गयी समय सीमा व्यतीत हो चुकी है।''

''हाँ, और इसी से मैं व्यथित हूँ। महाराज ने चलते समय...''

''मैं कह तो चुका हूँ अंगद'', हनुमान बीच में ही उसकी बात काटते हुए बोले- ''तुम व्यर्थ ही व्यथित हो रहे हो। हम सफल होकर...''

परंतु तार ने उनकी बात भी काट दी। वह बीच में ही बोल पड़ा-

''अंगद सही कहा रहा है हनुमान! मुझे तो प्रतीत होता है कि हमें यहाँ भेजना सुग्रीव की कूटनीति है। वह अंगद को और मुझे समाप्त करने का अवसर खोज रहा है।''

तार की बात सुनते ही शेष वानरों में चल रही खुसुर-पुसुर और तेज़ हो गयी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उनमें से अधिकांश तार की बात से सहमत हों।

दूसरी ओर तार के उद्गार सुनकर हनुमान चकित रह गये। उन्हें क्रोध तो बहुत आया परंतु उन्होंने उस पर नियंत्रण कर लिया। सामान्य स्वर में बोले - ''यह मिथ्यारोप है तार! महाराज पर ऐसे अनर्गल आरोप लगाना तुम्हें शोभा नहीं देता।''

तार कोई उत्तर देने ही जा रहा था कि वहाँ जाम्बवान का स्वर उभरा - ''तुमलोग आपस में यह क्या अनर्गल प्रलाप कर रहे हो। सुग्रीव को ऐसा कुचक्र रचने की भला क्या आवश्यकता पड़ी है?''

हनुमान तार और अंगद की ओर देखने लगे। अंगद तो चुप ही रहा परंतु तार बोल पड़ा - ''तात्! यह अनर्गल प्रलाप नहीं है। हमारा विचार है कि सुग्रीव ने अपना सिंहासन निष्कंटक करने के उद्देश्य से ही हमें सीता की खोज करने हेतु अग्रिम भेजा है।''

''तात्पर्य क्या है तुम्हारा तार?'' जाम्बवान ने आवेश से भरे स्वर में प्रश्न किया - ''तुम ऐसा सोच भी कैसे सकते हो?''

''ऐसा ही है तात्! उसने कितनी धूर्तता से हमें मृत्यु के द्वार में धकेल दिया। उसकी लुभावनी बातों में आकर हम भी मूर्ख बन गये। हमें प्रतीत हुआ कि वह जो हमारा प्रशस्ति गायन कर रहा है वह वास्तविक है परंतु अब मुझे समझ आ गया है कि वह उसका छल था। उसने अत्यंत चतुराई से हमारे लिये जाल तैयार किया था, जिसमें हम बिना सोचे-समझे आ फँसे।''

जाम्बवान कुछ पल तार की आँखों में घूरता रहा। फिर एकाएक अंगद की ओर घूमकर उससे सम्बोधित हुआ - ''क्या तुम भी यही सोचते हो युवराज?''

''हाँ तात् अब तो मैं भी यही सोचता हूँ।'' अंगद ने बिना हिचके उत्तर दिया।

''युवराज! तुम कैसे विस्मृत कर सकते हो कि तुम्हारे काका तुम्हें सदैव से ही कितना स्नेह करते रहे हैं। तुम भी तो अपने पिता के क्रोध की चिंता किये बिना नित्य ही उनसे मिलने ऋष्यमूक पर आते थे।'' जाम्बवान अंगद को समझाते हुए बोला।

प्रश्न तो जाम्बवान ने अंगद से किया था किंतु उत्तर तार ने दिया - ''तब यह बालक था। उसके उस दिखावे को स्नेह समझने की भूल कर बैठा। परंतु वस्तुतः वह उसका स्नेह नहीं था, उसने तो इसके रूप में किष्किंधा के राजप्रासाद में अपना गुप्तचर छोड़ा हुआ था।''

''परंतु अब अचानक ऐसा क्या हुआ जो तुम्हें यह प्रतीत होने लगा कि महाराज तुम से द्वेष रखते हैं, तुम्हें अपने मार्ग का कंटक समझते हैं? वह भी तब जब महाराज यहाँ से बहुत दूर किष्किंधा में बैठे हुए है?''

बोलना तो इस समय हनुमान भी बहुत कुछ चाहते थे, किंतु जब किष्किंधा के वरिष्ठतम पुरुष जाम्बवान वार्ता कर रहे थे तो उनका सम्मान करते हुए वे चुप ही रहे।

''आप ही देखिये तात्'', तार पूर्ववत उत्तेजित स्वर में बोला - ''यह कोई गुप्त तथ्य नहीं है कि सीता का अपहरण त्रिलोक विजयी लंकेश्वर ने किया है। हम सब में सबसे शक्तिशाली हनुमान अपने जिन प्रभु राम और लक्ष्मण की वीरता का गुणगान करते नहीं थकते, वे भी सीधे लंका जाने का साहस नहीं जुटा पाये। उसके लिये उन्होंने किष्किंधा और गुरुकुलों की सहायता लेने की आवश्यकता समझी। इसके लिये उन्होंने पूरे वर्षाकाल प्रतीक्षा भी की। परंतु उस धूर्त सुग्रीव ने उसी लंका में हम इतने से लोगों को अभियान पर भेज दिया। जब लंका पर सारी सेना सहित आक्रमण करना ही था, तो हमें अग्रिम भेजने की क्या आवश्यकता थी?''

कहते-कहते वह एकाएक बाकी वानरों की ओर घूमा और उन्हें भी उकसाते हुए कहने लगा - ''तुमलोगों को क्या अब भी समझ नहीं आयी उसकी कूटनीति? हमारे पास उस धूर्त ने अब कोई मार्ग नहीं छोड़ा है... लंका जाते हैं तब भी मृत्यु निश्चित है और यदि वापस लौटते हैं तब भी। मुझे तो नहीं प्रतीत होता कि हम लंका की अभेद्य सुरक्षा व्यवस्था को भेद कर वहाँ कुछ भी जान पायेंगे। अंततः हमें वहाँ से निराश ही लौटना पड़ेगा... और तब? कुछ सोचा है तुमलोगों ने कि तब क्या होगा? उसने पहले ही कह दिया था कि यदि एक माह में हम वापस नहीं लौटे तो वह हमारा वध कर देगा। यह जानते हुए भी कि मार्ग कितना दुर्गम है और लंका में घुसकर रावण के भेद ले पाना असंभव सा कार्य है, उसने हमें मात्र एक माह का ही समय दिया। हम भी उत्साह में अंधे हो रहे थे कि उस समय इस पर विचार ही नहीं किया कि इस बहाने वह हमें मार्ग से हटाने का षड़यंत्र रच रहा है। वह तो अपने षड़यंत्र में सफल हो ही गया। उसके पास हमारा वध करने के दो-दो बहाने होंगे अब तो। एक तो हमें विलम्ब हुआ और दूसरा हम असफल हुए...''

जाम्बवान और हनुमान दोनों अनुभव कर रहे थे कि तार की बातों का कुप्रभाव अन्य वानरों पर भी पड़ रहा है। वे भी भयभीत और आक्रोशित दिखाई पड़ने लगे हैं। हनुमान को समझ नहीं आ रहा था कि ये सारी बातें कब और कैसे

तार के मस्तिष्क में घर कर गयी? क्या आरम्भ से ही वह सुग्रीव से द्वेष रखता था? असंभव नहीं था ऐसा होना, वह आखिर बालि का साला था। बालि के जीवनकाल में उसका किष्किंधा में जो प्रभाव था, सुग्रीव के सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् वह तो घट ही गया था, साथ ही उसकी बहन के साथ भी सुग्रीव ने संबंध स्थापित कर लिये थे। उसके पास सुग्रीव से द्वेष करने का कारण था। वे अभी यह सब सोच ही रहे थे कि उनके कानों में तार के प्रति प्रताड़ना भरा जाम्बवान का स्वर पड़ा, वे कह रहे थे - ''तार तुम्हारा मस्तिष्क फिर गया है क्या, जो ऐसा अनर्गल प्रलाप कर रहे हो?''

पर तार ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया, वह तो अपनी ही रौ बहा जा रहा था - ''तुमलोगों ने संभवतः ध्यान नहीं दिया कि उसने चुन-चुनकर उन्हीं लोगों को इस अभियान में भेजा है जो महाराज बालि के विश्वासपात्र थे। अंगद तो उनका पुत्र ही है और मैं उसका मातुल हूँ। अब आप स्वयं समझ सकते हैं कि उसका उद्देश्य सीता की खोज नहीं थी, वह तो सभी को पता है कि सीता लंका में है। रावण उसे ले गया है यह तो स्वयं सुग्रीव ने ही देखा था। उसके सबसे प्रबल समर्थक हनुमान और तात् जाम्बवान इसके साक्षी हैं... उसका उद्देश्य तो अंगद को अपने मार्ग से हटाकर अपने सिंहासन को निष्कंटक बनाना था।''

हनुमान पूरे धैर्य से इतनी देर से उसकी बकवास सुन रहे थे किंतु अब उनका धैर्य में चुक गया, वे चीखकर बोले - ''अब बस करो तार अन्यथा अनर्थ हो जायेगा।''

''क्या अनर्थ हो जायेगा हनुमान?'' तार एक विद्रूप भरी हँसी के साथ बोला- ''यही कि सुग्रीव से पहले ही तुम स्वयं हमारा वध कर दोगे? तो कर दो, तुम समर्थ हो। हमें तो मृत्यु का वरण करना ही है, क्या अन्तर पड़ता है कि माध्यम सुग्रीव बने या तुम। तुम्हारे हाथों मृत्यु का वरण करना श्रेष्ठ ही होगा, तुम कम से कम उसके समान धूर्त तो नहीं हो।''

कहकर तार फिर हँस पड़ा। हनुमान से उत्तर देते नहीं बना, उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी कि अकस्मात ही बात इतनी बिगड़ जायेगी।

इसके बाद कुछ पल तो मौन रहा फिर एकाएक कई स्वर उभरे - ''तार सत्य कह रहे हैं। सागर पार कर, त्रिलोक विजयी रावण के घर में घुसकर सीता का पता लगा पाना कोई बच्चों का खेल नहीं है। पहले तो हमारे लिये इस अंतहीन सागर से ही पार पा पाना असंभव है। यदि किसी तरह इस बाधा को पार कर भी लिया तो वहाँ रावण के हाथों हमारी मृत्यु निश्चित है। हम मात्र इतने से लोग उसकी विशाल सेना के सम्मुख क्या कर लेंगे! फिर भी यदि किसी चमत्कार से जीवित बच गये तो महाराज सुग्रीव हमारा वध कर डालेंगे।''

''अच्छा, बन्द करो अब यह प्रलाप और आगे की कार्य योजना पर विचार करो। उठो अंगद, तुमसे महाराज कुपित नहीं होंगे इसका दायित्व मैं लेता हूँ।'' जाम्बवान कुछ और उच्च स्वर में बोला।

तार कुछ बोलता उससे पूर्व ही इस बार मैन्द बोल पड़ा - ''यह प्रलाप नहीं है तात्, जिस व्यक्ति ने राज्य प्राप्ति के लिये अपने सगे भाई का वध करवा दिया, वह अवश्य ही अपने राज्य को निष्कंटक बनाने के लिये युवराज अंगद का भी वध करना चाहेगा।''

''तुमलोग भी इस पागल तार की बातों में आ रहे हो। तुमलोग बालि के विश्वासपात्र रहे हो, परंतु यह मत भूलो कि मैं और हनुमान तो सदैव से ही सुग्रीव के साथ रहे हैं। हम भी इस अभियान में सम्मिलित हैं। सुग्रीव का यदि वही मन्तव्य होता जो यह तार कह रहा है, तो उसने...''

जाम्बवान अपनी बात पूरी कर पाते उससे पूर्व ही तार अत्यंत तीखे स्वर में बोल पड़ा - ''तात् अब हमें किसी पर विश्वास नहीं रहा। क्या पता आप दोनों को सुग्रीव ने किसी विशेष प्रयोजन से ही भेजा हो! क्या पता आप दोनों को उसने इसी उद्देश्य से भेजा हो कि हम समय पर कार्य सम्पादित न कर पायें! तभी तो सीधे लंका की ओर आने के स्थान पर हनुमान व्यर्थ ही हमें पर्वत कन्दराओं में

भटकाते रहे। यदि हनुमान ने ऐसा न किया होता तो हम समय रहते यहाँ तक आ गये होते और तब हमारे सिर पर मृत्यु का संकट भी न मँडरा रहा होता।''

आपस में विवाद बढ़ने लगा। धीरे-धीरे स्थिति यह आ गयी कि हनुमान और जाम्बवान के अतिरिक्त शेष सभी तार और अंगद के पक्ष में हो गये।

इसी बीच शरगुल्म ने प्रस्ताव रख दिया - ''युवराज मेरी समझ से तो अब हमारे लिये पुनः लौटकर इसी गुफा में शरण लेना श्रेयस्कर है। वापस किष्किंधा लौटे तो महाराज निश्चय ही हमारा वध कर देंगे और आगे बढ़े तो रावण के हाथों मृत्यु का वरण करना पड़ेगा।''

''यही उचित रहेगा। यह रहस्यमयी गुफा ही अब हमें शरण दे सकती है। इसमें सुग्रीव हमारा कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा।'' तार ने भी उसके प्रस्ताव का समर्थन किया।

@VipBooksNovels

हनुमान चकित और व्यथित से बैठे यह सब विवाद देख रहे थे। उनके मन में भयानक क्लेष हो रहा था कि कुछ देर पहले तक तो ये सब कितने उत्साह से भरे हुए थे परंतु अब अचानक इस प्रकार भयभीत होकर आपस में ही कलह करने लगे हैं। अंततः उन्हें बोलना ही पड़ा - ''तुमलोगों को क्या प्रतीत होता है कि यह गुफा लक्ष्मण के बाणों से तुम्हारी सुरक्षा कर लेगी? तुम्हें क्या ज्ञात नहीं कि अयोध्या के ये दोनों राजकुमार कितने प्रतापी हैं? क्या तुम भूल गये कि प्रभु राम ने एकाकी ही किस प्रकार खर-दूषण समेत राक्षसों की चौदह सहस्त्र सेना का संहार कर डाला था?''

कहकर उन्होंने सुग्रीव के प्रति विद्रोह के लिये उद्यत वानरों की ओर देखा। किसी में साहस नहीं था हनुमान के विरोध में खड़े होने का। मौन पसरा देख हनुमान पुनः बोले - ''और यदि तुम्हें यह प्रतीत होता है कि तुम्हारा यह कृत्य महाराज सुग्रीव और प्रभु श्रीराम के संज्ञान में नहीं आयेगा तो तुम यह कैसे विस्मृत कर सकते हो कि तुम्हारे इस सारे प्रलाप का साक्षी हनुमान यहीं बैठा है। तुम यह भी जानते हो कि यदि मैं चाहूँ तो अभी यहीं तुम सबको तुम्हारे दुस्साहस का

दण्ड दे सकता हूँ किंतु मैं ऐसा नहीं करूँगा। तुम्हें दण्ड देने का अधिकार तो स्वयं महाराज को ही है। परंतु यह भी समझ लो कि मैं आपस में फूट को भी सहन नहीं कर सकता।''

हनुमान की बात सुनकर वहाँ फिर से सन्नाटा पसर गया।

इस बार सन्नाटे को तोड़ा अंगद के स्वर ने। उसके स्वर में हताशा भरी हुई थी। वह बोला - ''हनुमान भैया, मेरे लिये तो अब चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। विलम्ब के लिये काका मुझे कदाचित क्षमा भी कर देते किंतु अभी यहाँ जो बातें हुई हैं, उनके बारे में जानने के बाद तो ऐसा कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये मेरा आश्रय तो अब एकमात्र मृत्यु ही है।'' इसके बाद वह शेष वानरों की ओर घूमा और उनसे सम्बोधित हुआ- ''तुम सब लोग अब वापस लौट जाओ, तुम्हें महाराज क्षमा कर देंगे। परंतु मैं अब यहीं आमरण उपवास कर अपने प्राण त्याग दूँगा। मेरे लिये यही एकमात्र उपाय है। मुझे मेरी माता की चिंता है किंतु उन्हें विधाता ही देखेंगे अब!''

कहते हुए अंगद हताशमुख, वहीं सामने पड़ी एक शिला पर आसन जमाकर बैठ गया।

हनुमान की समझ में ही नहीं आया कि इस समय क्या करें। अंगद जैसा व्यक्ति जो बचपन से ही अपने काका का चहेता रहा है, एकाएक ही उनसे इस प्रकार भयभीत क्यों हो उठा है!

एक बार फिर से सबके बीच इसी विषय में विवाद छिड़ गया। कई वानर वीर, जो कुछ समय पूर्व तक अंगद को सुग्रीव के विरुद्ध भड़काने का प्रयास कर रहे थे, उसके इस निर्णय से और भयभीत हो गये। उन्होंने भी अंगद के साथ ही उपवास के द्वारा अपने प्राण त्याग देने का निर्णय सुना दिया।

''क्या मूर्खता कर रहे हो अंगद?'' एकाएक हनुमान चिल्लाये- ''तुमने ऐसा कैसे सोच लिया कि महाराज तुम्हारे प्राण ले लेंगे।''

''नहीं भैया, अब मेरे सम्मुख जीवन का कोई मार्ग शेष नहीं बचा है। अब मुझे उपवास के द्वारा अपने प्राणों का त्याग करना ही होगा।''

स्थिति विकट होती जा रही थी। जाम्बवान और हनुमान को समझ ही नहीं आ रहा था कि इसे कैसे सँभालें। स्थिति यह हो गयी कि इन दोनों के अतिरिक्त शेष सारे वानर-वीर आसन लगाकर उपवास द्वारा प्राण त्यागने को तत्पर हो गये।

41. सम्पाती

एक उलझन सुलझी नहीं थी कि अचानक दूसरी सामने आ गयी। अचानक दूर पड़ी एक विशाल शिला में हलचल सी हुई और मेघ-गर्जना के समान स्वर कौंध गया - ''अब यदि तुम सबने मृत्यु का आवाहन कर ही लिया है तो शीघ्रता करो, मैं भी क्षुधातुर हूँ।''

सब चौंककर देखने लगे कि यह स्वर किस ओर से आया है। एकाएक तो किसी को कुछ समझ नहीं आया। कइयों ने तो यही समझा कि यह रावण की ही कोई माया है। यह विचार मन में आते ही भय से वे सब सिहर उठे। हनुमान ने भी सिर घुमाकर चारों ओर देखा, फिर वे भी तीव्र गर्जना के स्वर में बोले - ''कौन है, प्रत्यक्ष क्यों नहीं आते?''

''क्रोध क्यों कर रहे हो वत्स!'' फिर से मेघ-गर्जना के समान वही स्वर उभरा- ''वार्धक्य और क्षुधा ने शिथिल कर दिया है। सम्मुख आते समय लगेगा।''

इस बार हनुमान की दृष्टि उस मेघ-गर्जन के स्रोत पर पड़ी। पड़ते ही वे और चौंक उठे। उनकी बायीं ओर पड़ी अनेक शिलाओं में से एक में हलचल हो रही थी। वस्तुतः वह शिला थी ही नहीं। वह तो गरुड़ जाति का एक अत्यंत विशालकाय वृद्ध था, जो घुटनों में सिर डाले बैठे होने के कारण एकाएक शिला के समान प्रतीत हो रहा था।

हनुमान की दृष्टि का अनुसरण करती हुई अन्य सब की दृष्टि भी अब तक उसी ओर टिक चुकी थी, सब मुँह बाये उस व्यक्ति को देख रहे थे। अब तक वह खड़ा हो चुका था। पर्वताकार शरीर, कृष्ण वर्ण, किसी गिद्ध की चोंच के समान मुखाकृति, लम्बे-लम्बे श्वेत केश और दाढ़ी।

बहुत धीरे-धीरे पग धरता हुआ वह पर्वताकार व्यक्तित्व आकर उन लोगों के ठीक सामने खड़ा हो गया और फिर वहीं बैठ गया। बैठने के साथ ही बोला - ''लो प्रत्यक्ष आ गया।''

एक पल को तो किसी को समझ ही नहीं आया कि क्या कहें। विस्मय और भय से मिश्रित उस सम्मोहन की अवस्था से सबसे पहले जाम्बवान ही बाहर आये। स्वयं को नियंत्रित करते हुए उन्होंने प्रश्न किया - ''आप कौन हैं, अपना परिचय देंगे?''

''अब परिचय में क्या रखा है बंधु! जब मैं भी इन सबके समान युवा था तो मेरा भी परिचय हुआ करता था, अब तो आयु ने सब छीन लिया। बस किसी निर्जीव शिला के समान वर्षों से एक ही स्थान पर पड़ा हुआ हूँ।''

अब तक अंगद भी सँभल गया था। उसने प्रश्न किया - ''आप नहीं बताना चाहते तो कोई बात नहीं, मत बताइये। किंतु इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हमारा और आपका कोई पूर्व परिचय नहीं है अतः हमारे मध्य किसी वैमनस्य का भी प्रश्न नहीं उठता।''

''ऐसा ही है।'' उस वृद्ध ने स्वीकार किया।

''तब आप हमारी मृत्यु की कामना क्यों कर रहे हैं?''

''मैं ऐसा कब कर रहा हूँ, वह तो तुम स्वयं ही कर रहे थे।''

''क्यों, आपने नहीं कहा था कि 'अब यदि तुम सब ने मृत्यु का आवाहन कर ही लिया है तो शीघ्रता करो, मैं भी क्षुधातुर हूँ'।''

वह वृद्ध धीरे-धीरे बोला - ''हाँ, कहा था। जाने कब से मैं यहाँ क्षुधातुर पड़ा, अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था। कभी जिस सम्पाती की गति की कोई तुलना ही नहीं थी, आज उसमें अपने आहार हेतु आखेट कर पाने की भी सामर्थ्य नहीं रह गयी है। ऐसे में जब विधाता ने स्वयं ही तुम्हें मेरा आहार बनाकर यहाँ भेज दिया, तो मेरा प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था।''

इस अवस्था में भी अंगद के अधरों पर एक हताश सी हँसी फूट पड़ी। उसके मुख से निकला - ''विधाता की लीला भी निराली है। हमलोग जानकी के कार्यवश यहाँ आये तो हमारी मृत्यु के उपरांत हमारे शरीर को आपके हाथों वीभत्स गति प्राप्त होने वाली है। वहीं तात जटायु जानकी के...''

''ठहरो!'' एकाएक उस वृद्ध की शिथिल काया में कंपन हुआ। उसकी एक ओर लुढ़की पड़ी ग्रीवा सीधी हो गयी। उसके सतेज नेत्र अंगद के मुख पर टिक गये, फिर से वही मेघ गर्जन के समान तेजस्वी स्वर गूँजा - ''तुमने अभी जटायु का नाम लिया, तुम उससे परिचित हो?''

''कभी भेंट तो नहीं हुई, किन्तु, तो भी हम उनसे परिचित थे।''

''थे? ...थे का क्या अर्थ हुआ?''

''वे आपके कोई सुहृद थे क्या?''

''वह मेरा प्रिय अनुज था... परंतु मेरी कथा छोड़ो, जटायु के विषय में बताओ, क्या हुआ उसे? और एक बार में ही सब बता डालो, जो भी प्रश्न करने हों उसके बाद करते रहना। मेरी व्यग्रता की परीक्षा मत लेना।''

उस वृद्ध की वाणी में ऐसा कुछ था कि अंगद सहम सा गया। उसे जटायु के विषय में जो कुछ भी ज्ञात था, उसने एक बार में ही वह सब बता डाला।

वह वृद्ध भी चुपचाप बैठा अंगद को सुनता रहा। एक बार भी बीच में नहीं टोका। जैसे ही जटायु की मृत्यु का प्रसंग आया, उसके मुख पर दुःख और क्रोध के मिले-जुले भाव पसर गये।

''अब अपने विषय में बताओ। तुम किष्किंधा से यहाँ किस प्रयोजन से आये और अब मृत्यु का आवाहन क्यों कर रहे थे?''

अंगद ने वह सारी कथा भी सुना दी। कथा सुनकर उस वृद्ध के मुख से मात्र एक शब्द निकला- ''ओह!''

फिर कुछ देर तक वहाँ शांति छायी रही, उसके बाद वह वृद्ध फिर बोला - ''जिस स्त्री की रक्षा करते हुए मेरे भाई ने अपने प्राण उत्सर्ग किये... अब उसके अधूरे रह गये कार्य को पूरा करने में अपना पूरा सहयोग करना मेरा दायित्व है।''

कहकर वह एक बार फिर कुछ पल के लिये रुका। वहाँ उपस्थित सभी साँस रोके उसके आगे बोलने की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ पल बाद वह पुनः बोला - ''वैसे तो मुझे इस सबसे कोई लेना-देना नहीं होता, परंतु अब मुझे भी रावण से अपने भाई की हत्या का प्रतिशोध लेना होगा। यदि मैं युवा रहा होता तो मैं स्वयं ही लंका जाकर जानकी को ले आता, किंतु अब तो मेरे लिये चल पाना भी संभव नहीं है। तो भी मैं तुम्हें बहुत कुछ ऐसा बताऊँगा जिससे तुम्हारा कार्य सुगम हो जायेगा।''

कहकर वह एक पल और रुका, सबकी उत्सुकता और बढ़ती जा रही थी। वह फिर कहने लगा - ''जानकी लंका में ही है। मैंने स्वयं रावण को किसी स्त्री को अपहृत कर लंका ले जाते देखा था। वह स्त्री पीत वस्त्रों में लिपटी हुई थी और निरन्तर हा! राम - हा! लक्ष्मण कहकर आर्तनाद कर रही थी। निस्संदेह वह सीता ही थी। एक बार मैंने उसे आर्तनाद करते हुए कोई आभूषण भी फेंकते देखा था।''

''निस्संदेह वे माता ही थीं'', सम्पाती की बात सुनते ही हनुमान उत्साह से बोल पड़े - ''जब पुष्पक ऋष्यमूक के ऊपर से गुज़रा था तब भी वे इसी प्रकार आर्तनाद कर रही थीं। वहाँ भी उन्होंने अपने आभूषण फेंके थे... और... और उनके वस्त्रों पर मैंने अधिक ध्यान तो नहीं दिया था परंतु संभवतः वे पीत वस्त्र ही पहने हुए थीं।''

''उन्होंने जो आभूषण फेंके थे, वे क्या आपके पास हैं?'' अचानक जाम्बवान ने पूछा - ''नहीं, मुझे तो अब मात्र आहार से ही प्रयोजन रहता है, आभूषण को उठाने के लिये उतना चलकर कौन जाता! ...बताया तो तुम्हें कि अब मुझसे चला नहीं जाता।'' सम्पाती ने उत्तर दिया।

''आप हमें ऐसा और कुछ भी बताने जा रहे थे जिससे हमारा कार्य सहज हो सकेगा?

''अवश्य बताऊँगा किंतु पहले मुझे सहारा देकर सागर तट तक ले चलो। पहले मुझे अपने अनुज जटायु की आत्मा की शांति के लिये उसे जलांजलि देनी है।''

अंगद सहज अब भी नहीं हुआ था किंतु सम्पाती की बात सुनकर उसे सहारा देने के लिये वह उठ खड़ा हुआ। हनुमान और अंगद उसे पकड़कर तट तक लाये। तट पर सम्पाती ने विधिवत जटायु को जलांजलि दी और फिर वहीं बालुका राशि पर बैठ गया। शेष सब भी बैठ गये और उत्सुकता से उसके आगे बोलने की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देर बाद वह बोला - ''मेरे पुत्र सुपार्श्व ने भी देखा था उन दोनों को। वह युवा है। उसकी दृष्टि भी बहुत तीखी है, उसने तो रावण को स्पष्ट पहचाना था। वह अगर इस समय यहाँ होता तो तुम्हें सीता का भी सम्पूर्ण विवरण दे सकता था।''

''तो सुपार्श्व इस समय कहाँ होगा?''

''क्या पता कहाँ होगा! वह तो मेरे भोजन की व्यवस्था करने दिन में एक बार आता है, शेष जहाँ मन होता है वहाँ घूमता फिरता है।''

हनुमान इतनी देर में सम्पाती का गहन निरीक्षण कर चुके थे। उसे पकड़कर तट तक लाने में उन्हें अनुमान हो गया था कि उसका शरीर कितना ठोस और शक्तिशाली है। वे उसके विषय में अधिक जानने को उत्सुक हो रहे थे अतः प्रशंसायुक्त स्वर में वे बोले - ''तात्, आप वृद्ध अवश्य हैं किंतु आपके शरीर को देखकर तो यही प्रतीत होता है कि आप में अब भी बहुत बल है। आप अब भी हम में से किसी को भी अकेले परास्त कर सकते हैं।''

''तुम सत्य कह रहे हो वत्स्!'' सम्पाती प्रसन्न होकर बोला - ''मैं अभी भी अकेले तुम सबको परास्त कर सकता हूँ... जब मैं युवा था, तब की तो बात ही क्या!'' कहते-कहते सम्पाती के मुख पर पहले गर्व के भाव उभरा और फिर

एकाएक पश्चाताप के भाव उभर आये। वह धीरे से बोला - ''शास्त्रों में कहा गया है कि अपने बल पर दंभ नहीं करना चाहिए, परंतु मुझे तो अपने बल पर दंभ हो गया था। मैं अकारण ही पर्वतों पर उत्पात मचाया करता था। मेरे हर उत्पात में जटायु भी मेरे साथ ही हुआ करता था। वह भी अत्यंत शक्तिशाली था, तो भी मुझसे बहुत कम था। अच्छी बात यह थी कि उसे अपनी शक्ति का दंभ नहीं था। संभवतः विधि ने मुझे मेरे दंभ का ही दंड दिया।''

''क्या हुआ था तात्?'' सम्पाती को बहकते देख हनुमान ने धीरे से प्रश्न कर दिया।

''हुआ क्या... हम दोनों एक दिन यूँ ही पर्वतों को फलाँग रहे थे। मैं जटायु से बहुत आगे निकल आया था। तभी एक दिन सूर्यदेव से भेंट हो गयी। वे अपने आकाशगामी रथ से कहीं जा रहे थे। अपने बल के मद में चूर मैंने उन्हें ललकार दिया।''

''फिर?'' हनुमान ने प्रश्न किया।

''फिर क्या... वे भी सूर्यदेव थे। वे भला मेरी चुनौती को कैसे अस्वीकार कर सकते थे। वे भी अपने आकाशगामी रथ से कूद कर नीचे आ गये। हम दोनों में युद्ध होने लगा। उस युद्ध में जब मैं भारी पड़ने लगा तो वे भागने लगे। उनके संकेत पर उनका सारथी रथ को उनके निकट ले आया। वे कूदकर रथ में आसीन हुए और सारथी उसे ऊपर उड़ा ले गया। तुम्हें ज्ञात ही होगा कि उनके रथ की गति कितनी तीव्र है। पलक झपकते ही वे दूर होने लगे।

''मैं उन्हें इस प्रकार भागने नहीं दे सकता था अतः मैंने भी एक लम्बी छलाँग लगा दी उनके रथ की ओर। मैंने रथ को पा भी लिया परंतु मेरा दुर्भाग्य कि उस रथ पर मेरी हथेलियों को कहीं टिकने का स्थान नहीं प्राप्त हो सका। मैं उतनी ऊँचाई से दूर गहरी घाटी में जाकर गिरा। मैं जहाँ गिरा, वहाँ की चट्टानें चूर-चूर हो गयीं परंतु साथ ही मेरी रीढ़ की हड्डी समेत मेरे सारे शरीर की अस्थियाँ भी चकनाचूर हो गयीं।''

"ओह!" वहाँ उपस्थित समस्त वानरों के मुख से एक कराह सी निकल पड़ी।

सम्पाती फिर कहने लगा - "जाने कब तक मैं वहीं संज्ञाशून्य होकर पड़ा रहा। बड़ी कठिनाई से जटायु ने मुझे खोजा और इस कन्दरा में लाकर मेरी चिकित्सा का प्रबन्ध किया। फिर मेरे पुत्र को सूचना दी। उसके बाद मैं ठीक तो हो गया किंतु मेरी गति चली गयी। बल तो पुनः प्राप्त हो गया किंतु गति जो गयी तो फिर नहीं लौटी।... और अब तो वार्धक्य भी अपना प्रभाव दिखाने लगा है, अन्यथा मैं स्वयं ही जाकर सीता को खोज लाता।"

"कोई बात नहीं तात्, माता की खोज का कार्य तो हमलोग कर लेंगे किंतु आप उस विषय में हमें और कुछ बताने वाले थे?" हनुमान ने धीरे से अपनी बात कही।

"हाँ, वही बता रहा हूँ", सम्पाती बोला और बताने लगा - "देखो, इस सागर को पार करने के उपरांत तुम्हें लंका द्वीप मिलेगा। लंका के दक्षिणी भाग में त्रिकूट पर्वत पर रावण की राजधानी है। वहीं उसका अद्भुत-अपूर्व विशाल प्रासाद है। इस लंका का निर्माण स्वयं विश्वकर्मा ने किया था किंतु उस सब इतिहास के वर्णन का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। अतः तुमलोग अब अविलम्ब इस खारे सागर को पार करने का कोई मार्ग खोजो। इसमें कोई संशय नहीं है कि जिसे तुमलोग खोजने आये हो वह लंका में ही है।"

"सागर संतरण में मुझे कोई द्विविधा नहीं है तात्... और कुछ बताना चाहेंगे?"

"हाँ, जहाँ पर इस समय हम खड़े हैं वहाँ से लंका का सबसे निकट का तट भी सत्रह-अठारह योजन से कम नहीं होगा। यदि तुम एक बार में ही इतनी दूरी तक तैरने का साहस रखते हो तो यही सर्वोत्तम मार्ग है। यह तुम्हें सीधे लंका के राजप्रासाद के अत्यंत निकट पहुँचा देगा।"

"आप चिंता न करें तात, हनुमान सहजता से इतना संतरण कर सकता है।"

''तुम्हारा आत्मविश्वास देखकर मुझे पूरा भरोसा है कि तुम अवश्य सफल होंगे। परंतु तुम इतने से लोग जाकर सीता को लंका से निकाल कर नहीं ला सकते। उसके लिये तो तुम्हें पूरी योजना के साथ आना ही पड़ेगा। जैसा तुमने राम और लक्ष्मण के विषय में बताया है, उसके दृष्टिगत वे निश्चय ही रावण को परास्त करने में सफल होंगे।''

''तात् माता को मुक्त कराकर लाने के लिये प्रभु श्रीराम का यह सेवक ही पर्याप्त है। प्रभु के आशीर्वाद से हनुमान में इतनी सामर्थ्य है कि वह रावण को भी परास्त कर सकता है। परंतु प्रभु ने अभी हमें मात्र माता का पता लगाने का ही आदेश दिया है। हनुमान उनके आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता।'' हनुमान ने विनयपूर्वक परंतु दृढ़ता से उत्तर दिया।

''तो ठीक है, मुझे वापस वहीं तक पहुँचा दो। तदुपरांत एक बार महेन्द्र गिरि के शिखर से मार्ग को भलीभाँति समझ भी लेना। वहाँ से तुम्हें लंका का तट दिखाई देगा, तब तुम निकटतम तट को देखकर अपना दिशा निर्धारण सरलता से कर सकोगे। वहाँ से तुम्हें लंका का प्रासाद भी दिखाई पड़ सकता है।''

बात सभी को समझ आयी। सभी सम्पाती को लेकर उसकी कन्दरा की ओर वापस चल दिये। उसे उसकी कन्दरा में छोड़कर जब सब महेन्द्र गिरि पर और ऊपर चढ़ने के लिये आगे बढ़े तो सम्पाति फिर बोला - ''एक अन्य महत्वपूर्ण बात बताना तो भूल ही गया। बूढ़ा हो गया हूँ न, तो याद ही नहीं रहता।''

''क्या बात तात्?'' हनुमान ने पूछा।

''अभी तो तुम्हारे पास तुम्हारी गदा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, तुम इतना तैर सकते हो, किंतु जब युद्ध हेतु सेना सहित आओगे, तब समस्त आयुधों और अन्य सामग्री के साथ इस विशाल सागर को पार करना संभव नहीं होगा। तब तक पता नहीं मैं जीवित रहूँ अथवा नहीं अतः अभी बता देता हूँ।''

''क्या तात?''

''यहाँ से पूर्व की ओर एक ऐसा स्थान भी है जहाँ पर दोनों तटों के मध्य की दूरी मात्र तीन योजन ही है। उसमें भी कई छोटे-छोटे द्वीप उभरे हुए हैं। वहाँ से तुम्हारे प्रभु राम सहजता से सम्पूर्ण सैन्य को पार उतार सकते हैं। तुम्हें भी यदि तनिक सी भी शंका हो तो उसी मार्ग का अनुसरण कर सकते हो, परंतु उसके लिये पहले तुम्हें यहाँ से उस स्थान तक यात्रा करनी पड़ेगी और फिर लंका के उत्तरी छोर से उस द्वीप की लगभग आधी लम्बाई को पैदल पार करना होगा। इस प्रकार दूरी बहुत बढ़ जायेगी साथ ही स्थल भाग से यात्रा करने पर तुम्हारे मार्ग में अनेक अवरोध भी आ सकते हैं।''

''मैं यहीं से सागर-संतरण करूँगा।'' हनुमान ने निश्चय पूर्व उत्तर दिया और फिर से सागर के विस्तार को देखते हुए अपनी रणनीति पर विचार करने लगे। हनुमान के विपरीत, इस समय सम्पाती द्वारा दी गयी जानकारी से जाम्बवान की आँखें चमक उठीं। यह जानकारी भविष्य में बहुत काम जो आने वाली थी।

सम्पाति को उसकी कन्दरा में छोड़कर, सबने महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर मार्ग का अन्वेषण किया। पर्वत के ऊपर से लंका का तट स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। हनुमान ने अपनी दृष्टि लंका के निकटतम तट पर केन्द्रित की और फिर सम्पाती के कहे अनुसार उसे आगे बढ़ाया। उन्हें त्रिकूट पर्वत के तीनों शिखर स्पष्ट समझ में आ गये। फिर उन्हें स्वर्ण-नगरी के नाम से विख्यात लंका की राजधानी की विशाल प्राचीर भी दिखाई पड़ गयी।

कुछ देर तक वे सम्पूर्ण मानचित्र अपने मस्तिष्क में बिठाते रहे और फिर माता सीता के अन्वेषण का अभियान आरम्भ करने के लिये पर्वत से उतरकर सागर की ओर बढ़ने लगे। शेष सभी उनका अनुसरण करने लगे।

तट पर आकर जाम्बवान बोले - ''मैं अवश्य जाता हनुमान के साथ परंतु अब इस वय में इतने योजन सागर पार कर पाना मेरे लिये संभव नहीं है।'' इतना कहकर वे शेष दल की ओर घूमे और पूछा - ''कोई अन्य है जो यह साहस कर सके।''

सम्पाती की उत्साहवर्धक बातें सुनकर अंगद अब तक अपनी हताशा से लगभग उबर चुका था। उसने एक बार सोचा, परंतु फिर साहस नहीं जुटा पाया। शेष सबने तो पहले ही अपने शीश झुका लिये थे। उस अंतहीन सागर को देखकर कोई भी उसे पार करने की सामर्थ्य अपने भीतर नहीं पा रहा था। वहाँ स्तब्धता सी छाई रही।

जब कोई अन्य आगे नहीं बढ़ा तो अंगद ने फिर साहस जुटाया और आगे आकर बोला - ''मैं जाऊँगा तात! मैं दलप्रमुख हूँ, मेरा दायित्व बनता है प्रत्येक परिस्थिति में अभियान का नेतृत्व करना।''

''नहीं अंगद, तुम दलप्रमुख होने के साथ-साथ युवराज भी हो। हम तुम्हारी सुरक्षा के साथ समझौता नहीं कर सकते। मैं तुम्हें इसकी अनुमति नहीं दूँगा।'' जाम्बवान निश्चयात्मक ढंग से बोला।

''क्या अभी कुछ समय पूर्व मातुल की कही बातों से आपको मेरी निष्ठा पर संदेह उत्पन्न हो गया है?'' अंगद ने तत्काल सीधे जाम्बवान की आँखों में देखते हुए प्रश्न कर दिया।

''नहीं युवराज! वह सब हताशा से उपजा एक क्षणिक आवेग मात्र था। मुझे किष्किंधा के प्रति, सुग्रीव के प्रति और सबसे अधिक प्रभु श्रीराम के प्रति तुम्हारी निष्ठा में कोई संदेह नहीं है। परंतु यह निर्णय अंतिम है कि अब इस अभियान पर आगे मात्र हनुमान ही जायेगा। तुम भले ही दलप्रमुख हो, युवराज हो परंतु मैं तुम्हारा गुरुजन हूँ, इस नाते मैं तुम्हें आदेश दे सकता हूँ।''

अंगद ने फिर कुछ नहीं कहा।

***

हनुमान कुछ पल के लिये आँखें बंद किये, हाथ जोड़े खड़े मन ही मन प्रभु श्रीराम का स्मरण करते रहे। प्रार्थना करते रहे कि 'हे प्रभु! मुझे इतनी शक्ति दें कि मैं इस चुनौती से सफलतापूर्वक पार पा सकूँ।'

कुछ ही पलों में उन्हें अपनी बन्द आँखों में उभरती प्रभु की छवि स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी। वे मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए वरदान के लिये अपना एक हाथ उठाये हुए थे। हनुमान को अब अपनी सफलता के प्रति कोई आशंका नहीं रह गयी। फिर एक बार उन्होंने अपने धर्मपिता पवन देव और गुरुदेव सूर्य देव को भी स्मरण कर उनका आशीष माँगा। उसके बाद थोड़ा पीछे लौटे और फिर तेजी से दौड़ पड़े। गदा उनके कंधे पर रखी हुई थी।

अचानक उन्हें ठहर जाना पड़ा। कारण जाम्बवान का वह तीखा आदेशात्मक स्वर था - ''ठहरो।''

ठहरकर हनुमान ने दृष्टि फिराकर जाम्बवान की ओर देखा। जाम्बवान मुस्कुराते हुए बोला - ''गदा कंधे पर ही रखकर तैरोगे?''

''अन्य उपाय क्या है?''

''प्रतीत होता है, अतिउत्साह ने तुम्हारी बुद्धि हर ली है...'' जाम्बवान हँसते हुए बोला, और फिर हनुमान से कुछ कहे बिना मैन्द को आदेश दिया - ''दौड़कर कुछ सुदृढ़ लतायें उखाड़ लाओ।''

बात समझ में आते ही हनुमान हँस पड़े। सच में कितनी बड़ी मूर्खता कर रहे थे वे। गदा कंधे पर रखकर एक हाथ से अठारह-बीस योजन तैर पाना असंभव था।

कुछ ही देर में मैन्द कई लतायें उखाड़ लाया। हनुमान ने अपनी गदा की नोक अपनी कमर पर लँगोट में घुरस ली। अब गदा का, बड़ी सी गेंदनुमा अग्रभाग उनकी ग्रीवा के पास आकर टिक गया। उसे लताओं के द्वारा जाम्बवान ने उनकी पीठ के साथ बाँध दिया।

सब एक बार फिर हँस पड़े। जाम्बवान मुस्कुराकर बोला - ''अब जाओ, प्रभु राम तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करेंगे।''

समस्त दल की करतल ध्वनि के मध्य हनुमान ने एक बार पुनः दौड़ लगा दी। जल स्तर जब तक उनके घुटनों तक रहा, वे दौड़ते ही रहे और उसके बाद

एक लम्बी छलाँग मारकर तैरने लगे। धीरे-धीरे उनकी गति तीव्र होने लगी। तभी उन्हें पीछे से पूरी शक्ति के साथ चिल्लाते हुए जाम्बवान का स्वर सुनाई दिया - ''गति को नियंत्रित रखो वत्स! अधिक गति तुम्हें थका देगी।''

हनुमान ने अपनी गति कुछ कम कर ली।